

TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182219

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. 482

Accession No. H 3042

Author T 55 B

Author तीवारी, गोपनाथ.

Title भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य.

This book should be returned on or before the date last marked below

ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य

(१८५०-१९०० ई०)

लेखक

गोपीनाथ तिवारी एम० ए०, पी-एच० डी०

हिन्दी-विभाग

गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

जालन्धर और इलाहाबाद

रीगल बुक डिपो

नई सड़क, दिल्ली

१९५६]

[मूल्य ८]

प्रकाशक—

इन्द्रचन्द्र नारंग .

हिन्दी-भवन

३१२ रानी मंडी

इलाहाबाद-३

मुद्रक—

इन्द्रचन्द्र नारंग

कमल मुद्रणालय

३१२ रानी मंडी,

इलाहाबाद ३

ओ३म्
श्री कृष्णार्पणमस्तु
समर्पण-पत्र

उमा दारु योषित की नाई । सबहिं नचावत राम गोसाई ॥



तेरा तुझको सौंपते क्या लागे है मोर ।

कभी तेरे द्वार पर आकर पड़ा था । उस समय भी हाथ में केवल पत्र थे ।
अंगुलिनिर्देश से तू उठाता रहा । दूर हुआ, तब भी तो हाथ
बढ़ाता रहा । पुनः कुछ पत्र एकत्र किए हैं । ये तेरे हैं ।

* * * * *

किन्तु,

क्या ये पत्र एकत्र हो पाते, यदि तू पूज्यपाद गुरुवर्य
पं० अयोध्यानाथ जी शर्मा के रूप में प्रेरित एवं
अनुप्राणित न करता ? अतः उन्हीं को समर्पित
कर तुझ तक पहुँचाता हूँ ।

दो शब्द

पिछले पाँच छह वर्षों में उदयपुर, कोंकरोली, नाथद्वारा, बीकानेर, अजमेर, दिल्ली, वृन्दावन, अलीगढ़, आगरा, पटना, प्रयाग और काशी की एकाधिक बार यात्रा की। अनेक सस्थाओं एवं व्यक्तियों के निकट सम्पर्क में आया और खट्टे मीठे अनुभव हुए। कुछ ने दुलत्ती झाड़ी और कुछ ने चरका दिया, किन्तु अधिकांश ने स्नेह-वात्सल्य से सहलाया और परामर्श दिया। मैं इन सदाशय कुपालुओं के प्रति अत्यंत कृतज्ञ हूँ। चाहे उनका नाम व्यक्त हो या न हो। बा० ब्रजरत्नदास जी ने समय समय पर परामर्श ही नहीं अपना पूरा पुस्तकालय मेरे लिए अबाध खोल दिया। डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, डा० दशरथ ओझा, डा० रामकुमार वर्मा, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पं० सीताराम चतुर्वेदी, डा० भगीरथ मिश्र, डा० दीनदयाल गुप्त, श्रीनारायणप्रसाद जी अरोड़ा, महाराजा रीवाँ, डा० वाष्णेश, डा० नगेन्द्र इत्यादि ऐसे सभी कुपालुओं का परम आभारी हूँ जिन्होंने परामर्श, पत्र, पुस्तक एवं सुविधा, दान दे कर मेरे कार्य में सहायता दी है। गुरुवर्य प० अयोध्यानाथ जी शर्मा को कैसे धन्यवाद दूँ? उनसे उन्मृण ही कैसे हो सकता हूँ।

निम्नलिखित सस्थाओं एवं उनसे सम्बद्ध अधिकारियों एवं कर्मचारियों को भी धन्यवाद दूँगा—

काशी नागरीप्रचारिणी सभा, आर्यभाषा पुस्तकालय वाराणसी, भारती भवन प्रयाग, संग्रहालय प्रयाग, चिरंजी पुस्तकालय आगरा, सरस्वती भवन उदयपुर, अनूप पुस्तकालय बीकानेर, काशिराज पुस्तकालय रामनगर, कोंकरोली पुस्तकालय, नागरीप्रचारिणी सभा पुस्तकालय गोरखपुर।

गोपीनाथ तिवारी

भूमिका

हिन्दी में नाट्यशास्त्र एवं ऐतिहासिक विवेचन देने वाले ग्रन्थों की संख्या कम ही है। कुछ मुख्य ग्रन्थ ये हैं—

दश रूपक	रचयिता	गणेश कवि
नाटक	लेखक	भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र
नाट्य प्रबंध	”	स्व० पं० बलदेवप्रसाद मिश्र
नाट्य शास्त्र	”	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी
रूपक रहस्य	”	डा० श्यामसुन्दरदास
हिन्दी नाट्य साहित्य		बा० ब्रजरत्नदास
हिन्दी में नाट्य-साहित्य का विकास		पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
हिन्दी नाट्य विमर्श		बा० गुलाबराय
नाट्य निर्णय		डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'
अभिनव नाट्य शास्त्र		पं० सीताराम चतुर्वेदी
हिन्दी नाटक		श्री शिवनारायण
हिन्दी नाट्य चिन्तन		श्री शिखरचन्द्र
नाट्यकला मीमांसा		सेठ गोविन्ददास
हमारी नाट्य साधना		श्री राजेन्द्रसिंह गौड़
आधुनिक हिन्दी नाटक		डा० नगेन्द्र
रूपक विकास		वेदमित्र व्रती
हमारी नाट्य परम्परा		दिनेशनारायण उपाध्याय
नाटक की परख		डा० एस० पी० खत्री

प्रबन्ध रूप में प्रस्तुत होने वाले नाटक सम्बन्धी ग्रन्थ तीन निकले हैं—

हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास	डा० सोमनाथ
हिन्दी नाटक उद्भव और विकास	डा० दशरथ ओझा
भारतेन्दु का नाट्य साहित्य	डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल

प्रबन्ध रूप में एक नाटककार को लेकर हिन्दी में एक मौलिक प्रबन्ध प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन निकला किन्तु उसका सम्बन्ध हमारे काल से नहीं है। भारतेन्दुजी पर डा० प्रेमनारायण शुक्ल की पुस्तक भारतेन्दु की नाट्यकला भी उल्लेखनीय है। नाटक को, आंशिक रूप से भी प्रबन्धों एवं पुस्तकों में स्थान मिला। डा० वाष्ण्य द्वारा लिखित प्रबन्ध आधुनिक हिन्दी साहित्य (१८५०-१९००) भी इस दिशा में एक प्रमुख और प्रौढ़ प्रयास है। इसमें हिन्दी नाटकों के सम्बन्ध में विस्तृत ऐतिहासिक विवरण पुष्टि के साथ

सजाया गया है। पं० सीताराम चतुर्वेदी जी ने समीक्षा शास्त्र में नाटक के सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री दी है जो बड़ी ही उपयोगी है। अन्य अनेक हिन्दी पुस्तकों में भी नाटक पर आंशिक रूप से प्रकाश डाला गया है। एकांकी नाटकों के सम्बन्ध में भी ग्रन्थ लिखे गए जिनमें से तीन का विशेष प्रचार हुआ, वे हैं—डा० रामकुमार वर्मा कृत एकांकी कला, डा० सत्येन्द्र द्वारा लिखित हिन्दी एकांकी और प्रो० रामचरण महेन्द्र कृत हिन्दी एकांकी और एकांकीकार। एकांकी संग्रहों की भूमिकाओं के रूप में हिन्दी एकांकी पर पर्याप्त लिखा मिलता है। कुछ पत्रिकाओं के नाटक, भारतेन्दु जी एवं रंगमंच सम्बन्धी विशेषांक प्रकाशित हुए हैं। इनमें से साहित्य संदेश एव काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका के भारतेन्दु अंक, नई धारा (अप्रैल मई १९५२) का रंगमंच विशेषांक, नयापथ (मई जून १९५६) का नाटक विशेषांक एवं साहित्य संदेश (जुलाई अगस्त १९५५) का अन्तःप्रान्तीय नाटकांक विशेष उल्लेखनीय है।

यदि इस सामग्री पर दृष्टि विक्षेप करें तो हमें चार प्रकार के ग्रन्थ दिखलाई देंगे, (१) भारतीय नाट्य शास्त्र की परम्परा के ग्रन्थ जैसे नाट्य निर्णय, रूपक रहस्य, (२) पश्चिमी नाट्य शास्त्र एवं नाटक सम्बन्धी ग्रन्थ जैसे नाटक की परख, (३) हिंदी नाटकों के इतिहास को देने वाले ग्रन्थ जैसे हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास एवं हिन्दी नाटक : उद्भव एवं विकास एवं (४) नाटककार भारतेन्दु जी को लेकर लिखे गए ग्रन्थ जैसे—भारतेन्दु का नाट्य साहित्य एवं भारतेन्दु की नाट्य कला।

हिन्दी नाटक साहित्य की विस्तृत सीमा एवं समृद्धि को देखते हुए इन ऊपर उल्लिखित पुस्तकों की संख्या अत्यन्त अल्प ही लगेगी। इनमें से कुछ विद्वान लेखकों ने ऐसा दृष्टिकोण लिया है कि हिन्दी एवं अहिन्दी अनेक लेखकों एवं विद्वानों के मन में हिन्दी नाटकों के प्रति उपेक्षा एवं निन्दा की भावना जगी है। श्रीराजनाथ शर्मा कहते हैं कि भारतेन्दुकालीन नाटकों में कुछ भी नहीं है। उन्हें इस समस्त नाटक साहित्य में न मौलिकता प्राप्त होती है और न कोई अन्य नाटकीय गुण^१। बंगला रंगमंच के प्रसिद्ध लेखक श्री हेमेश्वरनाथ दासगुप्त को भारतेन्दुकाल में एक भी नाटककार नहीं मिलता है।^२

इसके दो कारण हैं (१) भारतेन्दुकालीन एवं पूर्व भारतेन्दु नाटकों का गम्भीर अध्ययन नहीं हुआ है और (२) अनेक भारतेन्दुकालीन ग्रन्थें

१. साहित्यिक निबंध—प्र० सं०, पृ० १४७।

२. इंडियन स्टेज, वाल्यूम ४, अध्याय १०, पृ० २२६।

में अशुद्धियाँ एवं भ्रांतियों भरी पड़ी हैं। तिथि सम्बन्धी, पुस्तक एवं लेखक सम्बन्धी, विषय सम्बन्धी, एवं खोज सम्बन्धी अनेक भ्रांतियों के उदाहरण प्रबंध में यथास्थान रखे गए हैं। मेरा निवेदन है कि इन अशुद्धियों और भ्रांतियों का निराकरण हो जाता यदि विद्वान लेखक नाटकों को देख लेते। एक उदाहरण ले लीजिए। कुछ विद्वानों ने अमानसिंह गोतिया कृत *मदन-मंजरी* (१८८४) एवं जागेश्वर दयाल कृत *मदन मंजरी* (१८८४)—ये दो नाटक माने हैं^१। पुस्तक पर स्पष्ट लिखा है कि दोनों ने सहयोग से एक ही नाटक लिखा है। भारतेन्दु जी ने कहीं भी *आनन्द रघुनंदन* को हिंदी का प्रथम नाटक नहीं लिखा है किंतु कई लेखकों ने यही स्थापना की है कि भारतेन्दु जी ने *आनन्द रघुनंदन* को हिंदी का प्रथम नाटक स्वीकार किया है। कहीं-कहीं पुस्तक के नाम से ही उसका विषय निश्चित कर दिया गया है। पुस्तक का नाम है *प्रेम वाटिका* अतः लिख दिया गया कि यह प्रेम नाटक^२ है जब कि वह पौराणिक नाटक है। कहीं पुस्तक का नाम अशुद्ध पढ़ कर पुस्तक के विषय की व्याख्या कर दी गई है। जैसे पुस्तक का नाम है *नागरी विलाप*। उसे *नारी विलाप* समझा गया और नाटक में सामाजिक दुराचरण के कुप्रभाव ढूँढे गए^३। ऐसे उदाहरण भी पर्याप्त हैं जहाँ लेखक प्रस्तावना या भूमिका में कहता है कि यह नाटक अनूदित है किंतु आलोचकों ने उसे मौलिक मान लिया है जैसे *वेश्या नाटक*, *रामाभिषेक नाटक*^४। यद्यपि भारतेन्दु जी से पूर्व मौलिक नाटक लिखे गए पर कहीं-कहीं विद्वान आलोचकों ने लिख दिया है कि भारतेन्दु जी से पूर्व कोई मौलिक नाटक नहीं लिखा गया, भारतेन्दु जी के नाटक भी शुद्ध नाटक नहीं हैं, भारतेन्दु जी के पद्यों में वर्णनात्मकता है और गद्य में भावात्मक प्रज्ञा^५। मेरा निवेदन है कि ऐसी ही भ्रांतियों में अन्य आलोचकों को यह कहने का बल मिला कि हिन्दी नाटक साहित्य में कुछ है ही नहीं। मैंने अपने इस प्रबंध में यथाशक्य प्रयास किया है कि इन

१. (क) भारतेन्दु का नाट्यसाहित्य (डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल) प्र० सं० पृ० ५६ ।

(ख) हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास (डा० सोमनाथ) तृ० सं० पृ० ७६ ।

२. भारतेन्दु का नाट्यसाहित्य (पृष्ठ ६०) एवं हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास पृ० ८० ।

३. भारतेन्दु का नाट्य साहित्य पृ० ५६ ।

४. उक्त दोनों ग्रंथ ।

५. भारतेन्दु का नाट्य साहित्य ।

भ्रांतियों का निराकरण करूँ। यह भी पूज्य विद्वानों का सुझाव ही था जिसके ऊपर मैंने अपनी सीमित शक्ति लगाई है।

ब्रजभाषा के नवीन हस्तलिखित नाटकों को खोज कर प्रबंध में उनका अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ये नवीन नाटक ये हैं—उदय कवि के दो नाटक *राम करुणाकर* एवं *हनुमान नाटक* जो खोज में प्राप्त हुए हैं। दोनों गेय लघु रूपक हैं और मौलिक हैं। *रामकरुणाकर* में लक्ष्मण शक्ति के प्रसंग को अपनाकर करुण-धारा प्रवाहित की गई है और *हनुमान नाटक* में सीता खोज का वर्णन है। धोंकल मिश्र के दो नाटक प्रबोध चन्द्रोदय और शकुंतला भी खोज में मिले हैं। दोनों संस्कृत नाटकों के काव्यात्मक अनुवाद हैं। इन दोनों नाटकों का ब्रजभाषा नाटकों में महत्त्व यह है कि इनमें तत्कालीन जन-नाट्य शैलियों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। नाटक के अध्ययन से स्पष्ट है कि नाटककार तत्कालीन जन नाट्य शैलियों के अनुसार अपने नाटक लिख रहा था। पाँचवाँ नवीन नाटक रीवाँ नरेश युवराज रघुराजसिंह का है, जिसका नाम है परम प्रबोध विधु नाटक। यह प्रबोध चन्द्रोदय की शैली पर एक रामभक्त द्वारा लिखा गया है। इसमें रामभक्ति को ऊँचा आसन दिया गया है। इस नाटक का भी एक विशेष महत्त्व है। इसमें भी नाट्य शैली संबंधी उल्लेख प्राप्त होते हैं। खोज में प्राप्त छठा नवीन ग्रन्थ नाटक न हो कर नाट्य शास्त्र है। यह गणेश कवि द्वारा निर्मित है और हिंदी का सबसे प्रथम नाट्यशास्त्र है। हिन्दी के इस नाट्यशास्त्र दश रूपक का प्रकाशन एवं सम्यक् अध्ययन अपेक्षित है। यह नाट्य शास्त्र धनंजय कृत दश रूपक एवं साहित्य दर्पण के आधार पर लिखा गया है। बीच-बीच में भरतमुनि कृत नाट्य शास्त्र से भी सहायता ली गई है। यह छद्म प्रधान नाट्य शास्त्र है जिसकी भाषा ब्रज है। गद्य कहीं-कहीं व्याख्या करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। भारतेन्दु कालीन मुद्रित अनेक नाटक जो अब तक नाटक-इतिहासों की आँखों से दूर थे, निबन्ध में स्थान पा सके हैं जैसे १८६६ का बिल्व मंगल नामक एक प्रौढ़ थियेटरिकल नाटक प्राप्त हुआ है जो उर्दू से अनूदित है। कुन्दकली नाटक में पत्नी फूलों के नाम पर पात्रों का नामकरण किया गया है।

मौलिक स्थापनाएँ

निम्नलिखित अनेक मौलिक स्थापनाओं के साथ प्रस्तुत प्रबंध हिन्दी जगत् को समर्पित करता हूँ। इसमें ब्रजभाषा नाटकों का गम्भीर एवं मननशील अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि भारतेन्दु काल (१८५०-१९००) के नाटक अपने से पूर्व नाटकों के फल ही तो थे। बिना पूर्व भारतेन्दु कालीन

अधूरा और अपूर्ण था। ब्रजभाषा नाटकों के अनुशीलन करने के बाद अनेक नवीन तथ्य सामने आये हैं। अभी तक ब्रजभाषा नाटकों की उपेक्षा होती रही है। अधिकांश विद्वानों ने इन नाटकों को नाटक नहीं माना है। किन्तु इन नाटकों का अध्ययन करने के उपरान्त इसमें संदेह नहीं रह जाता कि ये नाटक ही हैं, हॉ पद्यबद्ध नाटक हैं, काव्य नहीं। इसके पक्ष में अनेक प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। (१) अनेक नाटकों के रचयिता काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र के विद्वान् थे। गणेश कवि ने *नाट्यशास्त्र* लिखा है। और कविवर उदय, काव्यशास्त्र के रचयिता हैं। इन्होंने नाटक भी लिखे हैं और काव्य भी। ये कवि जानते थे कि किसे नाटक कहा जाय और किसे काव्य। अतः जब ये किसी कृति को नाटक संज्ञा देते हैं तो वह नाटक ही है, काव्य नहीं और जिस किसी को ये काव्य नाम देते हैं तो वह काव्य ही है, नाटक नहीं। (२) ब्रजभाषा नाटककारों ने जननाट्य शैलियों को ध्यान में रख कर नाटक लिखे हैं जिसके प्रमाण उनके नाटकों में प्रचुरता से प्राप्त हुए हैं। पर्दा उठा कर पात्र का आना, पर्दा उठा कर जाना, उच्च स्वर से बोलना, नाचना, इधर उधर घूमना, पात्र परिचय इत्यादि उल्लेख ऐसे ही हैं जो इनके नाटकों में मिले हैं। (३) कई नाटकों में उनके अभिनीत होने का स्पष्ट उल्लेख है।

हिन्दी में हिन्दी नाटकों के आधार पर ही तत्त्वों की स्थापना हो, ऐसा गुरुओं और आचार्यों का सुभाष एवं परामर्श था। संभवतः हिन्दी में इस और यह प्रथम प्रयास है कि ८० से ९० प्रतिशत नाटकों के आधार पर हिन्दी नाटकों के तत्त्वों को खोजा गया है और उनकी स्थापना की गई है। इसमें भी श्रेय गुरुओं एवं आचार्यों को है। सभी प्राप्य नाटकों को पढ़ने के बाद मुझे भारतेन्दुकालीन नाटकों में ९ तत्त्व प्राप्त हुए हैं, प्रस्तावना, कथानक, पात्र, संवाद, भाषा, देशकाल, शैली, उद्देश्य और अभिनय। इनका विवेचन हिन्दी नाटकों के ही आधार पर किया गया है। नाटककार परम्परागत संस्कृत नाट्यशास्त्र और पश्चिमी नाटकों से प्रभावित प्राप्त होते हैं। अतः इस तथ्य की भी चर्चा स्थान-स्थान पर की गई है।

हिन्दी एकांकियों के विषय में आलोचकों में बड़ी मत-विभिन्नता और भ्रांति है। भारतेन्दुकालीन सभी छोटे दिखाई देने वाले नाटकों को एकांकी मान लिया गया है। फलतः अन्य आलोचकों को कहने का अवसर मिला कि भारतेन्दु काल में एकांकी नहीं बने थे। हिन्दी में पहिली बार हिन्दी के आरंभिक एकांकियों को एवं प्रथम एकांकीकार काशीनाथ खत्री को, हिन्दी जगत के सम्मुख रखा गया है। पश्चिम में १९०३ में एकांकी का जन्म हुआ किन्तु भारत में १८८४ ई० में पश्चिमी शैली के एकांकी उत्पन्न हो चुके थे। ये पश्चिम के अनुकरण पर नहीं बने। जिस प्रकार वैज्ञानिक प्रयोग करते-

करते कई नवीन आविष्कार हो गए थे, इसी प्रकार भारतेन्दु काल में एकांकियों का जन्म हो गया था। काशीनाथ खत्री पश्चिमी शैली के लघु रूपक लिख रहे थे। इस प्रयास में ही एकांकी बन गए। अतः हिन्दी एकांकी का आरंभ स्वतंत्र रूप से हुआ। हैं ये एकांकी ही क्योंकि एकांकी के सब प्रधान लक्षण इनमें मिलते हैं।

इतिहास खंड में केवल पुस्तकों का नाम मात्र नहीं गिनाया गया है वरन् नाटकों का आंतरिक परिचय दिया गया है एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस दिशा में भारतेन्दु जी के नाटकों को सामने रखा गया है क्योंकि भारतेन्दु जी ही ने अनेक दिशाओं में मार्ग प्रदर्शित किया था। अनेक नाटको एवं नाटककारों पर नवीन प्रकाश डाला गया है। पं० देवकी-नन्दन त्रिपाठी, श्री काशीनाथ खत्री, श्रीमती लाली ऐसे ही उदाहरण हैं। भारतेन्दु जी के कई नाटकों का वास्तविक परिचय कराया गया है, जो नवीन भी है। भारतेन्दु-कृत भारत दुर्दशा नाट्य रासक नहीं, लास्य रूपक है इसकी स्थापना की गई है। भारतेन्दु जी ने भी इसे नाट्यरासक नहीं माना है। भारत दुर्दैव के रूप में वे केवल यवनों की ओर ही संकेत नहीं कर रहे हैं वरन् अंग्रेजों को भी भारत दुर्दैव मानते हैं। भारत-दुर्दैव की वेशभूषा ही मिश्रित है। अंधेर नगरी में भी उनका प्रधान लक्ष्य अंग्रेजी व्यवस्था पर छींटे कसना था।

रंगमंचीय नाटक और साहित्यिक नाटक के विभाजन ने यह भ्रम पैदा कर दिया था कि साहित्यिक नाटक अभिनेय नहीं होते। अतः प्रबन्ध में विभाजन इस प्रकार किया गया है (१) साहित्यिक नाटक और (२) जन-नाटक। स्वतः यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या साहित्यिक नाटक, सर्वसाधारण के लिए नहीं थे? हाँ, भारतेन्दुकाल में साहित्यिक नाटक जन नाटकों से भिन्न थे। जन नाटक थे—थियेटीकल नाटक, स्वांग, रासलीला इत्यादि। साहित्यिक नाटक रंगमंचीय अवश्य थे किन्तु उनके दर्शक, थियेटीकल नाटकों की नाईं, सभी स्त्री पुरुष न थे। साहित्यिक नाटकों के लिए हिन्दी-प्रेमियों ने काशी, प्रयाग, कानपुर, मेरठ, गोरखपुर इत्यादि नगरों में नाट्यमंडलियाँ स्थापित की थीं। इनमें भारतेन्दु जी एवं अन्य नाटककारों के नाटक, रंगमंच पर लाए जाते थे किन्तु वहाँ मक्खियों की भाँति जनता टूट नहीं पड़ती थी। नाटकों की भूमिकाओं एवं प्रस्तावनाओं से यह भेद स्पष्ट है। अतः उस काल में साहित्यिक नाटक जन नाटकों से भिन्न थे, हाँ वे रंगमंचीय अवश्य थे। स्वांग एवं 'आलाप' धाराओं का विवेचन भी नवीन ही है।

विषय सूची

	पृष्ठ संख्या
दो शब्द	६
भूमिका	छ
युग विभाजन	३-४

प्रथम खंड (ब्रजभाषा नाटक)

अध्याय १	७-१४
ब्रजभाषा नाटकों का संक्षिप्त इतिहास (१६१०-१८५०)	७
वर्गीकरण	१०
सामान्य लक्षण	१२
लीलाएँ	१३
अध्याय २—परिचय एवं विवेचन	१५-४५
रामायण महानाटक (१६१०)	१५
हनुमन्नाटक (१६३२)	१६
समयसार नाटक (१६३६)	१८
नेवाज कवि कृत शकुंतला (१६८०)	२०
करुणाभरण नाटक (१६५७)	२२
माधव विनोद (१७५२)	२६
शकुंतला धौकल मिश्र कृत (१७६६)	३०
रामकरुणाकर नाटक—उदय कृत (१८४० से पूर्व)	३३
हनुमान नाटक (१८४० से पूर्व)	३६
आनंद रघुनन्दन नाटक (१९वीं शताब्दी)	३७
परम प्रबोध-विधु नाटक (१८४७ से पूर्व)	३६
विद्यान गीता, माधवानल कामकंदला और गीत रघुनन्दन	४०

अध्याय ३—ब्रजभाषा नाटक, नाटक नहीं ?	४६-६६
आलोचकों के मत	४६
कथानक	५२

चरित्रचित्रण	५५
छंदबद्धता	५६
प्रबन्ध-काव्यत्व	६०
भाषा-भेद	६१
वर्णन-भेद	६५
नाटकीयता	६६
नाट्य-शैली	६८
संस्कृत नाटकों का रंगमंच	६८
जननाट्य शैलियाँ	७२
वर्गीकरण	७५
हिन्दी प्रदेश के जननाट्य	७७
स्वांग	७७
रासलीला	७८
रामलीला	७९
अन्य जननाट्य	८०
संस्कृत नाटकों में कथात्मक शैली	८३
अन्य भाषा नाटक	८७
ब्रजभाषा नाटकों से आन्तरिक प्रमाण	८८
भावी नाटकों पर प्रभाव	९५

द्वितीय खंड (तत्कालीन परिस्थितियाँ)

अध्याय १	९९-१०४
सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि	९९
अध्याय २	१०५-१११
राजनैतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि	१०५
अध्याय ३	११२-११४
शैक्षिक पृष्ठभूमि	११२
अध्याय ४—संधिकाल (१८५०-१८६७ ई०)	११५-१२२
इन्द्रसभा	११५
नहुष नाटक (१८५७)	१२१
शकुंतला (१८६३)	१२६
प्रद्युम्नविजय नाटक (१८६४)	१२६

लक्षण ग्रंथ	१३०
दशरूपक (१८६४)	१३०
संधिकाल के नाटकों का भावी नाटकों पर प्रभाव	१३२

तृतीय खण्ड (इतिहास)

अध्याय १—पौराणिक नाटक	१३५—१६२
इतिहास और पुराण शब्द	१३५
पौराणिक नाटक धाराएँ	१३७
कृष्ण धारा	१३८
राम धारा	१४४
महाभारत धारा (कौरव पांडव सम्बन्धी नाटक)	१४६
पतिव्रता स्त्री सम्बन्धी नाटक	१५०
भक्तिधारा के नाटक	१५३
संतधारा के नाटक	१५५
अन्य पौराणिक नाटक	१५८
पौराणिक नाटक-सूची	१६२
अध्याय २—प्रेम नाटक	१६४—१८२
सुखान्त प्रेम नाटक	१६४
दुःखान्त प्रेम नाटक	१७४
प्रेम नाटक सूची	१८२
अध्याय ३—सामाजिक और धार्मिक नाटक	१८३—२०२
विवाह समस्या नाटक	१८३
लम्पट पुरुष सम्बन्धी नाटक	१८८
लम्पट स्त्री सम्बन्धी नाटक	१९४
आदर्श पत्नी सम्बन्धी नाटक	१९४
अंधविश्वास सम्बन्धी नाटक	१९७
अन्य सामाजिक कुरीतियों पर लिखे नाटक	१९६
धार्मिक नाटक	२००
सामाजिक नाटक सूची	२०१
अध्याय ४—राजनैतिक नाटक	२०३—२२५
हिंदी सम्बन्धी नाटक	२०३
हिन्दू नाटक	२०७

हिन्दुस्तान संबंधी नाटक	२१०
राजनैतिक नाटक सूची	२२४
अध्याय ५—ऐतिहासिक नाटक	२२६-२३३
नायिका प्रधान नाटक	२२७
नायक प्रधान नाटक	२३०
ऐतिहासिक नाटक सूची	२३३
अध्याय ६—अनूदित नाटक	२३४-२४४
संस्कृत से अनूदित	२३४
संस्कृत से अनूदित नाटक-सूची	२३७
बँगला से अनूदित नाटक	२३६
अंग्रेजी से अनूदित नाटक	२४३
अध्याय ७—जन नाटक	२४५-२५२
सांग या स्वांग नाटक	२४७
इन्द्रसभा और थियेट्रीकल नाटक	२५०
अध्याय ८—‘आलाप’ साहित्य	२५३-२५७
राजनैतिक	२५३
सामाजिक-धार्मिक	२५५
साहित्यिक	२५६
लक्षण ग्रंथ	२५७

चतुर्थ खण्ड (तत्त्व-विवेचन)

अध्याय १—प्रस्तावना	२६१-२६८
मंगलाचरण	२६१
प्रस्ताव	२६३
सुभाष	२६४
परिचय	२६४
अंत	२६६
अध्याय २—कथानक	२६६-२८१
संधियाँ	२७०
कथानक विभाजन	२७७
अंक विभाजन	२७८

भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य
(१८५०-१९००)

युग विभाजन

भारतेन्दु जी का जन्म १८५० ई० में हुआ, परन्तु उनके प्रथम नाटक—विद्या-सुन्दर, रत्नावली और प्रवास १८६७-१८६८ ई० में लिखे गये। अतः नाटकों की दृष्टि से वास्तविक भारतेन्दु युग १८६७-१८६८ ई० से आरम्भ होता है। भारतेन्दु जी का स्वर्गवास १८८५ ई० में हुआ। किन्तु उनका ज्वलन्त प्रकाश हिन्दी नाटक संसार को जोरो से प्रभावित करता रहा, उनका आकर्षक प्रभाव मृत्यु के दिन समाप्त नहीं हो गया। फलतः भारतेन्दु युग १८८५ ई० के बाद भी जारी रहा। उसकी सीमा मैंने सरलता के लिये १९०० ई० स्वीकृत की है। बा० ब्रजरत्न दास^१, डा० वाष्णैय^२ एवं डा० रामविलास शर्मा^३ ने भी इस सीमा को माना है।

भारतेन्दु जी के जन्म काल (१८५० ई०) से १८८७ ई० तक का युग संधिकाल या सिंह द्वार है जो भारतेन्दु जी के पूर्व रचित ब्रजभाषा नाटकों का संबंध भारतेन्दु काल में निर्मित नाटक प्रासाद से जोड़ता है। भारतेन्दु जी जो कुछ भी हैं सो १८५० से १८६७ तक की देन हैं। यही काल है जिसमें बालक भारतेन्दु ने वातावरण से साहित्यिकता पी जो १८६७-१८६८ ई० में उपजी। इनके निर्माण का मुख्य सूत्र हैं उनके पिता बाबू गिरिधरदास जी। भारतेन्दु जी को प्रेरणा देने वाला, भारतेन्दु जी की दृष्टि में हिन्दी का प्रथम नाटक^४, नहुष १८५७ ई० में आरम्भ हुआ और १८५९ ई० में समाप्त

१. हिन्दी नाट्यसाहित्य (ले० बा० ब्रजरत्नदास) च० सं० पृ० ७६ पर १८९३ से भारतेन्दु युग के बाद आधुनिक युग का आरम्भ माना गया है।

२. आधुनिक हिन्दी साहित्य (ले० डा० लक्ष्मी सागर वाष्णैय) १९४८ ई० का संस्करण, पृ० ५८ पर १९०० तक इसकी एक सीमा मानी गई है। १८५०-१९०० उनका काल विभाजन है।

३. भारतेन्दु युग द्वि० सं०, पृ० १६३ पर १९वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध भारतेन्दु युग की सीमा मानते हैं।

४. भारतेन्दु जी का 'नाटक' नामक निबंध—परिशिष्ट, भारतेन्दु अंथावली प्र० भाग, सं० बा० ब्रजरत्नदास, पृ० ७५२।

हुआ^१ । भारतेन्दु जी इस नाटक को सामने रख नाटक रचना में प्रवृत्त हुए । उन्होंने इस नाटक की शैली अपनाई । (१) पद्यों की प्रधानता (२) पद्यों में ब्रजभाषा एवं गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग एवं (३) काव्यत्व—नहुष नाटक की इन प्रवृत्तियों का पालन उनके अन्य नाटकों में भी मिलता है । नहुष भारतेन्दु कालीन नाटकों की शृंखला को पूर्व भारतेन्दु युग से जोड़ता है । फलतः यह नाटक भी भारतेन्दु प्रासाद के अतर्गत एक सिद्धिद्वार के रूप में खड़ा है ।

इस काल का एक नाटक और है जो भारतेन्दु जी पर प्रभाव डालता है । वह है राजा लक्ष्मणसिंह कृत *शकुन्तला* (अनुवाद) जो १८६१^२ या १८६३^३ ई० में प्रकाशित हुआ । प्रथम बार यह केवल शुद्ध गद्य में था । भारतेन्दु जी ने इसकी गद्य प्रवृत्ति को भी अपनाया । फलतः भारतेन्दु काल के बीज इसी काल में पड़े । भारतेन्दु का जन्म हिन्दी संसार के लिए एक महान आशीर्वाद सिद्ध हुआ है । अतः १८५० से १८६७ को भी सिद्धिद्वार मान कर मैंने भारतेन्दु काल से जोड़ दिया है ।

१८५० से पूर्व भी हिन्दी की एक नाटक परम्परा है । ऐसी बात नहीं है कि भारतेन्दु काल से पूर्व हिन्दी में नाटक लिखे ही नहीं गए । हाँ यह बात दूसरी है कि वे उतने सामर्थ्यवान न थे जितने भारतेन्दु काल के नाटक । भारतेन्दु काल से निकट की दूरी पर ब्रजभाषा के नाटक खड़े हैं ।

इस प्रकार भारतेन्दु काल से पूर्व का भारतेन्दु पूर्व काल और बाद में भारतेन्दु काल—इन दोनों का विवेचन किया गया है ।

१. नहुष नाटक की भूमिका, ले० बा० ब्रजरत्नदास ।

२. डा० सोमनाथ, हि० ना० सा० का इतिहास, तृ० सं०, पृ० ५ ।

३. बा० ब्रजरत्नदास, हि० ना० सा०, च० सं०, पृ० ६५ ।

प्रथम खण्ड
भारतेन्दु पूर्व युग

ब्रजभाषा नाटक

(१६१०-१८५० ई०)

अध्याय १

ब्रजभाषा नाटकों का संक्षिप्त इतिहास (१६१०-१८५०)

हिन्दी के सभी विचारकों ने भारतेन्दु जी को आधुनिक हिन्दी नाटकों का जनक माना है। आधुनिक हिन्दी का अर्थ है 'खड़ी बोली'। खड़ी बोली के सिंहासनारूढ़ होने से पूर्व ब्रजभाषा इस आसन पर विराजमान थी। भारतेन्दु युग में भी ब्रजभाषा अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती दिखाई देती है। भारतेन्दु जी के शब्दों में हिन्दी का प्रथम नाटक उनके स्वनाम धन्य पिता श्री गिरिधर दास जी द्वारा रचित नहुष नाटक है^१। यह ब्रजभाषा में है। वह नाटक १८५७ ई० में लिखा जाना आरम्भ हुआ था। १८६४ ई० में निर्मित दूसरा नाटक प्रद्युम्न विजय भी ब्रजभाषा का ही नाटक है। स्वयं भारतेन्दु जी का ब्रजभाषा से परम मोह है। उनके काव्य की भाषा ब्रज ही है। उनके नाटकों में भी उसका यही रूप परिलक्षित होता है। गद्य में भी कहीं-कहीं ब्रज का पुट है^२। खड़ी बोली ने ब्रजभाषा का स्थान ग्रहण किया, पहले पद्य के क्षेत्र में, बाद में गद्य के क्षेत्र में भी। वास्तव में आधुनिक हिन्दी या खड़ी बोली का सीधा सम्बन्ध ब्रजभाषा से ही है और खड़ी बोली नाटकों से पूर्व हमें ब्रजभाषा के ही नाटक प्राप्त होते हैं।

भारतेन्दु पूर्व काल में हमें ब्रजभाषा के लगभग ३ दर्जन नाटक मिले हैं। ये दो प्रकार के हैं। एक हैं मौलिक जैसे प्राणचन्द का रामायण महानाटक, कृष्ण जीवन लछिराम का करुणाभरण, उदय कवि के हनुमान और राम करुणाकर नाटक एवं महाराजा विश्वनाथ सिंह जू का आनन्द रघुनन्दन नाटक इत्यादि। इनमें रामायण महानाटक १० अंकों का महानाटक है। करुणाभरण ६ अंकों में समाप्त हो जाता है। उदय कवि के दोनों नाटक लघु नाटक हैं। आनन्द रघुनन्दन को छोड़ कर शेष सभी मौलिक नाटक केवल पद्यात्मक और वर्णनात्मक हैं। नाटककार सदा रंगमंच पर उपस्थित रह कर पात्र परिचय कराता है, कथा कहता है और वर्णन लिखता है।

इस काल में अधिक संख्या अनूदित नाटकों की है। अनूदित नाटकों में प्रबोध चन्द्रोदय के अनुवाद सबसे अधिक हुए हैं। संस्कृत का प्रबोध

१. 'नाटक' निबन्ध, भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग पहिला, संपादक बा० ब्रजरत्न दास, प्र० सं०, पृ० ७५२।

२. चन्द्रावली नाटक, अंक २।

चन्द्रोदय नाटक ११वीं शताब्दी में निर्मित हुआ था^१। यह नाटक संस्कृत के हासकाल में लिखा गया था^२। फलतः नाटक की अपेक्षा यह दर्शनशास्त्र अधिक है जिसमें आध्यात्मिक तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है^३। आलोचक, इस नाटक का नाटकीय मूल्य चाहे जो अर्थों, हिन्दी के नाटकों पर इसका प्रभाव अत्यधिक पड़ा है। पूर्व भारतेन्दु युग में इसके १० अनुवाद हुए।

उनमें सबसे पहिला महाराज यशवत सिंह (१६२६ से १६७८ ई०)^४ कृत प्रबोध चन्द्रोदय है। पद्य की प्रधानता होते हुए भी अनुवाद में गद्य का भी प्रयोग है। कविता इसकी सुन्दर है। यह शुद्ध अनुवाद है^५। दूसरा अनुवाद १६६६ ई० में अनाथ दास ने किया। इसकी शैली काव्यशैली या वर्णनात्मक है। आरम्भ में ६ दोहे हैं शेष में २८४ कुकुभा छन्द। तीसरा अनुवाद सुरति मिश्र ने १७४३ में किया^६। ब्रजवासी दास ने १७५६ या १७६०^७ ई० में दोहे चौपाई, सवैये आदि में अनुवाद किया जिनकी संख्या ८७१ है। दोहे चौपाइयों ही में एक और अनुवाद नाटकानन्द या प्रबोध चन्द्रोदय नाम से कविवर आनन्द ने १७८३ ई० में किया^८। छठा अनुवाद विभिन्न छन्दों में गुलाबसिंह ने १७८६ ई०^९ में किया। इसी वर्ष एक और अनुवाद नानकदास ने दोहे चौपाइयों में किया^{१०}। इस नाटक में तत्कालीन नाट्य शैली के सकेत मिलते हैं। खड़ी बोली का भी पुट है। जैसे—

१. कीथ—संस्कृत ड्रामा, १६२४, पृ० २५१।

२. वही।

३. "Drama in Sanskrit Literature simply ceased to exist when dramatists preferred philosophizing to dramatising" *Drama in Sanskrit Lit.* by R. V. Jagirdar, 1947, p. 156.

४. भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, ले० वीरेन्द्र कुमार शुक्ल, प्र० सं०, पृ० २६।

५. हस्तलेख, जोधपुर के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं (डा० द० ओझा)।

६. हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास, प्र० सं०, पृ० १५८।

७. हि० ना० साहित्य, ब्रजरत्नदास, पृ० सं० ५६। हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, प्र० सं०, पृ० १५८।

८. हिन्दी ना० उद्भव और विकास, प्र० सं०, पृ० १५८।

हिन्दी नाट्य साहित्य, ब्रजरत्नदास, च० सं०, पृ० ५६।

९. "रसवेद" और "बसुचन्द"—स्वयं कवि द्वारा दिया संकेत।

१०. हस्तलेख, काशिराज पुस्तकालय में सुरक्षित।

वेद अरु पुराणो के श्रोता अरु वक्ता जन
तात्पर्य तिनके परिचित नहीं धरते हैं । १-१८५ ।

कोमारिल को बहुत सराहा

आप छोड़ आपको पाया । पापर वेदो बहुत बताया ।

दो पछी इक वृत्त ऊपर है । दोनो एक मेकसमसर हैं । ६-८८ ।

आठवों अनुवाद धोकल मिश्र ने लगभग १७६६ ई० में किया^१ । आरंभ में गणेश की वंदना के बाद नृसिंह भगवान की स्तुति है । इसके बाद आश्रयदाता राजा तेजसिंह के वंश का वर्णन है । इस नाटक से भी तत्कालीन नाट्य शैली पर प्रकाश पड़ता है । १८वीं शताब्दी में हरिवल्लभ ने एक और अनुवाद किया । एक अनुवाद जन अनन्य का भी सुना जाता है ।

प्रबोध चन्द्रोदय की शैली पर व्यास कवि के शिष्य देव ने देवमाया प्रपंच १८वीं शती में ६ अंको में बनाया । केशव की विज्ञान गीता के प्रकाशों में भी रति काम मोह दम इत्यादि पात्र आते हैं । उसे भी कुछ आलोचकों^२ ने नाटक मान लिया है ।

१८वीं शती में आनन्द रघुनन्दन के रचयिता रीवाँ नरेश महाराजा विश्वनाथ सिंह जी के पुत्र युवराज खुराज सिंह जी ने परम प्रबोध विधु नाटक लिखा ।

‘शकुन्तला’ नाटक के दो अनुवाद हुए । एक नेवाज कवि ने १६८० ई० में किया । इसमें नेवाज ने ४ ही अंक रक्खे हैं । वास्तव में यह अभिज्ञान शाकुन्तलम् को आधार बना कर लिखा गया है, शुद्ध अनुवाद नहीं है । अभिज्ञान शाकुन्तलम् की ७ अंकों की कथा को संक्षिप्त कर ४ अंकों में कह दिया गया है । फलतः कथा क्रम में भी अन्तर है । कविता सरस है । दूसरा अनुवाद धोकल मिश्र ने १७६६ ई० में किया है । यह अनुवाद है किन्तु तत्कालीन जननाट्य शैली को ध्यान में रख कर वर्णनात्मक शैली पर हुआ है ।

हनुमन्नाटक के भी तीन अनुवाद हुए, एक हृदयराम ने १६२३ ई० में किया जो छायानुवाद है । कवि ने पर्याप्त स्वतंत्रता से काम लिया है । दूसरा

१. धोकल मिश्र का ‘शकुन्तला’ १७६६ ई० में बना । यह संवत् ‘शकुन्तला नाटक’ से प्राप्त है ।

२. (क) डा० वाष्णैय, आधुनिक हिन्दी साहित्य, १९४८, पृ० २२५ ।

(ख) सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कार्य विवरण, पृ० १३३-१३४

(ग) पं० रा० च० शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, २००६ वि०, पृ० २१३ ।

मंजु कवि ने १८३६ ई० में किया। तीसरा अनुवाद जगजीवन का ६ अंकों में किया गया^१। एक अनुवाद भवभूति के मालतीमाधव का कविवर सोमनाथ ने माधव विनोद नाम से १७५२ ई० में किया। यह भी तत्कालीन जन नाट्य शैली को ध्यान में रख कर वर्णनात्मक रूप में लिखा गया है। समय सार नाटक (२० का० १६३६ ई०) भी कुन्दकुन्दाचार्य के समय पाहुड ग्रंथ का अनुवाद है। यह किसी भी दृष्टि से नाटक नहीं है।

अनुवाद यद्यपि संस्कृत नाटकों से हुए, किन्तु अनुवादों में संस्कृत नाट्य शैली को नहीं अपनाया गया है। अनुवादक संस्कृत भाषा से भली भाँति परिचित थे तभी तो सुन्दर अनुवाद कर सके हैं। संस्कृत के अन्य नाटक भी अनुवादको ने पढ़े थे, इसका हम अनुमान कर ही सकते हैं। भवभूति के मालती माधव के अनुवादक कवि सोमनाथ ने उत्तररामचरितम् न पढ़ा होगा, हम यह सोच ही नहीं सकते। अन्य नाटक भी पढ़े होंगे। तब भी ये नाटककार अपने नाटकों में संस्कृत नाट्य शैली को नहीं अपनाते (१) गद्य का प्रयोग नहीं करते (२) भाषा में विभिन्नता नहीं लाते (३) पात्र प्रवेश इत्यादि रंग संकेतों में नहीं लिखते (४) संध्यों एवं प्रवेशक-विष्कम्भक का सोमनाथ के अतिरिक्त दूसरों ने ध्यान नहीं रक्खा है। तथ्य यह है कि वे तत्कालीन जन-नाट्य शैली को सामने रख कर अनुवाद कर रहे थे।

वर्गीकरण

यदि इस काल के समस्त नाटकों को देखें तो हमें सबसे अधिक पौराणिक नाटक दिखाई देते हैं। पौराणिक नाटकों में भी सबसे अधिक राम के जीवन से सम्बन्धित हैं। प्राणचन्द कृत रामायण महानाटक उदय कृत रामकरुणाकर, लक्ष्मण शरणा 'मधुकर' कृत रामलीला नाटक, हरिरामकृत जानकी रामचरित्र नाटक, मंगलाप्रसाद कायस्थ कृत रामचरित्र नाटक विश्वनाथ सिंह कृत आनन्द रघुनन्दन, राम के चरित्र को ले कर लिखे गए नाटक हैं। इस काल में तीन हनुमान नाटक लिखे गए हैं। दो अनूदित हैं, हृदय राम और मंजुकृत एवं एक (उदय कृत) मौलिक है। इन नाटककारों में भं राम का जीवन प्रतिबिम्बित हुआ है।

यद्यपि इस काल में कृष्ण विषयक कविता अधिक लोकप्रिय रही भक्तिकाल और रीतिकाल—दोनों में राधाकृष्ण ने काव्य में प्रधानता पाई किन्तु नाटकों में राम और हनुमान ने ही अपना आसन अधिक लेखनियों प जमाया। नाटकों के अध्ययन से एक तथ्य सामने आता है। काव्य में शृंगा

की प्रधानता थी, उसके प्रभाव से नाटक भी अछूते नहीं हैं। किन्तु नाटकों में अध्यात्म और आदर्श ने ही प्रभाव डाला है। यही कारण है कि प्रबोध चन्द्रोदय, रामविषयक नाटक, समयसार और सभासार नाटकों की संख्या कुल मिला कर आधे से अधिक है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में जो रीति-काल या शृङ्गार काल है नाटकीय जगत में वह 'आदर्श जीवन' काल है। नाटककारों का ध्यान जीवन को ऊपर उठाने में अधिक रहा है। १८वीं और १९वीं शताब्दी में शृंगार परक नाटक केवल दो ही लिखे गए हैं (१) माधव विनोद (२) शकुंतला। लगभग १६-१७ नाटक आदर्श या आध्यात्मिक जीवन को ध्यान में रख कर लिखे गए हैं। कृष्ण संबंधी नाटक भारतेन्दु से पूर्व केवल एक लिखा गया। वह है करुणाभरण, कृष्ण जीवन लछिरामकृत। अन्त में यह भी अद्वैतवाद का उद्घोष करता है। राधाकृष्ण के अतिरिक्त और भी कई पौराणिक नाटक लिखे गए। वैसे तो आनन्द रघुनंदन का नाटककार वीर रस को पैदा करने का प्रयास करता है किन्तु वहाँ वह वीर रस से अधिक अद्भुत रस हो जाता है और वीर रस का सम्यक् प्रस्फुटन नहीं होता। १७६६ ई० में गंगा-अवतरण की कथा ले कर कुशल कवि ने गंगा नाटक लिखा।

प्रेम नाटक

इस काल के दोनों शकुंतला नाटक प्रेम नाटक हैं। माधव विनोद भी प्रेम नाटक है। इन नाटकों में शृंगार रस की प्रधानता है।

आध्यात्मिक नाटक

इस काल में आध्यात्मिक नाटकों का भी जोर रहा है। प्रबोध चन्द्रोदय के १० अनुवाद हुए और २ प्रबोध चन्द्रोदय की शैली पर लिखे गए। ये दोनों आध्यात्मिक नाटक हैं, समय सार जैन धर्म संबंधी नाटक है। सभासार (२० का० १६५० ई०)^१ नाटक में रघुराम नागर ने सत्यवादी और असत्यवादी, आस्तिक और नास्तिक, कपटी, मूर्ख, चतुर, सभाचतुर, दाता, खुशामदी इत्यादि के लक्षण संवाद रूप में दिये हैं। निश्चय ही नाटककार का उद्देश्य है कि सद्गुण और असद्गुण को लोग पहिचान सकें। अतः यह नाटक भी एक प्रकार से आध्यात्मिक ही है जो अंकबद्ध करके कथोपकथन शैली पर लिखा गया है।

* १. लेख—हिन्दी नाट्य और रंगमंच, लेखक अनंत, 'नयापथ' मई, १९५६, पृ० ५४।

सामान्य लक्षण

इस काल के नाटकों में निम्नलिखित सामान्य लक्षण मिलते हैं—

(१) प्रायः सभी नाटकों में कथानक अंकों में विभाजित है । समयसार नाटक में अंक नहीं है यद्यपि जिस अमृतचन्द की टीका को अपनाया गया है, उसमें अंकों का उल्लेख था । अन्य नाटकों में अंक विभाजन है । 'नाटक' नाम के पीछे यह भी कारण उपस्थित है कि ये नाटक अकबद्ध हैं ।

(२) अधिकांश नाटक पौराणिक आख्यानों एवं चरित्रों पर लिखे गए हैं । केवल माधव विनोद, समयसार, प्रबोध चन्द्रोदय एवं सभासार में पौराणिक आख्यान नहीं अपनाये गए हैं ।

(३) सभी नाटक छन्द प्रधान हैं । अधिकांश नाटकों में गद्य नाम मात्र को भी नहीं और केवल छन्द ही छन्द है ।

(४) प्रायः सभी नाटकों में पात्र प्रवेशादि रङ्ग संकेत नहीं है । कवि ही कथा कहता है, वर्णन देता है एवं पात्रों का परिचय भी कराता है । वह स्वयं सदा रंगमंच पर उपस्थित है । यह वर्णनात्मक शैली है जो नाटकों में अपनाई गई है । इसीलिए आलोचकों ने आनन्द रघुनन्दन को छोड़ कर जिसमें पात्र प्रवेशादि रङ्ग संकेत अधिकता के साथ है अन्यो को काव्य कह डाला है ।

(५) प्रायः सभी नाटकों में प्रस्तावना एवं मंगलाचरण है ।

(६) नाटकों की भाषा में परिवर्तन नहीं कराया गया है । सभी में सरल और सरस ब्रजभाषा का प्रयोग है । केवल आनन्द रघुनन्दन में पात्र के अनुसार भाषा-परिवर्तन कराया गया है ।

(७) नाटककारों का दृष्टिकोण रस उत्पादन करना रहा है । अतः वे सरसता लाने के लिए बीच बीच में वर्णन भी देते हैं । संस्कृत नाटककारों का उद्देश्य भी यही था । उन्होंने भी रसोत्पादन के लिए बीच बीच में पात्रों के मुख से 'वर्णन' कराए हैं जैसे अभिज्ञान शाकुन्तलम् में दुष्यन्त तपोवन एवं शकुन्तला के सौन्दर्य का वर्णन करता है, भवभूति के उत्तररामचरित में राम के मुख से वन का वर्णन कराया गया है । ब्रजभाषा नाटककार अधिकांशतः स्वयं ही वर्णन देते हैं । जननाट्य शैली में पात्र के चले जाने पर एक पुरुष स्वयं इन वर्णनात्मक कविताओं को पढ़ता होगा अथवा बैठे हुए गायक समवेत स्वर में इनको गाते रहे होंगे । आगे भारतेन्दु काल में भी पात्रों के मुख से और कहीं कहीं स्वयं भी वर्णन देने की प्रथा थी । भारतेन्दु जी ने चन्द्रावली में यमुना वर्णन ललिता के मुख के कराया है, किन्तु कुन्द कली नाटक में रति वर्णन कवि स्वयं देता है । यह हुआ साहित्यिक नाटकों का इतिहास । जन नाट्य शैली के लीला नाटक या लीलाएँ भी बहुत सी लिखी गईं ।

लीलाएँ—

इस काल में लीलाएँ भी बहुत लिखी गईं। इनमें से अधिकांश संख्या कृष्ण-राधा से संबंधित लीलाओं की है। इन राधा-कृष्ण-लीलाओं में भी तीन प्रकार की लीलाएँ हैं (१) वे लीलाएँ जिनमें कृष्ण वेश बदल कर राधा के ग्राम या घर आ कर एकान्त में मिलते हैं जैसे उदय-कृत जोग-लीला में कृष्ण योगीवेश में राधा ग्राम में जाते हैं। इसी छद्म वेश में राधा से मिलते हैं। चाचा वृन्दावन दास की लीलाओं के नाम से ही छद्म वेश स्पष्ट हैं—
 सुनारिन लीला, मनिहारिन लीला, मालिन लीला, गौनेवारिन लीला, चितेरिन लीला, बिसातिन लीला, पटविन लीला, रंगरेजिन लीला, तमोलिन लीला, नाइन लीला, वैद्यनि लीला, गंधिन लीला (२) कृष्ण के बाल जीवन से संबंधित लीलाएँ जिनमें छद्म वेश नहीं बनाया गया है, जैसे उदयकृत चीरहरण लीला, गोविन्ददास कृत नागदमन, नन्ददास कृत गोवर्द्धन लीला, ध्रुवदास, मनचित्र, ध्यानदास, चरणदास, माधुरीदास कृत दानलीला, और (३) तीसरे राधाकृष्ण की रास लीलाएँ—व्यास, सिंगार कवि, राम सखा, रहीम खानखाना, नागरीदास कृत रास लीला, अलि जी कृत श्री राधिका महारास, हित दामोदर स्वामी कृत महारास लीला, नवलसिंह कृत रहस लावनी, नन्ददास कृत रास पंचाध्यायी। अन्य देवी देवताओं के जीवन से सम्बन्धित लीलाएँ भी लिखी गई हैं, जैसे उदय कृत अहिरावण लीला, मुरलीदास कृत सुखदेव लीला, देवीदास कृत दामोदर लीला, मोहनदास कृत दत्तात्रेय लीला, माधोदास कृत नारायण लीला, चाचा वृन्दावनदास कृत नारद लीला, ब्रह्मा लीला, महादेव लीला, राजा देवीसिंह कृत नरसिंह लीला, तारपानि कृत भगीरथ लीला, रामदास मालवी कृत प्रह्लाद लीला। सब से अधिक लीलाएँ चाचा वृन्दावन दास, ब्रजवासी दास और ध्रुवदास ने लिखीं। ध्रुवदास जी ने ४२^१, चाचा वृन्दावन दास ने ४०^२ और ब्रजवासीदास ने ७४ लीलाएँ लिखीं^३। इन लीलाओं में नृत्य एवं गीत की प्रधानता है। कथानक बहुत सूक्ष्म है।

१—हि० ना० उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, प्र० सं० पृ० ११४।

२—वही, पृ० १२१।

३—वही, पृ० १२७

लीलाओं का विवरण डा० दशरथ ओझा के हिन्दी नाटक उद्भव और विकास एवं सरस्वती भंडार उदयपुर की हस्तलेख-सूची के आधार पर दिया गया है।

कुछ संवाद भी जैसे शुक्र संवाद (१७३८ ई०) इस काल के प्राप्त होते हैं । एक लक्षण ग्रन्थ भी लिखा गया था जो अप्राप्य है । चित्रकूट निवासी सदाराम ने नाटक दीपिका नामक नाट्य शास्त्र ग्रन्थ लिखा^१ । कहा नहीं जा सकता इसमें क्या था क्योंकि यह ग्रन्थ अप्राप्य ही रहा है ।

१. हिन्दी में नाट्य साहित्य का विकास, लेखक पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ३० ।

अध्याय २

परिचय एवं विवेचन

रामायण महानाटक (१६१० ई०)

ब्रजभाषा का पहिला प्राप्त नाटक कविवर प्राणचन्द का रामायण महानाटक कहा गया है। यह तुलसीदास जी के रामचरितमानस की शैली पर लिखा गया है। इस महानाटक में १० अर्धाली या ५ चौपाइयों के बाद दोहे का क्रम है। कहीं-कहीं इस क्रम में परिवर्तन भी हुआ है और ११ या ६ अर्धालियों के बाद ही दोहा रक्खा गया है।

नाटककार के महानाटक के कथानक का आधार वाल्मीकि रामायण और तुलसी कृत रामचरितमानस हैं। वाल्मीकि रामायण के समान जयन्त काक सीता के स्तनों पर चोंच चलाता है, रावण अशोक वाटिका में सीता के सौंदर्य की प्रशंसा कर प्रणय भीख माँगता है और हनुमान जी, मेघनाद, विभीषण और रावण के रविनासों में सीता की खोज करते हैं।

तुलसी का ऋण बहुत है (१) प्राणचन्द के राम तुलसी की नाई भगवान हैं (२) नाटक का सेतुबंध वर्णन तुलसी से ही उधार लिया है। शब्द नाटककार के हैं। तुलसी के 'नल' की शक्ति नाटककार के 'नल' में भी है जिसके हाथ के स्पर्श से पत्थर पानी पर उतराने लगते हैं (३) लंका-दहन तुलसी जैसा है। उत्प्रेक्षाएँ भी तुलसी जैसी ही हैं—

कै बड़वानल कई परगासा। कै जनु बीजु घटाघन वासा ॥

बारह कला भये रवि लाला। कैदहुँ प्रलय अगिनि सम काला ॥

(४) राम ने शरणागत विभीषण को लंका दान कर दी। नाटककार तुलसी के ही समान राम की प्रशंसा करता है। तुलसी ने कहा—

जो संपति सिव रावनहिं दीन्ह दिए दस माथ।

सोइ संपदा विभीषनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ।

प्राणचन्द कहते हैं—

लंका दीन्ह विभीषन काजा। बालि मार सुग्रीव नेवाजा ॥

रावन पूजे सिर सीस लगाई। सेवा कीन चरन चित लाई ॥

दस सिर रावन देइ करि, पायेउ लंकाक राज।

पाउँ छुअत सो पायेउ, राम गरीब नेवाज ॥ (अंक १)

नाटककार तुलसी अपनी भी नवीनता देता है—

(१) तुलसी का वर्षा-शरद वर्णन नाटक में बारहमासा बन गया है।

(२) हनुमान जी सीता की खोज के लिए अकेले गए। नाटक की दृष्टि से पात्रों की भीड़-भाड़ नहीं होनी चाहिए थी। इसीलिए हनुमान को अकेले भेजा है। उधर समुद्र खोजता है—यह छोटा सा वानर मुझे लॉप गया तो मेरा जगत में बड़ा अपमान होगा।

(३) राम ने बालि बली को छिप कर नहीं मारा है, वरन् सामने युद्ध में पछाड़ा है।

(४) हनुमान, रावण-वाटिका में ब्राह्मण वेश बना कर फल खाने गए और मालियों से फल माँगे। ब्राह्मण को याचना करते देख कर भी उन मालियों ने फल नहीं दिए। तब तो हनुमान ने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया।

हनुमन्नाटक (१६३२ ई०)^१

हृदयराम पंजाबी ने १६३२ ई० में हनुमन्नाटक की रचना की। इनका पूरा नाम हृदयराम 'भल्ला'^२ था। कविता में 'राम' नाम प्रयुक्त हुआ है। यह नाटक संस्कृत हनुमन्नाटक का अनुवाद नहीं,^३ छायानुवाद कहा जा सकता है। यह ठीक है कि नाटक में बहुत से संस्कृत श्लोकों का अनुवाद भी मिलता है। हनुमन्नाटक के छन्द १-४६, १-६३,^४ मूल संस्कृत नाटक के शब्दशः अनुवाद हैं। ऐसे अनेक स्थल हैं। किन्तु नाटककार ने अधिकांशतः अन्धानुसरण नहीं किया है और न कोरा अनुवाद। अनुवाद इसलिये कहा जाता है कि नाटक मूल संस्कृत के आधार पर लिखा गया है, कथानक में भी स्थूल साम्य है। तथापि दोनों नाटकों में अन्तर भी बहुत है। उदाहरण—

(१) कथा में भी नाटककार ने अन्तर किया है। (क) संस्कृत में परशुराम

१. संवत् विक्रम नृपति सहस्र षट सप्त असीह वर (अंक १४ का १५१वाँ छंद)।

२. मुझे पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर में 'हनुमन्नाटक' के अतिरिक्त इनका एक काव्य ग्रंथ 'सुदामा चरित्र' मिला था जिसपर पूरा नाम 'हृदयराम भल्ला' था। दूसरा हस्तलेख 'रुक्मणी मंगल' (अपूर्ण प्रति) डी० ए० वी० कालेज लाहौर खोज विभाग में देखा गया था। दोनों ग्रंथों की काव्यशक्ति भाषा और प्रौढ़ता हनुमन्नाटक के टक्कर की थी।

३. बा० प्रज्जलनदास इसे अनुवाद मानते हैं, (हि० सा० सा०, च० सं०, पृ० ५८)।

४. हनुमन्नाटक, प्रकाशक खेमराज श्रीकृष्णदास, पुणे, संस्कृत।

धनुष भङ्ग होते ही आते हैं, हिन्दी नाटक में विवाह के बाद (ख) कैकयी का राजा दशरथ से दो वर माँगना—यह प्रसंग संस्कृत नाटक में संकेत भर है, पूरा एक श्लोक भी इस पर नहीं लिखा गया है, किन्तु इसके विपरीत हिन्दी में यह प्रसङ्ग बड़े विस्तार से है (अंक २ छन्द १६-३०) (ग) संस्कृत नाटक के दूसरे अंक में रामसीता की सुहागरात का वर्णन विस्तार से है। ११ श्लोकों में तो रात्रि और चन्द्रमा का उद्दीपनात्मक वर्णन है और १६ श्लोकों में रामसीता का रतिवर्णन है, जिसमें चुम्बन आलिंगन इत्यादि का भी वर्णन दिया गया है। हिन्दी नाटक में केवल एक पंक्ति में यह पूरा प्रसङ्ग कह दिया गया है 'राज समाज जुरो पुर में सियराम मिले मन आनंद भारी' (२-४) (घ) संस्कृत नाटक में भरत राम का चित्रकूट में मिलन नहीं दिखाया गया है, हिन्दी में यह प्रसङ्ग है (ङ) संस्कृत में सूर्पनखा प्रसङ्ग छोड़ दिया गया है। संस्कृत नाटक का महाकवि पंचवटी वर्णन (३-२१।२२) के बाद राम की वन्दना करता है और तुरन्त २४वें श्लोक में मारीच को ले आता है। हृदयराम का सूर्पनखा प्रसङ्ग अत्यन्त मनोरम है। उसे एक अत्यन्त रूपवती युवती माना है। वह बड़ी लम्पट रमणी है। राम-लक्ष्मण की अद्वितीय सुन्दरता सुन कर कामातुर हो दौड़ती है। लम्बे लम्बे डग भरती है, ठोकर खा कर ठौर ठौर गिरती है, उठती है, दौड़ती है। राम सूर्पनखा का बड़ा सरस संवाद है जिसमें सूर्पनखा प्रणय भीख माँगती है। वहाँ से टका सा उत्तर पा लक्ष्मण के सामने हाथ फैला प्रेम की भिन्ना की याचना करती है। साथ ही अपनी सुन्दरता का बखान करती जाती है। जब उसने काम न बनता देखा तो वह भयंकर रूप धर कर सीता को खाने दौड़ी। राम से लिपट कर सीता बोली—इसे भी वर लीजिए। (३-८०) राम ने उसके नाक-कान छीन लिए। (च) संस्कृत नाटक में समुद्र लॉथ कर हनुमान तुरन्त सीता के पास पहुँच जाते हैं। हिन्दी में प्रसङ्ग का बड़ा विस्तार है।

(२) श्लोकों के अनुवादों की संख्या को भी लें तो ११८३ में से ३८ कोरे अनुवाद मात्र हैं।^१

शैली में साम्य होते हुए भी विषमता भी है। संस्कृत नाटक में स्वयं कवि कथा कहता है, हिन्दी नाटक में भी कवि अपने आप कथा कहता है। और वर्णन देता है जिसे देख कर हिन्दी के आलोचकों ने इसे नाटक मानने में संकोच प्रकट किया है।^२ विषमता भी अधिक है। (१) संस्कृत नाटककार:

१. हिन्दी नाटक उद्भव और विकास (डा० दशरथ ओझा) प्र० सं० पृ० १५४।

२. (क) डा० वाष्ण्य कृत आधुनिक हिन्दी साहित्य, हि० सं० पृ० १२५।

की अपेक्षा हिन्दी नाटककार वर्णन-विस्तार अधिक कर देता है। (२) स्वयं कथा भी अधिक विस्तार से कहता है। वास्तव में कवि स्वयं कथा को अग्रसर करता रहता है। बीच-बीच में स्वांग शैली की नाई 'कवि की उक्ति' 'कवि का वचन' 'कवि का वाक्य' इत्यादि भी लिख देता है।

समयसार नाटक (१६३६ ई०)^१

आगरा निवासी श्री बनारसीदास जी जैन ने १६३६ ई० में समयसार नाटक लिखा। समयसार नाटक के आदि कर्ता श्री कुंद-कुंदाचार्य मुनि^२ थे। मुनि कुंद-कुंदाचार्य ईसा से ८ वर्ष पूर्व संवत् ४६^३ के अथवा पहली ईसवी^४ के माने जाते हैं। मुनि कुंद-कुंदाचार्य के ग्रंथ का नाम था समय पाहुड। यह ग्रंथ जैनियों में बड़ा लोक-प्रिय हुआ। इसकी चार टीकाएँ हुईं (१) मुनि अमृतचन्द ने आत्मख्याति नामक टीका लिखी^५। समयसार नाटक में बनारसीदास जी ने इस संस्कृत टीका को कलश कहा है^६। श्री कुंद-कुंदाचार्य जी के समय पाहुड या समयसार मंदिर के लिए यह कलश ही है^७। समय पाहुड की छंद संख्या ४७४^८ थी जिसे

(ख) डा० सोमनाथ कृत हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास नृ० सं०, पृ० ७।

(ग) डा० श्यामसुन्दर दास कृत रूपक रहस्य, च० सं०, पृ० ५८।

(घ) बा० ब्रजरत्नदास कृत हिन्दी नाट्य साहित्य, च० सं०, पृ० ५८।

१. सोरह से तिरानवें बीते। असुमास सित पक्ष त्रितीते।

तिथि तेरस रविवास प्रवीना। ता दिन ग्रंथ समापति कीना।

(समयसार नाटक छंद ७०७)।

२. कुंद-कुंद चारज प्रथम गाथ बद्ध करि समै सार नाटक विचारि नाम दयो है (समयसार ६७८) और कुंद-कुंद मुनि मूल उधरता (समयसार ६६१)।

३. (क) भूमिका, समयसार नाटक की, संपादक श्री मनोहरलाल एवं प्रकाशक परमश्रुत प्रभावक जैन मंडल बम्बई प्र० सं०, पृ० ७।

(ख) भूमिका 'समयसार नाटक' की, संपादक पं० जयचन्द, लेखक ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद।

४. 'समयसार नाटक' (हिन्दी टीका साहित) संपादक मानकचन्द जैन ऐडवोकेट की भूमिका।

५. अमृतचन्द टीका के करता (समयसार ६७१वाँ छंद)।

६. ताही की परम्परा अमृतचन्द भए तिन्हि संस्कृति कलस सँवार सुष लियो है (समयसार ४८५)।

७. बहुमंदिर यह कलश कहावै (समयसार ४८५)।

८. समयसार नाटक, छंद ४७४।

अमृतचन्द जी ने ५६७ तक ऊँचा उठा कर कलश का काम किया^१। कुंद-कुंदाचार्य के समय पाहुड या समयसार की दूसरी टीका श्री जयसेनाचार्य ने तात्पर्य वृत्ति संस्कृत टीका की। तीसरी भाषा टीका पं० जयचन्द्र जी की हुई^२। चौथी टीका का उल्लेख बनारसीदास जी स्वयं करते हैं। यह टीका पांडे राजमल्ल जैन ने की थी जो बड़ी ही सरल और सुगम थी^३। बनारसीदास जी ने इसी राजमल्ल टीका को सर्वजनहिताय छन्द बद्ध किया। आगरे के पॉच प्रसिद्ध जैनियों की प्रेरणा से ही बनारसीदास जी ने यह कार्य किया^४। मुनिवर अमृतचन्द जी की छन्द संख्या ५६७ को बनारसीदास जी ने ७२७ कर दिया है जिसमें ३१० दोहे सोरठे, २४५ सवैया इक्तीसा, ३७ सवैया तेईसा, चौपाई ८६, छप्पय २०, कवित्त १८, अट्टिल्ल ७ और कुंडली ४ हैं।

वास्तव में समयसार नाटक नहीं है। कुंदकुंदाचार्य के समय पाहुड धर्म ग्रंथ को अमृतचन्द मुनि ने नाटक रूप में प्रस्तुत किया। समय का अर्थ है 'जीव'^५ और पाहुड (संस्कृत प्राभृत) का अर्थ है 'सार या शुद्धावस्था'।^६ कुंद कुंदाचार्य कृत समय पाहुड या समय प्राभृत में जीव कैसे शुद्धावस्था (या सार) को प्राप्त करता है इसका (जीवाजीव अधिकार, कर्तृकर्म अधिकार, पुण्यपाप अधिकार, आश्रव अधिकार, संवर अधिकार, निर्जर अधिकार इत्यादि) 'अधिकारो' में वर्णन दिया गया है। मुनि कुंद कुंदाचार्य ने गाथाएँ कह कर छुट्टी पा ली थी। बाद में मुनिवर अमृतचन्द जी ने गाथाओं में नाटकत्व सिद्ध कर दिया। कैसे? कुंदकुंदाचार्य ने ३८वीं गाथा के बाद तुरन्त ३९वीं गाथा आरम्भ कर दी। अमृतचन्द जी ने अपनी टीका में कहा ३८वीं गाथा तक 'पूर्व रङ्गस्थल' है। कुंदकुंदाचार्य जी एक के बाद दूसरी गाथा जोड़ते जाते हैं और ६८वीं गाथा तक जीव तथा अजीव के सम्बन्ध में वर्णन करते हैं। अमृतचन्द जी ने जीव और अजीव दोनों को दो

१. समयसार नाटक, छं० ५६७।

२. समयसार (हिन्दी टीका) सं० मनोहरलाल, पृ० सं०, भूमिका पृ० ७।

३. समयसार ६६२।

४. समयसार ६६५ से ७०६ तक छन्द।

५. समय पाहुड की गाथा २ और आत्मख्याति टीका का दूसरा श्लोक। अमृत चन्द इसकी व्याख्या करते बताते हैं, 'जीवो नाम पदार्थः स समय' (समयसार हिन्दी टीका) टीकाकार मनोहरलाल जैन, प्र० सं० पृ० ७।

६. तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिवर जयसेन कहते हैं 'समय आत्मा। प्राभृत सारं, सारः शुद्धावस्था'। जयसेन मुनि (समयसार हिन्दी टीका) टीकाकार मनोहरलाल जैन।

पात्र बनाया। ३६वीं गाथा पर उन दोनों पात्रों का प्रवेश कराते हैं।^१ और ६८वीं गाथा पर उन दोनों का निष्क्रमण करा देते हैं।^२ इस प्रकार प्रत्येक अधिकार एक अङ्क बन गया। अमृतचन्द के समय से इसका नाम समयसार नाटक प्रसिद्ध हो गया।

बनारसीदास जी ने अमृतचन्द की इस अंक-परम्परा और पात्र-प्रवेश इत्यादि को नहीं अपनाया है। वे समय पाहुड के समान एक के बाद दूसरा छन्द कहते चले जाते हैं। वास्तव में उनके समयसार नाटक में मुनिवर कुंदकुंदाचार्य के समय पाहुड का अनुगमन है न कि अमृतचन्द जी के नाटक रूप का। उन्होंने अपने धर्म-ग्रंथ को द्वारों में बाँटा है, अङ्कों में नहीं। संवाद भी कम हैं। सबसे बड़ा लक्षण किसी भी नाटक का यह है कि उसमें एक कथा तो हो। बनारसीदास जी के इस धर्म-ग्रंथ में कोई कथा है ही नहीं, न कोई पात्र ही कहीं दिखलाई पड़ता है। यह योगवाशिष्ठ के समान आध्यात्मिक एवं धार्मिक ग्रंथ है, न कि नाटक। योगवाशिष्ठ में इससे अधिक संवाद शैली है। फलतः इसमें नाटकत्व किसी भी प्रकार नहीं है।

नेवाज कवि कृत 'शकुन्तला' (१६८० ई०)^३

नेवाज कवि कृत शकुन्तला ने हिन्दी जगत् में अच्छी ख्याति पाई है। यह नाटक संसार प्रसिद्ध महाकवि कालिदास के अभिज्ञानशकुन्तलम् का छायानुवाद कहा जा सकता है। नेवाज कवि, शाहजादा आजमशाह (१६५२-१७०७ ई०)^४ के आश्रित कवि थे। अपने आश्रयदाता की आज्ञा से नेवाज ने शकुन्तला नाटक भाषा में लिखा।^५ नेवाज का यह नाटक बड़ा सुन्दर और सरस बना है।

१. अथानन्तरं शृङ्गारदिनरात्रद्विजाजीवाजीवाभ्यामनौ प्रविशतः (समयसार, सं० मनोहरलाल जैन, पृ० ७६)

२. 'इति जीवाजीवौ पृथग्भूत्वा निष्क्रान्तौ' 'इति श्रीमदमृतचन्द सूरि विरचितायां समयसारख्याख्यायामात्मख्यातो जीवाजीव प्ररूपकः प्रथमोः' (१। १) (समयसार, सं० मनोहरलाल जैन, प्र० सं० पृ० ११४।)

३. (क) बा० ब्रजरत्नदास कृत हिन्दी नाट्य साहित्य पृ० ६०। (ख) प्र० रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', २००६ का प्रकाशन, पृ० २६३।

४. हिन्दी नाट्य साहित्य पृ० ५६।

५. आजिम खान निबन्ध को दीनी यह कुरमाह।

शकुन्तल नाटक हमें भाषा देहु बनाइ ॥७॥

६. आजमखान के हुक्म तैं सुकवि नेवाज विचारि।

कथा संस्कृत की सकल भाषा लई उतारि ॥८॥

इसमें स्थूल कथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् की है। उक्तियों और प्रसंगों का शाब्दिक अनुवाद भी मिलता है जैसे अंक १ का १९वाँ और ४४वाँ छन्द अनुवाद हैं। कुछ उक्तियों को घटा बढ़ा दिया है जैसे १-२६, १-२३ और १-५२। मूल संस्कृत के नाटक में ७ अंक हैं। कविवर नेवाज ने ४ ही अंकों में नाटक समाप्त कर दिया है। मूल संस्कृत नाटक का प्रारम्भ दुष्यंत की मृगया से है, किन्तु नेवाज ने अपना नाटक राजा कौशिक की तपस्या से प्रारम्भ किया है जब कि इन्द्र की सहायता के लिए मेनका कौशिक का तप डिगाने के लिए आती है। मूल नाटक में यह मेनका प्रसंग पहिले अंक के अंत में केवल आधे पृष्ठ में वर्णित है जब कि कविवर नेवाज प्रारम्भ के चार पृष्ठ इसी से रँगते हैं। दुष्यंत के आने से पूर्व शकुन्तला का जन्म, उसका युवती होना और उसके यौवन का वर्णन भी विस्तार से किया गया है। नेवाज कवि ने अपने नाटक में प्रस्तावना नहीं दी है। इस प्रकार यह अभिज्ञान-शाकुन्तलम् का अनुवाद मात्र नहीं है, छाया अनुवाद या स्वतंत्र अनुवाद है। नाटक की विशेषता है इसकी मनोहर कविता। एक उदाहरण देखिए—

विसरन लागे बालापन को अयानपन,
खिसों सयानप की बतियाँ गढ़न लगी।
दग लागे तिरिछानि चालै पग मन्द लागे,
उर में कहुक उसोंसे सो चढ़न लगी॥
अंगनि में आई तरुणाई की भलक लरि-
काई अब देहते हरें हरें कढ़न लगी।
होन लागी कटि या बचटि कैं छला सी छैज,
चन्द्र की कला सी तन दीपति बढ़न लगी॥

नेवाज कवि कृत इस ग्रन्थ को नाटक कहा जाय या कथा-काव्य। प्राप्त हस्तलेखों में से कुछ में यह अंको^१ में विभाजित है और कुछ में तरंगों^२ में। इसका नाटक कथा नाम भी प्राप्त होता है।^३ सभी प्रतियों के अन्त में नाटककार कहता है कि 'शकुन्तला तब भइ पटरानी। यह इतनी है चुकी कहानी' ४-७८। किन्तु इसी के बाद नाटककार लिखता है—

जो देखा सोई लिखा मोर दोष जिनि देव।

मात्रा अक्षर दोहरा बुध विचार करि लेव॥

यहाँ 'जो देखा' शब्द ध्यान देने योग्य है। यदि इसे काव्य माना जाय तो

१. नवलकिशोर प्रेस द्वारा मुद्रित शकुन्तला, १८६५ ई० का संस्करण।

२. काशीराज पुस्तकालय के १८११ एवं १८४१ संवत्सक हस्तलेख।

३. वही १८४१ संवत्सक हस्तलेख (१८४१) के १८४१ काव्य-भाषा-प्रकरण।

‘जो देखा’ से क्या अर्थ निकला है। साधारणतया यह अर्थ लिया जाएगा— मैंने शकुन्तला नाटक को जिस रूप में पुस्तकों में देखा सोई लिखा। यदि ऐसी बात होती तो नेवाज इसे उसी रूप में लिखता जिस रूप में मूल संस्कृत नाटक है। ‘मैंने जिस रूप में देखा है ठीक उसी रूप में लिखा है। मुझे कोई दोष न देना।’ क्या नेवाज कवि का नाटक उसी रूप में है जिसमें संस्कृत का मूल नाटक है? नहीं है, यही एक उत्तर होगा। मूल संस्कृत और इस नाटक में आकाश पाताल का अन्तर मालूम होता है। तब ‘जो देखा’ का अर्थ यह नहीं हो सकता कि ‘जो पढ़ा’। इसका स्पष्ट अर्थ है कि मैंने नाटक को जिस रूप में अभिनीत होते देखा था, ठीक उसी रूप में लिखा है। इससे यह भी अभिप्राय निकाला जा सकता है कि मैंने कालिदास के नाटक को जिस रूप में अभिनीत होते देखा है, ठीक उसी रूप में लिखा है, कोई मुझे दोष न देना। किन्तु जैसा पहिले कह चुके हैं, यह संस्कृत नाटक की शैली पर नहीं है। फिर इस पद का अर्थ क्या है? इसका अर्थ वही है जो ऊपर लिखा है कि मैंने इस नाटक को जिस रूप में अभिनीत होते देखा है वैसे ही लिख दिया है। यही भाव नाटककार का प्रतीत होता है। जैसा हम आगे दिखलाएंगे यह तत्कालीन जन नाट्य शैली पर लिखा गया था। सभी जन-नाट्य शैलियाँ वर्णनात्मक या कथात्मक थीं। यह नाटक भी कथात्मक शैली में लिखा हुआ है। इसका अभिनय भी हुआ था। नेवाज ने इसे रचने के बाद जिस रूप में अभिनीत होते देखा, ठीक वैसे ही लिख दिया है। ठीक इसी प्रकार के शब्द दिये हैं लछिराम ने अपने करुणाभरण नाटक में^१।

करुणाभरण नाटक (१६५७ ई०)^२

रामायण महानाटक वाली शैली में कृष्ण जीवन लछिराम ने करुणाभरण नाटक लिखा। पूर्व भारतेंदु युग का यह विशिष्ट और मौलिक

१. आगे ‘आंतरिक प्रमाण’ शीर्षक के अन्तर्गत व्रजभाषा नाटकों को अभिनेय सिद्ध करते समय इसकी चर्चा की गई है।
२. ब्रजरत्नदास ने हिन्दी नाट्य साहित्य, च० स०, पृ० ६० पर और डा० दशरथ श्रोत्रा ने हिन्दी नाटक उद्भव और विकास पृ० १६१ पर इस नाटक का निर्माण काल १७१५ ई० माना है। संभवतः ऐसा सरस्वती भंडार उदयपुर के ७७ संख्यक हस्तलेख के आधार पर किया गया है। इस हस्तलेख का लिपिकाल १७८२ वि० (१७१५ ई०) ही है। किन्तु सांख्यिक संग्रह (का० ना० प्र० सभा) के एक हस्तलेख (८१२/३६) में लिपिकाल १६६६ ई० (१७५१ वि०) प्रस्तुत होता है। अतः नाटक १६६६

नाटक है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नाटक बहुत लोकप्रिय हुआ क्योंकि (१) इस नाटक के अधिक हस्तलेख प्राप्त होते हैं। अकेले काशी नागरी-प्रचारिणी सभा में ही इसके ५ हस्तलेख हैं। इसी प्रकार सरस्वती भंडार, उदयपुर में तीन हैं। (२) इसमें प्रयुक्त करुण रस से प्रभावित हो उदय कवि ने राम के जीवन को ले कर राम करुणाकर नाटक लिखा। (३) केवल यही अकेला नाटक है जिसके पहाड़ी शैली के १७ चित्र प्राप्त हुए हैं। ये चित्र चैत्रिकों के चित्राभिनय के लिए संभवतः निर्मित हुए थे^१।

नाटक का कथानक प्रवहमान और शृङ्खलित है। इसमें आधिकारिक कथा है—राधा का कृष्णमिलन। पहिले अङ्क में प्रासङ्गिक कथा है जिसमें व्रजवासियों को कुरुक्षेत्र में कृष्ण के आने का ज्ञान होता है। शेष पाँचों अङ्कों में आधिकारिक कथा है। वैसे तो इसमें सात अङ्क हैं परन्तु कथा की समाप्ति छठे अङ्क पर हो जाती है। सातवाँ अङ्क बाद में जोड़ा हुआ प्रतीत होता है। इसके कई प्रमाण हैं (१) छठे अङ्क के अन्त में नाटककार कहता है कि—

लछीराम की बुद्धि बिसाला। छन्द तीन सै करे रसाला।

गणना करने पर ३०० छन्द छठे अङ्क के अन्त तक ही आते हैं। सातवें अङ्क में ३५ छन्द हैं। यदि इसमें आरम्भ से ही ३३५ छन्द होते तो नाटककार यह न लिखता 'छन्द तीन सै करे बिसाला।' सातवें अङ्क की समाप्ति पर पुनः छन्द संख्या नहीं दी गई है। (२) अधिकांश हस्तलेखों में ६ ही अङ्क प्राप्त होते हैं। सातवाँ अङ्क प्रायः अलग से मिलता है। (३) नाटकीय कथा का कोई भी सम्बन्ध सातवें से नहीं है। सातवें अङ्क में कोई कथा है ही नहीं। उसमें तो कृष्ण भगवान् का अद्वैतवादी रूप दिखाया गया है। (४) सातवें अङ्क के लिखने की आवश्यकता बाद में हुई। इसका कारण भी नाटक के अन्त में उपस्थित है। राधा, कृष्ण को ले गई। रुक्मणी जी दुःखी मन से द्वारका लौटी। यह अन्त किसी को रुचिकर न था। एक प्रति^२ के सातवें अङ्क के अन्त में लिखा है 'इति श्री करुणा नाटक देवीदास कृत सम्पूर्ण'।

ई० से पूर्व रचा गया था। नाटक के सातवें अङ्क में लिखा है कि लछीराम ने अपने नाटक करुणाभरण की परीक्षा योगवाशिष्ठभार (२० का० १६५७ ई०) के लेखक कवीन्द्र सरस्वती से कराई थी। अतः इस नाटक का रचनाकाल १६५७ या इसके पूर्व ही हो सकता है। याज्ञिक जी रचनाकाल १६५७ ई० ही मानते हैं।

१. कलानिधि पत्रिका (सं० भी रायकृष्णदास) भावण २००५ में भी गोपालकृष्ण का लेख 'करुणाभरण नाटक और उसकी चित्रावली'।
२. काशी नागरीप्रचारिणी सभा पुस्तकालय में हस्तलेख २८६१।

इस पुष्पिका से तो यह अर्थ निकलता है कि सातवाँ अङ्क ही नहीं सम्पूर्ण नाटक 'देवीदास' नामक किसी व्यक्ति ने बनाया था। किन्तु इसी प्रति के छूटे अङ्क के अन्त में लिखा मिलता है 'देवीदास कृत'। एक अन्य हस्तलेख के सप्तम अङ्क के अन्त में 'देवदत्त गुरु' नाम मिलता है^१। संभवतः देवदत्त गुरु या देवीदास नाटककार के गुरु थे। देवदत्त को ही देवीदास लिख दिया है। यह भी ध्वनित होता है कि सातवाँ अङ्क इन्हीं गुरु की आज्ञा से लिखा गया था। नाटक के सातवें अङ्क में नाटककार लिखता है कि इसकी परीक्षा कवीन्द्र सरस्वती से कराई गई थी। यह भी संभव है कि कवीन्द्र सरस्वती ने ही सम्मति दी हो कि सातवाँ अङ्क जोड़ दो। सातवें अङ्क में कृष्ण, राधा और रुक्मणी में अभेद सिद्ध करा दिया गया। इस प्रकार छूटे अङ्क को सुखान्त सिद्ध कर दिया गया है।

पात्र और चरित्र चित्रण

कहानी-उपन्यास में घटना पर अधिक ध्यान दिया जाता है, नाटक में कथा के साथ पात्र को भी महत्त्व मिलता है। उसके चरित्र पर भी विशेष दृष्टि दी जाती है। इस नाटक में पात्रों के चरित्र पर ध्यान रखा गया है। सत्यभामा आरम्भ से ही ईर्ष्यालु स्त्री के रूप में चित्रित हुई है और अन्त तक उसका यही चरित्र चित्रित है। इसके विपरीत रुक्मणी जी के हृदय में सहानुभूति और अनुराग भरा है। विशेष प्रकाश फेंका है राधा के चरित्र पर। राधा आरम्भ से कुरुणा की कमनीय मूर्ति हैं, वे विद्योभ विधुग नायिका हैं। जब वे सुनती हैं कि प्यारे कन्हैया भी यहीं कुरुक्षेत्र में हैं और सब उनसे मिलने की तैयारी में लगे हैं तो—

‘कबहूँ बदन स्वेत हूँ जावै। कबहूँ मिलन सरस सुष पावै ॥

नीची नारि पगन तन हेरे। उलटि उसॉस सकल घट घेरे ॥

—(अंक १)

आगे कवि ने हृदय की द्वन्द्वात्मक भाँकी दी है। वह भी कृष्ण से मिलने को चली। अभिसारिका नायिका प्रियतमा से मिलने जा रही है—

राधा विरह तपति की ताई। कंपति चंपति हरि दिग आई ॥

नैननि ते तातो जल परे। घूँघट भीतर भरकी भरे ॥

—(अंक ४)

सब सखियाँ कृष्ण से मिल रही थीं। कृष्ण ने राधा को कैसे पहिचाना—

हे अँसुवा हरि परा पर परै। मनहुँ अगिनि की चीनमीन जरै ॥

हरि मन कही कौन यह आई । इती तपति तन व्यापै जाई ॥
इन लक्ष्मणों से राधा पहिचानी गई ।

रात्रि में सब सुख की नींद सो रहे हैं किन्तु कोई दुखी हो मन में रो रही है तो वह है राधा । उसके मन को भी शान्ति मिली । कृष्ण रात्रि में आ कर मिले । (अंक ५)

छठें अंक में राधा के चरित्र पर विशेष बल दिया गया है । सब ब्रजवासी घर जाने को प्रस्तुत हैं । दुःखिनी राधा नहीं जायगी । जब उसे विवश किया तो वह सरोवर में कूद पड़ी । कृष्ण से वचन ले कर ही बाहर निकली ।

इस प्रेमिका के चरित्र की कुछ भौंकी उस समय भी मिलती है, जब वह ईर्ष्यालु सत्यभामा को डाँटती है और प्रेम की महत्ता प्रतिपादित करती है । कृष्ण धीर ललित नायक हैं ।

मनोविज्ञान और अन्तर्द्वन्द्व

पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोविज्ञान के आधार पर किया गया है । प्रिय-मिलन की आतुरता और हड़बड़ाहट में गोपियों नेत्रों में महाबुर दे लेती हैं और पैरों में अंजन । मिलन में भी इसी मनोविज्ञान का चित्रण मिलता है । जब बहुत वर्ष बाद असम्भावित रूप से प्रीतम से भेंट होती है, तो क्या दशा होती है ? कोई उभक कर कृष्ण को देखती है, कोई छोटी है तो कहती है, मुझे ऊपर उठा लो री ।

इक मन दुषित उसासें लेहीं ।

एक कहै जो मोहिं दिषावै । सो मेरे आभूपन पावै ॥

सत्यभामा का चित्रांकन ईर्ष्यालु स्त्री के मनोविज्ञान को ले कर खींचा गया है । राधा का रूप देख कर उसका रूपगर्व दूर हो गया । वह बराबर व्यंग बाण छोड़ती रहती है । राधा और सत्यभामा स्त्रियोचित मुहाविरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग करती हैं जैसे—परको सेन्दुर देखिके अपनो फोरति भाल, बिप भरि पेट कटारी करौं, खिभि खिभि चितवति नैन निकोरनि, जग उपहास मूढ़ि घटि लीनों, इन तिलियन पर तेल वे नाहीं, पकरे रहो नेम के पूँटा, देखो किहि विधि बैठा ऊँटा, घुसे न घास घुसे री आग, कन्त न पूछे बातरी धरयो सुहागिन नाम, इत्यादि । हार्दिक द्वन्द्व की सुन्दर भौंकी भी नाटक में मिलती है । राधा ने सुना—द्वारिकाधीश कृष्ण पधारे हैं । उसके हृदय की बड़ी बुरी दशा है । कवि ने राधा के हृदय के द्वन्द्व को बड़ी सूक्ष्मता से पढ़ा और लेखनी-बद्ध किया है ।

कबहुँ आसा मिलन सुख कबहुँ होति उदास ।

क्योंकि ? वह सोचती है—सुना है, प्यारे राजा हो गए हैं। सोने से लदीं अनेक सुन्दरियाँ उनके पैर दाबती हैं। अब मुझे वे क्यों आँख भर कर भी देखेंगे ? मैं गँवारी ठहरी। परन्तु मन कहता है—मेरी उनकी प्रीति बचपन की है, स्वार्थ रहित है अतः वे मुझे भूल नहीं सकते। वे अवश्य मुझसे प्रेमपूर्वक मिलेंगे। कवि इस हार्दिक दुविधा का शब्दों में चित्र उतारता है।

संवाद—

नाटक के संवाद भी सरस और चुटीले हैं। राधा सत्यभामा का संवाद तो बड़ा स्वाभाविक और सुन्दर है। राधा सरोवर में कूद पड़ी। सत्यभामा को दिल की जकड़ी गॉठ खोलने का सुन्दर अवसर मिला। उसने अनेक प्रहार आरम्भ किए—

क्यों जबर्दस्ती किसी के पति को अपना पति बनाती है ? कहीं दूसरे का सिन्दूर देख कर अपना माथा भी फोड़ा जाता है ? तू दूसरे का सुन्दर पति देख अपने को छोड़ रही है। सोच समझ। जब तक ये क्वारे और बालक थे, तूने छुरछुन्द फैला कर इनको फँसाया। उस समय ही ये गँवार और ग्वालों के लायक थे। परन्तु अब तो ये राजा हैं। फिर इनसे तुम लोगों का क्या काम ? तू जो कर रही है क्या कुलवधू के योग्य है ? माँ बाप जिसके हाथ में हाथ थमा दें, कुलवधू का धर्म है, वह सदा उसी को निभाए, कवि बड़े पैने शब्द प्रयुक्त करता है—

सत्यभामा—

कन्त परायो चाहति जोरनि । खिभि खिभि चितवति नैन निकोरनि ।
क्यो बजाइ ब्रज खरिक निवेठति । बादि पराए घर में पैठति ।

परको सेन्दुर देखि के अपनो फोरति भाल ।

राधा तोहि न बुझये छाड़ि देहु ये जाल ॥

जब लगि थे ये क्वारे बारे । तब लगि देखे चरित तिहारे ।

अब ये छत्रीपति यदुनायक । ग्वाल गँवार तिहारे लायक ।

तजे न लोक वेद की ठौर । कुल नारिक की बातें और ।

माता पिता जाहि गहि देई । दुष सुष मानि तिस को लेई ॥

(अंक ६)

राधा का उत्तर भी सत्यभामा के तीखे स्वरों को लिए था और साथ ही महत्त्व भी। वह सत्यभामा के व्यंगवाणों का उसी भाषा में उत्तर भी देती जाती थी और प्रेम की महिमा भी प्रतिपादित करती जाती थी। उसने कहा—तू मूर्ख है। प्रेम को नहीं पहचानती। प्रेम सदा नेम से ऊपर है। प्रेम, वंश एवं वर्ण को नहीं देखता। यह तो नेम, देखता है। तुम्हें नेम-प्रेम को सीखना है तो पास

खड़ी रुक्मणी से सीख जिसने प्रेम के लिए 'नेम' का त्यागन कर दिया था। पित्त-भाई के नियम-बंधनों को न माना था। तुझे अभिमान है नेम का कि तू कृष्ण के साथ लोक वेद-मर्यादा के साथ व्याही गई है। परन्तु जानती है, वह गले पड़े का दान था। तेरे पिता ने मणि की चोरी का अभियोग जो कृष्ण पर लगाया था, उसके पश्चात्ताप में बलात् तुझे कृष्ण के गले मंदा था। पर क्या तूने कृष्ण की प्रीति को पाया है? नहीं—

ताते तू अति गर्व करि मति बोले री नारि।

नाते तें यह अधिक है प्रीति देषि जिय तारि ॥

अपने कर्म विचारि, गर्व करे मति बावरी।

मैं जानी निरधार, प्रेम कथा तो तन नहीं।

जहाँ तक मेरे और कृष्ण के प्रेम का सम्बन्ध है, वह संसार प्रसिद्ध है।

राधा माधो नाम, गावत हैं सब नारि नर।

पूजत हैं सब काम, तू नहि जानति प्रेम को।

साथ ही राधा सत्यभामा की व्यंगभरी शैली का उत्तर देती है—

सतिभामा देखो छिन माहीं। इन तिलियन तर तेल वे नाहीं।

पकरे रहो नेम को पूटा। देखो किहि बिं ठे ऊँटा।

मन की खटक उठे पै जागि। घुसे न घास घुसेरी आगि।

नेम न ढूँढ़े पाइये जहाँ प्रेम को ठाम।

कंत न पूछे बातरी धरथो सुहागिन नाम ॥

अब वे बातें बहि गईं अरु सुहाग व्यौहार।

औसर चूकी डोमिनी गाये आर पतार ॥

रस

नाटककार स्वयं कहता है कि करुणा और शृंगार भरा यह नाटक मैंने लिखा है।^१ इसमें 'करुणा' को प्राथमिकता दी है और शृंगार को सहायक रस माना है। वास्तव में पूर्व भारतेन्दु युग का यह अकेला कृष्ण-सम्बन्धी नाटक है जिसमें करुणा की पावन गंगा बहाई गई है।

आरम्भ :—आरम्भ में राधा, गोपियाँ, गोप, नन्द, जसोदा—कृष्ण के वियोगी दिखाये गये हैं। मिलन में भी टीस भरी है। राधा के नेत्रों से गर्म आँसू पड़ रहे हैं, मानो आग की चिनगारियाँ हैं।

मिलन समय :—'बरर बरर आवै परसेव। छूटे कहा लग्यो हरिदेव।'।

मध्य :—सब संसार सुख से सोया है, पर वियोगिन राधा करवटें बदल रही है। (अंक ४) कृष्ण आ कर मिले।

१. करुणा अरु स्यंगार रस, जिहाँ बहुत करि होय। (अंक ६)

अन्त—जब कृष्ण ने ब्रजवासियों से कहा कि ब्रज वापिस जाओ । गोपियों मुरझा गईं । वसुदेव-देवकी, नन्द-यशोदा सब आँसू बहाने लगे ।

नंद कहै सँग हमको लेहू । महरिहिं घरहिं बिदा करि देहू ।

महरि कही तुम महर सिधारो । औरन कोऊ ब्याह बिचारो ।

लोक वेद की तजिहीं लाजहिं । देषति रहिहीं या ब्रजराजहिं ।

दूरि करो जिनि देवकि माय । हूँ तो जदुनन्दन की धाय ।

मेरो गोधन अरु धन लेहू । मोहिं कन्हैया देषन देहू ।

राधा विरह न सँभार सकीं । प्रेम पर अपना शरीर बलि देने के लिये सरोवर में कूद पड़ीं । यह तो खैर हुई, डूबीं नहीं । पानी गले तक रहा ।

अन्त में द्वारिका को रुक्मिणी जाती भी हैं तो अपना मूलधन गँवा कर, खिन्न, दुखी और उदास । कृष्ण को दैवी रूप से राधा ले आती हैं, परन्तु अन्य ब्रज के लोग इस बात को नहीं जानते थे, और सब गोप-गोपियों, नन्द-यशोदा दुःखी थे । कवि ने नाम भी करुणा नाटक^१ या करुणाभरण नाटक लिखा है । करुण रस का सहायक है शृंगार । मिलन भी शृंगार के ही अन्तर्गत है । गोपों का मिलन, गायों और गोपियों का मिलन, सब शृंगार के अंतर्गत है । ललितां कृष्ण से मिली तो उसने पैर पड़ते पड़ते पैर की चिकुटी भर ली ।

पाइन परति चिहुँटिया लीनी । प्रीति पुरातन परगट कीनी ।

चन्द्रावली ने—

आइ पाइ पर नारि नवाईँ^१ भालु चरन घसि होठ लगाए ।

कछु इक मीठी काटनि काटे । ता पाछे हरि तरिवा चाटे ।

(अंक ५)

रात्रि में राधा-कृष्ण मिलन हुआ । कवि संयोग शृंगार का वर्णन कर कहता है 'यह रस-रीति कही नहीं जाई ।' राधा कृष्ण वृन्दावन में 'निसदिन भोगें भोग' एव सदा विहार करते हैं, अन्त भी इसी दैवी शृंगार पर होता है । इस प्रकार करुण रस के साथ शृङ्गार का गठबन्धन हुआ है । यह प्रश्न अलग है कि वास्तव में क्या यह करुण रस है ? अन्त में अवश्य रुक्मिणी इत्यादि के लिये शोक की पूरी अवस्था है ।

जन्मभूमि स्नेह—

कवि ने 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की महिमा भी प्रदर्शित की है । कृष्ण को पता चला कि ब्रजवासी कुरुक्षेत्र आये हैं । 'जनम भूमि की

१. करुणानाटक अमृतवानी (अंक ६) काशी नागरोपचारिणी सभा, २८६ संख्यक ।

सब सुधि करी (अंक ३) । नेत्रों में बरसात उमड़ पड़ी, कंठ गद्गद हो गया और बेसुध हो गये ।

माधवविनोद (१७५२ ई०)^१

सोमनाथ माथुर, उपनाम 'शशिनाथ' ने १७५२ ई० में मालती माधव का पद्यबद्ध अनुवाद किया । ये भरतपुर नरेश बदनसिंह के पुत्र प्रतापसिंह के आश्रित कवि थे ।^२ इस अनुवाद का कारण भी कवि ने स्वयं दिया है कि प्रतापसिंह के पुत्र बहादुर सिंह की आज्ञा पा कर भाषा में अनुवाद किया है ।^३ मालतीमाधव की १० अंकों की कथा को १० अंकों में कहा है । प्रत्येक अंक का कथाक्रम, पात्र-प्रवेश-क्रम, निष्क्रमण-क्रम एवं उक्ति-क्रम वही है जो मूल नाटक में है । प्रवेशक विष्कम्भक भी वे ही हैं । इस प्रकार यह शुद्ध अनुवाद कहा जा सकता है परन्तु कुछ अन्तर भी है, और वह अन्तर भी महत्वपूर्ण है ।

(१) प्रस्तावना भिन्न है । मूल नाटक में शिवगणेश एवं सूर्य स्तुति है । अनुवाद में गणेश एवं कृष्ण की । मूल में महाकाल की यात्रा में आये हुआ के सामने मालतीमाधव प्रकरण के अभिनय की योजना है तो अनुवाद में कुँवर बहादुर सिंह की सभा में मालतीमाधव वाला चरित्र जो कि सोमनाथ कृत है खेलने का प्रस्ताव है^४ ।

(२) मूल नाटक में अंकों का कोई नाम नहीं है । अंक के अन्त में यही लिखा मिलता है "इति श्रीमहाकविभवनभूतिविरचिते मालतीमाधवे प्रथमोऽंकः" अथवा 'द्वितीयोऽंकः ।' किन्तु अनुवाद में प्रत्येक अंक का नाम भी दिया गया है । जैसे—'इति श्रीकविसोमनाथविरचिते माधवविनोद-नाटके नकुलवीथी नाम प्रथमोऽंकः'—नाटके-धवलगृहनामा द्वितीयोऽंकः—

१. ठारह से अरु नव वरष संवत आश्विन मास ।

शुक्ल त्रयोदशी भृगु दिना भयो ग्रन्थ परकाश ॥

(माधवविनोद के अन्त में)

२. हिन्दी नाट्य साहित्य, ले० बा० ब्रजरत्नदास, च० सं० पृ० ६० ।

३. कही बहादुर सिंह ने एक दिना सुख पाय ।

सोमनाथ या ग्रन्थ की भाषा देहु बनाय ॥ २० ।

माधव अरु मालति के प्रेम कथा रसाल ।

बरननु सो सशिनाथ कवि हुकुम प्राइ के हाल ॥ २१ ॥

४. सूत्रधार—चरित मालती माधव बारो । सोमनाथ लौ सुख भारो ।
सो समाज तुमने ठहरायो । भली भौति मोहँ मन भायो ॥

—१२ प्रस्तावना ।

नाटके—सोकगृहनाम तृतीयोक्तः' । यह प्रणाली उस काल में लिखे प्रायः अधिकांश नाटकों में पाई जाती है ।

(३) अनुवाद में कहीं वर्णन को घटा दिया है, तो कहीं बढ़ा दिया है । मूल नाटक के पाँचवें अंक में श्मशान का विस्तृत वर्णन है, अनुवाद में उतना विस्तृत वर्णन नहीं है । इसके विपरीत मूल नाटक के प्रथम अंक में मन्मथ उद्यान का सक्षिप्त सा वर्णन है, किन्तु अनुवाद में उसका वर्णन ७ छन्दों (३० से ३६ तक) में किया गया है ।

(४) इसके कहने की तो आवश्यकता ही नहीं है कि गद्य ने भी पद्य का रूप धारण कर लिया है क्योंकि यह तो इस काल का सर्वमान्य सिद्धान्त था ।

(५) मूल नाटक में पात्र आ कर अपने या अन्य के विषय में कुछ कहने लगता है । उसकी वेशभूषा का वर्णन नहीं है । अनुवाद में पात्र की वेशभूषा का वर्णन दिया गया है जो बहुत सुन्दर है । जैसे प्रथम अंक के आरम्भ में योगिनी कामंदकी सभा मध्य आई तो नाटककार कहता है—

वक्र जटानि को जूट साजै शिर चक्र समेत निकेत निकार्ई ।
 अंबर लाल औ भाल भभूति सुकाननि कुडल की छवि छाई ॥
 कण्ठ मे माल जपै ससिनाथहि नैननि में तप की अरुनाई ।
 यों सब सिद्धिनि सों अभिरामिनि कामद नामिनि जुगिनी आई ॥
 जब कलहंस बाहर आता है तो नाटककार उसका वर्णन करता कहता है—
 ऐंठवा फेंटा सजै सिर पै अरु भाल पै चन्दन बिन्दु बनायो ।
 आगिले बन्दनि बागौ बन्यौ रु बड़ौ कटि पै पटुका लपटायो ।
 दक्षिण हाथ में सोटा लसै सुभ माधव के हित सों अतुरायो ।
 मित्र सुलक्ष्म तक्ष्म लै तहँ सेवक सो कलहंस कहायौ ॥१-२॥

शकुन्तला धोंकल मिश्र कृत (१७६६ ई०)^१

अपने आश्रयदाता तेजसिंह^२ की आज्ञा से मिश्र धोंकल राम ने अभिज्ञान-शाकुन्तलम् का पद्यबद्ध अनुवाद किया । लगभग सवासी वर्ष पूर्व नैवाज भी शकुन्तला का अनुवाद कर चुके थे । दोनों अनुवादों में बड़ा अन्तर है ।

१. ठारे से छप्यन बरस संवत् आश्विन मास ।

सित तेरस रविवार को प्रभु भक्ते उज्जास ।

—हस्तलेख, काशी नागरीप्रचारिणी सभा ।

२. 'इति श्रीमन्महाराजा श्रीपद्मोपसिंहसुततेजसिंह आज्ञा मिश्र धोंकल-रामविरचिते शकुन्तलानाटके प्रथमोक्तः' ।

(१) नेवाज कवि ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कहानी को संक्षिप्त कर चार अंकों में वर्णन कर दिया । धोंकल मिश्र ने मूल के सातों अंक रखे । (२) नेवाज कवि ने मूल की नाटकीय कथा का क्रम भी उलट दिया और उसे शकुन्तला-जन्म से आरम्भ किया । धोंकल मिश्र ने मूल शाकुन्तलम् का कथा क्रम निवाहा है । (३) नेवाज ने हास्य रस छोड़ दिया । धोंकल मिश्र ने विदूषक पात्र को ला कर उसकी मूल के अनुसार रत्ना की है । (४) छन्दों की विभिन्नता भी धोंकल कृत अनुवाद में नेवाज से अधिक है । (५) वास्तव में नेवाज का अनुवाद छायानुवाद है जब कि धोंकल मिश्र का जननाय्य शैली पर अनुवाद है ।

धोंकल मिश्र ने 'मूल' नाटक का सुन्दर अनुवाद किया है । मूल के सातों अंकों का अनुवाद हमें धोंकल के सातों अंकों में सक्रम प्राप्त होता है । अनुवाद तीन प्रकार का है—

(१) शाब्दिक अनुवाद; जिसकी प्रधानता है । मूल में राजा दुष्यन्त शकुन्तला को देख कहता है —

(क) 'इसका नवयौवन कोंधे पर बंधे हुए महीन गोंठ वाले तथा दोनों स्तनों के विस्तार को आच्छादित करने वाले वल्कल से उसी तरह अपनी शोभा को पुष्ट नहीं करता जैसे पीले पीले पत्तों के बीच में पड़ा हुआ फूल पूरी तौर से अपनी शोभा न दिखा कर थोड़ा थोड़ा दीखता रहता है ।

(ख) और यद्यपि यह वल्कल इसके अनुकूल नहीं है फिर भी यह इसके अलङ्कार की शोभा का काम नहीं देता, सो बात नहीं है । क्योंकि सेवार से आच्छादित रहता हुआ भी कमल सुन्दर ही है उसी तरह यह कुशांगी इस वल्कल से और भी सुन्दर मालूम होती है । मधुर आकृतियों के लिए कौन सी वस्तु अलङ्कार नहीं बनती ।'

नेवाज का अनुवाद हम देख चुके हैं । वह स्वतन्त्र अनुवाद था ।

१. हिन्दी अनुवाद—रामतेज पांडेय, चौखम्भा प्रकाशन ।

(क) इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे

स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन ।

वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां ।

कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरैश्च । १-१६ ।

(ख) सरसिजमनुविद्धं शैबलेनापि रम्यं

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति

इयमधिकमनोशो वल्कलेनापि तन्वी

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकुतीनाम् ॥ १-२० ॥

कविवर धोंकल मिश्र का अनुवाद यह है—

- (क) सुलभ गठित सुगहि अंस विराजत बलकल चारु नवीनो ।
राजत है कुच के जुग ऊपर अंक कहा इन भूषित कीनो ।
सुन्दर रूप नवीन प्रकास प्रकासत अंगन सोम प्रवीनो ।
पीत पतो बनफूल छियो दरसे इमि दंगनि रंग रगीनो ॥१-१४६॥
- (ख) सोभा कहा अरविन्दन की घटि होत जुआनि दवावत काई ।
इंदु कलंक समेत तऊ निस चाँदिनी होत सवै सुखदाई ।
सुन्दर रूप मनोहर वाम लगै इह बलकल सौं छुवि छाई ।

जे मधुरी छुविवंत तिहूँ सबही कछु भूपन मंडन दाई ॥१-१४७॥

महाकवि कालिदास का चौथे अङ्क में 'शकुन्तला विदा वर्णन' संसार साहित्य की बेजोड़ कला है। प्रसन्नता की बात है कि धोंकल मिश्र उस वर्णन की आत्मा की रक्षा कर सके हैं। एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

प्रियंवदा — केवल तुम्हीं तपोवन का त्याग करने में कातर नहीं हो रही हो। तुम्हारा वियोग काल उपस्थित होने पर तपोवन की हालत भी तो देखो। हरिणी अपने मुँह से कुश का घास उगले दे रही है, मयूरी ने नाचना छोड़ दिया है और लताएँ पीले पत्ते गिरा कर मानो आँसू बहा रही है। (४-१४)

कविवर धोंकल मिश्र इसको भाषा में इस प्रकार सजाते हैं—

- यो सुनि बैन सकुंतल के उचरी प्रिय फेरि कछु मुसकात है। (४-३६)
तू जिन सोचै सषी मन में सबही बन की गति औरै भई है।
छाँड़त अश्रु मनो नलिनी तरुपल्लव पीतन भूमि छई है।
भूल रहे चरित्रो मृग मोर तु नाचन की गति छाँड़ि दई है।
मैंटन को अब तोहि सषी मन मेरे अमंद उमंग लही है। (४-४०)

(२) मूल की उक्तियों एवं वर्णनों को बढ़ा कर लिखा—

(क) अङ्क ३ में राजा अपने विरह का कथन मूल से अधिक बढ़ाकर करता है।

(ख) चौथे अङ्क में 'मूल' में प्रातःकाल वर्णन ४ छन्दों में (४-२ से ४-५ तक) है। अनुवादक ने ७ छन्दों में किया है।

(३) स्वतन्त्ररूप से वर्णन किया है—

(क) शकुन्तला और दुष्यन्त का गंधर्व विवाह करा के उनका रतिवर्णन भी किया है जो मूल में नहीं है। मूल में तीसरे अंक के अन्त में राजा मुख-चुम्बन का प्रयास करता है, तभी आर्या गौतमी का स्वर बाधा डाल देता है। इससे पूर्व तीसरे अंक में रति वर्णन नहीं है। किन्तु धोंकल मिश्र अपने काल की शृंगारिक प्रवृत्ति के वश हो तीसरे अंक के मध्य में गंधर्व विवाह करा के संभोग का वर्णन करते हैं।

मिली प्रान प्यारी जब अंगन उजियारे सों
 पीतम रति रंग में अनन्द बहु मान्यो है ।
 सुफल कपोल गोल चाध्यौ है रसु अमोल
 बोलि बोलि बैन बैन मैन मन आन्यो है ।
 नैनन को जोरि जोरि अंगन उमंगन सों
 संग बहुरंग जीति मनमथ निसानो है ।
 अंक में निसंक आनि राजत सुचंद मुषी

चौदिनी समीप मनु कलानिधि लसानो है । ३-१४२

(ख) पहिले अंक में 'शकुन्तला वन वर्णन' और चौथे अंक में 'शकुन्तला वर्णन' स्वतंत्र वर्णन है । कवि ने यह अच्छा किया है कि इन वर्णनों को अलग से प्रक्षिप्त रूप में लिखा है, कथा का अंश नहीं बनाया है । इन वर्णनों में कवि की कवित्व शक्ति महक उठी है, विशेषतया शकुन्तला के रूप और शरीरांग वर्णन में ।

रामकरुणाकर नाटक (१८४० ई० से पूर्व)^१

पूर्व भारतेन्दु काल में करुण रस को दृष्टि में रख दो नाटक लिखे गये । एक है कृष्ण जीवन लल्लिराम का करुणाभरण और दूसरा नाटक है उदय-कृत रामकरुणाकर । रामकरुणाकर नाटक में लक्ष्मण की मृत्यु पर राम दुखी है और विलाप करते हैं । ५६ छन्दों का यह एक लघु नाटक है । नाटककार ने इस लघु नाटक को दृश्यों में विभाजित नहीं किया है क्योंकि भारतीय नाटक प्रणाली में दृश्य परिवर्तन की व्यवस्था नहीं होती थी । हाँ, एक अंक के अन्तर्गत कई स्थानों पर कथानक घटित हो जाता था । भारतीय नाट्यशास्त्र में समय-सीमा का निर्धारण तो है^२ परन्तु स्थल सीमा का नहीं^३ । अतः इस नाटक में भी दृश्य विभाजन नहीं है । प्रबन्ध काव्य की नाई कथा

१. उदय के दो नाटक रामकरुणाकर और हनुमान नाटक एवं दो लीलाएँ अहिरावणलीला एवं जोगलीला पर निर्माण संवत् नहीं, केवल अहिरावणलीला के अन्त में लिपिकाल (संवत् १८६७) सन् १८४० ई० दिया है ।

२. नाट्यशास्त्र (चौखम्बा) २०वें अध्याय के श्लोक २५-२६ । भावप्रकाश अधिकार ८वें ५५२३७ की १५वीं पंक्ति । दशरूपक ३-३६ । साहित्यदर्पण ६-१५ ।

३. स्थान के विषय में अधिकतम यही है कि जब पात्र परदेश चला जावे तब अङ्क की समाप्ति कर दो जाय । (चौखम्बा) नाट्यशास्त्र २०-३० ।

आगे बढ़ती है किन्तु ध्यान से देखने पर स्पष्टतया दृश्य परिवर्तन होते हैं ।

(१) युद्ध का दृश्य—लक्ष्मण शक्ति—सुषेण का लाया जाना । हनुमान का संजीवनी लाने जाना । (१-१०)

(२) मार्ग का दृश्य—एक कुटी ।

हनुमान को कालनेमि साधु ने रोका—हनुमान जी पास ही पानी पीने गये, मकरी ने बताया वह राज्ञस है—राज्ञस को मारा । (११-२)

(३) युद्ध शिविर—राम का विलाप । (१६-३१)

(४) अयोध्या—हनुमान पर्वत ला रहे हैं—भरत ने बाण मारा । हनुमान मूर्च्छित—पुनः चल पड़े । (३२-३६)

(५) पुनः युद्धशिविर—राम का विलाप—हनुमानागमन—लक्ष्मण जागरण । (४०-५६)

इस नाटक का आधार तुलसी का रामचरितमानस है जहाँ से कथानक लिया गया है । प्रासंगिक कथानक कालनेमि वाला है ।

पात्र

यह प्रश्न है कि इस नाटक का नायक कौन है ? हनुमान कार्यरत हैं । राम एक स्थान पर बैठे हैं । कथानक हनुमान के चरित्र से लिपटा है । तब भी नायक राम ही माने जायेंगे और हनुमान सहायक (पीठमर्द) हैं । ऐसी अवस्था में हनुमान का वृत्त पताका कथानक के अन्तर्गत आ जायेगा । लक्ष्मण का जीवित होना राम को ही प्रधानतः अभीष्ट है, हनुमान तो राम के सहायक मात्र हैं । हनुमान के चरित्र में सेवा एवं कार्यशैलता भरी है, तो राम के चरित्र में कोमलता और बन्धु-प्रेम ।

रस

करण रस प्रधान है ।

भाषा शैली

भाषा सरल है जो शीघ्र समझ में आ जाय । नाटककार गीति नाट्य को दृष्टि में रख गेय शैली में नाटक लिख रहा है । नन्ददास वाली गेय शैली अपनाई है । 'राम करुणा करें' इस टेक को सब मिल कर गावेंगे ।

संवाद

नाटक के प्राण हैं राम के शोक से भरे कथन । सरल और सुबोध भाषा में राम अपने हृदय की अतीव वेदना को प्रकट करके स्वयं ही नहीं रो रहे हैं, सेना के साथ सारे जग को भी रुला रहे हैं । कबि राम के ईश्वरत्व को

भुला देता है। राम साधारण मानव की तरह उद्विग्न हो प्रस्ताप करने लगते हैं। उनकी आँखों के सामने भूतकाल के बाल विहार आ खड़े होते हैं—

उठि अब पीवहु दूध मात तोहि टेरेत भाई ।
चलि करि बाग विहार वीर सरजू में न्हाई ।
भरथ वीर बोलत तुमै रिपु सूदन सँग लाई ।
टेरेत हैं तुमको चलौ पेलत वन में जाई ॥

राम करुणा करें । २१।

जुरि आए सब सषा पौरि पर तहि बुलावैं ।
उठो धनुष कर लेहु चलौ कहूँ बान चलावैं ।
गुरु आए आदर करो उठि अब लङ्घिमन कुमार ।

भोर भयो भूपति जगे भूसुर करत उचार ॥ राम करुणा करें । २२।
राम का यह विलाप कितना मनोवैज्ञानिक है। किसी के मरने पर उसके दिए पूर्व सुख एवं उसके खेल बहुत याद आया करते हैं। राम को लक्ष्मण की सेवा याद आती है—

अहो तात बलि जात कुँवर कहा करौ बड़ाई ।
तजे पिता अरु मात मोहि लागि तैंने भाई ।
संपति देषि विदेश बन कठिन कलार की चाल ।
सहि संकट मो संग रहौ सदा करत प्रतिपाल ॥ राम करुणा करें । २४।
लरकापन हू लाल कछु अरवी नहि कीनी ।
जो कछु कारज कियो माँगि आग्या मोहि लीनी ।
भूठे हु रूठे नहीं कबहूँ लङ्घिमन बाल ।
अब मोसों बोलत नहीं क्यों रूठे हो लाल ॥ राम करुणा करें । २५।
'क्यों रूठे हो लाल' में कैसी हृदयविदारकता भरी है। अब वे

अयोध्या अकेले नहीं जा सकते। क्यों ?

कर्महीन मैं दीन भयो अब तो भिन भाई ।
बली बंधु मरवाय निलज निज नारि गमाई ।
लोग नाम धरिहैं सबै कहाँ रहूँ अब जाय ।
नारि हराइ निलज तैं आयो बन्नु मराय । राम करुणा करें । २८।
कहा कहाँगो अबधि जाई अब तो भिन भाई ।
सब पूछेंगे लोग कहाँ अब लङ्घिमन भाई ।
कहा कहाँ तिनसों अबै फिर पूछेंगी माय ।

हनुमन्त हूँ आयो नहीं कहत राम हहराय । राम करुणा करें । २९।
जब रात्रि भाग रही है और अरुण का प्रकाश होने वाला है तो राम एकदम हताश हो कहने लगे—

सुनहु सषा सुग्रीव समुक्ति संदेह न यामै
 वानर देहु पठाय बीनि बन चंदन लामै
 रचौ चिता अब आह सब तापर बैठौ जाइ
 लै लछिमान को गोद मै दीजो आगि लगाइ ॥ राम करुणा करें ॥४१॥

हनुमान नाटक-उदयकृत (१८४० से पूर्व)

उदयकृत इस नाटक की शैली रामकरुणाकर जैसी ही है। ६८ छन्दों का यह भी गेय लघु रूपक है। इसका समवेत स्वर है “रजाइस राम की।” रामचरितमानस के आधार पर सीता अन्वेषण की कथा कही गई है।

तुलसी का प्रभाव केवल कथा और चरित्र-चित्रण ही में नहीं, उक्तियों तक में है। कुछ उक्तियाँ शब्दशः रामचरितमानस की हैं। जैसे—

(१) जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तैं असि रचि नहिं जाई ॥

—रामचरितमानस, सुन्दर काण्ड, दोहा १३१

माया रचित बनै नहीं सुरनर राम अजीत। हनुमान नाटक, १४।

(२) रामचन्द्र गुन बरनै लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा ॥

—रामचरितमानस, सुन्दर काण्ड, दोहा १२१

इतनै ही हनुमान राम गुन बरनन लाग्यौ।

सुनत भई दै कान दुसह दारुन दुष भाग्यो ॥ हनुमान नाटक, १५।

(३) हनुमान रावण से—

खायउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाव तैं तोरेउ रुखा।

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे।.....

तासु दूत जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि ॥ सुन्दर काण्ड^२, २१वाँ दोहा

लगी भूष अति मोहि तोरि तरुवर फल पाये।

वानर जाति सुभाइ जाहि सौं रूप नवाये ॥

मारन आये मोहि ते मैं मारे तरु ढारि।

पठयो आयो ताहि को हरि लायौ सठ नारि ॥ रजाइस राम की ॥३२॥

(४) तोहि देखि सीतल भइ छाती। पुनि मो कह्यु सोइ दिन सोइ राती ॥

—सुन्दर कांड, दोहा २७

रे सुत तोकों देखि तनक सीतल भइ छाती।

तुहू कहै अब जावहुँ मोहिं सोई दिन राती।

—हनुमान नाटक।

१. गीताप्रेस वाली, रामचरितमानस, तृतीय संस्करण।

२. गीताप्रेस वाली रामचरित मानस, तृतीय संस्करण।

इस लघु रूपक से राम कल्याणकर अभिक भेष्ट है। हनुमान-रावण संवाद भी तुलसी की छाया लिये है। ऐसा प्रतीत होता है ये दोनों गेय लघु रूपक राम लीला खेलने के लिए लिखे गए थे।

आनन्द रघुनन्दन नाटक (१६वीं शताब्दी)

रीवाँ नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह जी के इस नाटक को पं० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी का प्रथम नाटक माना है^१। महाराज विश्वनाथ सिंह जी का जन्म १७८६ ई० में हुआ। उनका राज्यकाल १८२३ से १८३४ तक है^२। अतः यह नाटक १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध या उससे पूर्व काल का हो सकता है। पता नहीं बा० ब्रजरत्नदास जी ने कैसे यह लिख दिया है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसे हिन्दी का प्रथम नाटक माना है^३। क्योंकि भारतेन्दु जी ने कहीं पर भी अपने निबन्ध में इस प्रकार का मत व्यक्त नहीं किया है।

विशेषताएँ

यह एक विचित्र नाटक है। इसमें कई विचित्रताएँ हैं।

(१) नाटककार ने महाराज रामचन्द्र के राज्यतिलक के समय अप्सराओं से अंग्रेजी और अरबी के पद गवाये हैं। अंग्रेजी पद देखिये—

ए किंग हितकारी माई डियर बेरी।

लिवरल एण्ड ब्रेव वीशटिरी ॥

गुड इस्प्रेड माइसिन टाप लार्ड।

गुड आलडैम विशुनाथ आफ गाड ॥

राम के सामने अंग्रेजी अरबी में पद गवाना देशकाल दोष है। ऐसे देशकाल दोष और भी मिलते हैं जैसे महाराज दशरथ को सचिव कहता है

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० २००६, पृ० ४५३।

२. हि० ना० साहित्य, च० सं० पृ० ६२, किन्तु डा० सोमनाथ ने आनन्द रघुनन्दन का रचना काल १७०० ई० माना है क्योंकि वे म० विश्वनाथ जी का समय १६६१ ई० से १७४० ई० तक मानते हैं (हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, च० सं०, पृ० ५)। पता नहीं डा० सोमनाथ ने किस आधार पर विश्वनाथ जी को १७-१८वीं शताब्दी का माना है। महाराज रघुराज सिंह का राजत्व काल १८५४-१८८० तक है। (रीवाँ नरेश का एक पत्र २० अप्रैल १९५६ का लिखा हुआ, मेरे पास सुरक्षित है।)

३. हि० ना० साहित्य, च० सं०, पृ० ६२

महाराज सलामत, महाराज सलामत' ।

(२) इसके पात्रों के नाम विचित्र हैं । पात्रों के नाम—

राम का 'हितकारी', लक्ष्मण का 'डीलघराघर', हनुमान का 'त्रेतामल्ल', भरत का 'डहडहजगकारी', खर का 'रासभ', मारीच का 'घातिनेय', विभीषण का 'भयानक', मेघनाद का 'घनध्वनि', मकराक्ष का 'ग्राहनयन' ।

स्त्रियों के नाम—

ताड़का का 'घातिनी', मंथरा का 'कुटिला', कैकेयी का 'काश्मीरी' सुर्पनखा 'दीर्घनखी', सीता का 'महिजा', गंगा का 'स्वर्धुनि' ।

इन नामों में कुछ तो वास्तविक नामों का पर्याय ले कर बनाये गये हैं जैसे कुम्भकर्ण को 'घटकान' कहा गया है और कुछ का गुण ले कर नाम धरा गया है जैसे राम का 'हितकारी' भरत का 'डहडह जगकारी' हनुमान का 'त्रेतामल्ल' । ये नाम प्रबोध चन्द्रोदय शैली से प्रभावित हो कर रखे गए हैं ।

(३) राम के राज्यतिलक के समय अप्सरायें पूरा नायिका-भेद कह डालती हैं । कवि अपने नायिका-भेद के शास्त्रीय ज्ञान का वहीं अवसर पाता है । ३५ पदों में ३५ नायिकाओं का वर्णन है । वे नायिकाएँ ये हैं—

(१) सुकिया, (२) मुग्धा, (३) अज्ञात यौवना, (४) ज्ञात यौवना, (५) नवोद्गा, (६) मध्या, (७) प्रौढा, (८) धीरा, (९) अधीरा, (१०) जेष्ठा-कनिष्ठा, (११) ऊढ़ा, (१२) अनूढ़ा, (१३) गुप्ता, (१४) क्रिया विदग्धा, (१५) वचन विदग्धा, (१६) कुलटा, (१७) मुदिता, (१८) लक्षिता, (१९) अनुशयना, (२०) गणिका, (२१) अन्यसुरतिदुखिता, (२२) मानिनी, (२३) प्रेमगर्विता, (२४) रूपगर्विता, (२५) गुणगर्विता, (२६) विरहिनी, (२७) खंडिता, (२८) कलहांतरिता, (२९) विप्रलब्धकी, (३०) प्रगटउत्का, (३१) वासकशय्या, (३२) स्वाधीन पियत्तमा, (३३) अभिसारिका, (३४) प्रेयसी प्रवत्स्यत्का, (३५) आगतपतिका ।

राम के सामने कवि नायिकाओं के भेद गवा रहा है ।

(४) इसके सभी रंग संकेत संस्कृत में हैं, जब कि शेष नाटक ब्रजभाषा में ।

विशेष परिचय

(१) इसमें राम का पूरा जीवन संक्षेप में वर्णित है । यह केवल कथोपकथनों में लिखा गया है, और रंग संकेतों के साथ-साथ गद्यांश भी है । इसी कारण पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इसे हिन्दी का प्रथम नाटक माना है^(१) ।

१. आनन्द रघुनन्दन नाटक (नवलकिशोर प्रेस) १८८१ ई०, अङ्क ७, पृ० १२१ ।

नाटककार ने भारतीय नाट्यशास्त्र को भी सामने रखा है। (१) नांदीपाठ, प्रस्तावना और भरत वाक्य हैं। (२) अंक विभाजन है। (३) गद्य का भी प्रयोग है। (४) भाषा में विविधता लाई गई है। इसमें अंग्रेजी, अरबी, ब्रज, प्राकृत, भोजपुरी, मैथिली, फारसी, बंगला, संस्कृत, करनाटकी, पैशाची इत्यादि भाषाओं एवं बोलियों का प्रयोग किया गया है। (५) सन्धियों का भी ध्यान है। चौथे अंक में पताका और गर्भसन्धि लाए गए हैं।

परम प्रबोध विधु नाटक (१८४७ ई० से पूर्व)

महाराज जयसिंह के नाती महाराज विश्वनाथ सिंह जी के पुत्र कुँवर रघुराज सिंह ने परमप्रबोधविधु नाटक लिखा। इस पुस्तक पर कहीं भी निर्माण संवत् नहीं दिया है।

नाती नृप जयसिंह को रघुराज सिंह शुभ नाम।

विरच्यौ परम प्रबोध विधु नाटक यह अति अभिराम॥

‘इति स्वस्ति श्रीमान् राजकुमार बाबूसाहेब रघुराज सिंह जू देव विनिर्मित परम प्रबोध विधु नाम नाटके स्वप्न सोकः समाप्तम्। छन्द ६७।

इस नाटक का तिलक युवराज रघुराज सिंह के पिता महाराज विश्वनाथ सिंह जी ने सन् १८४७ ई० (१६०४ वि०) में चन्द्रिका नाम से किया।

‘इति सिद्धि श्री महाराजधिराज श्री महाराज श्री राजावहादुर श्री सीता-रामचन्द्र कृपापात्राधिकारी विश्वनाथ सिंह देव कृत चन्द्रिका नामी टीका सम्पूर्ण शुभमस्तु ६७ मिति फाल्गुन मासे कृष्ण पक्षे पंचमि बुधे : संवत् १६०४। महाराज रघुराज सिंह का राज्यकाल १८५४ से १८८० ई० तक^१ है। अतः १८४७ ई० में जब चन्द्रिका^२ बनी तब श्री रघुराज सिंह युवराज थे। प्रतीकात्मक शैली पर लिखे इस नाटक में शृङ्गार एवं शान्त रस का सुन्दर मिश्रण है। एक ओर सूत्रधार कहता है ‘एति में जो रास भये हैं जहँ बनादिकन में तिनके सुष पुञ्ज में भरे परस्पर जानकी रघुनन्दन के मुसकानि तैं ये कौन कुंजन में जो विलास कियो हैं सो व्यंजित हैं तातैं शृङ्गार रस व्यंजित होत हैं।’ दूसरी ओर रागानुगा का रामप्रेम चक्रवर्ती से विवाह हुआ। महामोह जीत लिया गया। जीव ने विवेक द्वारा ‘रामप्रेम’ पाया।

नाटक में गद्य का प्रयोग भी हुआ है।

१) नेपथ्ये डि डि शब्द—महाराज महामोह की आज्ञा है परलोक

१. प्राइवेट सेक्रेटरी का पत्र २० अप्रैल १९५६ ई०, जिसमें महाराज रघुराज सिंह का राज्यकाल १८५४ ई० से १८८० ई० तक बताया है।

२. यह चन्द्रिका काशिराज पुस्तकालय में हस्तलिखित रूप में सुरक्षित है।

मिथ्या है यह जानि सब विषै भोग करो'''

(१) महाराज आपके पिता कसो है कि परम प्रबोध विधु को अरु जीवात्मा को देषिवे को हमारे उत्कण्ठा है समन्त्री विवेक को लिये वे भी आवै—

इस नाटक का अभिनय मुरलीधर के पुत्र रामप्रसाद द्वारा आयोजित हुआ था ।

मुरलीधर को पूत, नायक रामप्रसाद जो ।

नाट्यकार घर सूत, यहि नाटक को जानियो ॥

‘सुधी होहु रामप्रसाद गायो है’

तत्कालीन नाट्यशैली संबंधी कुछ मूल्यवान सूचनाएँ इससे मिलती हैं—

‘नेपथ्य जो है कनात को वह पार जाये यह कोलाहल भयो कि इन्दु-लोक को'''

‘नेपथ्ये डि डि शब्द’ ।

विग्यान गीता, माधवानल कामकंदला और गीत रघुनन्दन

विग्यान गीता

कई हिन्दी के आलोचकों ने ‘विग्यान-गीता’^१ को नाटक माना है । इन आलोचकों के कथन का आधार है सप्तम हिंदी साहित्य सम्मेलन का कार्य विवरण । किन्तु विज्ञान गीता नाटक नहीं है । इस युग में नाटक दो श्रेणी के हैं—

(१) मौलिक नाटक—नाटक रामायण, करुणाभरण नाटक, राम-करुणाकर नाटक एवं आनन्द रघुनन्दन नाटक । स्वयं रचयिता इन्हें नाटक कहता है ।

(२) अनूदित नाटक—हनुमान नाटक, शकुन्तला, प्रबोध चंद्रोदय, माधव विनोद । ये अनूदित नाटक अपने मौलिक नाटकों के आधार पर नाटक कहलाये हैं और उनमें नाटकत्व है भी । ‘विग्यान गीता’ किसी ऐसे ग्रंथ का अनुवाद नहीं है जो नाटक कहा गया हो । यह प्रबोध चंद्रोदय का अनुवाद नहीं

१. (क) सप्तम हिंदी साहित्य सम्मेलन की कार्य विवरण पत्रिका । पृ० १३३-१३४ ।

(ख) डा० वाष्णोय (आधुनिक हिंदी साहित्य) द्वि० सं०, पृ० २२५ ।

(ग) पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (लेखनवापय, मई १९५६, पृ० ४१३)

(घ) पं० रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, २००६ सं०, पृ० २१६ ।

है। न इसमें प्रबोध चन्द्रोदय की नाटकीय शैली का अनुकरण किया गया है। प्रबोध चन्द्रोदय में एक विकासमान कथानक है जो इसमें नहीं है। प्रबोध चन्द्रोदय में कुछ निश्चित पात्र हैं जिनके घात-प्रतिघात से कथा बढ़ती है। इसमें निश्चित पात्र नहीं हैं। प्रबोध चन्द्रोदय का कवि निरंतर एक लक्ष्य की ओर प्रवहमान है। इसमें ऐसा कोई लक्ष्य नहीं है।

नाटक की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि उसमें एक गतिशील कथानक हो। विद्यान गीता में कथानक के दर्शन नहीं होते, वरन् आध्यात्मिक उपदेशों के प्रसंग में उदाहरण स्वरूप भिन्न भिन्न कथायें आ जाती हैं जैसे छठे प्रकाश में वाराणसी का वर्णन करते करते मणिकर्णिका का प्रभाव बताते हुए राजा वामन एवं रानी की कथा कही गई है। रानी ने मणिकर्णिका का इतिहास भी बताया। नवें प्रकाश में प्रबोध चन्द्रोदय का आधार ले कर कुछ कथा लिखी गई है। शान्ति श्रद्धा को ढूँढ़ने मथुरा गई। दसवाँ पूरा प्रकाश श्लेष वर्णन से भरा है। 'दसम् प्रकाश में श्लेष कवित्त विलास'। वर्षा एवं शरद् का श्लेषों के आधार पर वर्णन है। शरद् ऋतु श्लेष के बल पर गंगाजल, देवी का घर, क्षीरसागर, राम की दासी, लक्ष्मी, देशभक्ति इत्यादि का रूप धरती है। ११वें में ४८ छन्दों में विन्दुमाधव, विश्वनाथ एवं गंगाजी की स्तुति गई है। १३वें में गाधिराजा की कथा है, १५-१६वें में राजा सियध्वज की कथा है। १७वें में ग्यान अग्यान की भूमिकाएँ बताई गई हैं तो १८वें में प्रह्लाद की कथा कही गई है। १९वें में ब्राह्मण पूजा और अभक्त बनाने वाले कर्म बताये गए हैं। इस प्रकार नाटक में कथा की ओर तो कहीं ध्यान दिया ही नहीं गया।

ऊपर का विश्लेषण सिद्ध कर देता है कि केशवदास जी किन्हीं निश्चित पात्रों को लक्ष्य में रख कर कथा नहीं बढ़ा रहे थे। आध्यात्मिक तत्त्वों को समझाने में जिन जिन पात्रों की आवश्यकता हुई उनको ग्रहण कर लिया है। हाँ, कुछ पात्र इसी प्रसंग में ऐसे आ गये हैं जो प्रबोध चन्द्रोदय के हैं और कुछ प्रसंगगत कथा भी प्रबोध चन्द्रोदय की आ गई है। मोह, विवेक, शान्ति, श्रद्धा, चार्वाक, ऐसे ही पात्र हैं। वाराणसी का वर्णन, विवेक की विजय इत्यादि प्रासंगिक कुछ कथायें भी प्रबोध चन्द्रोदय की हैं। फलतः इन पात्रों एवं कुछ घटनाविशेष को देख कर कुछ आलोचकों ने इसे प्रबोध चन्द्रोदय के आधार पर लिखा नाटक समझ लिया है। इस भ्रम का एक और भी कारण हुआ है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा "विज्ञान गीता संस्कृत के प्रबोध चन्द्रोदय नाटक के ढंग की पुस्तक है"।

आचार्य शुक्ल “नाटक के ढंग की ही पुस्तक कहते हैं ।” दूसरों ने पुस्तक के स्थान पर नाटक कर दिया ।

इस भ्रांति का एक और बड़ा कारण है, विज्ञान गीता की संवाद शैली । यह ठीक है कि नाटक संवाद शैली में ही लिखा जाता है, किन्तु केवल संवाद मात्र ही किसी भी पुस्तक को नाटक का रूप नहीं देते । यदि ऐसी बात होती तो श्रीमद्भगवद्गीता भी नाटक बन जाती क्योंकि पूरी गीता संवाद शैली पर लिखी गई है । प्रातःस्मरणीय महाकवि तुलसीदास जी का महाकाव्य रामचरितमानस काक-भुशुण्डि-गरुड़, शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज के संवादों के आधार पर लिखा गया है । किन्तु वह नाटक नहीं है । भारतीय धर्मतथ्यों के निरूपण की प्रणाली संवादात्मक ही थी । विज्ञानगीता में भी संवाद शैली में आध्यात्मिक तत्वों का निरूपण किया गया है । आरंभ से अन्त तक राजा वीर सिंह एवं केशव के संवाद हैं । वीरसिंह प्रश्न करता है, केशवदास जी उत्तर देते हैं । बीच-बीच में अन्यो के भी प्रश्नोत्तर हैं । उत्तर देते हुए केशवदास कहते हैं कि शिवा ने शिव से यही प्रश्न किया था । शिव जी ने जो उत्तर दिया था वही मैं यहाँ देता हूँ (१-२६) । काम-रति, (प्रकाश २), अहंकार दंभ (३), राजा वामन एवं रानी का संवाद (६), चार्वाक-शिष्य संवाद (७), श्रावक-भिन्नुक संवाद (८), शांति-श्रद्धा संवाद (९), मन-सरस्वती संवाद (१३-१४) शिव-शिवा संवाद, विवेक-जीव-संवाद (१४-१५), वेद-सिद्धि और जीव संवाद (१७-१८)—ये संवाद नाटकीय नहीं, प्रश्नोत्तर हैं । जैसे ८वें प्रकाश में श्रावक-भिन्नुक संवाद देखिये—

श्रावक—कहि कौन को उपदेसु है ? भिन्नुक—सरवग्यबुद्धि हि जानि ।
 श्रावक—सरवग्य बुद्धि कहो कहा ? भिन्नुक—बहु भोति ग्रन्थनि मानि ।
 श्रावक—अब तोहि है सरवग्यता । भिन्नुक—बात मद्धिम मूढ़ ।
 श्रावक—हमहूँ सदा सरवग्य हैं ममदास तो कुल मूढ़ । (८-१६)

स्वयं केशवदास जी किसी स्थान पर भी इसे ‘नाटक’ नहीं कहते हैं । यदि उनकी दृष्टि में यह होता कि मैं नाटक-शैली में लिखूँ तो कम से कम नाटक को प्रकाशों में विभाजित न करके अंकों में करते । फिर कहीं न कहीं तो कहते कि यह नाटक है । इसके विपरीत उनके सामने श्रीमद्भगवद्गीता, आदर्श है जिसके अनुकरण पर वे इस आध्यात्मिक पद्य-पुस्तक की रचना कर रहे हैं । प्रत्येक प्रकाश का आरंभ और अन्त इसका प्रमाण है । जैसे— १३वें प्रकाश के अन्त में केशवदास लिखते हैं—

“इति श्री मिश्र केशोराह विरचितायां विग्यानगीतायां मा विलास वर्ननो नाम त्रयोदश प्रकाशः (१३)” ।

और १४वें का आरम्भ करते हुए कहते हैं—

उपजैगो या चौदहे मन को अति वैरागु .

व्यासपुत्र सुषदेव सुनि चरित्र जग जागु ॥ (१४-१)

कई प्रकाश या परिच्छेदों में कोई कथा या पात्र ही नहीं है केवल वर्णन मात्र है। जैसे पाँचवें प्रकाश में और छठें में तीर्थों की सूची दी है, दसवें में वर्षा और शरद् का श्लेषात्मक वर्णन है और ग्यारहवें में विन्धुमाधव, विश्वनाथ एवं गंगाजी की स्तुतियाँ मात्र हैं। केशवराय का यदि ध्यान नाटक लिखने में होता तो वे बीच-बीच में स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, योगवाशिष्ठ, पाराशरस्मृति, अग्नि-पुराण, रामायण इत्यादि से श्लोक उद्धृत न करते। उनका ध्यान है कि मैं जो कुछ राजा वीरसिंह को समझा रहा हूँ, वह पुष्ट हो जाय। फलतः वे धार्मिक ग्रंथों से उद्धरण द्वारा पुष्टि करते हैं। यह नाटक की शैली नहीं, धार्मिक या आलोचनात्मक पुस्तक लिखने की शैली है।

अतः विज्ञान-गीता किसी प्रकार से भी नाटक की श्रेणी में नहीं आती।

माधवानल कामकंदला (आलम कृत^१)

कुछ ग्रंथकारों ने^२ आलम कृत माधवानल कामकंदला को भी नाटक माना है। विज्ञान-गीता के नाटक मानने के पक्ष में तो दो कारण भी हैं (१) संवाद शैली और (२) प्रबोध चंद्रोदय की कहीं कहीं छाया। किन्तु माधवानल कामकंदला के पक्ष में तो एक भी प्रमाण नहीं है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने सबसे पहिले सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विवरण पत्रिका को आधार बनाया। किन्तु वे स्वयं इसे आख्यान काव्य बतलाते हैं^३।

इसमें कथा अवश्य है क्योंकि 'प्रेमाख्यान काव्य' में कथा तो होगी ही। यह शुद्ध 'प्रेमाख्यान' काव्य है, और सूफ़ी प्रेमाख्यान काव्यों की शैली—मसनवी शैली—पर लिखा गया है। मसनवी शैली के प्रेमाख्यान काव्यों की विशेषताएँ इसमें मिलती हैं। (१) यह प्रेम कथा है। (२) यह अर्द्धाली दोहों में लिखी गई है। (३) आरम्भ में निराकार ब्रह्म, तत्कालीन सुल्तान की स्तुति

१. सन नौसौ इक्यानवे आई। करौं कथा अब बोलौं गाई ॥

६६१ हि० अर्थात् १५८४ ई०, १६४० वि०।

२. आधुनिक हिन्दी साहित्य द्वि० सं०, पृ० २२५ (ले० डा० वाष्णोय)। सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विवरण पत्रिका, पृ० १३३-१३४। पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ।

३. हिन्दी सा० का इतिहास, २००६ सं०, पृ० २३१।

है। (४) पुस्तक खंडों में विभाजित है—माधवकामकंदला वियोग खंड, माधव विरह वर्णन खंड, विक्रम सहायता खंड, कंदलाप्रेम परीक्षा खंड, माधव प्रेम परीक्षा खंड, विक्रमचितारोहन खंड, वेताल खंड, राजा वैद्य खंड, कंदला संदेस खंड, दूत खंड, युद्ध खंड, माधव-कंदला मिलन खंड। (५) इसमें नखशिख वर्णन, ऋतु वर्णन, वियोग वर्णन इत्यादि हैं। इसमें संवाद शैली बहुत ही अल्प मात्रा में अपनाई गई है। स्वयं कवि कहता है कि मैं 'प्रेम-कथा' बना रहा हूँ

सन् नौ सौ इक्यानवे आई। करों कथा अब बोलों ताही !

कथा संस्कृत सुनि कछु थोरी। भाषा बाँधि चौपई जोरी।

कथा चौपई आलम कीन्ही। पहिले कथा खवन सुनि लीन्ही।

गीत रघुनन्दन

डा० सोमनाथ गुप्त, रीवा नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह जू (सन् १६६१-१७४० ई०) के दो नाटक मानते हैं। (१) आनंद रघुनंदन और दूसरा गीत रघुनंदन नाटक। गीत रघुनन्दन के विषय में वे लिखते हैं—“इनका लिखा हुआ एक गीत रघुनन्दन नाम का नाटक और है।” नीचे पादटिप्पणी में लिखा है—“इसकी हस्तलिखित प्रति वर्तमान काशी नरेश के पुस्तकालय में सुरक्षित है”। (हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास तृ० स०, पृ० ५)

पता नहीं डा० सोमनाथ ने इसे कैसे नाटक कह दिया है। अन्य किसी ने भी इसे नाटक नहीं माना है। संभवतः आनन्द रघुनन्दन और गीत रघुनन्दन में ऊपरी नाम साम्य देख कर डा० सोमनाथ ने लगे हाथों इसे भी नाटक कह डाला। अन्यथा यह ग्रंथ किसी प्रकार से भी नाटक सिद्ध नहीं होता।

संस्कृत साहित्य की सरस और अमर पुस्तक है, पीयूषवर्षा जयदेव कृत गीत-गोविन्द। उसी काव्य शैली पर श्री विश्वनाथ सिंह जी ने गीत रघुनन्दन की रचना की है। इसमें ६ सर्ग हैं। इन छै सर्गों में छै ऋतुओं का वर्णन है।

(१) प्रथम सर्ग ... वसन्त वर्णन

(२) द्वितीय सर्ग ... ग्रीष्म

१. काशीराज पुस्तकालय में सुरक्षित प्रति न तो नाटक है, न यह मूल पुस्तक है वरन् 'गीत रघुनन्दन' की प्रामाणिक टीका है। वे महा० विश्वनाथ सिंह जी का समय (१६६१-१७४० ई०) मानते हैं जबकि इस पुस्तक का रचनाकाल पुस्तक में १८८६ वि० (१८२६ ई०) दिया है।

‘संवत् रसु वसु सुवसु ससी सहस्र मासधित पक्ष’

(३) तृतीय सर्ग	...	पावस
(४) चतुर्थ सर्ग	...	शरद्
(५) पंचम सर्ग	...	हेमन्त
(६) षष्ठ सर्ग	...	शिशिर

प्रत्येक सर्ग के अन्त में इस प्रकार की पुष्पिका है—‘इति श्री गीता रघुनन्दन वसन्त वर्णनः प्रथमो सर्गः’ । इन छै ऋतुओं में रामसीता विहार वर्णित है । गीत-गोविन्द के समान इस काव्य-पुस्तक के छन्द अत्यन्त ललित एवं मधुर हैं । एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

सरजू तीरे सुरभि समीरे विलसहिं तरुन सुवेली ।
 विषम विरह विकलाई त्रिथिकत रघुवर वसित नवेली ॥१॥
 चलु चलु कामिनि मद गजगामिनि विलसावउ इह वैसे ।
 दिल दुष भरि धीर न धारे अब्र असमर सम वैसे ॥२॥
 नवत न पर सिय बनत न परसत फरसत विरह बचावै ।
 नाम समेतै, हॉकहिं देतै से हैं वपु वहि आवै ॥३॥

अध्याय ३

ब्रजभाषा नाटक, नाटक नहीं ? (आलोचकों के मत)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी—हिन्दी जगत् में दो एक को छोड़ कर शेष सभी आलोचकों ने ब्रजभाषा नाटकों को नाटक नहीं माना है। इसका मार्ग प्रदर्शन बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा हुआ। सबसे पहिले भारतेन्दु जी ने घोषणा की—“यद्यपि नेवाज कवि का शकुन्तला नाटक, वेदान्तविषयक भाषा ग्रंथ समयसार नाटक, ब्रजवासीदास के प्रबोध चंद्रोदय प्रभृति नाटक के भाषा अनुवाद, नाटक नाम से अभिहीत हैं किन्तु इन सबों की रचना काव्य की भाँति है अर्थात् नाटक-रीत्यनुसार पात्र प्रवेश इत्यादि कुछ नहीं है। भाषा कवि कुल मुकुट माणिक्य देवकवि का देवमाया प्रपंच और श्री महाराज काशिराज की आज्ञा से बनाया हुआ प्रभावती नाटक तथा श्री महाराज विश्वनाथ सिंह जी रीवाँ का आनन्द रघुनन्दन नाटक, यद्यपि नाटक की रीति से बने हैं, किन्तु नाटकीय यावत् नियमों का प्रतिपालन इनमें नहीं है और ये छन्द-प्रधान ग्रंथ हैं^१।” भारतेन्दु जी के इस निर्णय के पीछे दो कारण प्रतीत होते हैं। (१) उस समय तक इन नाटकों का सम्यक् अध्ययन नहीं हुआ था। तभी तो भारतेन्दु जी ने देवमाया प्रपंच को प्रसिद्ध देव कवि द्वारा निर्मित मान लिया है और समयसार को वेदान्त विषयक ग्रंथ बता दिया है। आज तो प्रकट है कि देवमाया प्रपंच के रचयिता प्रसिद्ध देवकवि न थे, वरन् व्यासपुत्र कवि देव थे। इसी प्रकार समयसार, केवल जैन धर्म संबंधी ग्रंथ है। (२) भारतेन्दु जी के इस निर्णय के पीछे दूसरा कारण है कि वे इनकी परीक्षा संस्कृत नाट्यशास्त्र एवं गद्य की अनिवार्यता को सामने रख कर कर रहे थे। तभी तो उन्होंने इनकी छन्द-प्रधानता के कारण उन्हें नाटक-भवन से निष्कासित कर दिया है। किन्तु उन्हें क्या पता था कि उनका यही अस्त्र उनके नाटकों पर छोड़ा जायगा। डा० वीरेन्द्र कुमार अपने प्रबन्ध में भारतेन्दु जी के नाटकों को नाटक मानने को प्रस्तुत नहीं हैं ? क्यों ? छन्द प्रधानता के कारण। वे कहते हैं ‘भारतेन्दु जी ने नाटकों में काव्य को प्रमुख स्थान दिया है। उनकी ललित छन्दों से पूर्ण नाटकावली अंग्रेजी नाट्य के लिрикल एण्ड पोट्टिक ड्रामाज—काव्यमय गीतिनाट्य की कोटि में रखी जा

सकती है^१ ।

भारतेन्दु जी ने इन नाटकों की तुलना अपने पिता बा० गिरिधर दास जी कृत नहुष नाटक से की और इसे हिन्दी का प्रथम नाटक घोषित किया । वे इसमें 'विशुद्ध नाटक रीति' पाते हैं^२ । पर क्या नहुष नाटक ब्रजभाषा नाटकों से बहुत भिन्न है ? अवश्य, इसमें पात्र-प्रवेश एवं प्रस्थान की क्रमिक व्यवस्था है । ऐसा तो आनन्द रघुनन्दन में भी है । ब्रजभाषा नाटक छन्द प्रधान हैं । यह भी छन्द प्रधान है क्योंकि गद्य तो कहीं कहीं भौंकी भर दिखाता है । ब्रजभाषा नाटकों में कवि स्वयं पात्र का परिचय देता है । ऐसा ही नहुष नाटक में भी हुआ है^३ । ब्रजभाषा नाटकों में कवि स्वयं वस्तुओं का वर्णन देता है । नहुष में भी ऐसा ही हुआ है^४ । यदि शुद्ध नाट्यशास्त्र की दृष्टि से नहुष की आलोचना करें तो दोष मिलते हैं । नाटक के नायकत्व का प्रश्न सामने है । क्या नहुष नायक बनने के योग्य है ? इसी प्रकार नाटक का अन्त भी राजा नहुष की दृष्टि से पूर्ण सुखान्त नहीं कहा जा सकता^५ । हमारे कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि नहुष नाटक नहीं है या सदोष है । नहीं, नाटक सुन्दर है किन्तु भारतेन्दु जी ने जो कसौटी बनाई है वह ब्रजभाषा नाटकों को पीतल सिद्ध करने में समर्थ नहीं है क्योंकि नहुष स्वयं ब्रजभाषा नाटकों की शैली ग्रहण किए है । अस्तु, भारतेन्दु जी ने ब्रजभाषा नाटकों को नाटक न मानने के तीन कारण दिए थे (१) रचना, काव्य ग्रंथों जैसी है (२) पात्र प्रवेश इत्यादि नाटकीय नियमों का पालन नहीं हुआ है और (३) ये नाटक छन्द प्रधान हैं । हम देखते हैं कि भावी आलोचकों ने पर्याय से इन्हीं को व्यक्त किया है ।

पं० रामचन्द्र शुक्ल—आचार्य प्रवर पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है “भारतेन्दु के पहले नाटक नाम से जो दो चार ग्रंथ ब्रजभाषा में लिखे गए थे उनमें महाराज विश्वनाथ सिंह के आनन्द रघुनन्दन को छोड़ कर और किसी में नाटकत्व न था ।^६ आचार्य शुक्ल आनन्द रघुनन्दन को नाटक मानते जिसे भारतेन्दु जी ने नहीं माना है । शेष अन्य नाटकों में 'नाटकत्व' का अभाव पाते हैं । इसी को भारतेन्दु जी ने अपने शब्दों में व्यक्त किया था कि

१. भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, प्र० सं०, पृ० ७६ ।

२. भारतेन्दु ग्रंथावली, प्र० सं०, पृ० ७५२ ।

३. देखिए खंड २ के अध्याय २ में नहुष नाटक ।

४. अंक तीन के छन्द ३१ से ३५ तक, अंक ६ के ३८ से ४६ छन्द तक ।

५. देखिए खंड दूसरे के अध्याय २ में नहुष नाटक ।

६. हिंदी साहित्य का इतिहास, २००६ संस्करण, पृ० ४५३ ।

रचना काव्य की भाँति है अर्थात् पात्र प्रवेशादि कुछ नहीं है, नाटकीय नियमों का पालन नहीं हुआ है।

डा० श्यामसुन्दर दास—डा० साहब इनको काव्य ही मानते हैं।^१ इसका उन्होंने कारण दिया है 'नाटक के नियमों का पालन नहीं हुआ है।' यह भारतेन्दु जी का ही तर्क है।

डा० लक्ष्मीसागर वाष्णीय—डा० वाष्णीय भी इनको नाटक नहीं मानते हैं। इसके लिए उन्होंने पाँच कारण दिए हैं।^२ (१) रचना काव्य की भाँति है, (२) पात्र प्रवेशादि नहीं हैं, (३) नाट्याभिनय का कोई स्थान नहीं, (४) चरित्र चित्रण नहीं, (५) कार्य व्यापार नहीं है। पहिले तीन तो भारतेन्दु जी द्वारा प्रतिपादित तर्क हैं, शेष दो नवीन कारण हैं। इन दोनों को सरल शब्दों में कह सकते हैं कि उनमें पात्र और कथानक नहीं हैं। किन्तु यह बात किसी भी आलोचक ने नहीं मानी है कि इन नाटकों में कथानक और पात्र नहीं हैं। समयसार और सभासार को छोड़ कर सब में एक शृङ्खलाबद्ध एवं गतिमान कथानक है। इन नाटकों में पात्र हैं। शकुन्तला, हनुमन्नाटक, मालती माधव, प्रबोध चन्द्रोदय तो मूल संस्कृत नाटकों के ही पात्रों एवं उनके चरित्रों को अपनाए हुए हैं। रामायण महानाटक, करुणाभरण, रामकरुणाकर में भी पात्र और चरित्र चित्रण है, यह इन नाटकों के प्रसंग में लिखा जा चुका है। हाँ, डाक्टर साहब का एक वाक्य विचारणीय है। वह है 'आधुनिक नाटकों की भाँति।' क्या प्राचीन नाटकों को आधुनिक नाटकों की कसौटी पर कसना उचित होगा? तब तो संस्कृत के भी नाटक दोषों से पूर्ण मिलेंगे।

१. "यो कहने को चाहे हिंदी में नेवाजकृत शकुन्तला, हृदयराम कृत हनुमन्नाटक या ब्रजवासीदास कृत प्रबोध चन्द्रोदय आदि कई सौ वर्ष पहले के बने हुए कुछ नाटक वर्तमान हों पर वास्तव में नाट्यकला की दृष्टि से वे नाटक नहीं कहे जा सकते क्योंकि उनमें नाटक के नियमों का पालन नहीं किया गया है और वे काव्य ही काव्य हैं।" रूपक रहस्य, च० सं०, पृ० ३८।

२. परन्तु नाटक की रीति के अनुसार उनको नाटक नाम से अभिहित नहीं किया जा सकता। वे या तो अनुवाद हैं या उनमें रामायण और महाभारत की कथाओं का पद्यात्मक वर्णन है। आधुनिक नाटकों की भाँति उनमें पात्र प्रवेशादि कुछ नहीं है, यद्यपि एक ओर पात्रों के नाम लिखे अवश्य मिल जाते हैं और न उनमें चरित्र चित्रण और कार्य-व्यापार ही मिलता है। उनमें नाट्याभिनय का कोई स्थान नहीं है और सबकी रचना काव्य की भाँति है। आधुनिक हिन्दी साहित्य (१८५०-१९००) संस्करण १९४८ का, पृ० २२५।

वास्तव में मैं डा० वाष्णेंय के प्रथम तीन तर्क ही विचारणीय हैं ।

डा० सोमनाथ—डा० सोमनाथ ने कुछ विस्तार से इन नाटकों पर विचार किया है । वे भी इन नाटकों को नाटक नहीं मानते । उनके दिये तर्क पाँच हैं । (१) नाटकीकरण कला का अभाव है । (२) छन्दोबद्ध हैं । (३) पात्रों के प्रवेश एवं प्रस्थान का संकेत नहीं । (४) अंक विभाजन और दृश्य-परिवर्तन नहीं । (५) कथावस्तु का नाटकीय विकास नहीं ।^१ प्रथम तीन तर्क भारतेन्दु जी के ही डा० सोमनाथ ने अपनाए हैं, शब्दावली परिवर्तित है । चौथे और पाँचवें तर्क विचारणीय हैं । क्या इन नाटकों में अंक विभाजन नहीं है ? ऐसा तो कोई भी नहीं कह सकता । हाँ, दृश्य परिवर्तन नहीं है । न दृश्य परिवर्तन की प्रणाली भारत में थी । आप कथावस्तु में नाटकीय विकास नहीं देखते । नाटकीय विकास से क्या अभिप्राय है, आपने यह स्पष्ट नहीं किया है । संधि-संध्यंग से अभिप्राय है या पश्चिमी विभाजन से, यह स्पष्ट नहीं होता । संभवतः डा० वाष्णेंय के 'कार्य-व्यापार के अभाव' को ही आपने इन शब्दों में प्रकट किया है । डा० सोमनाथ अन्त में निर्णय देते हैं कि अच्छा हो इन्हें प्रबन्ध काव्य माना जाय । यदि प्रबन्ध काव्य शब्द स्वीकृत नहीं है तो इन्हें 'ड्रामेटिक पोइट्री' वा 'नाटकीय काव्य' कहा जाय ।^२ डा० सोमनाथ इन नाटकों को डा० वाष्णेंय की भौति पश्चिमी कसौटी पर कस कर नाटक मानने के पक्ष में प्रतीत होते हैं । वे इन्हें 'नाटकीय काव्य' मानने को प्रस्तुत हैं । इस एक नये शब्द की आवश्यकता क्या है ? संस्कृत में पहिले से एक नाम उपस्थित है । वह है 'दृश्य काव्य ।' दृश्य काव्य और नाटकीय काव्य में क्या अंतर करेंगे ? फिर एक प्रश्न और भी उपस्थित हो जायगा । 'नाटकीय काव्य' से तात्पर्य है कि ये सब नाटक, काव्य हैं जिनकी शैली नाटकीय है । नाटकीय काव्य कहने से हम काव्य को एवं काव्यात्मक नाटक कहने से नाटक को प्रधानता देते हैं । रामचरित मानस को भी नाटकीय काव्य कह सकते हैं, क्योंकि उसकी शैली बड़ी नाटकीय है । पूरा 'मानस' सवादों में वर्णित है । नाटकीय व्यापार घटित होते हैं । चरित्र चित्रण पर ध्यान दिया गया है ।

डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल—डा० वीरेन्द्र कुमार शुक्ल ने अपने प्रबंध

१. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, पृ० ७ ।

२. ये रचनाएँ वास्तव में एक प्रकार के प्रबंधकाव्य हैं, अथवा अधिक से अधिक नाटकीय काव्य (ड्रामेटिक पोइट्री) है । चाहे जो भी हो यह निर्विवाद है कि हिन्दी के नाटक साहित्य में इन रचनाओं की गणना तब तक भारी भ्रम है जब तक हम इन्हें नाटकीय काव्य कह कर नाटक-साहित्य में सम्मिलित न कर लें । (हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, च० सं०, पृ० ६-७) ।

भारतेन्दु का नाट्य साहित्य में स्पष्टता से कुछ नहीं कहा है। उनके प्रबंध से यह पता नहीं चलता कि वे इन नाटकों के संबंध में क्या निर्णयित मत देते हैं ? एक स्थान पर वे कहते हैं “हिन्दी नाट्य साहित्य का उदय नाटकीय काव्य (ड्रामेटिक पोइट्री) से हुआ। प्रारम्भिक रचनाओं में से हनुमन्नाटक तथा समयसार आदि इसी कोटि की रचनायें हैं (पृ० २६)।” इससे स्पष्ट है कि वे ब्रजभाषा नाटकों को डा० सोमनाथ की भाँति नाटकीय काव्य मानने को प्रस्तुत हैं। पुनः करुणाभरण को ‘काव्यात्मक नाटक’ बताते हैं (पृ० ३१)। हनुमन्नाटक और करुणाभरण में शैली की दृष्टि से कौन सा भेद आ गया कि हनुमन्नाटक नाटकीय काव्य कहा जाय और करुणाभरण काव्यात्मक नाटक ? नाटकीय काव्य और काव्यात्मक नाटक में बड़ा अन्तर है। नाटकीय काव्य कह कर हम किसी पुस्तक को प्रधानतया काव्य मानते हैं जिसकी शैली नाटकीय है जैसे रामचरितमानस, गीत गोविन्द। इसके विपरीत काव्यात्मक नाटक कह कर हम पुस्तक को प्रधानतया नाटक मान रहे हैं जिसकी शैली काव्यात्मक है जैसे ब्रजभाषा के नाटक। दूसरे शब्दों में हम इनको इस रूप में पद्य प्रधान या पद्यात्मक नाटक कह सकते हैं। डा० वीरेन्द्रकुमार ने इन दोनों मतों के पक्ष में कोई तर्क नहीं दिया है।

पुनः वे इन नाटकों को ‘काव्य रूप में वर्णित वार्तालाप और संवादों का ही पुजीभूत साहित्य’ मानते हैं (पृ० ३०)। पता नहीं डा० वीरेन्द्रकुमार जी ने किस आधार पर ऐसा मत दिया है ? यदि कहीं ये नाटक ‘वार्तालाप और संवादों के पुंजीभूत साहित्य’ होते, तो भारतेन्दु जी से ले कर डा० सोमनाथ तक किसे नाटक न मानने का साहस होता ? इनके विरुद्ध यही तो सबसे बड़ा तर्क उपस्थित किया जाता है कि इनमें सपूर्णतया संवाद ही संवाद नहीं हैं, वरन् कवि स्वयं कथा कहता है और वर्णन देता है। इसी प्रकार आपका यह कथन कि ‘हिन्दी नाट्य साहित्यकारों ने संस्कृत नाट्य शास्त्र का पूर्णरूपेण अनुकरण किया है’ (पृ० ३४) सत्य से दूर हो जाता है। यदि संस्कृत के नाट्य शास्त्र का पूर्णरूपेण अनुकरण इनमें किया गया होता तो ये नाटक सबसे पहिले कहे गये होते। निष्कर्षतः डा० वीरेन्द्रकुमार जी द्वारा ब्रजभाषा नाटकों के संबंध में न कोई निश्चित मत प्राप्त होता है, न कोई तर्क।

बाबू ब्रजरत्नदास—बा० ब्रजरत्नदास जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक हिन्दी नाट्य साहित्य में ब्रजभाषा नाटकों पर सामूहिक रूप से कम विचार किया है, वरन् एक एक को ले कर उसका परिचय देते समय यह लिख दिया है कि इसे नाटक कहा जाय या नहीं। माधव विनोद को बाबू साहब उत्तम नाटक मानते हैं^१। हनुमन्नाटक को थोड़ा बहुत नाटक मानने को प्रस्तुत

हैं^१। १६वीं शताब्दी के ब्रजभाषा के नाटकों को भी आंशिक रूप से नाटक मान लेते हैं। आनन्द रघुनन्दन को भी भारतेन्दुजी के कथनानुसार हिन्दी का प्रथम नाटक मानते हैं^२। किन्तु नहुष नाटक में जब बाबू साहब सामूहिक रूप से विचार करते हैं तो यही निर्णय देते हैं कि ये रचनाएँ नाटक नहीं कही जा सकतीं वरन् काव्य हैं। कारण देते हैं कि इनमें 'नाट्यकला' का अभाव है^३। यह तर्क भी नया नहीं है।

डा० दशरथ ओझा—ब्रजभाषा नाटकों को ब्रजरत्नदास जी ने आंशिक रूप से नाटक स्वीकार किया है। इन्हें संपूर्ण रूप से नाटक स्वीकार करने वाले हैं डा० दशरथ ओझा^४। आपने कुछ विस्तार से ब्रजभाषा नाटकों के संबंध में विचार किया है, और आलोचकों के आक्षेपों का उत्तर भी दिया है। डा० ओझा ने पहली बार संस्कृत या पश्चिमी नाटकों का मोह छोड़ कर शुद्ध हिन्दी की दृष्टि से इनपर विचार किया है। डा० ओझा ने तार्किक शैली से आलोचकों को उत्तर तो दिया है किन्तु ब्रजभाषा नाटकों में नाटकत्व स्थापित नहीं किया है। उनका क्षेत्र भी विस्तृत था।

निष्कर्ष रूप में आलोचकों ने पाँच कारणों से इन नाटकों को नाटक नहीं माना है—

• (१) कथानक में गतिशीलता नहीं।

१. वही, पृ० ५८।

२. आनन्द रघुनन्दन को हिन्दी का प्रथम नाटक तो क्या, भारतेन्दु जी तो नाटक भी मानने को प्रस्तुत नहीं हैं (भारतेन्दु ग्रंथावली, प्र० सं०, पृ० ७५२)। वास्तव में बाबू साहब पांडुलिपि में पं० रामचंद्र शुक्ल के स्थान पर भारतेन्दु जी लिख गए हैं। उन्होंने अपने एक पत्र में यह स्वीकार किया है कि पं० रामचंद्र शुक्ल ने ही इस नाटक को हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। आश्चर्य की बात है कि भारतेन्दु जी के नाटकों पर प्रबंध लिखने वाले डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल ने भी अपने 'भारतेन्दु का नाट्यसाहित्य' प्रबंध में यही भूल की है और लिखा है 'महाराज विश्वनाथ सिंह जी के आनन्द रघुनन्दन नाटक को भारतेन्दु जी ने हिन्दी नाट्य साहित्य के सर्वप्रथम नाटक की मान्यता दी है (भारतेन्दु का नाट्य साहित्य प्र० सं०, पृ० ३१)।

३. बा० ब्रजरत्नदास द्वारा संपादित नहुष नाटक की भूमिका, पृ० ३।

४. हमारा यह मत है कि हिन्दी के प्रथम उत्थान को कृतियाँ जिनका उल्लेख किया गया है, हिन्दी के मौलिक नाटक हैं—हिन्दी के प्रारंभिक साहित्यिक नाटक मौलिक हैं और नाटक की कोटि में आते हैं (हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृ० १७०-७२)।

- (२) चरित्रचित्रण नहीं ।
- (३) ये छन्द प्रधान हैं ।
- (४) इनकी शैली प्रबन्ध काव्यात्मक है ।
- (५) नाटकीयता का अभाव है ।

कथानक

डा० वाष्ण्य और डा० सोमनाथ इनके कथानकों में गति या विकास का अभाव मानते हैं । क्या इन नाटकों की कथा में विकास का अभाव है ? नाटकों की मूलभित्ति कथानक है । यदि किसी नाटक में कथाओं को शृंखलाबद्ध कर कथानक का निर्माण नहीं किया गया है तो वह नाटक नहीं कहला सकता । पूर्व और पश्चिम दोनों में कथानक को नाटक का प्रधान और अनिवार्य तत्त्व माना गया है । भरत मुनि ने इसे नाटक का शरीर माना है ।^१ धनंजय ने भी रूपकों के भेदक—वस्तु नेता और रस—में से 'वस्तु' को प्रथम स्थान दिया है ।^२ निकल का मत है कि नाटक में सबसे महत्त्वपूर्ण अंग घटनाओं का सामंजस्य या कथानक ही है ।^३ प्रो० मिलेट एव प्रो० बैन्टली भी इसी मत के हैं और कहते हैं कि कथानक वैसे तो साहित्य की अन्य विधाओं में भी होगा किन्तु नाटक के लिए यह अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि नाटक किसी कार्य की ही तो अनुकृति है ।^४ अरस्तू ने भी कथानक को दुखान्तकी की आत्मा माना है । सिद्ध हुआ कि कथानक से रहित नाटक, नाटक नहीं कहला सकता ।

ब्रजभाषा नाटकों में से समयसार और सभासार इसीलिए नाटक नहीं हैं । शेष सभी मौलिक और अनूदित नाटकों में शृंखलित कथानक हैं । करुणाकर के परिचय में हम इसके कथानक को संक्षेप में पीछे दे चुके हैं । करुणाभरण के कथानक का विकास देखिए—

इस नाटक का कथानक उत्सुकतापूर्ण और गतिमान है । केवल

१. इतिवृत्तं तु काव्यस्य शरीरं परिकीर्तितम् । (१६-१) ।

२. वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः (दशरूपक १-११) ।

• 3. Of all these parts the most important is the combination of incidents. 'Nicoll's Theory of Drama p. 71.

4. Plot may be said to be of more importance to the drama than to any other literary form, since, drama is, basically and fundamentally, the representation of action."

आधिकारिक कथा है। कोई प्रासंगिक कथा नहीं है। कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के अवसर पर ब्रजवासी आए, उधर यादव भी। कृष्ण भी आन-बान के साथ पधारे हैं।

अंक १—एक ब्रज-गोप मेला देखने गया, चौराहे पर खड़ा इधर-उधर देख रहा था। उसका वेश बड़ा आकर्षक था—

सीस ँँठवा फेंटा बोंधे। हाथ लकुटिया कामरि कोंधे।

तन बनधात औतनियों पहिरे। गुंजमाल पहिरे रंग गहरे॥

नागरिक यादव भी उस ग्रामीण की आकर्षक वेशभूषा से आकर्षित हुआ और बोला—

कहो कहाँ ते आपन आए। छैल छबीले बने बनाए॥

जवाब दे प्रत्युत्तर में ग्वाले ने भी यादव से पूछा—तुम कौन हो? कहाँ से आए हो? इतनी बड़ी सेना जो साथ है, यह किसकी है? यादव ने कहा—हम द्वारिकानाथ श्रीकृष्ण के साथ आए हैं। फिर क्या था! ब्रज-गोप ने आव देखा न ताव, वह दौड़ ही तो पड़ा।

अंक २—ग्वाले ने आ कर अन्य ब्रजवासियों को यह शुभ संवाद सुनाया। इस अंक में बड़े सुन्दर चित्र हैं सामूहिक एवं एकाकी दशाओं के। ग्वाले कृष्ण से मिलने की तैयारी कर रहे हैं। आतुरता एवं हड़बड़ाहट में क्या कर बैठते हैं इसका नाटककार ने विनोदात्मक वर्णन किया है—

फूलनि पट पहरत नहि बने। इक इक सूथन द्वै द्वै जने॥

इक इक पागन द्वै द्वै बोंधे॥

गोपियों भी तन मन की सुध भूल, मिलने के लिए आतुरता से सज रही हैं। प्रिय-मिलन की आतुरता वस्त्राभूषण तक से नहीं सजने देती।

जावक नैननि में दियो अंजन पगन लगाइ।

नूपुर की माला करी माला पगनि सजाइ॥

गायों की भी क्या दशा है, इसका चित्रण करना भी कवि नहीं भूला है।

अंक ३—दृश्य बदला। यादव शिविर सामने आता है। कृष्ण ने भी नन्द यशोदा का आगमन सुना। प्रेमातिरेक से बेसुध हो गए। जन्मभूमि का स्मरण हो आया। अश्रुवर्षा ने शरीर एवं स्थान दोनों को तर कर दिया। रानियाँ दौड़ी आईं। रुक्मिणी बोली—धन्य भाग, उन ब्रजवासियों के दर्शन मिलेंगे। सत्यभामा ने व्यंगवाण ताना—अच्छा है, रास मचेगा उन गँवारों के साथ। तब 'गोपाल' रूप फवेगा।

अंक ४—दृश्य परिवर्तन हुआ। कृष्ण पैदल दौड़ नन्द यशोदा से मिले। गोपियों और गायों से भेंट की। इस मिलन का बड़ा ही हृदयहारी चित्र खींचा गया है।

कोउ घरी कोउ परी कमान ।

ठेलि पेलि इक हरि लें आवै । परसत पग परम सुख पावै ।

इक रही दूर कहै दिषाओ । हा हा री दग प्यास बुझाओ ।

इक कहै हमहिं भुण्ड मिल जैहैं । दुरि मुरि पछुरि पाइ गहि लैहैं ।

इक है ठाढ़ी घूँघटवारी । सब तैं विकल लाज की मारी ॥

मन मन दुषित उसासैं लेही । मन को भेदु न काहू देही ॥

छोटी कहै हमें उचकावहु ।...

राधा-कृष्ण मिलन इस सोने में सुगन्ध है ।

अंक ५—रक्मिणी भवन में राधा हैं । सत्यभामा बोली—तनिक अपनी चहेती के दर्शन तो कराओ । तनिक उसका संसारश्रेष्ठ रूप तो निहारें । कृष्ण ने राधा का घूँघट खुलवाया । सब रानियों की आँखें चौंधिया गईं । बिजली कौंध गई । सब सहसा बोल उठीं—धन्य-धन्य । कृष्ण ने राधा की प्रशंसा की । सत्यभामा कुढ़ गई । रक्मिणी ने राधा को स्नान करके सजाया ।

इस अंक में दूसरा दृश्य भी है । रात्रि में रक्मिणी कृष्ण के पैर पलोट रही है । कृष्ण बोले—राधा को बिना दूध पिए नींद नहीं आती है, दूध दे दिया है ना ? रक्मिणी गर्म दूध दे आई । आ कर पुनः पैर पलोटने लगी । सहसा 'ऊँह' कर कृष्ण ने पैर खींच लिया । रक्मिणी ने देखा, पैर पर जले का चिह्न था । पूछा—यह क्या ? कृष्ण ने कहा—गर्म दूध राधा की छाती पर गिर पड़ा था, जहाँ सदा मेरे पैर रहते हैं । अतः पैर जल गया । राधा-कृष्ण का मिलन भी इसी रात्रि में हुआ ।

अंक ६—सब से सुन्दर अंक है । देवकी ने कृष्ण से कहा—द्वारका वापिस चलो । कृष्ण ने ब्रजवासियों को समझाया कि आप भी वापिस जावें । नन्द यशोदा बहुत बिलखाए । कोई वापिस जाने को प्रस्तुत न था । कृष्ण ने अपनी माया से ब्रजवासियों में उच्चाटन फैला दिया । तब वे तैयार हुए । राधा अब भी जाने को तैयार न थी । जब कृष्ण ने बहुत अनुरोध किया तो सरोवर में कूद गई । कृष्ण ने वचन दिया कि तेरे साथ नित्य विहार करूँगा, तब बाहर आई । रक्मिणी दुखी मन से वापिस गई । राधा, कृष्ण को ब्रज ले गई जहाँ वे दैवी रूप से सदा विहार करते हैं ।

अंक ७—इसमें 'अद्वैतवाद' की स्थापना की गई है कि कृष्ण का सब में एक ही रूप है । राधा रक्मिणी सब उसी के रूप हैं । वास्तव में नाटक का अन्त छूटे अंक पर ही हो जाता है ।

रामायण नाटक और आनन्द रघुनन्दन में भी कथाओं की शृङ्खला मली भौंति जोड़ी गई है, केवल दृश्य बड़ी शीघ्रता से बदलते हैं । कभी कभी तो एक पृष्ठ पर कई दृश्य आ जाते हैं । इसका स्पष्टीकरण हो जाएगा

यदि हम रामलीला को ध्यान में रख कर इन दोनों नाटकों की परीक्षा करें। नाटककार अभिनय को ध्यान में रख कर नाटक के कथानक को आगे बढ़ा रहा है इसका प्रमाण इसी से मिल जाता है कि रामायण महानाटक-कार सीता की खोज में हनुमान जी को अकेले भेजता है। वह ऐसा इसीलिए करता है कि मंच पर भीड़ न हो। लंका-दाह का वर्णन सूचनात्मक रूप में पुरवासी करते हैं। सेतु निर्माण भी दृश्य रूप में चित्रित नहीं है वरन् राम-लक्ष्मण के संवाद के रूप में वर्णित है।

अनूदित नाटकों में तो मूल नाटकों की ही कथा है और अधिकांशतः कथा क्रम भी वही है, केवल नेवाज कविकृत शकुंतला नाटक में वह परिवर्तित है। वहाँ भी कथा और कथा का विकास वही है जो मूल नाटक में है। फलतः यह कहना कि इन नाटकों में कथानक-विकास नहीं, उचित नहीं है।

चरित्र चित्रण

नाटक में कथानक के साथ पात्रों पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। तभी तो अधिकांश नाटकों के नाम नायक या नायिकाओं पर रखे गए हैं। ब्रजभाषा नाटकों में भी हनुमन्नाटक, हनुमान नाटक, शकुंतला, राम-करुणाकर, मालतीमाधव, नाम इसी आधार पर रखे गए हैं। इस काल में दो प्रकार के नाटक मिलते हैं, अनूदित और मौलिक। अनूदित नाटकों में तो नाटककारों ने मूल के चरित्रों की रक्षा की है। हनुमन्नाटक के हनुमान जी वे ही हैं जो मूल नाटकों के हैं। अनूदित नाटकों की शकुंतला मूल से किसी प्रकार से भी भिन्न नहीं है। अनूदित प्रबोध चन्द्रोदयो के प्रतीकवादी पात्रों का चरित्र मूल के अनुरूप ही है। मौलिक नाटकों में भी नाटककार चरित्रों की ओर ध्यान दे रहा है, यह तथ्य इन नाटकों से स्पष्ट हो जाता है। पीछे करुणाभरण एवं रामकरुणाकर के पात्रों पर लिखते समय इसकी ओर संकेत किया जा चुका है। रामायण महानाटक में भी रामायण एवं राम-चरितमानस के पात्रों के चरित्र की रक्षा की गई है। साथ ही नाटककार अपनी ओर से चरित्र पर विशेष प्रकाश फेंकता है और पात्रों में सजीवता लाने का प्रयास भी करता है। रामायण महानाटक का रावण अशोक वाटिका में जा कर सीता से प्रणय भीख माँगता है, उसके रूप-गुण की प्रशंसा करता है और सीता के पैर पकड़ता है (अंक ५)। हनुमान जी उत्तेजना में आ कर लंका जाने के लिये चल तो दिये किन्तु जब सागर का महाभीषण रूप देखा तो तट पर खड़े हो कर सोचने लगे अब क्या करूँ। हम समुद्र का भेद नहीं जानते थे। बस उत्तेजना में आ कर राम की आज्ञा मान बैठे। तब कुछ

विचार नहीं किया ।^१ सभासार नाटक को छोड़ कर प्रायः अन्य सभी मौलिक नाटकों में पात्रों के चरित्र को सामने रक्खा गया है । अतः हम कह सकते हैं कि ब्रजभाषा नाटकों में चरित्र चित्रण है ।

छन्दबद्धता

प्रायः सभी आलोचकों का आक्षेप है कि ब्रजभाषा नाटक छन्द-प्रधान या छन्दमय हैं । अतः ये नाटक नहीं माने जा सकते । किन्तु क्या छन्द-बद्ध होने से कोई नाटक, नाटक नहीं रह जाता ? यदि ऐसा कोई नियम बना दिया जाय तो यूनान का भव्य प्रासाद चकनाचूर हो जायगा, यूनान के अनेक संसार-प्रसिद्ध नाटक, नाटकों की श्रेणी से निष्कासित हो कर दर-दर के भिखारी बन जायेंगे । यूरिपिडीज के प्रायः सभी नाटक हैलेन, टिटोजन आफ डेम्ज़, हेक्यूब, इलैक्ट्रा और स्टीज इत्यादि पद्य प्रधान ही नहीं, केवल पद्यमय नाटक हैं । वे छन्दबद्ध होते हुए भी नाटक कहलाते हैं । ऐस्कुलस और सोफोक्लीज के नाटक भी पद्यबद्ध हैं । छन्द को नाटक से निष्कासित करने वाले आलोचकों को प्रो० मिलट और प्रो० बेंटली कहते हैं, 'अच्छा, ऐस्कुलस, सोफोक्लीज या यूरिपिडीज के नाटक पढ़ने या देखने जा रहे हो । तनिक तैयारी कर लो । नहीं तो निराश लौटना पड़ेगा । वहाँ सरस कविता मिलेगी, हाँ, वास्तविकता के दर्शन न होंगे । वहाँ तो कर्णमधुर संगीत ही संगीत सुनाई पड़ेगा । असाधारण कार्यों को देख कर मत घबड़ाना । भइया नाटक के लिए प्रस्तुत हो ? तो जाओ । सोच लो कि सुन्दर कविता सुनने जा रहे हैं ।'^२ यही हिन्दी के उस

-
१. कहाँ अवध कहाँ दशरथ राजा । कहाँ कैकेई कीन्ह अकाजा ॥
 ओका कीन्ह राम वन आई । केहि कारन कहँ त्रिया गँवाई ॥
 रावन कवन कीन्ह ऐइ काजा । भयउ चोर लंका कर राजा ॥
 हम समुद्र कर मरम न जाना । राम क पान लीन्ह अग्याना ॥
 तब ऐह पंथ हमहि नहिं सूझा । अब विस्माइ करै नहिं बूझा ॥
 (अंक ५)

2. "The modern playgoer who reads a play of Aeschylus or Sophocles or Euripides with no preparation is likely to be disappointed. He will surely recognize fine poetry, but the play is apt to seem unreal, full of irrelevant lyrics, of impossible action, and altogether much more a series of poems than a play."

The Art of the Drama by Fred B. Millet and Gerald Eades Bentley, 1935, p. 18.

पाठक को भी कहना पड़ेगा जो इन नाटकों को पढ़ने जा रहा है। 'श्रीमान् , तनिक तैयार हो कर जाइए। वहाँ आपको सुमधुर स्वर मिलेगा, कानों को सुन्दर स्वाद देने वाली कविता दीख पड़ेगी, हाँ कथानक में शायद कमी दीख पड़े। तैयार ही रहिए, नाटक से अधिक कविता पढ़ने को मिलेगी।' क्या यूनान के जगत्प्रसिद्ध नाटककारों के नाटक छन्दबद्ध होने से नाटक नहीं कहलायेंगे ? यदि छन्द प्रधानता के आधार पर नाटकों को वीरान जंगल में छोड़ना है तब तो अंग्रेजी साहित्य के नाटकों को 'नाटक' नाम छोड़ना पड़ेगा जो सत्रहवीं से उन्नीसवीं सदी तक में लिखे गए हैं।^१ कई शेक्सपियर के नाटक भी बेचारे इधर-उधर छिपने का मार्ग खोजने लगेंगे। एलिजाबेथेन समय के दर्शक नाटक में कविता चाहते थे। फलतः उन्हें कविता मिली।^२ कवितामय नाटकों से बहुत से पश्चिमी आलोचक प्रभावित हुए और वे कविता-नाटकों को श्रेष्ठ मानने लगे। शैलीगल का मत है कि परीक्षा केवल दो दृष्टियों से की जाय—(१) यह कितना कवितामय है और (२) यह कितना अभिनेय है।^३ श्री ग्रेनविल वार्कर का मत है कि नाटक में कविता की अत्यन्त आवश्यकता है। कवि के पास एक बड़ा साधन है कविता की भाषा, जो श्रोताओं के मन को मोड़ देती है और तुक और लय के द्वारा श्रोताओं को आनन्द देती है। उसका तो मत है कि कविता के द्वारा ही पात्रों में वास्तविकता आती है। वह कहता है कि गद्य की बौद्धिकता पर्याप्त नहीं है।^४ श्री ऐवेर क्रोम्बी ने बड़े जोरो से पद्यबद्ध नाटकों का पक्ष लिया। उन्होंने पद्यबद्ध नाटकों का समर्थन करते हुए कहा कि कविताबद्ध संवाद वाला नाटक सदा ही स्वाभाविकता से भरा है।^५ पद्य-गद्य नाटकों की त्रुटियाँ और अभाव बताते हुए लेखक कहता है

१. हिन्दी नाटक, उद्भव और विकास, ले० डा० दशरथ ओझा पृ० १६७।

२. दि आर्ट ऑफ ड्रामा, १६३५, पृ० ५१।

३. निकल्स थियरी ऑफ ड्रामा पृ० ६४।

४. On Poetry in Drama by Harley.

—Granville Barker, p. 34.

५. In perfectly successful poetic play the whole of the talking can be done naturally in poetry, and we must always feel it to be natural (p. 255).... Plainly this poetic method of imitation, of going at once to the core of the requirement, is a much more effective and direct, method of imitation than the prose method of

कि कवितामय नाटक अनुकृति का प्रभावशाली और प्रत्यक्ष साधन है। अतः यह गद्य नाटक से श्रेष्ठ है। यदि भारतेन्दु जी एवं अन्य आलोचकों के कथनानुसार पद्यबद्ध होने से ही नाटक, नाटक न कहा जाय तो संसार का अमूल्य नाटक-साहित्य, नाटक न कहला पाएगा।

भारतेन्दु युग के अनेक नाटककारों में छन्द की प्रधानता है। स्वयं भारतेन्दु जी के नाटक पद्य और गीतों से इतने बोधिल हैं कि डा० वीरेन्द्र कुमार शुक्ल इन्हें नाटक न मान केवल काव्यमय गीति नाट्य ही मानते हैं।^१ भारतेन्दु काल के ऐसे भी नाटक हैं जिनमें गद्य कहीं-कहीं एकाध बार भाँकी भर दे देता है जैसे श्री राजेन्द्र सिंह कृत प्रेम मंजरी नाटक में केवल अन्त में बहुत थोड़ा सा गद्य है। द्विज कृष्णदत्त कृत युगलविहार में गद्य नहीं है। १८५६ ई० में लिखे नहुष नाटक में जिसे भारतेन्दु जी ने हिन्दी का प्रथम नाटक माना है, गद्य नाममात्र को है। गद्य के दो-चार शब्द कहीं-कहीं ऑल-मिचौनी सी खेलते हैं। भारतेन्दु युग 'गद्य-युग' है। जब उसमें पद्य का इतना मोह है, तब उस युग के लिए क्या कहा जाय जो पद्य-युग था।

इन नाटकों में पद्य की प्रधानता का एक और भी कारण था। संस्कृत में 'नाटक' काव्य के अन्तर्गत स्वीकृत किया गया है। भरतमुनि ने नाट्य-शास्त्र में पद्य-प्रयोग के विषय में विस्तार से विचार किया है।^२ संस्कृत के सभी नाटकों में कविता के दर्शन अवश्य होते हैं। कालिदास के नाटकों का रस, कविता द्वारा बहा है और वे कविताएँ छन्दबद्ध हैं। भवभूति ने तो छन्दबद्ध कविता की रसगंगा बहाई है। उत्तररामचरित का दूसरा अंक सुन्दर छन्दबद्ध कविताओं का भंडार है। यही हाल छठे अंक का है। गद्य को भी उचित सिंहासन भवभूति तक दिया गया था। किन्तु भवभूति के बाद तो पद्य का पलड़ा बहुत नीचे झुक गया। पूर्व भारतेन्दु काल के हिन्दी नाटकों का सम्बन्ध संस्कृत के उत्तर-काल से है। वे उत्तर काल से प्रभावित हैं और जुड़े हैं। इन नाटककारों ने संस्कृत के उत्तरकालीन प्रभावों और शैलियों को अपनाया। स्वाभाविक भी था। इन व्रजभाषा नाटककारों के निकट संस्कृत का उत्तरकाल ही था। ८वीं शताब्दी में लिखे वेणीसंहार में पद्यों का बाहुल्य

imitating the sensible and reasonable exterior of life (262).’ An essay named ‘The Function of Poetry in the Drama by Lascelles Abercrombie’ quoted from English Critical Essays’ selected by Phylles M. Jones, p.252 to 271.

१. भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, प्र० सं०, पृ० ७६।

२. नाट्य-शास्त्र, अध्याय १४-१५ (निर्याय सागर प्रकाशन)।

है।^१ हनुमन्नाटक में भी पद्य सिंहासनासीन है। गद्य तो मुँह छिपा कर दर्शन दे जाता है और पुनः भट्ट नेपथ्य में चला जाता है। पहिले अंक में तो गद्य की दो-चार पंक्तियाँ ही हैं। नवीं सदी में मुरारी द्वारा लिखे नाटक अनर्घराघव में पद्यवद्धता का जोर है। इसमें ५६७ कविताएँ हैं। कवि स्वयं इसे काव्य कह कर प्रसन्नता प्रकट करता है।^२ ६-१०वीं शताब्दी^३ में राजशेखर द्वारा लिखित 'कर्पूरमंजरी' के ४ दृश्यों में १४२ छन्द हैं। द्वितीय दृश्य (जवनिकान्तर) में दासी विचक्षणा भी वही छन्द प्रयुक्त करती है जो छन्द राजा ने पढ़ा है, और वहाँ प्रतिहारी भी कवि है। १५वीं शताब्दी में लिखे जयदेव कृत 'प्रसन्नराघव' नाटक में ३६२ छन्द हैं। चौथे अंक में तो गद्य को स्थान ही नहीं मिला है। राम-परशुराम-लक्ष्मण संवाद ४८ पद्यों में है। १७वीं शताब्दी में जगज्योतिर्मल (१६१७-३३) द्वारा निर्मित हरगौरी-विवाह एक कविता नाटक ही है।^४ यहीं हमारा ब्रजभाषा नाटक काल आरम्भ होता है। स्वभावतः उसको परम्परा में छन्दों से बोझिल नाटक मिले थे। उस काल में पद्य को प्रभुत्व प्राप्त था ही। बँगला के आरम्भिक नाटक भी छन्दबद्ध थे। जात्रा नाटक, पद्य और गीतबद्ध ही थे। १७६५ में लिखित 'कलिराजार जात्रा' केवल पद्यबद्ध नाटक था जो खेला गया था।^५ भारतचन्द्र कृत विद्यासुन्दर (१८३३) नाटक केवल पद्यबद्ध था।^६ बँगला का प्रथम प्रेम नाटक (लेखक वा० पंचानन बनर्जी) काव्य ही है। इसमें संवाद भी नहीं हैं।^७ मराठी का आरम्भिक नाटक साहित्य भी छन्दप्रधान नाटको से युक्त है। श्री भावे के नाटकों में पद्यों की अधिकता थी।^८ किलोस्कर के नाटक तो संगीत नाटक ही थे।^९

१. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा—ले० पं० चन्द्रशेखर, तृ० सं० १।

२. ड्रामा इन संस्कृत लिटरेचर—ले० जागीरदार, १६४७, पृ० १५१।

३. कीथकृत संस्कृत ड्रामा, पृ० २३३ एवं कर्पूर मंजरी (निर्णय सागर बम्बई) की भूमिका पृ० ५।

४. कीथकृत संस्कृत ड्रामा, १६२४, पृ० २४७।

५. दि इंडियन स्टेज वाल्यू० २—ले० एच० एन० दासगुप्ता, पृ० ६।

६. वही, पृ० ७।

७. वही, पृ० ७।

८. वही, पृ० १६६, वाल्यू० ३।

९. वही, पृ० २६८।

प्रबंध काव्यत्व

ब्रजभाषा नाटकों के संबंध में आलोचकों की सबसे प्रमुख और महत्त्वपूर्ण आपत्ति है कि इन नाटकों की शैली नाटकीय नहीं है वरन् काव्यात्मक है और ये प्रबंध काव्य ही हैं। प्रबंध काव्य की भाँति इनमें भी कवि स्वयं कथा कहता है और वर्णन देता है। फिर ये नाटक कैसे कहे जायँ? दूसरे शब्दों में कहा जाएगा कि इन नाटकों के रचयिता प्रबंधकाव्य और नाटक का भेद नहीं जानते थे। उन्होंने लिखे तो प्रबंध काव्य या काव्य और उनका नाम दे दिया 'नाटक'। इसका अर्थ यही होगा कि ब्रजभाषा नाटकों के रचयिता बुद्धिहीन थे। किन्तु क्या ऐसी ही बात है? क्या ये नाटककार प्रबंध काव्य और नाटक का अंतर नहीं समझते थे? ऐसी बात नहीं है। वरन् ये नाटककार जब नाटक रच रहे थे या अनुवाद कर रहे थे तो जानते थे कि हम नाटक रच रहे हैं। उन्होंने संस्कृत नाटक पढ़े थे और उनकी शैली को जानते थे। संस्कृत नाट्यशास्त्र से भी परिचित थे। 'गणेश' कवि ने काव्यशास्त्र का विशाल ग्रन्थ साहित्य सागर बनाया है जिसमें रस, अलंकार, दोष इत्यादि सभी का विवेचन है। साथ ही दशरूपक नामक हिन्दी का प्रथम नाट्यशास्त्र भी सम्मिलित है। यह लक्षण ग्रन्थ धनंजय के दशरूपक, साहित्य-दर्पण और भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के आधार पर लिखा गया है। निश्चय ही गणेश ने संस्कृत के अनेक नाटक भी पढ़े थे। उनका प्रद्युम्न विजय नाटक संस्कृत के प्रद्युम्न विजय को भी सामने रखे हुए था। तब भी गणेश ने प्रद्युम्न विजय को ब्रजभाषा परम्परा की काव्यात्मक शैली पर लिखा है। उसने हनुमत पचीसी इत्यादि कविता ग्रन्थ भी रचे थे। क्यों वह एक को नाटक नाम देता है और एक को नहीं जब कि दोनों काव्यात्मक ग्रन्थ हैं। उदय कवि ने दो नाटक (राम करुणाकर और हनुमान नाटक), दो लीलाएँ (अहिरावण लीला और जोग लीला), एवं दो अन्य ग्रन्थ रसचन्द्रोदय और विनोद चन्द्रिका लिखे। निश्चय ही रस चन्द्रोदय का लिखने वाला कवीन्द्र नाटक और काव्य में अन्तर समझता था। उसने अटकलपच्चू ही किसी का नाम नाटक, किसी का लीला और किसी का काव्य नहीं रख दिया है। आचार्य सोमनाथ रीतिकाल के सुप्रसिद्ध आचार्य और कवि थे।^१ आचार्य शुक्ल जी इनको रीतिकालीन आचार्यों में प्रमुख स्थान देते हैं। और इनके काव्य शास्त्र संबंधी ग्रंथ रस पीयूष निधि की भूरि-

१. ब्रजभाषा साहित्य का नायिका-भेद—ले० प्रभुदयाल मीतल, प्र० सं०, पृ० १२१।

भूरि प्रशंसा करते हैं।^१ यह दशार्ग काव्य का प्रसिद्ध ग्रंथ है। ऐसै काव्य शास्त्र के मर्मज्ञ से हम आशा करेंगे कि वह काव्य और नाटक के अन्तर को अवश्य जानता होगा। आचार्य सोमनाथ ने माधव विनोद नाटक लिखा। यह मालती माधव का काव्यात्मक अनुवाद है। इसकी शैली भी वही है जो अन्य ब्रजभाषा नाटकों की है अर्थात् प्रबन्धात्मक शैली है। सोमनाथ जी ने अन्य काव्य ग्रन्थ भी लिखे हैं जिनमें से कुछ हैं कृष्णलीलावती, पंचाध्यायी, सुजान विलास। सुजान विलास प्रबन्ध काव्य है। क्या कारण है कि आचार्य सोमनाथ एक को नाटक नाम देते हैं और दूसरे को नहीं, जब दोनों प्रबन्ध काव्य जैसे हैं। निश्चय ही उनकी धारणा में प्रबन्ध काव्य एवं नाटक में भिन्नता है। हृदयराम पंजाबी ने एक हनुमन्नाटक लिखा। इनके दो अन्य ग्रंथ हैं सुदामा चरित्र^२ और रुक्मणी मंगल।^३ सुदामा चरित्र और रुक्मणी मंगल को कवि नाटक नहीं कहता जब कि हनुमन्नाटक को कहता है। दोनों में ऊपर से देखने पर शैली-भेद नहीं प्रतीत होता।

इन उदाहरणों से सिद्ध है कि ब्रजभाषा नाटककार जानबूझ कर ही अपनी किन्हीं कृतियों को नाटक नाम देते हैं। दूसरे शब्दों में हम कहेंगे कि प्रबन्ध काव्य एवं काव्य नाटक में कुछ अन्तर अवश्य है। प्रबन्ध काव्य और काव्य नाटकों में भाषा और शैली का अन्तर होता है। शैली के ही कारण भाषा में भी अन्तर करना पड़ता है, और वर्णन में भी।

भाषा भेद

रस नाटक का विषय था जिसे बाद में आचार्यों ने काव्य में भी प्रमुख स्थान दिया। दूसरी ओर नाट्यशास्त्र में अलंकारों को प्रमुख स्थान नहीं दिया गया था, हाँ अलंकारों का वर्णन अवश्य हुआ था। बाद में भामह, दंडी, उद्भट आदि आचार्यों ने काव्य में अलंकारों को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आसन दिया। काव्य अनुशीलन की वस्तु है और नाटक देखने की। विनय पत्रिका का बारंबार अनुशीलन किया जाता है और बारंबार नवीन तथ्य हाथ आते हैं। इसका कारण है कि कवि अपने भावों और विचारों को एक विशेष भाषा द्वारा व्यक्त करता है। एक प्रसिद्ध आलोचक का कथन है कि काव्य

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८४।

२. यह हस्तलेख पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर में था।

३. यह डी० ए० बी० कालेज लाहौर के खोज विभाग में अपूर्ण रूप में था। शत हुआ कि अन्य पुस्तकों के साथ यह भी भारत आ गया है, और वैदिक संस्थान, होशियारपुर, में सुरक्षित है।

तो मोती है जो समुद्र में गहरे पैठने पर प्राप्त होता है। बिहारीलाल का भी यही मत है—

तंत्री नाद कवित्त रस सरस राग रतिरंग

अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग ॥

इसका कारण भी है कि कवि अपनी बात सीधी तरह एक दम खोल कर नहीं कह देता। साधारण व्यक्ति गंगा तट पर खड़े पेड़ को देख कर कहेगा—सामने पेड़ खड़ा है, कवि कहेगा—“आगे विलसत तरुवर पावन।” इस कहने की वक्रता में ही काव्य का आनन्द है। वक्रता, अलंकारों से ही प्राप्त होती है। गुण रीति इत्यादि भी इस वक्रता को बढ़ाते हैं। इस विवेचन से स्पष्ट है कि कवि का प्रयास यह होता है कि पाठक मुझे सहसा न पकड़ ले^१। पाठक कुछ प्रयास करके मेरे पास पहुँचे। फलतः वह भाषा में अलंकरण करता है, वक्रता लाता है, और लक्षणा व्यञ्जना का अवगुण्ठन डालता है। पाठक को भी विचार करना पड़ता है, कोश से सहायता लेनी पड़ती है, बार बार अनुशीलन करना पड़ता है, ध्यान धरना पड़ता है और एकाग्रता का आह्वान करना पड़ता है। कवि की भाषा नितान्त सुबोध नहीं होती।

उधर नाटककार जानता है कि कोई भी दर्शक कोश ले कर नाट्यशाला में न आवेगा। यदि कोई नाटककार ऐसी क्लिष्ट भाषा का प्रयोग कर दे जो अलंकरण के भार से दबी हो, जिसमें ऊहा का चमत्कार भरा हो और जहाँ लक्षणा-व्यञ्जना का अधिक गमन हो तो नाटककार के रूप में उसका प्रयास सफल नहीं कहा जाएगा। तभी तो आचार्य भरतमुनि को व्यवस्था देनी पड़ी थी कि नाटक में ऐसी भाषा का प्रयोग हो, जो कोमल और सुन्दर हो परन्तु साथ ही यह भी आवश्यक है कि वह ऐसे शब्दों और अर्थों से रहित हो जो तुरन्त समझ में न आ सकें। वह जन साधारण के समझने योग्य हो।^२ आचार्य विश्वनाथ भी यही परामर्श देते हैं कि ऐसे शब्दों और अर्थों का प्रयोग नाटक में न करना चाहिए जो सुबोध न हों।^३

काव्य एवं नाटकों के आधार पर यदि इस नियम की परीक्षा करें तो

१. कविता अरु कुच कामिनी अध उधरे सुख देत।

२. मृदुललितपदार्थं गूढशब्दार्थहीनं।

जनपदसुखयोग्यं युक्तिमन्तृत्ययोग्यम् ॥ ना० शा० (चौखंभा प्रकाशन), पृ० १७-१२२ ना० शा० १६-१२४ (निर्णय सागर)।

३. भवेदगूढशब्दार्थः क्षुद्रचूर्णकसंयुतः। साहित्यदर्पण ६-१२।

अर्थ—गूढार्थक शब्द न हों। छोटे छोटे चूर्णक (बिना समास के) होने चाहिए। (श्री शालिग्राम शास्त्री)

भाषा विषयक अन्तर स्पष्ट हो जाता है। विश्ववन्द्य महाकवि कालिदास के मेघदूत के विरही यक्ष और विक्रमोर्वशीय नाटक के विरही विक्रम (अंक ४) की उक्तियों को पढ़ने से भाषा-भेद स्पष्ट हो जाता है। दोनों ग्रंथों में से एक समान वर्णन ले लें। दोनों में मोर का चित्रण है किन्तु दोनों की भाषा में अन्तर है। यक्ष मेघ से कहता है—‘देवगिरि पर्वत पर तेरी गाज सुन कर कार्तिकेय का मोर नाच उठेगा।’ कवि के शब्द हैं—

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बह्वै भवानी

पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ॥

धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्त मयूरं

पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गजितैर्नर्तयेथाः^१ ॥—मेघदूत

(पूर्वमंघ ४५)

विक्रमोर्वशीय के मोर का चित्रण इस प्रकार किया गया है—

आलोकयति पयोदान्प्रचलपुरोवातताडितशिखण्डः

केका गर्भेण शिखी दूरोन्नमितेन कण्ठेन ॥^२ ४-१८

दोनों की भाषा में बड़ा अन्तर है। मेघदूत की भाषा अलंकार, गुण, शक्ति और कल्पना से पुष्ट है। उधर विक्रमोर्वशीय की भाषा सरल और सुबोध है। संस्कृत नाटकों के ऋतु एवं समय वर्णनों से महाकाव्यों के वैसे ही वर्णनों की तुलना से भी यह भेद स्पष्ट हो जाता है।

ब्रजभाषा नाटकों की परीक्षा करें। पीछे रामकरुणाकर नाटक के परिचय में जो राम का विलाप दिया गया है यदि उसकी तुलना रामचरित-मानस के राम विलाप से करें तो भाषा-भेद स्पष्टतया दीख पड़ेगा। तुलसी के राम के अनेक वाक्य ‘पिता वचन मनतेऊँ नहिँ आहूँ’ ‘सहोदर भ्राता’ ‘निज

१. कालिदास ग्रंथावली में से उद्धृत। टीकाकार पं० सीताराम जी चतुर्वेदी। “वहाँ पहुँचने पर तुम अपनी गरज से पर्वत की गुफाओं को गुँजा देना। उसे सुन कर स्वामी कार्तिकेय का वह मोर नाच उठेगा जिसके नेत्रों के कोने, शिवजी के सिर पर धरे हुए चन्द्रमा की चमक से दमकते रहते हैं। उस मोर के झड़े हुए उन पंखों से चमकीली किरणें निकल रही होंगी, जिन्हें पार्वती जी, पुत्र पर प्रेम दिखलाने के लिए अपने उन कानों पर सजा लेती हैं, जिनपर वे कमल की पंखड़ी सजाया करती थीं।

२. वर्षा से भाप छोड़ने वाली चट्टान पर बैठा हुआ और सामने के प्रचण्ड पवन से छितराती हुई कलंगी वाला यह मोर अपना कण्ठ ऊँचे उठा कर केँ केँ करता हुआ बादलों को देख रहा है।

(टीकाकार पं० सीताराम चतुर्वेदी, कालिदास ग्रंथावली)

जननी के एक कुमार', 'बहुविधि सोचत सोच विमोचन' 'उमा एक अखंड रघुराई', 'जिमि करुना महुँ वीर रस'—सहसा सुनने मात्र से बुद्धिगम्य न होंगे। इनके अर्थों को बार-बार सोचना पड़ेगा। दूसरों से विमर्श भी करना पड़ेगा। किन्तु रामकरुणाकर के राम की भाषा बड़ी सुबोध है। एक अन्य उदाहरण लें। राम ने विभीषण को लङ्का दान में दे दी तब महात्मा तुलसीदास कवितावली में कहते हैं—

नगर कुबेर को सुमेरु की बराबरी,
बिरंचि बुद्धि को त्रिलास लंक निरमान भो।

ईसहि चढ़ाय सीस बीसबाहु वीर तहाँ,
रावन सो राजा रजतेज को निधान भो।

तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौज सम्पदा,
सकेलि चाकि राखी रासि जोंगर जहान भो।

तीसरे उपास बनबास सिन्धुपास सो,
समाज महाराज जू को एक दिन दान भो ॥

(कवितावली, सुन्दरकांड, ३२)

यह काव्य का वर्णन है जिसमें कवि कुछ छिपा कर 'गूढ़' शब्दों में कहता है। पाठक एक एक शब्द पर ध्यान दे कर कुछ पकड़ता है। इनकी तुलना में इसी प्रसंग को रामायण महानाटक में देखें। राम ने जब राज्य तिलक करा दिया तो नाटककार वानरों के मुख से वही कहलाता है जो तुलसी ने कहा है, किन्तु भाषा बड़ी सुबोध है।

घन्य राम बानर अस कहहीं। राजलोभ मन महुँ नहि रहहीं ॥

लंका दीन्ह विभीषन काजा। बालि मारि सुग्रीव नेवाजा ॥

रावन पूजे सिर सीस लगाई। सेवा कीन चरन चित लाई ॥

दस सिर रावन देइ करि, पायेउ लंका के राज।

पाउँ छुअत सो पायेउ, राम गरीब नेवाज ॥

(रामायण महानाटक, अंक ६)

इस भाषा-भेद का अन्तर दिखानेवाला एक उदाहरण लङ्का दहन कवितावली, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका और रामायण महानाटक से लिया जा सकता है। कवितावली और रामचरितमानस में इस प्रसंग में प्रदर्शित तुलसी का काव्यकौशल प्रसिद्ध ही है। केशवदास ने भी इस प्रसंग में कल्पना और अलङ्कारों का समूह खड़ा किया है—

लसैं पीत छत्री मदी ज्वाल मानो। ढके ओढ़ना लंक वज्जो ज जानो।

जरैं जूड़ नारी चढ़ी चित्रसारी। मनो चेटका में सती सत्यधारी ॥७॥

चली भागि चौहूँ दिशा राजरानी । मिलीं ज्वालमाला फिरैं दुःखदानी ।
मनों ईश बनावली लाल लोलैं । सबै दैत्य जायान के संग डोलैं ॥१०॥
लंकहि लाय दई हनुमन्त विमान बचे अति उच्चरखो है ।
पाचि फटैं उचटैं बहुधा मनि रानि रटैं पय पानि दुखो है ॥
कंचन को पधिलो पुरपूर पयोनिधि में पसरो सो सुखी है ।
गंग हजार मुखी गुनि केशो गिरा मिली मानो अपार मुखी है ॥११॥

रामचंद्रिका, चौदहवों प्रकाश ।

इसके समञ्च रामायण महानाटक के लंका दाह को देखिये जो पुर-
वासियों के मुख से हुआ है—

जर अग्निनी निकरी सब रानी । कवल सुखाइ कहइ मृदु बानी ॥
राजा आग्या सिर पर होई । हइ मदिर राखई सब कोई ॥
अब राखहु सोवत बंधु हमारा । तेहि पाछे सुधि लेहु भंडारा ॥
भाजहिं राकस करहिं पुकारा । गिरे पाग सब सीस उधारा ॥
रावन तेज भये जब हीना । भाखइ लागे वचन कछु दीना ॥
अग्निक तेज महा भय होई । आग्या राज न मानइ कोई ॥

निकट नीर हइ सींचु कर, सब मिलि आवहु जाइ ।

दसहु दिसा भय भाषई, पानि पानि गोहराइ ।

कंचन औटि भए सब पानी । बाढ़े नीर धर्म अकुलानी ॥
भागत नारिन चीर सँभारा । पीटहिं छ्वाती ठोकि कपारा ॥
रोवहिं राकस उठहिं पुकारी । बालक जरत तजहिं महतारी ॥

(रामायण महानाटक अंक ५)

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि कवि अपनी भाषा के सौन्दर्य और उसकी व्यञ्जना शक्ति पर अधिक बल देता है, जब कि नाटककार सुबोधता पर । अलंकरण, नाटककार भी करता है, अनुप्रास, उपमा, रूपक इत्यादि सरस अलंकारों का प्रयोग भी करता है, किन्तु वह न सेनापति की भौति श्लेष के बल पर ग्रीष्म में हिम श्रुतु देखेगा, न वह केशव की रामचन्द्रिका के समान वर्षा और कालिका की समता जोड़ने बैठेगा, और न वह मानस-घाट या ज्ञान-दीप के रूपकों के विस्तार में फँसेगा ।

वर्णन भेद

प्रबन्ध काव्य में कवि उपन्यासकार की नाई रुक-रुक कर चलता है । जहाँ भी वर्णन करने का प्रसंग आता है बैठ जाता है और लम्बी सूचियाँ देने लगता है । नाटककारों ने भी नाटकों में वर्णन दिए हैं । इस प्रसंग में नाटककारों का मोह प्रकृति वर्णन एवं शरीरांग वर्णन के प्रति विशेष रहा

है। जब प्रातःकाल, सायंकाल, वन, सागर इत्यादि का प्रसंग आया है तो नाटककार भी कुछ रुका है और वर्णनों से वस्तुओं को रेंगा है। नायिका के शरीरांग वर्णन करने में भी उसने कुछ अधिक स्थान दिया। इतने पर भी वह प्रबंध काव्य की भाँति प्रकृति, वस्तु, देश, नायिका इत्यादि का सांगोपांग वर्णन करने नहीं बैठता। यदि वस्तु या प्रसंग के प्रति उसका आकर्षण है तो वह कुछ अधिक स्थान दे देता है। इसके विपरीत काव्यकार विस्तार से सांगोपांग वर्णन देता है। उदाहरण—

(क) वाल्मीकि रामायण में जब सुग्रीव वानरों को सीता जी को खोजने के लिए भेजता है तो प्रत्येक दिशा में पड़ने वाले देश, प्रान्त, जनपद, पर्वत, सरिताएँ, जातियाँ, घाटियाँ, मुख्य स्थान इत्यादि की सूची कवि पृष्ठो तक देता है। आठ दस पृष्ठों तक कथा रुक जाती है। तुलसीदास रामचरितमानस में सन्त असन्तो के गुण देने में, ईश्वरीय महिमा बताने में, राम-अवतार का कारण देने में और कलि-युग चित्रण में कहानी को घंटों के लिए रोक देते हैं। उत्तर कांड की कथा गति से रहित है। केशवदास ने रामचन्द्रिका में अवधपुरी एवं निकटवर्ती वर्णन में पूरा प्रथम प्रकाश लगाया है (२५ से ले कर ५० छन्द तक)। रामचन्द्रिका के २७वें से ३२वें प्रकाश तक (२२८ छन्द) कथा की कोई गति नहीं है केवल भिन्न भिन्न वर्णन हैं। जायसी का चित्तौर गढ़, नखशिख और सात समुद्र वर्णन इसी प्रकार के हैं। नाटककार वर्णनों के साथ इतनी स्वतंत्रता नहीं ले सकता है। वह नायिका के शरीरांग का वर्णन दे सकता है, प्रकृति वर्णन कर सकता है और स्तुति भी पात्र के मुख में धर सकता है किन्तु इसके लिए ५० या ६० पृष्ठ न देगा। इसी बात को ध्यान में रखने के कारण कविवर धौकल मिश्र ने अपने शकुन्तला नाटक में 'शकुन्तला वन वर्णन' (१२ पद्वरी छन्द) और 'शकुन्तला वर्णन' (शारीरांग वर्णन, १३ त्रिभंगी छन्द) कथा के बीच में न रख कर अलग से दिए हैं। इस एक उदाहरण से प्रबन्ध काव्य और काव्य-नाटक के वर्णन कौशल का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। प्राणचन्द ने रामायण महानाटक में सेतु बाँधने का संक्षिप्त वर्णन देवताओं से कराया है। लकादहन वर्णन भी विस्तार से नहीं है जो पुरवासी करते हैं। प्राणचन्द केवल प्रकृति-वर्णन के मोह का संवरण न कर सके और रामलक्ष्मण के मुख से इसका अवांछनीय विस्तार करा दिया है। ब्रजभाषा नाटकों में वर्णन-विस्तार नहीं मिलता है। वे कथा सूत्र को नहीं छोड़ते हैं।

नाटकीयता

आलोचकों की सबसे बड़ी आपत्ति यही है कि इन नाटकों में नाटकीयता नहीं है। इसका विश्लेषण करें तो नाटकीयता से आलोचकों का अर्थ

है—^१(१) इनमें पात्र-प्रवेश एवं प्रस्थान नहीं (२) कवि स्वयं रंगमंच पर उपस्थित है और (३) अभिनय का ध्यान नहीं रक्खा गया है ।

ब्रजभाषा नाटकों में पात्र-प्रवेश है । नाटकों में पात्र-प्रवेश कराने की चार शैलियाँ हैं । (१) एक अत्यन्त प्रचलित शैली है जिसमें संक्षिप्त रंग-संकेत दे दिया कि अमुक पात्र प्रवेश करता है । संस्कृत नाटकों और हिन्दी के भारतेन्दु एवं प्रसाद-कालीन अधिकांश नाटकों की यही शैली थी । उदाहरण— 'ततः प्रविशति समदनावस्थो राजा' (अभिज्ञानशाकुंतलम् अंक ३), 'रिपु-दमन और रणधीर वहाँ आते हैं' (रणधीर प्रेममोहिनी २-३) । इसमें पात्रों के नाम 'विरामो' में बन्द करके रख दिए जाते हैं । (२) पात्रों की संक्षिप्त वेशभूषा भी दे दी जाती है जैसे भारतेन्दु जी के भारत जननी एवं भारत दुर्दशा नाटक के पात्र जब प्रवेश करते हैं तो उनकी वेशभूषा भी दी गई है । आधुनिक काल में इस वेशभूषा का विस्तार कर दिया जाता है और चतुर्दिक् वातावरण या कक्ष-वर्णन भी दिया जाता है । (३) पात्र आ कर स्वयं अपना परिचय देता है । इन्द्रसभा नाटकों की शैली यही है । (४) आजकल पात्र-प्रवेश का एक और ढंग अपनाया गया है । जब पात्र प्रवेश करता है तो 'उद्घोषक' नेपथ्य से उसका परिचय देता है और उसकी वेशभूषा बताता है । प० सीताराम चतुर्वेदी का नाटक अनारकली इसी प्रकार का नाटक है । आकाशवाणी शैली को अपना कर इस प्रकार के नाटक लिखे जाते हैं । ऐसे नाटकों में एक पात्र 'उद्घोषक' भी होता है जो सदा नेपथ्य में रहता है । बिना 'उद्घोषक' के ऐसे नाटक सफल नहीं होते । यदि 'उद्घोषक' के स्थान पर हम 'कवि' शब्द रख दे या गुप्त रहने दें तो ब्रजभाषा नाटक और सांगीत नाटकों का 'पात्र-प्रवेश' बन जाता है । ब्रजभाषा नाटकों में स्वांग या सांगीत नाटकों की नाई कवि पात्रों का परिचय स्वयं देता है । उदाहरण—

(क) माधव विनोद में जब पात्र प्रवेश करते हैं तो कवि उनका परिचय वेशभूषा-सहित कराता है । ये वर्णन माधवविनोद नाटक के परिचय में पीछे दिये जा चुके हैं ।

(ख) प्रबोधचन्द्रोदय में जब रति-काम प्रवेश करते हैं तो धोंकल मिश्र उनका परिचय देते हैं—

तन नव जलधर रंग संग रति प्रिया शिलावत ।

अंस धारि गलबाँह कुचन त्रिच उरहिँ लगावत ॥

करत अधर मधुपान जुगल नैनान घुमावत ।

जगत होत मद जुत लषत अचिरज्जहि पावत ।

(प्रबोध चन्द्रोदय—धोंकल मिश्र कृत

(ग) करुणाभरण नाटक के प्रथम अंक में जब ग्वाला प्रवेश करता है तो कवि उसका परिचय देता है, जिसका उल्लेख 'कथानक' प्रसंग में हो चुका है ।

(घ) कभी कभी संक्षिप्त परिचय से भी पात्र का प्रवेश कराया गया है—*रामायण महानाटक* में जब हनुमान जी सीता खोज के लिए गए तो कवि सीता जी का प्रवेश कराता है । सीता, राम-विरह में दुःखित हैं—

मन मलीना औ वसन मलीना । अनुखन ऐन खीन तन खीना ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटको में पात्र-प्रवेश तो है किन्तु पात्र स्वयं प्रवेश नहीं करता वरन् कवि प्रवेश कराता है । कवि मंच पर स्वयं उपस्थित है । जब कवि कथा को आगे बढ़ा रहा है तब इनमें नाटकीयता कहाँ रही, यह प्रश्न स्वभावतः उठता है । नाटक में तो कवि अदृश्य रहता है । नाटक में सब कुछ पात्र ही करते या कहते हैं । वास्तव में यही सबसे प्रमुख समस्या भी है ।

नाट्य शैली

व्रजभाषा नाटकों में नाट्य शैली तो अवश्य अपनाई गई है किन्तु वह कालिदास, भवभूति, हर्ष के नाटकों की शैली नहीं है वरन् जननाट्य शैली है । व्रजभाषा नाटकों तक आते आते संस्कृत नाटकों की उन्नत और समृद्ध रंगमंच की परम्परा का हास हो चुका था । बात यह थी कि संस्कृत का उन्नत रंगमंच और उसके लिए लिखे गए साहित्यिक नाटक सर्वसाधारण के लिए न थे ।

संस्कृत नाटकों का रंगमंच

संस्कृत के उन्नत रंगमंच के प्रमाण भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में प्राप्त होते हैं ?^१ किन्तु यह रंगमंच विशिष्ट व्यक्तियों का रंगमंच था, जन रंगमंच न था । यूनान की प्रेक्षणशालाओं की भाँति भारतीय रंगशाला में हजारों दर्शक नहीं प्रविष्ट होते थे । भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार विशालतम नाट्यगृह १६२ फुट लम्बा और १६२ फुट चौड़ा होता है ।^२ १०८ हाथ या ५४ गज लम्बे और ५४ गज चौड़े नाट्य गृह में हजारों व्यक्ति खड़े भी नहीं हो सकते । वास्तव में संस्कृत के ये समृद्ध और व्यवस्थित नाट्यगृह भीड़भाड़ के लिए न थे । संस्कृत नाटकों में इस बात के प्रचुर प्रमाण मिलते हैं कि नाटक-

१. अध्याय २ ।

२. नाट्यशास्त्र अध्याय २-१० ।

कार राजसभा में खेले जाने के लिए नाटक लिख रहा है। अभिज्ञान-शाकुन्तलम् का सूत्रधार आ कर कहता है, 'आर्ये, रस और भाव का चमत्कार दिखाने वाले कलाकारों के आश्रयदाता महाराज विक्रम की इस सभा को आज विशेष रूप से बड़े बड़े विद्वानों ने सुशोभित किया है, इसलिए उन्हें कालिदास का नया रचा हुआ नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् ही दिखाना चाहिए।^१ रत्नावली का सूत्रधार भी राजसभा में ही नाटक खेलता है। सूत्रधार—“इस वसन्तोत्सव में नाना दिग्दिगन्त से आ कर जुटे हुए महाराज हर्षदेव के अनुगामी नृपों ने मुझे सादर बुला कर कहा, हमारे महाराज श्री हर्षदेव ने कथा-वस्तु तथा वर्णन में अद्वितीय रत्नावली नामक नाटिका बनाई है, उसके विषय में हमने सुना तो है, उसका अभिनय नहीं देखा।.....वही नाटिका आप अभिनीत करें।^२ नागानन्द में भी इसी प्रकार भिन्न-भिन्न देश के राजा हर्षदेव की सभा में बैठे हुए सूत्रधार को आज्ञा देते हैं कि नागानन्द का अभिनय करो। 'दूतांगद' के निर्माता श्री सुभट जी का सूत्रधार भी विष्णुरूप त्रिभुवनपाल देव राजाधिराज की सभा के सभासदों की आज्ञा से 'दूतांगद' छाया-नाटक का अभिनय करता है। प्रसन्नराघव-कार जयदेव प्रस्तावना में सूचना देते हैं कि राजाओं की सभा में नाटक दिखा कर नट पुरस्कार पाते थे और दान्तिष्ण्य राजाओं की सभा में तो नाटकों की प्रतियोगिताएँ होती थीं। (प्रसन्नराघव की प्रस्तावना)।

राजसभाओं में सब का प्रवेश न था। दूसरा स्थान जहाँ नाटक खेले जाते थे, देवालय थे। देवपूजा या यात्रा के शुभ अवसरों पर नाटकों का अभिनय होता था। भवभूति, उत्तररामचरितम् और महावीरचरितम् का अभिनय भगवान् कालप्रियनाथ की यात्रा के अवसर पर दिखलाना चाहते हैं (प्रस्तावनाएँ)। मन्दिरों में राजसभाओं की अपेक्षा व्यक्तियों के प्रवेश की सीमा कुछ अधिक विस्तृत थी, किन्तु यहाँ भी सब कोई नहीं जा सकते थे। नाटककार प्रस्तावनाओं में विशिष्ट प्रेक्षकों को ही आमन्त्रित करता है, सब को नहीं। नाट्यमिश्र में सूत्रधार अपना नाटक विद्वान् पुरुषों की आज्ञा से ही अभिनीत करना चाहता है।^३ उत्तररामचरितम् और महावीरचरितम् में नाटककार की इच्छा है कि कालप्रियनाथ की यात्रा के अवसर पर आए 'आर्य मिश्र' ही उसके नाटकों का अभिनय देखें।

१. प्रस्तावना—अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

२. रत्नावली की प्रस्तावना—टीकाकार—श्री रामचन्द्र मिश्र (चौखम्भा प्रकाशन)।

३. मालतीमाधव की प्रस्तावना।

आर्य मिश्र का अर्थ है—आर्यों में भी श्रेष्ठ या उच्च व्यक्ति ।^१ सूत्रधार आर्य-मात्र को दर्शक नहीं बनाता, वरन् उनमें जो उच्च हैं, उनको ही अभिनय दिखाता है । कालिदास अपने नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के अभिनय के लिए 'रसभावनिपुण' दर्शक चाहते हैं (प्रस्तावना) । मालविकाग्निमित्र का सूत्रधार वसंतोत्सव के समय 'विद्वत्परिषद्' के सम्मुख अभिनय का आकांक्षी है (प्रस्तावना) । रत्नावली और मुद्राराक्षस के निर्माता भी सूत्रधार के व्याज से नाट्य कला पारखी प्रेक्षक की इच्छा करते हैं (प्रस्तावना) । वास्तव में संस्कृत नाटककार सुसंस्कृत और विद्वान् दर्शक चाहता है, प्रत्येक सर्वसामान्य व्यक्ति को नाटकाभिनय दिखाने के पक्ष में नहीं है ।^२ इसका कारण है कि संस्कृत में 'नाटक' एक विशेष कलात्मक रचना थी । भरतमुनि ने नाट्य-रचना बड़ी कठिन बतलाई है । इसमें सभी कलाओं, शास्त्रों और विद्याओं का समावेश माना है । 'न कोई ऐसा ज्ञान है न शिल्प, न ऐसी विद्या, न ऐसी कला, न ऐसा योग, न ऐसा कार्य जो इस नाट्य में न दिखाई दे ।' ✓

न तच्छास्त्रं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।

न स योगो न तत्कर्म यन्नाट्येऽस्मिन् दृश्यते ॥१-११६॥

नाटककार पर बन्धन हैं तो प्रेक्षक पर भी होने चाहिए । नाटक के प्रेक्षक में भी विशिष्ट-पात्रता होनी चाहिए । नाट्यशास्त्रकार २७वें अध्याय में विस्तार से बताता है कि नाटक की सफलता की कौड़ी दर्शक हैं । उन दर्शकों के लिए नियम हैं कि वे इस प्रकार सफलता का प्रदर्शन करें । किन्तु इस सफलता-प्रदर्शन के अधिकारी सब नहीं हो सकते, सभी दर्शक नहीं बन सकते । उनके लिए नाट्यशास्त्रकार ने कुछ विशेषणों का प्रयोग किया है । वे 'कुशल' हो (२७-१४) । प्रेक्षक कौन हो सकता है, उसके विषय में नाट्यशास्त्र का कथन है कि 'उच्च चरित्र वाले, सुपठित, यश और धर्म के इच्छुक, निष्पक्ष, अवस्था प्राप्त, नाट्यांग-कुशल, पवित्र, सावधान, वाद्ययंत्रविद, रसभाव जानने वाले, शब्द शास्त्र और छन्द शास्त्र के ज्ञाता, उचित विचार, कलाविद, जो

१. (क) आर्य मिश्र विख्यात या सम्मानित (संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० १३८ ।

(ख) आर्य मिश्राः साधुषु पूज्यतमाः (महावीरचरितम् के टीकाकार श्री रामचंद्र मिश्र—चौखंबा प्रकाशन) ।

(ग) आर्यमिश्राः 'गौरवितास्त्वार्यमिश्रा' इति त्रिकाण्डशेष (उत्तर-रामचरितम् के टीकाकार पं० शेषराज शर्मा एवं श्रोकांतानाथ शास्त्री तैलंग—चौखंबा प्रकाशन)

२. दि इंडियन स्टेज—ले० सी० बी० गुप्ता (१९५४), पृ० १११ ।

दुख देख दुखी हो सकें और आनन्द देख फूल सकें, आँसू भी बहा सकें और ठठा कर हँस भी सकें^१ ऐसे प्रेक्षक हों। बात भी ठीक है। संस्कृत के नाटक उच्च कोटि की कला से परिपूर्ण हैं। ऐसे कलात्मक नाटकों को देखने की योग्यता प्रत्येक सर्वसामान्यजन में नहीं हो सकती थी। आज भी उच्च कोटि के कलात्मक चित्र सबको पसन्द नहीं आते। प्रसिद्ध नृत्यकार उदयशंकर का एक कलात्मक छायाचित्र कल्पना थोड़े ही व्यक्तियों को मोह सका। संस्कृत के इन नाटकगृहों में भी प्रत्येक प्रवेश न पाता था। कुछ आलोचकों का मत है कि शूद्रों को नाटक देखने का अधिकार न मिला था। कीथ साहब का मत है कि यद्यपि नाट्यशास्त्र में शूद्रों को नाट्यवेद देखने का अधिकार दिया गया था परन्तु यह कार्य रूप में परिणत हुआ होगा, इसमें सन्देह है।^२ कुछ आलोचक इसका विरोध करते हैं। जागीरदार का कथन है कि शूद्र को शूद्रत्व के कारण नाटकगृहप्रवेशाधिकार न था, ऐसा नाट्यशास्त्र से सिद्ध नहीं होता। नाटक का प्रथम संरक्षक एक शूद्र ही था जिसका नाम राजा नहुष है।^३ वास्तव में नाट्यवेद का जन्म ही सब वर्णों के मनोरंजनार्थ हुआ था।^४ शूद्रों को नाटक देखने के अधिकार से मुनि भरत ने वंचित नहीं किया, वरन् उन्होंने 'शूद्राचार' का निषेध अवश्य किया है। खीन्द्रनाथ ठाकुर का कथन उद्धृत कर कीथ कहते हैं कि असभ्य, मूर्ख, नास्तिक और निम्नवर्गीय पुरुष प्रेक्षण-शालाओं में प्रवेश नहीं कर सकते थे।^५

इस विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो ही गया कि संस्कृत नाटक विशिष्ट जन-समुदाय के सामने खेले जाते थे। पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी कहते हैं कि 'भारतीय रंगमंच जनसाधारण से दूर था। देवालयों वा राजसभाओं में मनोरंजन और उपदेश के लिए अभिनय होता था। ये नाट्यशालाएँ सबके लिए न थीं। बम्बई, कलकत्ता आदि नगरों में बने हुए थिएटर्स के समान सर्व-साधारण के लिए कोई नाट्यमन्दिर इस देश में पहिले कभी न था।'^६ पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र इसका समर्थन करते हुए कहते हैं, 'प्राचीन काल के नाटक-कार प्रायः राजदरबारों के राजकवि हुआ करते थे और प्राचीन काल में नाट्य-शालाएँ भी जनसाधारण के हाथ में न हो कर राजा के ही हाथ में होती थीं।

१. नाट्यशास्त्र चौखंभा, अ० २७ के श्लोक ४६-६१ तक।

२. संस्कृत ड्रामा—ले० कीथ, १६२४, पृ० ३७०।

३. ड्रामा इन संस्कृत लिटरेचर—ले० जागीरदार, १६४७, पृ० ३५।

४. नाट्यशास्त्र, चौखंभा, १-१२।

५. कीथकृत संस्कृत ड्रामा, पृ० ३७०।

६. नाट्य शास्त्र तृ० सं०, पृ० ८।

उनमें जनसाधारण का आह्वान न हो कर राजकीय वर्ग का ही आह्वान होता था,^१ श्री विल्सन का भी मत यही है कि नाटकों का मनोरंजन उच्च वर्ग या विद्वानों के लिए था।^२,

जननाट्य शैलियाँ

निष्कर्षतः एक प्रश्न पैदा होता है कि जब संस्कृत नाटक सर्वजनहिताय न खेले जाते थे तो क्या जनसाधारण के मनोरंजन के लिए कोई अभिनय-साधन न था। अवश्य ऐसे साधन थे। ये साधन थे 'जननाट्य', जिनका कुछ संक्षिप्त परिचय प्रासंगिक एवं प्रमाणोपयोगी सिद्ध होगा।^३

संस्कृत काल में जब साहित्यिक नाटक खेले जा रहे थे और विशिष्ट व्यक्ति उनसे आनन्द उठा रहे थे, तब जनता अपना मन जन-नाट्यों से बहलाती

१. हिन्दी में नाट्य साहित्य का विकास, प्र० सं०, पृ० १४।

२. Being an entertainment appropriated to the leading or learned members of the Society. Preface to the Theatre of Hindus (1935), p. 4.

३. आगे जन नाट्यशैलियों का जो विवरण प्रस्तुत किया गया है, उसकी सहायक पुस्तक एवं लेख-तालिका नीचे दी गई है—

(क) दि इंडियन स्टेज, ले० एच० एन० दासगुप्त, वाल्यू० ३, ४।

(ख) दि थियेटर आफ दि हिन्दूज़, ले० एच० एच० विल्सन, प्र० सं० से, साउथ इंडियन थियेटर, ले० के० आर० विशरोती।

(ग) दि इंडियन थियेटर, ले० सी० बी० गुप्ता, १९५४ (चैप्टर ११, माडर्न थियेटर)

(घ) नई धारा, (रंगमंच विशेषांक) अप्रैल-मई, १९५२ से निम्नांकित लेख—

लेख	लेखक
मराठी नाट्य कला और रंगभूमि	श्री विनयमोहन शर्मा
नौटंकी से पृथ्वी थियेटर्स तक	श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
तेलगू रंगमंच	प्रो० राममूर्ति रेणु
मंचहीन रंगमंच	श्री कामेश्वर शर्मा
हिन्दी के नाटक और हिन्दी रंगमंच	श्री रामेश्वर सिंह कश्यप
बंगला रंगमंच	श्री मोहनसिंह सेंगर
मराठी रंगमंच	श्री वैकटलाल आत्मदास ओझा
गुजराती रंगमंच	श्री दुर्गादास ओझा

थी। जन नाट्यों की परम्परा प्राचीन है। पतंजलि (१४० ई० पूर्व) ने तीन प्रकार के जन-नाट्यों की सूचना दी है।^१ (१) एक जन नाट्य शोभनिका 'या' शोभिका' द्वारा होता था। यह मौन नाट्य था। (२) दूसरा जन नाट्य 'चैत्रिका' द्वारा सम्पन्न किया जाता था। ये नट चित्रित दृश्यों की सहायता से कथा की व्याख्या करते थे। (३) तीसरे में 'ग्रथिका', पुस्तकों से सस्वर पाठ करते थे। श्री कृष्णमाचार्य का तो मत है कि नाट्यछाया एवं उल्लिखित जन नाट्य शैलियाँ भरतमुनि के भी समय में प्रचलित थीं।^२ स्वांग (जिसे सांग या सांगीत भी कहते हैं) जन नाट्य का उल्लेख महाकवि कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक में है। राजा परित्राजिका से कहता है कि आपने

(ङ) साहित्य संदेश (अन्तःप्रान्तीय नाटक-विशेषांक) जुलाई-अगस्त १९५५ के निम्नलिखित लेख—

भारतीय रंगमंच का विकास
नाडहत्तमिल और तामिल नाटक
मराठी रंगमंच
कन्नड़ का नाटक साहित्य
तेलगू का नाटक साहित्य
तमिल भाषा के नाटक
मलयालम नाटक साहित्य का विकास
गुजराती नाटक का विकास
राजस्थानी नाट्य परम्परा
मराठी नाट्य और रंगभूमि

प्रो० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
श्रीमती आनन्दी परमेश्वरन्
श्री र० श० केलकर
श्री एम० एस० कृष्णमूर्ति
श्री न० वि० राजगोपालन्
श्री टी० शेषाद्रि
श्रीमती रत्नमयी देवी दीक्षित
डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
श्री गोवर्धन शर्मा
श्री श्रीनिवासनारायण वनहदी

(च) नयापथ (नाटक विशेषांक मई १९५६) के निम्नलिखित लेख—
हिन्दी नाट्य और रंगमंच

अनन्त

(छ) नयापथ (नाटक परिशिष्टांक, जून १९५६) के निम्नलिखित लेख—
मलयाली नाट्य साहित्य की प्रगति
बंगला नाट्य साहित्य की परम्परा
बंगाल का प्राचीन जननाट्य 'यात्रा'
तेलुगु नाटक साहित्य
पंजाबी रंगमंच

श्री एम० एस० नम्बूदरीपाद
श्री कृष्णदास
श्री प्रबोधकुमार मजुमदार
श्री दण्डमूर्ति महीधर
बलवन्त गार्गी

१. कीथ कृत संस्कृत ड्रामा, पृ० ३१ एवं श्री कुलकर्णी कृत संस्कृत ड्रामा ऐण्ड ड्रामेटिस्ट्स पृ० ७।

२. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर ले०, एम० कृष्णमा-
चारियर, १९३७ पृ० ७७५।

स्वांग देखे होंगे ।^१ यहाँ 'स्वांग' से अभिप्राय जननाट्य शैली से ही है जिसका परम्परागत रूप आज भी किसी न किसी रूप में चल रहा है । कथकली जननाट्य का प्रारम्भिक रूप ईसा की दूसरी शताब्दी में प्रचलित था ।^२ महाराष्ट्रीय जननाट्य 'गोधाल' का पूर्व रूप, जो कीर्तन जैसा था, चौथी शताब्दी में था । कीर्तन और पुराण ये दो जननाट्य थे जिनमें एक ही अभिनेता भाण के समान अभिनय करता था ।^३ 'गोधाल' जो महाराष्ट्र का प्रसिद्ध जननाट्य है—चौथी शताब्दी के बाद विकसित हो लोकप्रिय हो गया । मलाबार का प्रसिद्ध जननाट्य 'कुतु' एक सहस्र वर्ष पुराना है ।^४ १०वीं शताब्दी में त्रैविक्रम नाटक चैत्रिको की जननाट्य शैली पर लिखा गया था जिसमें एक चित्र की सहायता से सूत्रधार और नटी अभिनय सहित संवाद करते हैं ।^५ शारदातनय (१२वीं शताब्दी) ने उपरूपको का विभाजन तत्कालीन जननाट्य शैलियों के आधार पर ही बताया है । शारदातनय कहते हैं कि ये उपरूपक 'नृत्यभेद' हैं । वास्तव में रासक, नाट्यरासक, हल्लीशक, भाण, प्रेक्षण इत्यादि जननाट्य थे (भाव प्रकाश नवम अधिकार)

१२वीं शताब्दी में श्री बोपदेव रचित श्रीमद्भागवत में कृष्ण की रास-लीला का उल्लेख मिलता है ।^६ १२वीं शताब्दी के तेलुगु कवि सोमनाथ (११८० ई०) की प्रसिद्ध रचना पंडिताराध्यचरित में तत्कालीन कई प्रकार के रूपकाभिनयो का वर्णन मिलता है । पुतली-नाट्य, गन्धर्व यक्ष किन्नर इत्यादि का वेश धारण कर नाट्य करना, ऐसे कितने ही जन नाट्यों का वर्णन इस पुस्तक में है । इसी पुस्तक में 'वीथिनाटक' खेले जाने का वर्णन है ।^७ वीथिनाटक भी एक जननाट्य था जो 'यज्ञगान' के ही समान

१. राजा—ननु श्रुवती भगवती—

(मालविकाग्निमित्र, अंक १)

२. इंडियन स्टेज, वाल्यू० ४, ले० एच० एन० दासगुप्ता पृ० २३६ ।

३. संस्कृत ड्रामा ऐंड ड्रामाटिस्ट, ले० कुलकर्णी, १९२७, पृ० १३ ।

४. के० आर० पिशरोती इन द 'थियेटर आफ द हिंदूज' प्र० सं०, पृ० २०४ ।

५. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, ले० एम० कृष्णामाचारी, १९३७ ।

६. हिन्दी नाटक उद्भव और विकास—डा० दशरथ ओझा, पृ० १०१ ।

७. तेलुगु का नाटक साहित्य, ले० न० वी० राजगोपालन, साहित्य-संदेश, जुलाई-अगस्त १९५५ के अन्तर्प्रान्तीय नाटकांक का लेख, पृ० ३१ ।

था।^१ बंगाल में 'यात्रा' का प्रचलन १३वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक भस्पूर रहा।^२ १५वीं शताब्दी में उत्पन्न कबीर ने भी स्वांग देखे थे। इसी की और वे अपने एक दोहे में संकेत करते हैं 'स्वांग जतो का पहिर करि, घरि घरि माँगे भीष'।

१७वीं शती में 'तुकाराम' के अभग पदों में ललित के दर्शन होते हैं। एवं ललित के स्वांग हिन्दी गद्य में भी खेले जाते थे^३।

ब्रज भाषा के नाटक जत्र लिखे गए तत्र भारतीय रंगमंच जननाट्य शैलियों का ही था। सुसंस्कृत संस्कृतकालीन रंगमंच उठ चुका था। उत्तरी भारत की जनता रामलीला, रामलीला, बहुरूपिया, भांड (उ० प्र०), रास, स्वांग, ख्याल, गीदड़ (राजस्थान), यात्रा, कवि (बंगला), स्वांग (पंजाब), भवाई (गुजरात), ललित, गोधाल, हरिकथा, बहुरूपी, दशावतार, तमाशा (महाराष्ट्र) से अपना मन बहला रही थी। दक्षिणी भारत में ये जननाट्य न हो, ऐसी बात नहीं। दक्षिण भारत की जननाट्य परम्परा उत्तरी भारत से अधिक प्राचीन, विस्तृत और कलात्मक है। कूत्तु, पाठकम्, कथकली, कृष्णाट्टम् (मलयालम), कुरवजि, यत्तगान, वीथिनाटक, तोलुबोम्मलाट (तेलुगु), दक्षिण के लोकप्रिय जननाट्य थे।

वर्गीकरण

ये जन नाट्य तीन प्रकार के थे—

(१) **एकाकी**—जिसमें संस्कृत भाषा के समान एक ही नट या अभिनेता नाट्य करता था।

(क) हरिकथा—मराठी जन नाट्य है। एक अभिनेता पुराण से एक श्लोक पढ़ता था। फिर उस श्लोक के भाव से सम्बन्धित एक कथा कहता था। बीच बीच में गीत गाता जाता था। हास्यात्मक उक्तियाँ कह कर हँसाता भी था। वह नाट्यकर्ता—हरिदास—कहलाता था। यह १८वीं शती तक जनता में आदर पाता रहा। महाराष्ट्र का एक और जन-नाट्य 'बहुरूपी' भी एकाकी जन-नाट्य था। एक व्यक्ति वेश बदल कर नाट्य करता था। यह 'उत्तरप्रदेश'

१. तेलुगु का नाटक साहित्य, ले० न० वि० राजगोपालन, साहित्य-संदेश, जुलाई-अगस्त १९५५ के अन्तर्प्रान्तीय नाटकांक का लेख, पृ० ३३।

२. 'बंगाल का प्राचीन जननाट्य, यात्रा,' लेख—ले० प्रबोधकुमार मजुमदार, नवापथ, जून—१९५६, पृ० ५२५।

३. श्री विनयमोहन शर्मा—मराठी नाट्य कला और रंगभूमि। नई धारा, अप्रैल-मई १९५२, पृ० २३।

के बहुरूपिया से मिलता जुलता था। 'बहुरूपी' बहुत सी भाषायें जानता था।

(ख) केरल जन-नाट्य के 'प्रबन्ध कूत्तु' में भी एकाकी अभिनय है। यह हरिकथा जैसा जननाट्य है। अभिनेता आ कर एक कविता पढ़ता है। यह कविता प्रायः राम-जीवन से सम्बद्ध होती है। तब उसका अभिनय करता है। उसके बाद उसकी व्याख्या करता है। वह व्याख्या में वर्तमान सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जीवन से उदाहरण लेता जाता है। इस अभिनेता को बड़ा विद्वान होना चाहिए।

केरल का 'पाठकम्' भी एकाकी जन-नाट्य है। अभिनेता 'हरिकथा' की नाई किसी पुराण से कोई श्लोक ले कर उसकी व्याख्या मलयालम में करता है। वह व्याख्या बड़े ही विद्वत्तापूर्ण ढंग से करता है। बीच-बीच में चुटकियाँ लेता जाता है, व्यंग्य करता है। उसके स्वर में गीतात्मकता होती है। सिर पर सजी हुई पगड़ी दर्शकों को आकर्षित करती है। यदि पगड़ी नहीं है तो रंगीन कपड़ा बाँध लेता है। अभिनय कम करता है, मुद्रायें अधिक बनाता है।

• (२) युग्म नाट्य—इस प्रकार के नाट्य में दो नट या दो • -समूह रंगमंच पर आ कर अभिनय करते हैं।

(क) 'त्रैविक्रम नाटक' इसी प्रकार की नाट्य शैली पर आधारित नाटक है। इसमें सूत्रधार और नटो एक-एक चित्र को दिखा कर कथा का वर्णन करते जाते हैं। नटो पूछती है—फिर क्या हुआ? आदि। सूत्रधार, अवतार कथा का वर्णन करता जाता है। साथ ही हस्त-मुख मुद्रा भी प्रदर्शित करता है। स्वर की भिन्नता भी लाता है।

(ख) ग्रन्थिका जननाट्य में दो दल सस्वर पाठ करते थे, अभिनय करते थे।

(ग) खयाल या लावनी भी इसी प्रकार का नाट्य था। इसमें दो व्यक्ति आमने-सामने दो भिन्न प्रकार की वेशभूषा में बैठ कर किसी प्रसंग को ले कर आशु कविता करते थे। इसके उत्तर प्रदेश और दक्षिणी पंजाब एवं पूर्वी राजस्थान में दो दल प्रसिद्ध हुए, 'कलगी' और 'तुरंग'। दोनों की दो विशेष शिर-सज्जा थीं।

(घ) कवि—बंगाल का दो दलों का जन-नाट्य था। दो दल आमने-सामने आ कर शिव, शक्ति, कृष्ण आदि के विषय में गाते थे। पहिले एक दल गाता था फिर दूसरा। कभी-कभी एक अभिनेता घंटों गाता रहता था।

(ङ) कुरवंजि—तेलुगु का एक युग्म नाट्य है। इसमें दो ही पात्र होते हैं एक पुरुष और एक स्त्री। ये सूत्रधार नटो जैसे थे। कभी कभी विदूषक भी लाया जाता था। कुरवंजियों का प्रचार प्रायः गाँवों में था।

(३) समूह नाट्य—तीसरे प्रकार का जन-नाट्य वह था जिसमें दो से अधिक अभिनेता भाग लेते थे। प्रान्तविशेष का यह जन-नाट्य प्रसिद्धि पा गया था जैसे मराठी का ललित, गोंधल और तमाशा, बंगाल का यात्रा और गुजरात का भवाई। ब्रजभाषा नाटकों का निर्माण क्षेत्र है आज का हिन्दी प्रदेश। इस हिन्दी प्रदेश के मुख्य जननाट्य थे स्वांग, रामलीला और रास-लीला।

हिन्दी प्रदेश के जन नाट्य

स्वांग

स्वांग, सांग या नौटंकी उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं राजस्थान का प्रसिद्ध जननाट्य रहा है। हम पहिले दिखा चुके हैं कि 'स्वांग' जननाट्य का उल्लेख पहली शती पूर्व कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्र में प्राप्त होता है। राजा परिव्राजिका से कहता है कि आपने 'स्वांग' नाट्य देखा होगा।^१ पीछे हमने उल्लेख किया है कि पन्द्रहवीं शती में कबीर ने भी स्वांग देखे या सुने थे और उस स्वांग प्रणाली को सामने रख एक जोगाड़ा से कहते हैं कि स्वांग की नाई तू भी कपड़े पहिन कर कुछ का कुछ बन गया 'स्वांग जती का पहिर करि घरि घरि माँगो भीख'। १७ वीं शती में भी भगतबाजो द्वारा संगीताभिनय का वर्णन मिलता है। संगीत का बहुत बड़ा सम्बन्ध पूरन भगत कथा से रहा है। मौलाना गनीमत ने अपनी पुस्तक नौरंगे इश्क (२० का० १६८५) में इन स्वांग खेलने वाले भगतबाजो की चर्चा की है^२।

चार-छै तखत जोड़ कर एक मंच बना लिया जाता है। दर्शक चारो ओर बैठते हैं। अभिनेता पास के किसी कत्त में से स्वरूप या स्वांग भर भर कर आते रहते हैं। यदि किसी राजसभा या रईस के यहाँ होता था तो पर्दे का प्रयोग भी करते थे। स्वांग या नौटंकी का सबसे बड़ा आकर्षण है, इसका नक्कारा। नक्कारे का शब्द कान में पड़ा नहीं कि गाँव, कस्बे या मुहल्ले वालों का दिल उछला नहीं। इसकी विशेषता है कि पूरा नाट्य केवल गा गा कर किया जाता है। प्रत्येक पात्र गाता है और नाचता है।

आरंभ में स्वांग या सांगीत मंडली का सूत्रधार जिसे स्वांग मंडली में उस्ताद या गुरु कहते हैं मञ्जलाचरण गाता है। तब वह नाटक का परिचय देता है। पात्रों के संवाद के मध्य भी यह बार-बार खड़ा हो कर कथात्मक अंश गा कर कथा को अग्रसर रखता है। स्वांगों में जहाँ 'जवाब रंगाचार' 'कवि का

१. अंक १ (कालिदास ग्रंथावली, द्वि० सं, पृ० २७४)

२. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, डा० सोमनाथ, तृ० सं० पृ० १६ ।

वचन', 'कथन रंगाचार' या ऐसे स्थल आते हैं वहाँ यही व्यक्ति उठ कर गाता है। स्वांग या सांगीत का पूरा कथानक गीतों में होता था। अब बीच-बीच में गद्य भी दिया जाने लगा है।

स्वांग या सांगीत बड़ा लोकप्रिय जननाट्य था। कालिदास के समय यह नृत्य-प्रधान था। मालविकाग्निमित्र में परिव्राजिका इसे 'प्रयोग प्रधान नाट्य' मानती है। 'चतुष्पदोत्थं छुलिकं' का नाट्य होता था। मृदंग का प्रयोग होता था। इस प्रकार 'संगीत रचना' की जाती थी। इस स्वांग या 'संगीत' में मध्यम स्वर से उठी मायूरी मार्जना मन को मोह रही थी। इसमें कई शिष्य एवं शिष्याग्रे ने भाग लिया था। अभिनेता वस्त्राभूषण से भली भँति सजाए गए थे (मालविकाग्निमित्र अंक १)। १७ वीं शताब्दी में यह गीतप्रधान हो गया था, हों गीतों के साथ-साथ नृत्य भी होता था।^१ स्वांग आज भी गीत प्रधान ही है और इसका प्रत्येक पात्र घूँघरू बाँध कर नाचता है।

रासलीला

डा० दशरथ ओझा ने रास की परम्परा को प्राकृत और अपभ्रंश के रास या रासक ग्रन्थों से जोड़ कर 'रास' को बहुत प्राचीन सिद्ध करने का प्रयास किया है।^२ श्रीमद्भागवत में रासलीला का सविस्तर वर्णन है। संस्कृत पीयूषवर्षी जयदेव का गीत गोविन्द रासलीला के अनुकरण पर लिखा गया ग्रंथ है। श्री मनकद का मत है कि रासलीला का आरम्भ नरसी मेहता ने किया था।^३ डा० सोमनाथ का कथन है कि रासलीला का प्रारंभ महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की मृत्यु के पश्चात् हुआ क्योंकि उसमें महाप्रभु जी एवं उनके पुत्र की स्तुति गाई जाती है^४ किन्तु क्या किसी महान् व्यक्ति की वंदना उसके जीवनकाल में प्रारम्भ होने में कोई बाधा है। एक मत है कि वल्लभाचार्य जी एवं प्रसिद्ध संगीतज्ञ हरिदास जी ने रासलीला का प्रारम्भ १४६२ में किया। इस समय स्वामी हरिदास जी विश्रांत घाट पर ठहरे हुए थे।^५ नारायण भट्ट जी ने भी इसमें सहयोग दिया था। डा० दशरथ ओझा रासलीला के प्रारम्भ का श्रेय महात्मा हितहरिवंश जी को देते हैं जिनका जन्म

१. मौलाना गनीमत का नौरंगे इस्क जिसकी चर्चा ऊपर इसी प्रसंग में हो चुकी है।

२. हिन्दी नाटक उद्भव और विकास—प्र० सं०, पृ० ६४-६५।

३. दि टाइम्स आफ् संस्कृत ड्रामा ले० वाई० मनकद, पृ० १४२।

४. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, तृ० सं०, पृ० १५।

५. श्री रामनारायण अग्रवाल का लेख—रासलीला का उद्भव और विकास' (बोहार अभिनन्दन ग्रंथ, प्र० सं०, प्र० ८८१ व ८८२)।

१५०२ ई० में हुआ था। महात्मा हितहरिवंश जी ने घमंडोलाल और स्वामी हरिदास जी की सहायता से रासलीला का प्रारम्भ किया। अपने इस प्रयत्न में महात्मा हितहरिवंश जी को महाप्रभु वल्लभाचार्य एवं गदाधर भट्ट से भी सहायता मिली।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि रासलीला का प्रारम्भ १६वीं शताब्दी से हो गया था। १६वीं शताब्दी के नारायण भट्ट ने अवश्य ही रासलीला के प्रसार में बड़ा हाथ बँटाया, इसका उल्लेख स्वयं नाभा जी ने किया है। नारायण भट्ट रासलीला से दर्शकों को मोह लेते थे।

नृत्यगान गुन निपुन रास में रस बरसावत

निज लीला ललितादि चलित दंपतहि रिभावत ॥

रासलीला का नाट्य विधान—

रासलीला का आयोजन किसी देवालय या खुले मैदान में होता है। लकड़ी का मंच बनाया जाता था। फिर बाद में कुर्सियों पर गद्दे डाल कर मंच बना लिया जाने लगा। पात्र पास के कमरे में से स्वरूप भर कर आते हैं। जब राधा कृष्ण का आगमन होता है तो जनता जोर से चिल्लाती है 'राधा कृष्ण की जय'। जुगल जोड़ी विराज जाती है। लोग चरण छूते हैं। वल्लभाचार्य एवं उनके पुत्र की स्तुति के बाद स्तोत्रगान होता है। ये स्तोत्र वल्लभाचार्य जी, हितहरिवंश जी अथवा गीत गोविन्द के होते हैं। सूर, नन्ददास, परमानन्द, हित हरिवंश जी के पद भी गाये जाते हैं। नृत्य होता है। मनसुला इसका विशेष आकर्षण है जो कथा जोड़ता है। वह आने वाले पात्र से पूछता है—तू कौन है? सखी उत्तर देती है—ललिता। वाद्ययंत्र एवं संगीत के सहारे सामूहिक नृत्य होता है। बीच में कृष्ण रहते हैं। तालियों अथवा डांडियों बजा कर भी नृत्य किया जाता है। कृष्ण अदृश्य हो जाते हैं तो गोपियों रोती हैं। दधि लीला या अन्य लीलाएँ भी बाद में खेली जाने लगीं। यह नृत्य-प्रधान जननाट्य है। संगीत भी साथ में प्रवाहित रहता है।

रामलीला

रामलीला के प्रारम्भ का श्रेय महात्मा तुलसीदास जी को दिया जाता है। रामलीला उत्तर प्रदेश का मुख्य जननाट्य है। गाँव गाँव में यह देखा जा सकता है। कुछ स्थान निश्चित किए जाते हैं। रामलीला की भाँकियाँ निकलती हैं जिसमें रामचरितमानस के अनुसार पाठ या संवाद होता है। एक खुले मैदान में प्रतिदिन रामलीला का अभिनय होता है। सर्वत्र रामचरितमानस ही सहायक है। मैदान में एक तम्बू गाड़ दिया जाता है या कोई कमरा

बनाया जाता है जहाँ से पात्र चेहरे लगा, लाल, काले, पीले वस्त्र पहिन और शस्त्र या मगल्लाला इत्यादि हाथ में ले बाहर निकलते हैं। एक स्थान पर समवेत स्वर में *रामचरितमानस* का पाठ होता रहता है। उसी के अनुसार अभिनय होता है।

आज रामलीला नाटक के रूप में भी खेली जाती है। एक १२० वर्ष के बूढ़े ने जिसका जन्म १८२६ ई० में हुआ था, मुझे बताया कि उसने अपने बचपन में भी एक पर्दा टॉग कर रामलीला होने की बात सुनी थी। इस रामलीला में गाना बजाना होता था। सामूहिक स्वर से वाद्ययंत्रों—ढोलक मंजीरों—के साथ *रामचरितमानस* का पाठ होता था। पात्र पर्दे से बाहर आ अभिनय एवं सवाद करते थे। पर्दा दो बॉसों के सहारे से खड़ा किया जाता था। किसी भी रंग से रंगा यह पर्दा होता था। एक ऊँचे आसन पर बैठ कर पंडित ऊँचे स्वर से *रामचरितमानस* की पंक्तियाँ गाता था। पास में बैठे वाद्ययंत्र बजाने वाले एवं अन्य पुरुष समवेत स्वर में कहते थे “रामलिला, भई राम लिला।” वहीं ऊँचे आसन पर बैठा पुरुष चौपाइयों से किसी पात्र का परिचय कराता था। पात्र भी अभिनय करता हुआ चौपाई पढ़ता था। संवाद भी चौपाइयों में होता था। धीरे धीरे पात्र चौपाइयों के अर्थ को गद्य में भी बोलने लगे। उसने मुझे बताया कि उसके बचपन में गद्य भी बोला जाता था, बीच बीच में पात्र चौपाइयों गाता भी था।

अन्य जननाट्य

हिन्दी प्रदेश के चारों ओर समस्त भारत में उसकाल में जन नाट्य शैलियों का प्रचलन था। निकट ही बंगाल में ‘यात्रा’ की धूम थी। श्री महाप्रभु चैतन्य देव (१४८६-१५३३) ने अपने मौसा चन्द्रशेखर के घर में ‘रुक्मणी’ का अभिनय किया था।^१ ‘यात्रा’ को चैतन्य महाप्रभु से बल प्राप्त हुआ। यह यात्रा कृष्ण यात्रा थीं क्योंकि इसमें कृष्ण जीवन सम्बन्धी कथाएँ ही ली जाती थीं। बाद में यात्रा कालियदमन नाम से प्रसिद्ध हुई। १६वीं शताब्दी तक आते आते यात्रा में अश्लीलता आ गई थी। पं० राम-नारायण तर्करत्न, *रत्नावली* (१८१५ ई०) में सूचना देते हैं कि लोग यात्राओं से घृणा करने लगे थे।^२ “औपरा” ने भी यात्रा को धक्का पहुँचाया। यात्रा बंगाल की अपने देन थी। शिक्षित-अशिक्षित, नागरिक-ग्रामीण, धनी-निर्धन, सभी तरह के लोगों का मनोरंजन करने में यात्रा

१. हेमेन्द्र नाथ दासगुप्त कृत दि इंडियन स्टेज, भाग १, पृ० ६५।

२. वही, पृ० १३५।

‘बेजोड़’ थी। इसलिए इसके अदृश्य होने पर बहुतों ने दुःख प्रकट किया।^१ यात्रा का रूप विधान क्या था? देवपूजा के उत्सव के उपलक्ष्य में मेला, शोभा-यात्रा और नाट्यगीत—ये ही इसके उपकरण थे। यात्रा में स्वांगों के समान गीतों का प्राधान्य था और रामलीला, रासलीला जैसा मंच था एवं था धार्मिक वातावरण। वास्तव में यात्रा भी स्वांग, रासलीला और रामलीला जैसा लोकप्रिय जननाट्य था। इसमें रंगमंच की विशेष व्यवस्था न थी, मन्दिर के आँगन तो इसके प्रिय नाट्य-गृह थे ही किन्तु बड़े भवनो में और राजमागों पर भी यात्राओं का अभिनय हो जाता था। पहिले इसका रूप धार्मिक था। बाद में यह जननाट्य प्रेम-भावों से भर गया। डा० सुनीति-कुमार का मत है कि यात्राओं में कथोपकथन और अभिनय भी सम्मिलित रहते थे।^२ यात्रा का प्रारम्भिक रूप संगीतात्मक था। कहीं-कहीं बीच में कुछ सवाद भी होता था। सूत्रधार बीच-बीच में वर्णन देता था एवं कथा को जोड़ता था। विदूषक भी रास के मनसुखा की नाई हास्य उत्पन्न कर देता था।

बंगाल की यात्रा और उत्तरप्रदेश के स्वांग-रास-रामलीला के सदृश महाराष्ट्र में ललित और गोंधल जननाट्य बड़े लोकप्रिय थे। महाराष्ट्र के विद्वानों का अधिकांश मत है कि ललित १७वीं शताब्दी में भली प्रकार प्रचलित जननाट्य था। संत तुकाराम (१७वीं शताब्दी) के अभंगों में ललित का उल्लेख है।^३ इसमें संवाद कम होता था। सूत्रधार एवं विदूषक रंगमंच पर सदा खड़े रहते थे जो बीच-बीच में कथा एवं वर्णन में योग भी देते थे। ललित के ही सदृश महाराष्ट्र का दूसरा प्रसिद्ध जननाट्य गोंधल था। विवाह एवं अन्य उत्सवों पर गोंधल खेला जाता था। ललित अभिनय एवं संवाद प्रधान था तो गोंधल नृत्य और गीत प्रधान। गोंधल कई प्रकार के स्वांगों की खिचड़ी है। गोंधल में अनेक प्रकार की कथाएँ, समसामयिक नकलें, नृत्य एवं गीत सम्मिलित थे। मुख्य अभिनेता कथात्मक अंश गाता था। दूसरे अभिनेता कुछ सवाद भी कहते थे।^४ महाराष्ट्र का तीसरा प्रसिद्ध

१. प्रबोधकुमार मजुमदार का लेख, ‘बंगाल का प्राचीन जननाट्य—यात्रा, नयापथ, जून १९५६ (नाटकांक) में पृ० ५२८।

२. प्रो० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना का लेख ‘भारतीय रंगमंच का विकास’ (साहित्य संदेश, जुलाई-अगस्त १९५५ अन्तःप्रान्तीय नाटकांक पृ० १२।)

३. प्रो० विनयमोहन शर्मा का लेख ‘मराठी नाट्यकला और रंगभूमि’ (नई धारा अप्रैल-मई १९५२, रंगमंच विशेषांक, पृ० २५।)

४. वही, पृ० २४।

जननाट्य 'तमाशा' भी गीत प्रधान था। गुजरात के लोकप्रिय जननाट्य भवाई में एक ही कथा नहीं होती थी। कई कथाओं को जोड़ कर भवाई जननाट्य प्रदर्शित होता था। गीतों की भरमार होती थी। बीच-बीच में हास्य भी प्रस्फुटित किया जाता था। दो आदमी एक पर्दा पकड़े रहते थे। भवाई के विषय लौकिक होते थे।

केरल जननाट्य 'कूत्तु' बहुत प्राचीन है। श्री के० आर० पिशरोती का मत है कि यह आठवीं शती से पूर्व का है।^१ इसी कूत्तु का एक भेद है कुटियाट्टम्। यह एक प्रकार का नाटक अभिनय है जो कई दिन तक किया जाता है। यह वर्णनात्मक नाटक का एक प्रकार ही समझना चाहिए। अन्तर यही है कि अभिनेता अभिनय करते हैं और विदूषक व्याख्या करता रहता है। किन्तु केरल के जिस जननाट्य ने अन्तःप्रान्तीय ख्याति प्राप्त की है, वह है 'कथकली'।^२ इस नाट्य के लिए मलयालम का प्रचुर साहित्य निर्मित हुआ। कुछ विद्वान् कथकली को बहुत प्राचीन मानते हैं। १७ वीं शताब्दी में यह प्रचलित था।^३ कथकली बड़ी सज्जधज से खेला जाता है। वाद्य यंत्रों के साथ एक मनुष्य गाता रहता है और अन्य अभिनेता मूक नाट्य करते हैं। कथा महाकाव्यों से ली जाती है। दो आदमी एक पर्दा पकड़े रहते हैं।

केरल के कुटियाट्टम्, कूत्तु और उत्तरी भारत के स्वांग, यात्रा, रास एवं रामलीला जैसे तेलुगु के यत्न गान और वीथि नाटक हैं। यत्नगान का लिपिबद्ध साहित्य १७वीं शती से प्राप्त होता है। यत्नगान में गीतों की प्रधानता होती है। कथानक पुराणों, विशेषतः रामायण-महाभारत से लिये जाते हैं। पात्र गाते रहते हैं और बीच बीच में कभी सूत्रधार आ कर 'गद्यांश' भी पढ़ देता है। इधर-उधर कथा से अलग विछिन्न गेय अंश भी गाये जाते थे। जब कोई पात्र प्रवेश करता है तो कवि उस पात्र की वेशभूषा, पराक्रम आदि का वर्णन करता है। कभी कभी पात्र स्वयं भी अपने विषय में बता देता है। वीथि नाटक में एक छोटा सा पंडाल कहीं तान लिया जाता है जिसके सामने एक पर्दा होता है। अभिनेता किसी पास वाले मकान से स्वांग भर भर कर पर्दे के पीछे जा खड़े होते हैं। पर्दे के भीतर से समवेत गान होता रहता है। अभिनेता भी कुछ समय तक उनके साथ गाता है, फिर पर्दे के भीतर से अपने विषय में बताता है। तत्पश्चाद् बाहर आ कर अभिनय करता है। जब कोई नया अभिनेता आने वाला होता है तो पर्दा ढक दिया जाता है। पहिले

१. विलसन कृत, द थियेटर आव द हिन्दूज, पृ० १६५।

२. विलसन कृत, द थियेटर आव द हिन्दूज, में के० आर० पिशरोती का लेख, 'द साउथ इंडियन थियेटर' पृ० १७६।

वाले पात्र पदों के बाहर खड़े रहते हैं। आने वाला पात्र पुनः पदों के पीछे से अपना परिचय, अपने आगमन का उद्देश्य कह कर बाहर निकलता है।

जननाट्यों का यह विवरण हमें ब्रजभाषा नाट्यों की शैली समझने में अमूल्य सहायता देता है। इन जननाट्यों से प्रकट है कि ब्रजभाषा नाटक काल (१७वीं १८वीं और १९वीं शताब्दी) में भारत भर में जननाट्य शैलियाँ प्रचलित थीं। इनकी कुछ सामान्य विशेषताएँ भी प्राप्त होती हैं—

(१) ये जननाट्य पद्य-गीत मय थे। गद्य का प्रयोग अत्यन्त अल्प ही था। नृत्य भी साथ साथ चलता था।

(२) जननाट्यों की शैली काव्यात्मक थी। कोई एक व्यक्ति—उस्ताद, गुरु, रगाचार, कवि, सूत्रधार, गोधल, विदूषक या अन्य प्रमुख अभिनेता—बीच बीच में पात्र परिचय और वर्णन देता था एवं कथा को अग्रसर करता था।

(३) कुछ में एक पदों का भी प्रयोग होता था। अन्त्यों में पात्र किसी निकटस्थ कक्ष या भवन से वेश बना कर 'सभा' में आते थे।

ब्रजभाषा नाटकों में वर्णनात्मक एवं कथात्मक शैली जिसे काव्यात्मक शैली भी कह सकते हैं, उस काल में प्रचलित जननाट्य शैलियों के ही कारण है। वह ब्रजभाषा नाटककारों की मौलिकता ही है कि उन्होंने संस्कृत नाटककारों का अंधानुकरण नहीं किया। केवल हिन्दी में ही नहीं बरन् संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं में भी उस काल में तथा उससे पूर्व काल में जन-नाट्य शैली पर लिखे नाटक प्राप्त होते हैं। इनमें कवि स्वयं भी कथा कहता है।

संस्कृत नाटकों में कथात्मक शैली

संस्कृत के भी कुछ नाटक कथात्मक शैली पर लिखे मिलते हैं। महाकवि कालिदास कृत विक्रमोर्वशीय नाटक के चौथे अंक में पात्रों के अतिरिक्त सूत्रधार की भी आवश्यकता पड़ती है। राजा विक्रम प्रियतमा उर्वशी के विरह में जंगलों की खाक छान रहा है। वह अत्यन्त शोक-संतप्त हो हो कर विलाप और प्रलाप करता है। नाटककार 'नेपथ्य' के व्याज से एक अन्य कथा देता है एवं वर्णन करता है।

(नेपथ्य में)

(एक बड़ा सा हाथी अपनी प्यारी के विछोह में पागल होने के कारण अपने मन की व्यथा प्रकट करता हुआ सा पेड़ों के फूलों और कोमल पत्तों से अपने बड़े शरीर को सजाता हुआ वन में चला आ रहा है) ४-५ ।

(नेपथ्य में)

(जब जवान हंस अपनी प्यारी के विछोह में पंख फड़फड़ाता हुआ

आँखों में आँसू भरे तालाब में बैठा सिसक रहा है) ४-६ ।

(नेपथ्य में)

(मैने समझा था कि मृग के समान आँख वाली मेरी उर्वशी को कोई राक्षस हर कर लिये जाता है, पर यहाँ केवल बिजली को चमकाता हुआ बादल पानी बरसा रहा है) ४-८ ।

(नेपथ्य में)

(पत्तों की मधुर खड़खड़ाहट से भरे और फूलों से लदे हुए वृक्षों के पत्ते वाले हस वन में यह प्यारी के बिछोह से पागल बड़ा सा हाथी इधर उधर घूम रहा है ।)

(नेपथ्य में)

(यह देखो, समुद्रों के स्वामी का कैसा अच्छा नृत्य हो रहा है । जल में पड़ी हुई मेघों की परछाईं ही उनके शरीर हैं । पुरवैया पवन से उठी हुई लहरें ही मानों नृत्य के लिए उठाए हुए उनके हाथ हैं । शंख और हंस आदि पक्षी उनके पैर के धुँधरू और आभूषण हैं । हाथियों मगरों के झुंड ही उनके नीले वस्त्र हैं, नीले कमल ही उनकी मालाएँ हैं, तीर से टकराती लहरे ही मानों ताल दे रही हैं और इसी बीच वर्षाकाल ने आ कर सब दिशाओं को ढँक भी लिया है^१ । ४-५४

प्रो० कीथ का कथन है कि विक्रमोर्वशीय नाटक का यह अंक जन-नाट्य शैली पर निर्मित है ।^२ इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि इन स्थलों को अन्य एक व्यक्ति अथवा अन्य कई व्यक्ति कहेंगे या गावेंगे । वह सूत्रधार भी हो सकता है । प्रो० कीथ कहते हैं कि नेपथ्य से ये स्थल दूसरे अभिनेताओं द्वारा गाये जायेंगे । इससे ऐसी सम्भावना होती है कि कालिदास के समय में अवश्य ऐसी जननाट्य शैली प्रचलित थी जिसका आभास इस चौथे अंक में प्राप्त होता है । यह भी सम्भव है कि कालिदास और भास के समय या उनसे पूर्व कुछ नाटक इस शैली पर निर्मित भी हुए हो जो अब प्राप्त नहीं होते । उन आरम्भिक नाटकों में यूनानी नाटकों जैसी वर्णनात्मक शैली रही होगी । यूनानी नाटकों में सूत्रधार का कार्य 'कोरस' करता है । संस्कृत साहित्य में महानाटक अधिक नहीं हैं जिनमें 'हनुमन्नाटक' को विशेष आदर प्राप्त है । यदि इसकी शैली की परीक्षा की जाय तो इसमें वही कथात्मक शैली मिलेगी जो ब्रजभाषा नाटकों में प्राप्त होती है । इस नाटक में कवि स्वयं रंगमंच पर आ कर कथा आरम्भ करता है कि दशरथ के यहाँ राम का जन्म हुआ (१-५) ।

१. कालिदास ग्रंथावली (अनुवादक, पं० सीताराम चतुर्वेदी) से उद्धृत है ।

२. कीथ—'संस्कृत ड्रामा' (१९२४), पृ० २७५ ।

विश्वामित्र ने आ कर राम को माँगा। राम, लक्ष्मण को साथ ले कर विश्वामित्र के पीछे पीछे चल दिए (१-६)। राम ने ताड़का को मार गिराया। कौशिक से विद्याएँ सीखीं। मारीच को दूर फेंक दिया (१-७)। राम-लक्ष्मण कौशिक के साथ स्वयंवर पहुँच गए। दूसरे अंक में कवि स्वयं कथा दे रहा है, कोई संवाद वहाँ है ही नहीं। ३ से १० तक सूर्यास्त एवं निशागमन का वर्णन है। ११ से २३ तक राम-सीता का रति-वर्णन है।

कवि घोर शृंगारिक हो गया है और चुम्बन, आलिंगन नख-क्षत इत्यादि का वर्णन स्वयं करता है। अंक तीन भी अधिकतर कथात्मक है। जब पात्र रंगमंच पर आता है तो नाटककार स्वयं उसका परिचय देता है जैसे जब पहिले अंक में परशुराम जी आते हैं तो कवि उनका परिचय बड़े विस्तार से देता है (छन्द २८, २९, ३०, ३१ और ३२)।^१ फलतः प्रो० लूडर्स इसे छायानाटक शैली का नाटक मानते हैं।^२ प्रो० कीथ का मत है कि यह अभिनय के लिए लिखा गया था। इसके संवादों में अन्य पात्रों के साथ सूत्रधार भी भाग लेता था। सूत्रधार कथात्मक एवं वर्णनात्मक स्थल गाता था। प्रो० कीथ इसे स्वांग शैली का नाटक मानते हैं।^३ डा० सत्येन्द्र निश्चयपूर्वक नहीं कह पाते हैं कि यह स्वांग शैली पर लिखा गया अथवा स्वांग शैली इससे उपजी।^४ श्री चन्द्रभान गुप्त भी इसे जननाट्य शैली का नाटक स्वीकार करते हुए कहते हैं कि इसके खेलने के लिये एक अस्थायी रंगमंच बनाया जाता था। कोई शृंगार सज्जा इस रंगमंच पर न होती थी। नृत्य और गीत की प्रधानता रहती थी। कवि स्वयं मंच पर आ कर कथात्मक एवं वर्णनात्मक पद्यांश गाता था और संवाद गाये जाते थे पात्र-पात्रियों द्वारा।^५

हनुमन्नाटक की ही शैली ब्रजभाषा नाटकों में प्राप्त होती है। हाँ, वहाँ गद्य छोड़ दिया गया है, यह युग का अन्तर था। हनुमन्नाटक की ही शैली का नाटक गोपाल केलि चन्द्रिका नाटक है। इसके लेखक हैं गुजरात के रामकृष्ण कवि। इसका रचना-काल तो ज्ञात नहीं, किन्तु यह है महानाटक

१. हनुमन्नाटक—वैभव प्रेस बम्बई द्वारा मुद्रित।

२. कीथ कृत संस्कृत ड्रामा, पृ० २७०।

३. कीथ कृत संस्कृत ड्रामा, पृ० २७३।

४. साहित्य संदेश, जुलाई-अगस्त १९५५, पृ० ६० (अंतःप्रान्तीय नाटकांक)।

५. दि इंडियन थियेटर, ले० श्री सी० बी० गुप्त (१९५४), पृ० २६।

के बाद की रचना ।^१ नाटक में पद्य और गद्य दोनों ही वर्णनात्मक शैली में हैं । इन अंशों को सूत्रधार पढ़ता था, एक स्थान पर यह भी इसी नाटक में लिखा मिलता है ।^२ इस प्रकार स्पष्ट है कि सूत्रधार सदा रंगमंच पर स्थित है । पाँचवें अंक में महाभारत का वर्णन है । वर्णनात्मक स्थल पर्याप्त हैं । कृष्ण योगमाया को बुलाते हैं । कृष्ण उसे आज्ञा देते हैं कि जा कर गोप-वधुओं को बुला ला । तब कवि वर्णन करता है कि कृष्ण, बाँसुरी की जगत-विमोहिनी तान छेड़ देते हैं और गोरिकाएँ मंत्रमुग्ध सी खिची चली आती हैं । देवता भी आ कर वन्दना करते हैं । भागवत के कई श्लोक उद्धृत हैं । इसके बाद रासनृत्य आरंभ होता है । कवि इस रास-नृत्य का स्वयं वर्णन करता है । कीथ इसे रहस्यवादी नाटक मानते हैं^३ और मत देते हैं कि यह भी स्वांग शैली का है ।

१३-१४वीं शताब्दी का मुरारी-कृत अनुग्रह राघव नाटक भी वर्णनात्मक शैली रखता है । सातवाँ अंक केवल वर्णनात्मक है । हरिशंकर दीक्षित कृत प्रद्युम्न-विजय नाटक भी वर्णनों से भरा पड़ा है । वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य कृत चित्रायज्ञ में लम्बे रंग-संकेत हैं । निश्चय ही ये लम्बे रंग संकेत सूत्रधार के पढ़ने के लिए लिखे गए हैं । इन विस्तृत रंग-संकेतों को बिना पढ़े नाटक का कथानक समझ में आ ही नहीं सकता । दूसरे अंक के आरम्भ में ये रंग-संकेत हैं, 'दक्ष प्रवेश करता है । आ कर मिहासन पर बैठ जाता है । तत्पश्चात् सेवकों को आज्ञा देता है कि शालि ब्राह्मणों के हाथों में दिए जायें ताकि ब्राह्मण चावल ले कर आशीर्वाद दें । ब्राह्मण चावल हाथों में ले कर स्वस्ति वाचन करते जाते हैं और चावल फेंकते जाते हैं ।'

पाँचवें अंक में वीरभद्र दक्ष-यज्ञ को विध्वंस कर रहा है । कवि उसका वर्णन दे रहा है—

‘वीरभद्र ने पदाघात से भूमि को कँपा दिया । उसके नेत्र क्रोध से अंगारा बने थे । उसने अपनी दीर्घ बाहों को ऊपर उठाया । कुछ देवताओं को पकड़ पृथ्वी पर पटका । कुछ को पैरों से रौंदा, कुछ के दाँत उखाड़े, कुछ की दाढ़ियों नोचीं, कुछ के कान उखाड़े, कुछ की भुजाएँ तोड़ीं, कुछ को मुख-नाक विहीन किया, तो कुछ को कराघातों से मसल डाला, कुछ को पकड़ यज्ञ की आग के हवाले कर दिया ।’

१. कीथ कृत संस्कृत ज्ञाना, पृ० २७२ ।

२. कीथ कृत संस्कृत ज्ञाना, पृ० २७२ ।

३. कीथ कृत संस्कृत ज्ञाना, पृ० २७४ ।

इन्हीं से ब्रजभाषा नाटक अपना नाता जोड़े हुए हैं। यह वर्णनात्मक शैली ब्रजभाषा के अनूदित नाटकों में ही नहीं, मौलिक नाटकों में भी मिलती है।

अन्य भाषा नाटक

हम पीछे तेलुगु के यत्नगान नाट्य की चर्चा कर चुके हैं। इस जन-नाट्य को दृष्टि में रख कर तेलुगु में अनेक नाटकों का निर्माण हुआ था। इनमें से कुछ मुख्य नाटक ये हैं—सुग्रीवविजयम् (१६ वीं शताब्दी), हनुमंत विजयम्, कुशलव नाटकम्, अहल्या संकदनीयम्, रामानुजविजयम्, शशिरेखा परिणयम्। तेलुगु के प्रसिद्ध भक्त कवि श्री त्यागराज (१७६४-१८४६) ने दो नाटक—प्रह्लाद विजयम् और नौका विजयम् इसी शैली पर लिखे। इन नाटकों में स्वयं कवि पात्र-परिचय देता है, वर्णन करता है और कथा को आगे बढ़ाता है। ये सब गीत-प्रधान हैं। वीथि नाटक भी काव्यात्मक शैली लिए थे। १६वीं एवं १७वीं शताब्दी में प्रबोधचन्द्रोदय, अभिज्ञान-शाकुन्तलम् एवं अन्य संस्कृत नाटकों का अनुवाद, वीथि नाटकों के रूप में हुआ। इस काव्यात्मक शैली पर वीथि नाटक लिखनेवालों में वल्लभराय का नाम प्रमुख है।^१ मराठी के प्रसिद्ध नाटककार विष्णुदास भावे का नाटक सीता स्वयंवर (२० का० १८४३ ई०) इसी वर्णनात्मक शैली पर लिखा गया है। सूत्रधार प्रारंभिक कथा कहता है। पात्र प्रवेश करता है। पात्र बोलते-बोलते कहता है 'कहता हूँ सुनो'। रंगमंच पर खड़ा सूत्रधार फिर पद्य गा कर पात्र के मनोभावों को व्यक्त करता है। सूत्रधार एवं विदूषक सदा मंच पर उपस्थित रहते हैं। इसके अभिनय में केवल एक काले पर्दे का प्रयोग किया गया था।^२ विष्णु भावे के सभी नाटक इस वर्णनात्मक शैली के हैं।

गुजराती के आरंभिक १६वीं शती के नाटक भी इसी वर्णनात्मक शैली के हैं। कुछ संवाद दिया जाता है। फिर कहानी दी जाती है। और बताया जाता है कि आगे क्या हुआ।^३

१. श्री न० वी० राजगोपालन, लेख—'तेलुगु नाटक का साहित्य', 'साहित्य संदेश', जुलाई-अगस्त १९५५ ई०, अन्तःप्रान्तीय नाटकांक पृ० ३३।

२. (क) श्री विनयमोहन शर्मा, लेख—'मराठी नाट्य कला और रंगभूमि'—'नई धारा', अप्रैल-मई १९५२, पृ० २६-२७।

(ख) श्री निवासनारायण बनहट्टी, लेख—'मराठी नाट्य और रंगमंच', 'साहित्य संदेश', जुलाई अगस्त १९५५ ई०, पृ० ६६, श्री निवास नारायण ने इसे १७४३ में अभिनीत माना है।

३. डा० पद्मसिंह शर्मा—लेख—'गुजराती नाटक का विकास', 'साहित्य संदेश', जुलाई-अगस्त १९५५ ई०, पृ० ६३।

इन जननाट्य शैलियों एवं इनपर लिखे संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं के नाटकों को एक पलड़े में और ब्रजभाषा नाटकों को दूसरे में रख कर तोलें तो ब्रजभाषा नाटक भी नाटक ही सिद्ध होंगे, भले ही वे आरंभिक या शिशु नाटक कहे जायँ। कर्णभरण नाटक की पहाड़ी शैली में एक संपूर्ण चित्रावली मिली है। यह संभवतः १८१६ ई० की है। इसके आधार पर श्रीगोपालकृष्ण का अनुमान है कि स्यात् त्रैविक्रम की भाँति इसका भी 'चैत्रिको' द्वारा नाट्य हुआ था।^१

ब्रजभाषा नाटकों से आन्तरिक प्रमाण

यह बाह्य प्रमाणों की बात रही। स्वयं इन ब्रजभाषा नाटकों में जननाट्य शैलियों के स्पष्ट संकेत मिलते हैं।

एक पर्दा

कुछ नाटकों से पता चलता है कि एक पर्दा टोंगा जाता था। इस पर्दे के पीछे नेपथ्य था। इस पर्दे को उघाड़ कर पात्र बाहर आते थे और फिर पर्दा ऊपर उठा नेपथ्य या पर्दे के पीछे चले जाते थे। पर्दे की चर्चा हमें 'भवाई' 'कथकलो' 'वीथिनाटक' 'रामलीला' से मिलती है।

(१) पर्दा उघाड़ कर पात्र बाहर जाता है—

परदा पोलि वैधानस आयौ चल्यौ १-८४

परदा के पट टारि के लख्यो विदूषक आनि २-२

परदा पटहि उघारि द्वारपालक तत्र आयौ २-३८

आई सषी पट उघारि ४-१

लिये कर पत्र तत्र प्रतिहारी भई परवेश सु अंबर टारि ६-५२

धौकल मिश्र कृत 'शकुन्तला नाटक'

परदातें बाहिर तहां आयो जन कल हंस । विष्कंभक, प्रथम अंक ।

फेरि रंगु पट टारि । द्विज आयौ मकरंद तहाँ । १-८

पट उघारि कै सभा मैं आयौ माधव आप १-१४

तत्र आई मंदारिका दासी पट कौ टारि १-१०६

पुनि परदा को टारि तहँ आई चेरी दोइ २-१

इतने में पटु टारि मालति और लवंगिका

आई औसर घारि रंगभूमि में चाह सों २-१८

पट के बाहिर आइ यह बोली, बचन उचित २-७०

१. कलानिधि १-१ आषण्य २००५, लेख 'कर्णभरण और उसकी चित्रावली' ।

इतने में बुद्धि रक्षिता आई अंबर टारि ३-१

सिद्धिनी आई पटहि उघारि ३-२६

पट उघारि के सभा में आई विकट सरूप

माधव पर्दे तें बाहिर आया ५-२१

सोमनाथ कृत 'माधव विनोद'

तासु स्वांग पट ओट रह्यो ३-७६

तबहि स्वांग मनमत्थ को बोलि उठ्यो पट ऐन । ३-५५

तबहि स्वांग अहंकार को पट तें प्रगट्यो आपु ।

तेहि छिन पट मंदिर तें आए २-१०६ ।

ब्रजवासीदास कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय'

(२) पात्र पर्दा उघाड़ जाता है

इहि भाँति दोउ बतराये । पुनि पट भीतर दुरे सुहाये । प्रस्तावना

जब पर्दा की ओट में सधिन सहित सो नारि

दुरी अचानक जाइ के प्रेम रंग विस्तारि १-२२०

इहि विधि की बतरानि करि दुरे सुपट में जाय १-२२५

एक संग दुरियो पटहि उघारिकै २-१४०

धोकल मिश्र कृत 'शकुन्तला'

दुरि गई ओट पट में रसाल । अंक ८

परदा के भीतर गई उर में हरष बढ़ाई । अंक १

यो कहि दोऊ नाचि सभा तें निकसि गई परदा में छाँ तें । अंक २

सोमनाथ कृत 'माधव विनोद'

(३) नेपथ्य

नेपथ्य जो है कनात को वह पार जामें यह कोलाहल भयो

'परम प्रबोध विधुनाटक' : टीका १८४७

पट उघारि नेपथ्य को । ५-१

पट उघारि नेपथ्य कौ अनुसूया तब आई ४-४५

तबै धुनि और भई पट माहों । सुनी अनुसूया सु कान लगाय ४-१२

और 'ख्याल' तत्काल नेपथ्य ही तब खोलि कै २-१६४

धोकल मिश्र कृत 'शकुन्तला'

इहि समय मैं प्रतिहारि निपथ्य अर्द्ध उघारि । (२-६३)

सोमनाथ कृत 'माधव-विनोद'

(४) गृह या आवास, रंग सज्जा रूप में

कुछ जननाट्य शैलियों में पर्दा न होता था । पात्र मंच पर पास में बने किसी मकान या कमरे में से आते थे । यह कक्ष पहिले से ही होता था, यदि नाट्य किसी मन्दिर या मकान के सामने होता था । यदि नाट्य खुले मैदान में होता था तो लकड़ी और फूस से एक कक्ष बनाया जाता था अथवा तंबू गाड़ा जाता था ।

इतनी कहि ग्रह मध्य धस्यौ पुनि घरनी सों इमि बोल्यो (प्रस्तावना)

इहि विधि बैन कहत दोऊ वर नारि ।

छिपि आवासहिं जाय सुकाज सुधारि । ३-७५

इहि औसर मन्दिर तैं निसकै उज्ज्वल रूप प्रकासै । ६-६२

धौकल मिश्र कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय'

महामोह तब कीन उचारा । धस्यो बने अथ वास अगारा । १-१६५

मन्दिर निकसि विवेक पुनि पिष इम कीन प्रकास । ३-१३६

गुलाबसिंह कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय'

आगे करी कनात इक स्वांग बनावन काज ।

नानक दास कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' ।

(५) सूत्रधार या कवि का सहयोग

जब पात्र प्रवेश कर रहा है तो सूत्रधार पढ़ता है—

वैषानस आयौ अति रिस छायाँ बनतैं धायौ पाव नहीं

कर कमल उठाए बचन ठिठाएँ मृगहिं बचाए वात नहीं

धौकल मिश्र कृत 'शकुन्तला'

कामंदकि अवलोकित इहि विधि बाहर आइ

नृत्य कियो दोउन मिलि लीनी सभा रिभाइ । १-२२

सोमनाथ कृत 'माधव विनोद'

छूटे चिकुर चरण लौं लसै, हाइन के आभूषन कसै

नैन रंगिले मनु पद लिए, ओ वेष कपालिनि के किए । ३-७६

ऐसो कहत सभा मैं आयो पट मन्दिर तैं ताको ६-५३

ब्रजवासीदास कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय'

(६) पात्र द्वारा अभिनय

पात्र मंच पर आता है । सूत्रधार उसका वर्णन कर रहा है । वह उसकी वेशभूषा बताता है । तब तक पात्र क्या करता है ? स्वांग, रास इत्यादि जन नाट्य-शैलियाँ नृत्यगान प्रधान थीं । उत्तरी भारत के नृत्य में वह कला न थी जो दक्षिण भारत में थी । तब भी पात्र मंच पर आ कर खाली

खड़े न होते थे । सब कवि या सूत्रधार पात्र परिचय दे रहा है तो पात्र या तो इधर उधर घूमता था अथवा नाचता था । पुरुष पात्र भी नाचते थे । ऐसा तत्कालीन जननाट्य शैली रास, स्वांग इत्यादि के कारण ही होता था । उस काल के दर्शकों को इसमें अखरने वाली कोई बात न थी । आज भी स्वांग एवं रासों में सब पात्र नाचते हैं—मटकते हैं । पात्र आ रहा है तब सूत्रधार पढ़ता है—

पट उधारि कै सभा में आई विकट सरूप
कूर कपाल सुकुंडला नभ के गमन अनूप ।
रटे जु नित्य नाम और चरच्चई पिछानि है
तिन्हैं प्रसिद्धि सोमनाथ अष्ट सिद्धि दानि है ।
जरे विसाल से विसाल नैन नील वर्ण मैं ।
कराल अंत्र जाल मैं कपाल कंठ कर्ण मैं ।
हलै धुजा सुरंग छोरि काटि जोरि खग कै
खट्कई सुमुंड माल हू उरोज लग्न कै । 'माधव विनोद'

इस समय कपालकुंडला नृत्य करेगी । बहुधा लोग समझते हैं कि अनुवादक ने 'नाटयति' का अर्थ नाचती है या नञ्चित कर दिया है । ऐसी बात नहीं है । ये नाटककार पात्रों को नाचाते हैं क्योंकि तत्कालीन जननाट्य शैलियों के अनुसार नाचना प्रधान आकर्षण था, अतः नाटकों में भी नाचने का बहुत वर्णन है—

स्त्रियाँ मञ्च पर आ नाचती हैं ।

प्रथम नृत्य करि मोद भरि बहु विधि रसहिं बढ़ाय । ३-७७

ब्रजवासीदास कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक

कामंदकि अवलोकिता इहि विधि बाहर आई

नृत्य कियौ दोउन मिलि लीनी सभा रिभाइ । १-२२

इतने में पट टारि मालति और लवंगिका

आई और धारि रंगभूमि मैं चाह सौं । २-१८

नञ्ची सभा में भ्रमर मालती सहित लवंगिका । २-१९

पुनि समाज मैं नाचिकै बुद्धिरक्षिता आप । ३-३

यों कहि सभा मधि नञ्चिकै । सुरताल तानति जञ्चिकै । १-४

यों कहि दोऊ नाचि सभां ते निकसि गईं । २-९

'माधव विनोद'

यहाँ नृत्य करना 'नाटयति' का अर्थ नहीं है क्योंकि कवि, और अधिक स्पष्ट करता है—

माधव को मुष लखि सकुलि लज्जा संक समेति ।

नाची रुचि सों मालती अनु चपला गति लेति । ६-३०

‘माधव विनोद’

भगवती को नाच कर प्रणाम किया जाता है—

विविध भौति सब नचि कै करि भगवतिहिं प्रनाम

‘माधव विनोद’

आई सषी पट उधारि दुहूँ सभा में

नाची अनूप लहि कै गति अंग भाँमें । ४-१

इतनी कहि उतरी सभा नाची गति बहु मंद । ६-३७

धौकल मिश्र कृत ‘शकुन्तला’

स्त्रियों केवल नाचती ही नहीं अन्य ‘नाट्य’ भी करती हैं । वह घूमती फिरती हैं, डोलती हैं, परिक्रमा करती हैं—

कामंदकी पट उधारि फिरयो सु आई ।

घुम्मति माधव गहे अति मोद छाई ॥ (अंक ४)

यो कहि परिक्रमा सभा मद्धि भरि कै पुनि बोली नेह सद्धि (अंक ८)

यों उचारि परिक्रमा करि उत्ताल (अंक ८)

‘माधव विनोद’

पुरुष पात्र इधर उधर घूमता है ।

दुष्यन्त—करि प्रदक्षिण प्रथम ही, फिरि सबको अवलोकि । १-१२

धौकल मिश्र कृत ‘शकुन्तला’

वचन सुनत मकरंद को माधव इत उत डोलि । १-१८

‘माधव विनोद’

पुरुष भी नृत्य करता है यदि वह शृङ्गारी पुरुष, दास या उन्मत्त है—

कलहंस—

फिरि नाँचि बहु विधि ऐँठि कै । छिति मैं गयो पुनि बैठि कै । १-७

मकरन्द—यो कहि बुद्धि निधान नचौ पुनि तिहिं सभा मैं ।

करि सो नृत्य उदार । इत उत फेरि निहारि कै । १-११

माधव विनोद

स्त्री पुरुष दोनों मिल कर नृत्य करते हैं—रति काम रंगमंच पर आये—

प्रथम सभा मधि आय कै लगै करन दोउ नृत्य ।

ब्रजवासी कृत ‘प्रबोध चन्द्रोदय’ १-६०

ऐसो मेष भवावनो कापाली को आय ।

अतिप्रसन्न निरत भयो सिंगीनाद बजाय ।

ब्रजवासी कृत ‘प्रबोध चन्द्रोदय’ १-३५८

माधव और अघोर बंध के बीच में युद्ध हुआ । यह ताण्डव नृत्य के

समान था । हाथों में शस्त्र थे—

पुनि कीनौ नृत्य समाज मद्धि लै गति उदंड अपारी ।

द्विजमाधव और अघोर घंट पुनि जुद्ध अत्य समुहावै ॥

‘माधव विनोद’ । ६-२५

(७) उच्च स्वर से वाक् अभिनय—

उस काल में ध्वनि विस्तारक यंत्र न थे अतः पात्र ज़ोर से बोलते थे—

सुनि भूप बैन सारथि अनंद । संभ्रम सुझाय बोल्यो अमंद । १-८३

कही विदूषक पुकारि । २-६४

उच्चरथौ उच्च सुभाय । २-१४५

आनि सभा मधि थित्त नहीं गलगाजत है । ३-२ त्रिष्कंभक

धोकल मिश्र कृत ‘शकुन्तला’

पट तैं निकसि कछौ ऊँचे मन ।

नानक दास कृत ‘प्रबोध चन्द्रोदय’

उच्चरिय बचन पुकारि । २-६३

‘माधव विनोद’

(८) ‘स्वांग’ शब्द

‘स्वांग’ एवं ख्याल शब्द का स्पष्ट उल्लेख कई स्थान पर है ।

आगे करी कनात इक स्वांग बनावन काज ।

जातैं आवैं स्वांग बन देषै सकल समाज ।

ताछिन स्वांग दंभ का आया

नानकदास कृत ‘प्रबोध चन्द्रोदय’ नाटक

और स्वांग की तहँ भई अवंदनी निरधार

आयो स्वांग सिंगार

‘माधव विनोद’

तब दंभ को स्वांग बन्यो ।

गुलाब सिंह कृत ‘प्रबोध चन्द्रोदय’

तबहिं स्वांग मनमत्थ को बोलि उछ्यो पट ऐन । ३-५५

तबहि विद्या स्वांग अनूप । ६-१५२

बहुँरौ स्वांग संग सब लए ।

निकसि सभा तैं बाहिर गए । ६-१५८

सासु स्वांग पट ओट रह्यो ३-७६

प्रगटो स्वांग सभा तब आय । ६-६५

साही समै स्वांग जीवात्मा पुरुष नाम है जाको । ६-५३

ताही समै सांति अरु स्वांग उपनिषद राति । ६-५५

मजवासी कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय'

तिहिं प्याल की रचना अब हम करिहैं ताके आगे ।

धौकल मिश्र कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय'

(६) पुरुष ही स्त्री का अभिनय करते

स्त्रियाँ रंगमंच पर नहीं आती थीं । पुरुष ही स्त्री-भूमिका में उतरते थे—

ए सुनि कै नट के बचन सूत्रधार अतुराइ
आपु गयो नेपथ्य मैं कहिकै भक्त सुभाइ
कामंदकि को रूप धरि आयो बाहिर आप
अरु बनिकै अवलोकिता नट आयो अनताप

प्रस्तावना, 'माधव विनोद'

कोउ सांब प्रभावती भाव बने कोउ हसिनि रूप तैं काम लजे ।

'प्रद्युम्न विजय' (प्रस्तावना)

(क) करुणाभरण

स्वयं कवि अपने नाटक के अभिनीत होने का स्पष्ट उल्लेख करता है । जब कवि स्वयं साक्षी है तब अन्य प्रमाण की आवश्यकता ही क्या रहती है । कवि अभिनय के सम्बन्ध में कहता है—

रसिक भगत पंडित कविन कही महाफल लेहु ।
नाटक करुणाभरनि तुम लछीराम करि देहु ॥
प्रेम बढ़ै उर निपट ही अरु आवै अवरोह ।
करुणा और स्यंगार रस जहाँ बहुत करि होइ ॥
लछीराम नाटक कियो दीनो गुनिन पढ़ाय ।
भेष रेष नर्तन निपुन लाये नर^१ निस धाय ॥
सुहृद मण्डली जोरि तहाँ कीनो बड़ो समाज ।
जो उनि नाच्यो^२ सो कस्यो कविता में सुष साज ॥

स्पष्ट है नाटक 'रसिक' अभिनेता भगत^३ (जो संगीत रूप में नाटक खेलते

१. पाठान्तर 'नट' ।

२. पाठान्तर 'काछ्यो' ।

३. आजकल शहर में विभिन्न किस्म के लोग आये हैं जो विशेष ढंग से नकलें करते हैं, और संगीत के साथ साथ आश्चर्यजनक खेल दिखाते हैं, नाच और नकल में ये उस्ताद हैं, इन्हें भगवतबाज कहते हैं । मारंगे इस्क

ये) कवि और पण्डितों ने लछीराम से करुणा-भरा नाटक बनाने के लिये कहा जिसका अभिनय देख एवं पढ़ कर हृदय से प्रेम बहे और आँखों से अश्रु-धारा । लछीराम ने ऐसा नाटक बनाया । कुछ गुणियों को पढ़ा दिया । इसके बाद कुछ आदमी नटों को ले आये जो वेशभूषा बना कर नाचने-गाने और अभिनय करने में बड़े निपुण थे । मित्र मंडली जुटी । 'समाज' शब्द साभिप्राय है । 'सुहृद् मण्डली जोरि' पर्याप्त था, परन्तु कवि जानबूझ कर कहता है 'कीनो बड़ो समाज' । समाज से ही दर्शक का शास्त्रीय नाम सामाजिक पड़ा है । नाटकीय प्रयोग ही समाज है । इस प्रकार जो कुछ अभिनीत हुआ 'काछा' गया या नाचा गया था—उस कवितावद्ध नाटक को यहाँ कह रहा हूँ, उसे कविता में ही कह रहा हूँ, मैने परिवर्तन नहीं किया है—

जो उनि नाच्यो (वा काछ्यो) सो कह्यो कविता में सुख साज ।
नाटक ने कविता में ही सुख पहुँचाया था अतः कविता में ही कहा गया है ।

इससे उस काल की नाटकीय प्रणाली पर भी प्रकाश पड़ता है । यह रामलीला या रासलीला प्रणाली है । इसमें कुछ लोग पाठ करते थे और नट लोग अभिनय^१ ।

(ख) परम प्रबोध विधु नाटक

पीछे इस नाटक की चर्चा करते हुए कहा जा चुका है कि इसके अभिनीत होने का आन्तरिक प्रमाण प्राप्त है । नाटक का अभिनय मुरलीधर के पुत्र रामप्रसाद द्वारा आयोजित हुआ था^२ । अभिनय संबंधी अन्य संकेत भी प्राप्त होते हैं ।^३

भावी नाटकों पर प्रभाव

इन नाटकों का प्रभाव आगे आने वाले नाटकों पर पड़ा ही—

(१६८५ ई० का ।) उद्धृत—भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल, पृ० ३५ ।

१. गोपालकृष्ण—लेख-करुणाभरण नाटक और उसकी चित्रावली, कलानिधि पत्रिका, श्रावण २००५ ।

२. मुरलीधर को पूत, नायक रामप्रसाद जी ।

नाट्यकार घर सूत, यह नाटक को जानियो ॥

'सुषो होहु रामप्रसाद गायो है'

३. 'नेपथ्य' जो है कनात को वह पार जायें यह कोलाहल भयो कि इन्दुलोक को—.....

'नेपथ्ये डि डि शब्द' ।

- (१) छन्दों की प्रधानता चलती रही। संधिकाल के नहुष, रामलीला नाटक, प्रद्युम्न विजय नाटक छन्द प्रधान थे।
- (२) पूर्वभारतेन्दु नाटकों की पुराण-प्रियता संधिकाल में भी चली और आगे भारतेन्दु काल में भी।
- (३) ब्रजभाषा नाटकों में प्रयुक्त ब्रजभाषा आगे भी नाटकों में स्थान पाती रही।
- (४) वर्णनात्मक शैली से भी छुटकारा नहीं मिला। संधिकाल में वर्णनात्मक शैली का जोर रहा ही। प्रद्युम्न विजय वर्णनात्मक शैली पर लिखा हुआ नाटक है। नहुष नाटक में भी कवि स्वयं वर्णन देता है। कवि पात्र का वेश स्वयं वर्णन करता है। जयंत, कार्तिकेय इत्यादि जब प्रवेश करते हैं तो उनका रूपवर्णन कवि करता है। बीच बीच में अन्य वर्णन भी देता जाता है।
- (५) नाटकों के रचयिता, ब्रजभाषा नाटककारों के समान संधिकाल में भी कवि ही रहे, गद्यकार नहीं।
- (६) ब्रजभाषा नाटकों की प्रकृति-वर्णन-प्रियता एवं नायिका-शरीरांग-वर्णन-प्रियता संधिकाल एवं भारतेन्दु काल में भी मिलती है।
- (७) ब्रजभाषा नाटकों की शृंगारिकता आगे भी पनपती रही।

द्वितीय खण्ड
तत्कालीन परिस्थितियाँ
एवं
संधिकाल
(१८५०—१८६७ ई०)

अध्याय १

पृष्ठभूमि

‘ किसी भी कवि या साहित्य का अध्ययन अधिक पूर्ण, स्पष्ट और सुबोध हो जाता है यदि हम तत्कालीन पृष्ठभूमि को भी जान जायँ । जैसे भूगोल के समझने में दीवार पर टंगा चित्र सहायक है, उसी प्रकार सम्यक् अध्ययन के लिये, पृष्ठभूमि सहायक सिद्ध होती है ।

सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि—

भारत ने सामाजिक और धार्मिक जीवन को भिन्न-भिन्न नहीं माना है । हिन्दू समाज ने धार्मिक दृष्टिकोण को सामने रख कर सामाजिक सुधार किया है । जितने सामाजिक सुधारक हुए, वे धार्मिक सुधारक भी थे । हिन्दू समाज धार्मिक भावना से ही परिचालित होता रहा है । अतः इन दोनों दृष्टिकोणों को एक साथ ले कर चलना हमारे आलोच्य काल के स्पष्टीकरण में अधिक सहायक होगा । आर्यसमाज एवं अन्य सामाजिक संस्थाएँ धार्मिक भी थीं ।^१

धार्मिक आन्दोलनों की दृष्टि से हमारा आलोच्यकाल भारतीय इतिहास में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण समय है । इसकी तुलना का एक ही समय और है, वह है वल्लभ-चैतन्य-रामानन्द-सूर-तुलसी काल ।

हमारे आलोच्य काल में अनेक धार्मिक संस्थाओं ने उठ कर भारतीय समाज की काया पलटने का अपूर्व प्रयास किया ।

ब्रह्म-समाज

इस काल का एक प्रमुख सामाजिक आन्दोलन ‘ब्रह्मसमाज’ था । इसके संस्थापक प्रसिद्ध समाज-सुधारक राजा राममोहन राय (१७७२-१८३३) थे । अरबी फारसी और अंग्रेजी के अध्ययन ने इनका मन मूर्तिपूजा से हटा दिया । १६ वर्ष की अवस्था में उन्होंने मूर्ति-पूजा-नवषेध पुस्तक लिख

१. यह सामाजिक और धार्मिक विवरण निम्नलिखित पुस्तकों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है (१) ऐन एडवांस्ड हिस्ट्री आफ इंडिया— ले० आर० सी० मजुमदार १९४६, पृ० ८७७-८८० । (२) भारत का धार्मिक इतिहास, ले० पं० शिवशङ्कर मिश्र, प्र० सं० ।

कर प्रकाशित की। इसके लिये उन्हें जाति और घर से भी निकलना पड़ा। १८१८ ई० में उन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना की। १८२८ में सती प्रथा बन्द करने वाले कानून के पीछे राजा साहब का बहुत बड़ा हाथ था। १८३३ में इंग्लैंड में इनका स्वर्गवास हो गया।

ब्रह्मसमाज का सिद्धान्त है, परमात्मा एक है और वह निरंजन एवं निराकार है। परमात्मा और जीव भिन्न-भिन्न हैं। सबमें आत्मभाव रखना चाहिए। ब्रह्मसमाज मूर्तिपूजा और जातिभेद का विरोध करता है, पर वेद में विश्वास रखता है। प्रति बुधवार को सायंकाल एक स्थान पर सभा होती थी। वहाँ उपदेश होते थे। राजा साहब के बाद श्री देवेन्द्र टैगोर ने ब्रह्मसमाज का कार्य अपने हाथ में ले लिया। १८५७ में श्री केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्मसमाज में प्रवेश किया। १८६२ में वे इसके आचार्य भी बन गये। श्री केशवचन्द्र सेन उत्तम वक्ता एवं उद्यमशील व्यक्ति थे। उनके कारण ब्रह्मसमाज का विस्तार बढ़ने लगा। केशवचन्द्र जी बालविवाह, जातिभेद, पुनर्जन्म-विश्वास और मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी और विधवा-विवाह के साहसी समर्थक थे। १८६६ ई० में उन्होंने अनेक अन्तर्जातीय विवाह कराये। विधवा-विवाह कराने का भी उद्योग किया। उन्होंने यह भी प्रस्ताव रखा कि यज्ञोपवीत धारण करने वाले ब्राह्मण 'समाज' के मंच से व्याख्यान न दे सकें। फलतः श्री देवेन्द्रनाथ जी इन विचारों से असंतुष्ट हुए और केशवचन्द्र सेन एवं उनके समर्थकों को उत्तरदायी पदों से हटा दिया।

फल क्या हुआ? केशवचन्द्र सेन ने एक नवीन 'भारतवर्षीय ब्रह्म समाज' स्थापित किया। नवीन समाज में स्त्रियों का भी प्रवेश हुआ।

इसी भारतीय ब्रह्मसमाज एवं केशवचन्द्र सेन के प्रयासों का शुभ परिणाम था कि सरकार ने १८७२ ई० में एक कानून बना कर बाल एवं बहु-विवाह की रोक-थाम की और विधवा-विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह (केवल उनमें जो हिन्दू, मुसलमान एवं ईसाई धर्म को न मानते हों) की आज्ञा दी। इस समाज ने 'संकीर्तन' भी आरम्भ किया। केशव अब गुरु हो गये थे। उनके चरण छुए जाते थे।

किन्तु १८७८ में केशवचन्द्र जी से असन्तुष्ट हो कर उनके कुछ प्रगतिवादी अनुयायियों ने 'साधारण ब्रह्मसमाज' स्थापित किया। कारण? केशवचन्द्र जी के विचार इन प्रगतिवादियों को पुराने दिखाई पड़े, क्योंकि केशवचन्द्र जी स्त्री-पुरुष के स्वतंत्रता से मिलने के समर्थक न थे और कुछ कुछ पदों के पक्ष में भी थे। स्त्रियों को उच्च शिक्षा दी जाय, इसका भी वे समर्थन नहीं करते थे। किन्तु विरोध का मुख्य कारण था उनकी १४ वर्षीय पुत्री का विवाह।

इस 'साधारण ब्रह्मसमाज' ने जोश के साथ पर्दा-पद्धति, बाल-विवाह, बहु-विवाह एवं जाति-भेद का विरोध किया। विधवा-विवाह के पक्ष में घनघोर प्रयास किया। इस प्रयास का प्रभाव भी सरकार एवं हिन्दू समाज पर पड़ा ही। हाँ, मूर्ति-पूजा के विरोध एवं एकेश्वरवाद के प्रचार में हिन्दू समाज इनसे उपदेश ग्रहण न कर सका।

ब्रह्मसमाज की एक शाखा 'प्रार्थना समाज' के रूप में प्रस्फुटित हुई। १८६७ ई० में केशवचन्द्र सेन की संरक्षकता में 'प्रार्थनासमाज' ने जन्म लिया किन्तु इसका भरण-पोषण और लालन-पालन प्रधानतया महाराष्ट्र में ही हुआ। महादेव गोविन्द रानाडे ने प्रार्थना समाज के कार्य को आगे बढ़ाया। अनाथालय, विधवाश्रम, रात्रि-पाठशालाएँ, इत्यादि अनेक संस्थाएँ इस समाज ने चलाई। जस्टिस रानाडे ने इस सत्य को सबके सामने जोरों से रखा कि धर्म समाज से उसी प्रकार अभिन्न है, जिस प्रकार मनुष्य ईश्वरीय प्रेम से अभिन्न है।

आर्य समाज

उस काल की दूसरी क्रान्तिकारी सामाजिक संस्था आर्य समाज है। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४-१८८३) थे। इनका मूल नाम मूलशंकर था। शिवरात्रि के दिन शिवलिंग पर चूहे को देख कर इन्होंने उस पत्थर में देवता होने की बात असत्य जान पड़ी। इसी दिन उनके विचारों ने पलटा खाया। घर से भाग निकले। सात वर्ष लगन से अध्ययन किया। वेद, पुराण, शास्त्र, उपनिषद् स्वामी विरजानन्द जी से पढ़े। पश्चात् समाज-सुधार की धुन में निकल पड़े। उन्होंने वेदों को अपने मत की आधार-शिला बनाया और पुराणों को असत्य और ढगोरशंखी बताया। उनके प्रचार का साधन था—शास्त्रार्थ। नवम्बर १८६६ में कारी में लगभग एक सहस्र पंडितों की सभा में वाद-विवाद कर मूर्ति-पूजा को वेद-विरुद्ध सिद्ध किया। उन्होंने भारत के प्रत्येक भाग में भ्रमण किया। १८७५ ई० में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना हुई। किन्तु स्वामी जी का सबसे अधिक प्रभाव पंजाब में पड़ा। पंजाब और उत्तर प्रदेश में उनकी ललकार ने विरोधियों के हृदय दहला दिये, वे निर्भीक हो कर पंडितों, मौलवियों और पादरियों से लोहा लेते थे। घंटों नहीं, दिनों शास्त्रार्थ करते थे। उनका विरोध भी बहुत हुआ। व्यंग्य, उपहास, ढेलों और पत्थरों की वर्षा सहता हुआ वह सिंह निर्भीक अपने सत्य-पथ पर निरंतर बढ़ता रहा। सत्यार्थ प्रकाश द्वारा उन्होंने वास्तविक प्रकाश देने का प्रयास किया। उन्होंने राजस्थान के राजाओं पर भी प्रभाव डालने की चेष्टा की। स्वामीजी के सुधारवादी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर

जोधपुर नरेश ने अपनी रखेल नन्हीजान वेश्या को निकाल दिया। नन्हीजान ने अन्य विरोधियों में पड़्यन्त्र कर स्वामी जी को कॉच-चूर्ण भोजन द्वारा दिलवा दिया। अजमेर में १८८३ की दीवाली को, जब समस्त अजमेर ही नहीं, सम्पूर्ण भारत प्रकाश से जगमगा रहा था, इस वैदिक प्रकाश ने अपनी आँखें सदा के लिये बन्द कर लीं।

आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज में बहुत बड़ी समानता है। दोनों ही निराकार भगवान में विश्वास करते हैं। मूर्तिपूजा, जाति-भेद, बालविवाह, मूर्तिपूजा एवं रूढ़िग्रस्त कुरीतियों का दोनों ने विरोध किया। स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, विदेश यात्रा और प्रार्थना पर दोनों ने भरसक जोर दिया। अन्तर पड़ गया आचरणों में। इन दोनों आन्दोलनों का प्रभाव भारतेन्दु-कालीन नाटकों पर पड़ा है। आर्य समाज ने हिन्दी के प्रचार का भी बड़ा उद्योग किया। स्वामी दयानन्द जी यद्यपि गुजराती थे किन्तु उन्होंने हिन्दी को ही राष्ट्र या आर्य भाषा माना और अपने ग्रंथ हिन्दी में लिखे। उन्होंने हिन्दी प्रचार के लिये सतत उद्योग किया। जब, कचहरियों में हिन्दी को स्थान मिले, यह आन्दोलन, भारतेन्दु जी इत्यादि ने चलाया तो स्वामी जी ने भी इसमें सहयोग दिया था। आर्यसमाज ने गोरक्षा का स्वर भी सदा ऊँचा उठाया है।

रामकृष्ण मिशन

रामकृष्ण मिशन, ब्रह्मसमाज एवं आर्यसमाज की नाई उत्तेजक सिद्ध नहीं हुआ, परन्तु इसकी जड़ें बड़ी गहरी पड़ी हैं। आज भी शान्त और स्निग्ध गति से इसका कार्य अग्रसर है। इसके संस्थापक स्वामी रामकृष्ण परमहंस (१८३४-१८८६) एक उच्चकोटि के महात्मा थे। वे आत्मिक शक्ति-सम्पन्न पुरुष थे, ऊपर से शान्त परन्तु अन्दर से विद्युत् की नाई शक्तिपूर्ण। भारतवर्ष में प्रत्येक साधु कुछ भक्त पा जाता है। इसी प्रकार इस साधु के पास भी भक्त लोग जा कर आत्मिक शान्ति का अमृत पाते थे। यह सच है कि यदि स्वामी विवेकानन्द (१८६३-१९०२) ने स्वामी रामकृष्ण का शिष्यत्व न लिया होता तो अन्य साधुओं की नाई उनका नाम भी कहीं पलों पर न होता। किन्तु स्वामी विवेकानन्द (मूल नाम महेन्द्रनाथ दत्त) ने स्वामी रामकृष्ण के नाम को भीतर-बाहर चमकाया। १८९३ ई० में शिकागो में संसार के सभी धर्मों का अधिवेशन हुआ था। कठिनता से स्वामी विवेकानन्द की वहाँ पहुँच हुई, परन्तु जगत के सभी धर्मों के सैकड़ों प्रतिनिधि एवं सहस्रों श्रोता मानो बिजली की प्रवाहित धारा से छू गये, मन्त्रमुग्ध और चमत्कृत हो गये जब एक तेजमय मुख को मंच पर से धारा-प्रवाह अंग्रेजी

में अद्भुत संदेश देते सुना। स्वामी विवेकानन्द का नाम अमेरिका के पत्रों में छा गया। भारतीय हृदय गर्व से उछला। तब से राम-कृष्ण मिशन आगे ही बढ़ता रहा है। अमेरिका में लगभग स्वामी विवेकानन्द ने एक हजार व्याख्यान दिये। जनता उनके व्याख्यानों पर द्रुत पड़ती थी और प्रशंसाओं के पुल बँध जाते थे। अमेरिका में अनेक 'मठ' स्थापित हुए। भारत पर तो इसका प्रभाव पड़ना ही था। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय धर्म और संस्कृति को सवार की दृष्टि में ऊँचा उठाया। स्वामी विवेकानन्द ने भी स्वामी दयानन्द एवं राममोहन राय की नाई 'वेद' को अपनाया। रामकृष्ण मिशन वेद द्वारा ही भारतीय संस्कृति का उच्च घोष करता है। किन्तु साथ ही मूर्ति-पूजा का विरोध नहीं करता। इसकी बड़ी विशेषता है, इस विशाल दृष्टि-कोण की कि सब धर्म एक ही गन्तव्य स्थान पर ले जाते हैं। अतः रामकृष्ण मिशन न किसी धर्म को बुरा कहता है और न किसी व्यक्ति को। स्वयं स्वामी रामकृष्ण जी काली के उपासक होते हुए भी हनुमान, शिव, अल्ला का उच्चारण करते थे। रामकृष्ण मिशन एक मठ रूप में संगठित है। इस 'मठ' के आचार्य बड़े विद्वान एवं साधु होते हैं। वे केवल आत्मिक उपदेश ही नहीं देते, दुर्भिन्न और बाढ़ जैसी आपत्तियों के समय जनता के बीच दिखलाई देते हैं।

थियोसिफीकल सोसाइटी

मेडम ब्लेवट्स्की नामक एक रूसी महिला एक योगी के संसर्ग से योग सिद्धि पर विश्वास करने लगीं। अमेरिका में कर्नल आल्कोट भी उस महिला के दिव्य मत से प्रभावित हुए। दोनों ने मिल कर १८७५ ई० में 'थियोसिफीकल सोसाइटी' की स्थापना अमेरिका में की। किन्तु दोनों जब और अधिक जानने को उत्सुक हुए तो ज्ञात हुआ कि अपने श्रम में सफल होंगे यदि भारतवर्ष में जा कर ज्ञान चर्चा करें, सीखें और सिखायें। फलतः १८७६ में भारत में आये। १८८३ में अदियार (मद्रास) को उन्होंने अपना केन्द्र-स्थान बनाया।

जो बल, रामकृष्ण मिशन को स्वामी विवेकानन्द ने दिया वही बल इस सोसाइटी को एक विशेष विदुषी महिला से मिला, जिसका नाम था श्रीमती एनी विलेन्ट और जिन्होंने १८८६ में इस सोसाइटी में प्रवेश किया। श्रीमती एनी विलेन्ट ने काशी में सेंट्रल हिन्दू कालिज स्थापित किया जिसका विशाल रूप आज काशी में अविस्मरणीय है। पूना का फर्गुसन कालिज भी इस सोसाइटी का एक फल है। गोपालकृष्ण गोखले (१८८६-१९१५) भी इस सोसाइटी के आजीवन सेवक थे। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के नाम से कौन

समाज-सुधार का विज्ञाता भारतीय अपरिचित होगा ?

थियोसोफीकल सोसाइटी योग और भारत की प्राचीन संस्कृति में विश्वास करती है। योग की क्रियायें गुप्त हैं। अतः गुप्त रूप से सिखाने और समझाने के लिये भी प्रयास किया गया, जिसका विरोध भी हुआ था। थियोसोफी के सदस्य भारतीय संस्कृति के समर्थक हैं। कर्म के अनुसार भाग्य बनता है। इस सिद्धान्त पर इनका विश्वास है। पुराणों की बुद्धिपरक व्याख्या करते हैं। किसी धर्म से ये घृणा नहीं करते। भारतीय समाज सुधार के कार्यों में इन लोगो ने बड़ा योग दिया है।

ये प्रधान और विस्तृत आन्दोलन थे, किन्तु इस काल में अन्य समाजों और संस्थाओं ने भी समाज-सुधार का प्रयास किया। वास्तव में यह काल ऊँचे समाज-सुधारको और सामाजिक-धार्मिक आन्दोलनों का काल था।

अन्य गौण सामाजिक आंदोलन

(१) 'सत्यशोधक समाज' को श्री ज्योतिराय कुले ने (जन्म १८२७) पूना में १८६८ ई० में स्थापित किया। इसके मुख्य सिद्धान्त हैं—मूर्ति-पूजा व्यर्थ है, वेद-पुराण में से उन्हीं बातों पर विश्वास करना चाहिये जो बुद्धि की कसौटी पर खरी उतरें, ऊँच नीच का भेद व्यर्थ है। (२) "श्रेयसाधक अधिकारी वर्ग" को गुजरात के नागर ब्राह्मण श्री नरसिंहाचार्य ने १८८१ में स्थापित किया। इस वर्ग में केवल उच्च कोटि के विद्वान् ही सम्मिलित हो सकते थे। इसके सदस्य मूर्ति-पूजा, अवतारवाद, जातिभेद और योग द्वारा सिद्धि प्राप्ति में विश्वास करते थे। (३) 'प्रियतम धर्मसभा' की स्थापना सारस्वत ब्राह्मण 'प्रियतम' जी (जन्म १८६३ ई०) ने १८८६ ई० में शिकारपुर (सिन्ध प्रान्त) में की थी। इसमें सभी हिन्दू सम्मिलित हो सकते थे। इसके सदस्य मूर्तिपूजा, श्राद्ध-तर्पण, विधवा विवाह, वेद-शास्त्र-पुराण, रामनामस्मरण में विश्वास रखते थे। इस सभा के सदस्य शुद्ध और सात्विक जीवन पर बहुत बल देते थे। (४) "राधास्वामी सम्प्रदाय" की स्थापना 'साहब जी' (१८१८-१८७८) ने आगरे में की। इस सम्प्रदाय में जातिभेद नहीं है और गुरु की मान्यता बहुत अधिक है। निराकार की भक्ति और नामस्मरण पर आस्था है।

ये हैं इस काल के मुख्य धार्मिक आन्दोलन और सामाजिक संस्थाएँ जिन्होंने नाटककारों को बहुत प्रभावित किया था।

अध्याय २

राजनैतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि

हमारा आलोच्य काल वास्तव में महारानी विक्टोरिया का शासन-काल (१८३७-१९०१) है। महारानी विक्टोरिया से पूर्व ईस्ट इंडिया कम्पनी ने शासन किया। भारतेन्दु युग के लेखकों की याद में मुसलमान शासकों की अत्याचार-कहानियाँ थी जिन्हें उन्होंने अपनी दादी-परदादियों से सुना था। उनकी बचपन की आँखों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी का वह राज्यकाल देखा था जिसमें भारतीय दस्तकारों के हाथ कटवाये गये, जबरदस्ती नील की खेती कराई गई एवं अन्य व्यापारिक शोषण किये गये। लार्ड विलियम बेंटिंग (१८२८-१८३५) जैसे सज्जन गवर्नर जनरल भी आये, जिन्होंने कुछ सज्जनता का प्रदर्शन कर ब्रिटिश राज्य की नींव को दृढ़ किया। पार्लियामेंट में ट्वीलैन का यह कथन सत्य था कि 'बेंटिंग ने हमारे भारतीय राज्य को दृढ़ नींव पर स्थापित किया है।' बेंटिंग ने अन्य अनेक सामाजिक एवं राजनैतिक सुधार किये। सती प्रथा को रोका (१८२६)। १८३५ ई० में शिक्षा प्रस्ताव सामने रखा, कलकत्ते में मेडिकल कालिज खोला, समाचार पत्रों के बन्धनों को कम किया (१८३५)। ठगो को दवाकर (१८२६-३७) सुरक्षा बढ़ाई। आगरे का नया प्रान्त निर्मित किया (१८३४)। मैकोले को कानून सदस्य बनाया (१८३४)। कम्पनी का चार्टर बदला (१८३३) जिससे कम्पनी के व्यापार अधिकार समाप्त हो गये (१८३३)। दूसरी ओर मैसूर (१८३१), जैतिया (१८३२) और कुर्ग (१८३४) को अंग्रेजी राज्य में मिलाया।

लार्ड बेंटिंग के बाद डलहौजी तक चार गवर्नर जनरलों (मेटकाफ १८३५-३६, आकलैंड १८३६-४२, एलिनबरो १८४२-४४, हार्डिन्ज १८४४-४८) ने अंग्रेजी राज्य की दीवारों को ऊँचा किया। किन्तु बेंटिंग के बाद प्रभावशाली व्यक्तित्व लार्ड डलहौजी (१८४८-५६) का ही आया। भारतीय शासन का ऐसा कोई विभाग न था जिसने उसके जादू वाले हाथ का स्पर्श न पाया। उसने कारागार प्रणाली को सुधारा। सस्ते टिकट प्रचारित किये, ४००० मील

१. इकोनोमिक हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया—(ले० श्री रमेशचन्द्र) की पुस्तक का अनुवाद 'ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास' अनु० केशवदेव सहायिया, प्र० सं०, पृ० ६१।

लम्बी तार की लाइन बिछाई, उसने चाय और रुई की पैदावार को बढ़ावा दिया, वन की सुरक्षा और वृद्धि का प्रयास किया, घोड़ों और भेड़ों की नस्ल सुधारने का उद्योग किया, नहरें खुदवाईं, नहर-विभाग स्थापित किया, बन्दरगाहों की दशा सुधारी, पुल और सड़कें बनवाईं, सार्वजनिक निर्माण विभाग सुयोजित किया। उसके सामाजिक सुधार भी कम महत्वपूर्ण न थे।^१ इस काल के शिक्षा के विस्तार को कौन भूल सकता है जिससे समस्त भारत में स्कूल कालिज और विश्वविद्यालयों का जाल तन गया। यदि डलहौजी छीना भूपटी की आँधी न चलाता तो १८५७ का विद्रोह भारतीय इतिहास में न आता और डलहौजी भी एक अच्छे शासक के रूप में याद किया जाता। वास्तव में रेल, तार, नहरें, स्कूल, कालिज, पुल, सड़कें दे कर उसने भारत को एक नये रूप में ढालने का प्रयास किया था और आज भारत उसी रूप में आगे बढ़ रहा है। किन्तु उसने ब्रिटिश शेर की भूख बहुत बढ़ा दी, उसके खूनी पंजे तेज कर दिये, और अनेक राज्यों को धीरे-धीरे गाल में रख लिया। १८४८ में सतारा को छीना, १८५० में जैतपुर और संभलपुर को हड़पा, १८५२ में काकशैली को अपना बनाया, १८५३ में नागपुर, बरार और भोसली पर उसका वज्र गिरा, १८५६ में अवध के भाग्य को कील दिया। पंजाब को भी खा लिया। नाना साहब, कर्नाटक के नवाब और तंजोर के राजा की पेशनों और पदों को चट कर गया।

इस राजसी भूख का परिणाम था १८५७ का 'विद्रोह'। इतिहास में इस भारतीय आँधी के विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं। एक ओर अनेक अंग्रेजी और भारतीय इतिहास लेखक इसे सिपाही विद्रोह या 'विद्रोह' की सजा देते हैं^२ तो दूसरी ओर भारतीय स्वतंत्रता का संग्राम नाम धरने वाले भी

१. दि मेकिंग आफ़ माडर्न इंडिया—लेखक एस० आर० शर्मा, १९५१, पृ० ४७६।

२. (क) हिस्ट्री आफ़ माडर्न इंडिया, ले० डा० ईश्वरीप्रसाद ऐंड एस० के० सूवेदार (१९५१), पृ० २३४।

(ख) एन ऐडवान्स्ड हिस्ट्री आफ़ इंडिया—ले० आर० सी० मजुमदार, एच० सी० राय चौधरी ऐंड के० दत्त, १९४६, पृ० ७८०।

(ग) इंडिया टु डे (१९४२) ले० आर० पामदत्त, पृ० २८६।

(घ) श्री शिवनागयण द्विवेदी कृत १८५७ के ग़दर का इतिहास। हिन्दी में ग़दर संबंधी अत्यन्त विशाल ग्रंथ है जिसके ४ खंड हैं और १३३२ पृष्ठ। अनेक पत्रों, डायरियों और इतिहासों का साक्ष्य दिया है कि यह सैनिक विद्रोह था।

हैं^१। विद्रोह का फल यह हुआ कि ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज्य समाप्त हो गया। पार्लियामेंट की सम्मति से महारानी विक्टोरिया ने भारत साम्राज्य को अपनी छत्रछाया में ले लिया। उन्होंने एक घोषणा पत्र प्रसारित किया। इस घोषणा में भारतीय प्रजा को विश्वास दिलाया गया कि हम भारत का राज्य भारत की भलाई के लिये कर रहे हैं। अपनी भारतीय प्रजा को उन्नत तथा सभ्य बनाना हमारा उद्देश्य है। किसी के धर्म में हस्तक्षेप न किया जायगा। भारतीय राजाओं को विश्वास दिलाया गया कि ईस्ट इंडिया कम्पनी से हुई संधियों और प्रतिज्ञाओं की रक्षा की जायगी, और राजाओं के पद, मर्यादा और अधिकार का सम्मान किया जायगा। कोई भी व्यक्ति, जाति या धर्म के कारण किसी पद या सेवा-कार्य से वंचित न किया जायगा। अपराधियों को क्षमा प्रदान की गई।

लार्ड केनिंग १८५८ में वाइसराय बनाये गये जो इतिहास में कृपालु केनिंग के नाम से विख्यात हो गये हैं।

विद्रोह समाप्त हुआ। लार्ड केनिंग का राज्यकाल उल्लेखनीय राजनैतिक सुधारों से भरा है। १८६० ई० में मेकोले का भारतीय दण्ड विधान बना। १८६१ में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में सुप्रीमकोर्ट के स्थान पर हाईकोर्ट स्थापित हुए। इस नीति के अनुसार आगे १८६६ में प्रयाग में एक हाईकोर्ट और पंजाब में एक चीफ कोर्ट स्थापित हुए। १८६१ में इंडियन काउंसिल ऐक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल की काउंसिल में पाँचवाँ अनसरकारी सदस्य बढ़ाया गया। गवर्नर जनरल के भी अधिकार बढ़ाये गये। अब वाइसराय ही अपनी काउंसिल के सदस्यों को विभाग सौंपने लगा—जो वाइसराय की सहमति से अपने विभाग की पूर्ण व्यवस्था करने लगे। विधान सभा के अनसरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। १८६० ई० में एक कमेटी बनी थी कि क्या भारतीय भी उच्च भारतीय सेवाओं में लिए जा सकते हैं? इस कमेटी ने सिफारिश की थी कि भारतीय शासन-सेवा की प्रतियोगिता लन्दन और भारत दोनों में हो, परन्तु अंग्रेजी सरकार ने इस सिफारिश को नहीं माना। १८६१ के एक अन्य सैनिक विधेयक द्वारा भारतीय सेना की संख्या कम की गई और अंग्रेजों की संख्या बढ़ाई गई। १८७० में स्वायत्त शासन की दिशा में

१. (क) द मेकिंग आफ माडर्न इंडिया, ले० एस० आर० शर्मा, १९५१ पृ० ४९०।

(ख) वीर सावरकर द्वारा लिखित प्रसिद्ध ग्रंथ—‘भारतीय स्वाधीनता का प्रथम संग्राम’।

(ग) भारतीय कांग्रेस एवं कांग्रेसी नेताओं के कथन।

कदम उठाये गये।

१८७४ में वाइसराय की काउंसिल में छुठा सदस्य बढ़ा। १८७६ में महारानी विक्टोरिया भारतीय साम्राज्य की सम्राज्ञी बनीं। १८७७ में इस पद को घोषित करने के लिये दिल्ली में दरबार हुआ। १८७८ में भारतीयों को और पंगु बनाया गया। भारतीय बिना लाइसेंस के कोई हथियार न रखेंगे और न व्यापार करेंगे। लार्ड लिटन (१८७६-८०) ने भारतीय समाचार पत्रों पर एक कुठाराघात किया। १८७८ में वरनाक्यूलर प्रेस-ऐक्ट बनाया जिसे भारतीय पत्रों ने फाँसी-कानून कहा। भारतेन्दु जी ने भी विरोध प्रकट किया था। लार्ड लिटन बड़े अप्रिय वाइसराय रहे। लार्ड केनिंग के बाद भारतीय इतिहास में प्रभावशाली वाइसराय लार्ड रिपन (१८८०-८४) हुआ। लार्ड रिपन के राज्य काल की प्रसिद्ध घटना है—इलवर्ट बिल। अभी तक अंग्रेजों के अपराधों का निर्णय अंग्रेज मैजिस्ट्रेट ही करते थे। इलवर्ट ने एक बिल १८८३ में तैयार किया जिसके अनुसार यह अधिकार भारतीयों को भी मिला। यह बिल १८८३ में भारतीय विधान सभा के सामने लाया गया। यूरोपियनों ने सिर पर आसमान उठा लिया और घोर विरोध किया। भारतीय प्रसन्न हुए। भारतेन्दु जी एवं अन्य कवियों और लेखकों ने बिल के पक्ष में बहुत कुछ कहा। रिपन जब कलकत्ता गये तो उनके आतिथ्य भोज का कलकत्ता के अंग्रेज व्यापारियों ने बहिष्कार किया।^१ अंग्रेजों के क्रोध का ठिकाना न था। यह देख कर भारत सरकार ने भारतीय मंत्री की आज्ञा से बिल में कुछ संशोधन कर दिया। इस संशोधन के अनुसार भारतीय मैजिस्ट्रेटों को यूरोपियनों के न्याय करने का अधिकार तो दिया गया परन्तु साथ में यह भी शर्त लगा दी गई कि यूरोपियन अपराधी माँग कर सकता है कि मेरे न्याय में आधे जूरी अंग्रेज बैठाये जायें। १८८२ में लार्ड रिपन ने लार्ड लिटन द्वारा लगाये गये वर्नाक्यूलर प्रेस-ऐक्ट को समाप्त कर दिया। भारतीय पत्रों ने रिपन का गुणगान किया। वैसे तो १८८१ में ही 'ब्राह्मण पत्र' ने रिपन को 'राजर्षि' और 'महात्मा' बना दिया था।^२ १८८२ से ही स्वायत्त शासन प्रणाली का वास्तविक आरंभ होता

१. गुरुमुख निहाल सिंह—लैंडमार्क्स इन इंडियन कन्स्टिट्यूशनल ऐंड नेशनल डेवलपमेंट वाल्यू० १, १६६०-१६१६ (सं० १६५६), पृ० १००।

२. ब्राह्मण, पौष १६३८—अन्त में लिखा था—“प्रशंसित देव वपु-धारी प्रजा हितकारी महात्मा पुरुष का एक चित्र अपने गले में कंठी की जगह बाँधो कि जिसका नित्य सुबह उठ कर दर्शन करो और सदैव उसे अपने हृदय पर न केवल ऊपर लटकाये रहो, किन्तु भीतर भी नगीने के नक्श सहित कर लो.....”

है।^१ लार्ड रिपन (१८८०-८४) ने अनेक सत्कार्य अपने शासन-काल में किये। ब्राह्मण पत्र^२ ने उनकी सूची दी है :—

- (१) अखबारों का डाक महसूल घटाया।
- (२) सेविंग बैंक खोले।
- (३) बस्टोबस्त को नापसंद किया।
- (४) काबुल युद्ध जीता।
- (५) पार्लियामेंट ने मित्र जाने वाली सेना का खर्चा हिन्दुस्तान के सिर थोपा था, उसे लार्ड रिपन ने अस्वीकार कर दिया।
- (६) सेना का व्यय घटाया।
- (७) नमक महसूल घटाया।
- (८) बा० रमेशचन्द्र एवं मिस्टर सैयद महमूद को अंग्रेजों एवं अन्यो के विरोध करने पर भी क्रमशः प्रधान न्यायाधीश एवं न्यायाधीश नियुक्त किया।
- (९) राय ब० सुन्दरलाल को स्थानीय अंग्रेज कर्मचारियों के विरोध करने पर भी पोस्ट मास्टर जनरल बनाया। इसी प्रकार श्री भूदेव मुकर्जी को डाइरेक्टर शिक्षा विभाग नियुक्त किया।
- (१०) भारतीयों को रेल बनाने व चलाने की आज्ञा दी।
- (११) शिक्षा-कमीशन बैठाया।
- (१२) आज्ञा दी कि कानून देशी भाषा में भी बने और देशी पत्रों में भी सूचना दी जाया करे।

१८८५ में प्रथम भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन बंबई में हुआ। इसके संस्थापकों में प्रधान हैं सहृदय श्री ह्यूम जिन्होंने तत्कालीन वाइसराय लार्ड डफरिन से भी आशीर्वाद ले लिया था।^३ इस प्रथम अधिवेशन के सभापति थे श्री उमेश बनर्जी। जब १८८६ में इनकम टैक्स कानून बना तब अन्य भारतीय पत्रों के साथ हिन्दी पत्रों ने भी इसका विरोध किया। १८८४ में

१. गुरुमुख निहाल सिंह—लैंडमाकर्स इन इंडियन कन्स्टिट्यूशनल एंड नेशनल डेवलपमेंट, पृ० १०६।

२. ब्राह्मण, पौष, १९३८।

३. 'बहुतों को यह एक नई बात मालूम होगी कि कांग्रेस का जन्म जिस तरह हुआ और जिस तरह तब से अब तक चलाई जा रही है, वह वास्तव में लार्ड डफरिन का काम था जब कि वह भारतवर्ष के वाइसराय हो कर यहाँ आये थे'—श्री उमेशचन्द्र बनर्जी के शब्द, उद्धृत कांग्रेस का इतिहास भाग १ से—ले० डा० सीतारमैया—१९४८, पृ० १४।

आबपाशी कर लगाया गया तथा सूती कपड़ों पर भारी कर बैठाया गया जिसका विरोध १८६४ के मद्रास में हुए कांग्रेस अधिवेशन में किया गया। १८६२ ई० का इंडियन काउंसिल ऐक्ट भारतीय कांग्रेस की पहिली विजय थी। इससे कुछ अधिकार, यद्यपि वे बहुत ही सामान्य थे, भारतीयों को मिले। वाइसराय की काउंसिल में सख्या बढ़ी और विधान-सभा में प्रश्न पूछने का अधिकार मिला। १८६३ में दादाभाई नौरोजी के प्रयत्नों से एक प्रस्ताव कामन सभा में पास हुआ कि भारतीय प्रशासन (आई० सी० एस०) की परीक्षाएँ इंगलैंड व भारत दोनों में हों। परन्तु प्रान्तीय सरकारों ने विरोध किया अतः भारतीय सरकार ने लागू नहीं किया। भारतीय राजनीति में इस समय स्वनामधन्य लोकमान्य तिलक ने पदार्पण किया। राष्ट्रीयता में गर्मी आई। वास्तव में १८६६ से तिलक कांग्रेस के प्रेरक बने और कांग्रेस नीति में परिवर्तन आया।^१ १८६५ ही से तिलक जी ने गणेश उत्सव का राजनैतिक उपयोग आरम्भ कर दिया था। १८६५ में क्रान्तिकारी संस्था 'हिन्दू धर्म की बाधाओं को दूर करने वाली सभा' पूना में स्थापित हुई। पूना में प्लेग कमिश्नर और ले० ऐवरेस्ट की हत्या की गई और महारानी विक्टोरिया की प्रस्तर प्रतिमा कुरूप की गई। सभा और सभा के संस्थापकों पर दोषारोपण किया गया, सभा के ४ सदस्यों को फाँसी दी गई, क्योंकि एक पुलिस सिपाही को मारने का प्रयास किया गया था और दो सरकारी गवाहों को मार दिया गया था। १८६७ में तिलक पकड़े गये। समस्त भारत के प्राणतन्तु भँकार उठे। लोकमान्य तिलक को अंग्रेजी सरकार के निर्णय विभाग ने १८ मास का कठोर कारावास का दंड दिया। सर सुरेन्द्र बनर्जी के शब्दों में—राष्ट्र रो रहा था।^२ मैक्समूलर जैसे विद्वान का हृदय कॉप उठा और उसने अन्य संस्कृत के विद्वानों के हस्ताक्षर से महारानी की सेवा में महामान्य तिलक को क्षमा देने के लिये आवेदनपत्र भेजा।

अब भारतीय राजनीति का पलड़ा उलटा। कांग्रेस ने भारतीयों के दुखों और कष्टों को प्रतिवर्ष मंच से प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया।

इस राजनैतिक दासता ने भारत का आर्थिक शोषण पेट भर कर किया। जो ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत के माल को यूरोप और इंगलैंड में बेचने के लिए निर्मित हुई थी, वह शासक बन गई और उसने न्याय और

१. डा० सीतारमैया कृत कांग्रेस का इतिहास (हिन्दी) पंचम सं०, पृ० ८५।

२. लैंडमार्क्स इन इंडियन कन्स्टिट्यूशनल एंड नेशनल डेवलपमेंट, वाल्यू० १, पृ० १६०।

अन्याय दोनों से भारत का धन इंगलैंड भेजा ।^१ भारतीय गृह उद्योगों का मूलोच्छेदन किया गया। एक ओर भारत में आने वाले ब्रिटिश माल पर कर कम किया गया और दूसरी ओर इंगलैंड में भारतीय औद्योगिक वस्तुओं पर इतना कर बैठाया गया कि भारतीय उद्योग की कमर टूट गई। किन्हीं दशाओं में यह कर ४०० प्रतिशत था^२। जो ढाका १७५० में लन्दन के समान समृद्ध और हरा-भरा था वही १८४० में दरिद्रता और निरुद्यमता का घर बन गया था^३। उधर भारतीय जनता पर कर अधिकाधिक लगते गए। जो मालगुजारी १८०० में ४२२ लाख रुपये थी वह १८३८ में १२६७ हो गई और इसके बाद इसने अपना मुँह सुरसा की नाई और द्रतगति से फैलाया। १८६० ई० से कर बराबर बढ़ते रहे। लैसेंस, सर्टिफिकेट, आयकर, देशी तम्बाकू कर, आवपाशी कर सभी बढ़े^४। उधर भारतीयों की प्रतिदिन की मध्यमान आय एक सवा आना थी। व प्रकोप भी बढ़े। भयंकर दुर्भिक्षों और महामारियों में दीन-हीन भारतीय खड़े न रह सके और चूहे-मेंढकों के समान मरे। १७७० का बगाल का दुर्भिक्ष तो इतिहास प्रसिद्ध है ही जिसमें १ करोड़ व्यक्तियों ने प्राण दिए थे। १८०० से १८५० तक ७ अकाल पड़े जिसमें १५ लाख व्यक्तियों ने जानें दीं। १८०० से १८५५ तक १० लाख ने और १८२५ से १८५० तक ५ लाख ने प्राण दिए। १८५० से १९०० तक १८ दुर्भिक्ष पड़े जिनमें २ करोड़ व्यक्ति मरे।

इसी राजनैतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि पर भारतेन्दुकालीन नाटक खड़े हुए हैं। इस पृष्ठभूमि का प्रतिबिम्ब राजनैतिक नाटकों में प्रधानतया प्राप्त होता है।

१. इंडिया टुडे (लेखक पामदत्त) पृ० १०१।

२. विल्सन कृत हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग प्रथम, पृ० ३८५।

३. इंडिया टुडे, पृ० ११४।

४. कवि वचन सुधा, २५ जून १८७७।

अध्याय ३

शैक्षिक पृष्ठभूमि

सबसे पूर्व अंग्रेजी शासन का तम्बू बंगाल में तना। फलतः शिक्षा का का पौधा भी वहाँ सबसे पहिले लगा। किन्तु आरम्भ में अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी न थी, न गणित विज्ञान नवीन विषयों के अध्यापन की कोई योजना की गई थी। वरन् अरबी, फारसी और संस्कृत की शिक्षा देना ही इन नये गोरे स्वामियों ने अपना कर्तव्य समझा। १७८१ में सबसे पहिले वारेन हेस्टिंग्स ने एक मदरसे की स्थापना की। इस मदरसे में अरबी फारसी की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था। १७८४ ई० में 'एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' की स्थापना सर विलियम जोन्स ने की। १७६२ ई० में डकन ने काशी में संस्कृत कालिज को जन्म दिया। १८वीं सदी के अन्त तक ब्रिटिश शासकों ने शिक्षा पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। हाँ, उधर देश में फारसी मदरसे और संस्कृत पाठशालाये भरसक शिक्षा शकट को खींच रही थीं।

ब्रिटिश शासन का तो ध्यान शिक्षा की ओर न गया परन्तु ईसाई मिशनरियों ने शिक्षा के क्षेत्र में अवश्य सराहनीय कार्य किया। यह शिक्षा कार्य यद्यपि स्वार्थवश किया गया था, परन्तु इसका फल अच्छा ही हुआ। ईसाई मिशनरी समझते थे कि अंग्रेजी शिक्षा ईसाई धर्म के प्रचार में सहायक सिद्ध होगी। फलतः १७६२ में अनेक मिशनरी स्कूल बंगाल में स्थापित हुए। इन स्कूलों में अंग्रेजी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था। इनमें अंग्रेजी के साथ साथ अन्य विषय, भूगोल, इतिहास, गणित इत्यादि भी पढ़ाये गये। बंगला भाषा में बाइबिल का अनुवाद भी किया गया। ईसाई पादरियों को देख देश-भक्त भारतीयों ने भी नवीन शिक्षा के अध्ययन-अध्यापन की ओर ध्यान दिया। राजा राममोहन राय के प्रयास से कलकत्ता में 'हिन्दू कालिज' की स्थापना हुई जो बाद में 'प्रेसीडेंसी कालिज' कहलाया।

लार्ड मैकोले ने भारतीय शिक्षा में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। अभी तक बहुसंख्यक अंग्रेजों का मत था कि भारतीय शिक्षा का माध्यम परम्परागत फारसी-संस्कृत प्रणाली रहे किन्तु लार्ड मैकोले ने बड़े समर्थ शब्दों में और अनेक तर्कों से सिफारिश की कि भारतीय शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही होनी चाहिये। उनका मत था कि अंग्रेजी के द्वारा हम एक ऐसी नई श्रेणी बना सकेंगे जो रंगरूप में तो भारतीय होंगे किन्तु आचार-विचार एवं वेशभूषा से

अंग्रेज। ये लोग अंग्रेज शासकों और जनता के बीच शृंखला या दुभाषिये का काम करेंगे। अंग्रेजी से भारतीय मस्तिष्क और भाषाओं को समृद्धि मिलेगी^१। तत्कालीन लार्ड विलियम बेंटिंज भी इसी मत के थे कि अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम हो। इससे दोनों जातियों का सद्भाव बढ़ेगा। मेटकाफ इत्यादि अंग्रेजों ने और राजा राममोहन राय इत्यादि भारतीय समाज-सुधारकों ने अंग्रेजी का ही पक्ष ग्रहण किया। १८३५ में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि—

(१) मध्यम श्रेणी के लोगों ने बड़े उत्साह से अंग्रेजी सीखी क्योंकि उन्हें नौकरी की अभिलाषा थी।

(२) पश्चिमी विचारों से भरे अंग्रेजी बोलने वाले पैदा हुए जो साधारण भारतीयों से दूर होते चले गये।

(३) भारतीय भाषाओं का महत्त्व बढ़ा। अभी तक फारसी अरबी और संस्कृत तक ही दृष्टि घूमती थी।

(४) भाषा के प्रेसों की धीरे-धीरे वृद्धि होती गई।

(५) भारत जो कुछ आज है उसका बहुत कुछ श्रेय इसी नियम को है। इससे हानि भी कम नहीं हुई। भारतीयता से हम दूर होते गये हैं। हमने अपने महत्त्व को नहीं आँका और सदा हमारी दृष्टि दूसरों की ओर ही लगी रही। मैकोले का स्वप्न पूरा हुआ। भारतीय रंग और भारतीय नाम वाले अंग्रेज पर्याप्त संख्या में जन्मे जो अपने भाइयों से वृणा करने लगे। फलतः इस शिक्षा का भी विरोध हुआ। स्वामी दयानन्द ने प्राचीनता की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। आगे महात्मा मुशीराम ने हिन्दी संस्कृत शिक्षा के लिये गुरुकुल कॉगड़ी की स्थापना की।

इसी वर्ष कलकत्ते में मेडिकल कालिज खोला गया। अंग्रेजी शिक्षा से मध्यम श्रेणी ने ही अधिकांशतः लाभ उठाया क्योंकि नौकरी पाने के लिये उन्होंने अंग्रेजी पढ़ी। १८३५-३६ तक सरकार की ओर से २३ सरकारी स्कूल खोले गये। इनमें अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम थी। १८४२ में ये स्कूल ५१ हो गये और १८५१ तक १५१। १८५७ में कलकत्ता में भारत का पहिला विश्वविद्यालय बना। इस वर्ष के अन्त तक मद्रास और बम्बई में भी विश्वविद्यालय स्थापित हो गये। १८७७ तक लाहौर और इलाहाबाद को लेकर भारतवर्ष में ५ विश्वविद्यालय हो गए।

१८८२ में हंटर कमीशन नियुक्त हुआ था। उसने गवाहियाँ लीं।

१. 'सांशल ऐंड रिलीजियस मूवमेंट्स इन द नाइन्टीन्थ सेंचुरी', बाई सी० एस० श्रीनिवासाचारी, १९४७, पृ० ३६।

भारतीय भाषाओं की शिक्षा का प्रश्न भी इसके सामने था ।

हंटर कमीशन की सिफारिश थी :—

(१) प्रारम्भिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय ।

(२) अंग्रेजी के साथ भारतीय भाषाओं को भी स्थान मिले ।

(३) जो लोग शिक्षा संस्था खोलें उन्हें आर्थिक सहायता दी जाय ।

इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिये पश्चिमोत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तर प्रदेश) की सरकार ने जिलाधीशों से उर्दू-हिन्दी के विषय में सम्मति पूछी थी । कुछ हिन्दुओं ने हिन्दी का पक्ष नहीं लिया तो 'ब्राह्मण' सम्पादक ने उनकी मरम्मत की थी ।^१

स्त्री शिक्षा आन्दोलन भी चला । ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन एवं थियोसोफिकल सोसाइटी इत्यादि सभी समाज सुधारक संस्थायें स्त्री शिक्षा के पक्ष में थीं । १८७५ में मेडिकल कालिज मद्रास में स्त्रियों को स्थान मिला । १८८२ में बंबई में स्त्रियों के लिये मेडिकल कालिज में स्थान निश्चित हुआ और कामा हास्पिटल केवल स्त्रियों के लिये बना । १८८६ में श्रीमती आनदी बाई जोशी अमेरिका से डाक्टरनी बन कर आईं । केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रानाडे, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इत्यादि ने स्त्री शिक्षा के लिये बड़ा जोर लगाया ।

१. हमारे यहाँ के कई एक धरममूरत धरमाश्रितार कमिशनरों ने कहा—'म्हातो जायें कोयना हिन्दी कैसी और उर्दू कोण ? जैसी हुजूर की मरजी होय।' लिख भेजा, सच भी है सातो विद्यानिधान, कालाकुत्ता कलकत्ता एक समझने वालों को शहर का बन्दोबस्त मिला है । ब्राह्मण, १५ मार्च १८८४, पृ० ५ ।

अध्याय ४

संधिकाल १८५०-१८६७ ई०

(भारतेन्दु युग का बीजारोपण)

भारतेन्दु जी का जन्म १८५० ई० में हुआ।^१ व्यक्ति, परिस्थितियों का सामूहिक फल है। वास्तव में भारतेन्दु काल का बीज १८५० से १८६७ तक ही बोया गया। यही वह समय है जो भारतेन्दु जी के भावी नाटकों का आधार है। इस काल के नाटकों के प्रभाव को ही ग्रहण कर भारतेन्दु जी आधुनिक हिन्दी नाटक के जनक बने हैं।

इन्द्रसभा

इन्द्रसभा नाटक का भी हिन्दी नाटक-इतिहास में एक विशेष महत्त्व है। सैयद आगा हसन 'अमानत' (१८१८-१८५८ ई०) ने इस नाटक को १८५३ ई० में बनाया। ये लखनऊ निवासी थे। डा० सोमनाथ ने अमानत को नवाब वाजिद अली शाह का दरबारी कवि माना है। उनका कहना है कि अपने आश्रयदाता नवाब वाजिद अली शाह की आज्ञा से ही अमानत ने यह नाटक लिखा। डा० सोमनाथ यह भी मानते हैं कि इस नाटक के अभिनय के लिये कैसर बाग में एक रंगमंच बनाया गया था। इस अभिनय में स्वयं नवाब साहब ने इन्द्र बन कर परियों का दीद नसीब किया था।^१ डा० सोमनाथ का उक्त मत श्री रामबाबू सक्सेना के उर्दू साहित्य के इतिहास के आधार पर व्यक्त हुआ है। हिन्दी जगत और नाटककारों ने भी रामबाबू सक्सेना के इसी मत को ग्रहण किया। श्री गजानन शर्मा ने भी यही स्वीकार किया है कि हिन्दी का पहला रंगमंच कैसर बाग में बना जिसमें स्वयं लखनऊ के 'रंगीले मियाँ' जनाब वाजिद अली शाह इन्द्र बने।^२

प्रयाग विश्वविद्यालय के उर्दू के प्राध्यापक श्री मसीह उज्जर्मा इस मत को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि नवाब वाजिद अली शाह ने एक 'रहस-खाना' बनवाया था। नवाब साहब को नाटक इत्यादि का शौक तो बहुत था परन्तु उन्होंने कभी अभिनय में भाग नहीं लिया। यहाँ तक सबकी पहुँच कहाँ

१. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, तृ० सं०, पृ० ६।

२. हिन्दी रंगमंच की नई दिशाएँ—(लेख)—'कल्पना' सितम्बर

हो सकती थी। फलतः यह कल्पना करना कि अमानत ने इस रहस्यखाने के लिये नाटक लिखा, असत्य है। अमानत ने अपने ही तौर पर इन्दरसभा नाटक लिखा। यह लखनऊ में खेला गया। परियों का अभिनय कमसिन लड़कियों ने किया। जनता ने इसे इतना पसन्द किया कि इसकी लखनऊ में धूम मच गई। लखनऊ में जगह-जगह इसका अभिनय हुआ। लखनऊ से बाहर दूर-दूर इसकी शोहरत हवा की पीठ पर उड़ी। भारतीय और यूरोपीय भाषाओं में इस नाटक के अनुवाद हुए। 'ब्लूमहार्ट' ने फेहरिस्त कुतुब में से ५० एडिशनो का जिक्र किया है जो केवल उन्नीसवीं सदी में भारत, जर्मनी और फ्रांस में प्रकाशित हुए। इसी इन्दरसभा को पारसी कम्पनियों ने अपनाया। इसकी नकल की।^१

लखनऊ विश्वविद्यालय के उर्दू के प्राध्यापक, प्रो० सैयद मसऊद हसन रिजवी भी अपनी पुस्तक इन्दर सभा में अमानत का किमी प्रकार का सबध नवाब वाजिद अली शाह या उनके दरबार से नहीं मानते। वे यह भी स्वीकार नहीं करते कि नवाब साहब की आज्ञा से यह नाटक लिखा गया। उनका मत है कि अमानत ने अपनी मर्जी से यह नाटक लिखा था। न कभी इस नाटक का अभिनय कैसर बाग में हुआ और न नवाब साहब ने उसमें कभी अभिनय किया।^२ रिजवी के तर्क विचारणीय हैं। इस दशा में और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है।

अमानत ने चाहे नवाब साहब की आज्ञा से नाटक उनके रहस्यखाने के लिए न भी लिखा हो किन्तु एक बात अवश्य है कि अमानत की आँखों के सामने रंगीले वाजिद अली शाह का रहस्य और उनको खुश करने का खयाल अवश्य था।

कवि सबको बाकायदे झुक कर बैठने की आज्ञा देता है। राजा, सरकार इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी बड़े अदब और कायदे के साथ हुआ है। उनसे इनाम माँगा जाता है। उनका गुलाम बनने की इच्छा प्रकट की जाती है एवं उनके लिए दुआएँ माँगी जाती हैं। नाटक का राजा इन्दर लखनऊ का नवाब ही तो है। अमानत दरबार में जाने का भी संकेत करते हुए कहते हैं कि मैं देश विदेश की खाक छानने के बाद दरबार में आया हूँ।

हुआ है मेरा तब इस महकिल में आना।

जबसे सारा देश विदेश उस्ताद ने छाना।

१. श्री श्रीकृष्णदास का लेख "इन्दर सभा और रहस्य", नयापथ, नाटक विशेषाङ्क, मई १९५६, पृ० ४७६।

२. वही पृ० ४७६ एवं ४७७।

उस्ताद अमानत की दिली खाहिश है कि वह दरबार में नाम पाये ।

उस्ताद अंजुमन में रहे सुखरू सदा

अल्लाह से दुआ ये मेरी सुबहो शाम है ।

• नाटक का विषय भी रंगीले भियों के 'रहस' (रास) से मिलता-जुलता है । राजा इन्दर (नवाब वाजिद अली शाह) प्रत्येक सुन्दरी परी को अपनी बगल में बैठे लेते हैं । कन्हैया की होरियाँ भी गाई गई हैं । रंगीले भियों या रहस के कन्हैया का एक ही काम है—ऐश करना । उसी का वर्णन इन्दर सभा में हिन्द के 'राजा' के रूप में हुआ है ।

खिलवत में रहता हूँ मैं ऐश है मेरा काम ।

शहजादा हूँ हिन्द का नाम मेरा गुलफाम ।

• इन्दर सभा या इन्द्र सभा की भाषा फारसी शब्दों से भरी हिन्दी ही है । २ चौबेले, ५ छन्द, १५ गीत (८ टुमरियाँ, ४ होरियाँ, १ सावन १ बसन्त और १ फाग), हिन्दी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हैं । चेरी, मुरूप, सुभाव, करतार इत्यादि स्पष्टतया बताते हैं कि अमानत मिली जुली हिन्दी का प्रयोग कर रहे हैं । ब्रज (ठेठ) का परिधान भी कहीं-कहीं है । अवधी की तो गीतों में अधिकता है । खड़ी बोली तो सर्वत्र प्रतिष्ठित है ।

इन्दरसभा नाटक का हिन्दी नाटक जगत में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है । इसने जनता को इतना प्रभावित किया कि हिन्दी नाटको की एक परम्परा इसी नाटक के आधार पर चली । उस काल से सिनेमा के प्रवेश तक इन्द्रसभा के अनुकरण पर लिखे थियेट्रिकल नाटक जनता को मोहते रहे । इन्द्रसभा के प्रभाव के कारण थियेट्रिकल नाटको में शृङ्गारिक गानों की एवं उर्दू की प्रधानता हो गई थी । जिस समय इन्द्रसभा नाटक का निर्माण हुआ उस समय सभी जन-नाट्य-शैलियों में अश्लीलता आ गई थी । पीछे इसकी चर्चा हो चुकी है । यात्रा, स्वांग, रासलीला इत्यादि सभी में शृङ्गारिक गीतों की भरमार हो गई थी । फलतः अमानत ने भी उसी प्रचलित परम्परा को पकड़ा । रीतिकालीन कविता एवं राजा नवाबों के साथ तत्कालीन जनता के दृष्टिकोण का भी प्रभाव था जो शृङ्गारिक रूप में प्रकट हुआ । ,

भारतेन्दु जी ने इसे भ्रष्ट नाटक कहा है । वे रंगमंच की दृष्टि से नाटक के तीन भेद करते हैं । (१) काव्यमिश्र (२) शुद्ध कौतुक और (३) भ्रष्ट । भ्रष्ट नाटक के विषय में वे कहते हैं—भ्रष्ट अर्थात् जिनमें नाटकत्व नहीं शेष रहा है, यथा भाँड़, इन्द्रसभा, रास, यात्रा, लीला और झोंकी आदि ।

इसकी रोकथाम के लिये उन्होंने काव्यमिश्र नाटक रचे, और रंगमंच की भी काशी में स्थापना की । दुःख है कि भारतेन्दु जी का यह रंगमंचीय प्रयास सफल न हो सका । दो महान् नाटककारों ने लगभग एक ही समय में

इन्द्रसभा शैली से लिखे पारसी थियेट्रीकल शकुन्तला नाटक को देखा। वे थे हिन्दी के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और मराठी के किलोस्कर। दोनों को उस शकुन्तला नाटक को देख क्षोभ उत्पन्न हुआ। दोनों ने उस नाटक प्रणाली के संशोधन की प्रतिज्ञा की। भारतेन्दु जी शुद्ध साहित्यिक धारा की ओर बढ़े और उसी को रंगमंच पर लाए। उधर किलोस्कर ने उस धारा को रोका नहीं, मोड़ दिया। इन्द्रसभा की संगीत शैली को ही अपना कर अपने नाटक लिखे और उसका परिष्कार किया। मराठी रंगमंच आगे बढ़ा। दुःख है कि भारतेन्दु जी की परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए कोई प्रभावशाली व्यक्ति सामने नहीं आया। भारतेन्दु जी का शुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण रहा जबकि किलोस्कर का व्यावहारिक। अतः किलोस्कर नाटक परम्परा को आगे बढ़ाने में अधिक सफल हो गए।

ऐसी बात नहीं है कि भारतेन्दु जी, इन्द्रसभा शैली से प्रभावित न हुए हों। भारतेन्दु जी के पात्र भी आते समय वैसा ही परिचय देते हैं जैसा इन्द्र सभा के पात्र। (१) इन्द्र रंगमंच पर आ कर कहता है :—

राजा हूँ मैं क्रौम का इन्दर मेरा नाम। (इन्द्रसभा)

पुखराज परी कहती है कि—

मेरा नाम व काम क्या है—

गाती हूँ मैं और नाच सदा काम है मेरा।

आफाक में पुखराज परी नाम है मेरा ॥

फन्दे से मेरे कोई निकलने नहीं पाता।

दिल लेके मुकर जाना सदा काम है मेरा ॥ (इन्द्रसभा)

इसी प्रकार भारतेन्दु जी का 'सत्यानाश' फौजदार कहता है—

हमारा नाम है सत्यानाश, आये हैं राजा के हम पास।

करके हम लाखों ही मेष, किया चौपट यह सारा देश ॥^१

(२) इन्द्रसभा की लाल परी कहती है कि—मेरी आँखें तलवार हैं और उनसे मैं अपने प्रेमी का काम तमाम करती हूँ।

आशक को कत्ल करती हूँ अब्र की तेश से।

तो भारतेन्दु जी की नाटिका चन्द्रावली की जोगिन भी कहती है कि मेरे नेत्र मद (शराब) से भरे हैं और अपने प्रेमी (आशिकों) को मैं बहुत अच्छी लगती हूँ।

बड़े-बड़े नेत्र लुये कानन लौं चितवन मद अलसाई।

पूरी प्रीति रीति रस सानी प्रेमी जन मन भाई ॥^२

वास्तव में चन्द्रावली की जोगिन पर इन्द्र सभा का प्रभाव है। जोगिन के अपने रूप की प्रशंसा में गाने एवं चन्द्रावली का आलिंगन रास एवं इन्द्रसभा के प्रभाव को ही दिखलाता है।

(३) इन्द्रसभा की जोगिन का रूप वर्णन चन्द्रावली के रूप वर्णन से मिलता जुलता है।

इन्द्र सभा की जोगिन—

जोगन आती है परी बन के परिस्तान के बीच ।
 सुमरनी हाथों में मुद्रे परे हैं कान के बीच ॥
 सर पै हँडवा है रखे मुँह पै रमाये भभूत ।
 सेलियों डाले है गर्दन में गर्दवान के बीच ।
 चाल मतवाली है आँखें हैं मये इश्क के लाल ।
 गमजा आकृत है क्रयामत है अदायें उसकी ।
 हथ आलम में बपा करती है इक आन के बीच ।

चन्द्रावली की जोगन का रूपवेश भी ऐसा ही है—

कोई एक जोगिनी रूप कियें ।

भौहैं बंक लुकोहैं लोयन चलि चलि कोयन कान लियें ।
 शोभा लखि मोहत नारी नर वारि फेरि जल सबहिं पियें ॥
 नागर मन मथ अलख जगावत गावत कोंधे बीन लियें ॥ अंक ४
 बनी मन मोहिनी जोगिनियाँ ।

गल सेली तन गेरुआ सारी केस खुले सिर बंदी सोहिनियाँ ।
 माते नेत्र लाल रँग डोरे मद बोरे मोहे सबन छलिनियाँ ॥
 जोगिन मुख पर लट लटकाई ।

कारी घूँघरवारी प्यारी देखत सब मन भाई ।

इन्द्र सभा की जोगन की 'आँखें हैं मये इश्क से लाल' तो चन्द्रावली नाटिका की 'जोगिन की आँखें प्रेम खुमारी' से लाल हैं।

• (४) इन्द्र सभा का छन्द 'गजल' भारतेन्दु जी के नाटकों (नील देवी, भारत दुर्दशा) में प्राप्त होता है। यह प्रभाव पारसी थियेट्रीकल नाटकों और इन्द्र सभा का ही कहा जा सकता है।

शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से देखने पर भारतेन्दु जी के शब्दों में यह नाटक अष्ट नाटक ही कहा जायगा। इसका एकमात्र कारण इसमें शृंगारिक उक्तियों की अधिकता है जो अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गई है। चुम्बन आलिंगन की भरमार है।

इन्द्र सभा हेय नाटक नहीं है। रंगमंच की दृष्टि से तो यह नाटक बहुत सफल हुआ ही, कविता भी बहुत से स्थलों पर सरस और हृदय-

ग्राही है। हों वह शृंगारिकता से भरी है और उसपर फारसी काव्य एवं रीतिकाल का स्पष्ट प्रभाव है। रीतिकाल की नाईं उसमें नायिका वर्णन हुआ है। नायिका की आँख (पृ० ८) मुसकान (पृ० ८) वस्त्र (पृ० ८) तिलक (१३) रूप (१२) वस्त्राभूषण (११) मान (२८) इत्यादि का वर्णन भरा मिलेगा। अदाओं पर उस्ताद अधिक कुर्बान हुए हैं। कविता में सरसता और ऊहा दोनों हैं। कल्पना की सुन्दर उड़ान जो उर्दू की कविता की एक विशेषता है, इन्दर सभा में बहुतायत से है। कुछ उदाहरण देखिए—

चढ़ गया जबकि फलक पर मेरी आहों का धुँआ।

गिर गई खल्क की नजरो से घटा सावन की॥

वियोग की आग का ऊहात्मक वर्णन देखिए—

शबे फुरकत में नालों ने जहाँ पर सर उठाया है।

जमी को जलजला है आसमों चक्कर में आया है॥

मैने शबे फ़िराक में की जो एक आह आतशी।

जिस्मये शमअ का फुका कहने लगी जली जली॥

उर्दू की वक्रता भी पग-पग पर मिलती है। उर्दू में शृंगारिक वक्रता बड़ी ही मनोहारिणी होती है।

देखिये आँखों से किस-किस के बरसता है लहू।

यार हाथों में लगाता है हिना सावन की॥

दिल का चिराग भी जलता है—

नई है रोशनी अपनी लहद पर तंगदस्ती में।

चिरागो के एवज हर शमारू ने दिल जलाया है।

उस्ताद अमानत के ही समय में इन्दर सभा की धूम मच गई थी।

उस्ताद ने जमीं पै बला का कर दिया है नाम।

हुई इन्दर सभा जिसदम मुरत्तिब, जहाँ ने सुन के तौमीक्रो सना की।

बुतों ने दी सदा अल्लाअल्लाह। हरइक मिसरा है या कुदरत खुदा की।

हुआ जो याद जिसको ले उड़ा वह। जवों किस-किस ने गाने पर नवा की।

किसी ने याद की लिक्खी किसी ने। किसी ने जुस्तजू लाइन्तिहा की।

उड़ी शुहरत जब इसकी लखनऊ में। अमानत सबने ख्वाहिश जाबजा की।

जिरूये वज्र बोल उठे परीजाद। ख़लायक में है धूम इन्दर सभा की।

• १८५३ में ही इन्दर सभा बम्बई में खेला गया।^१ इसी के अनुकरण पर १८५४ में नाटक बैल बटाऊँ मोहना रानी का बना।

अमानत की प्रसिद्धि ने मदारी लाल से भी एक इन्द्र सभा बनवाई । मदारी लाल की इन्द्रसभा की वही शैली है जो अमानत की । शेरों में और गजलों में कथोपकथन है । बीच बीच में होली, छन्द, खम्माच इत्यादि भरे हैं । शृंगारिकता भी वही है जिसमें बोसा लेना, गले लगना, वस्त्र, इत्यादि का वर्णन प्रमुखता से भरा है । अमानत के समान इश्क को कोसा भी गया है । अमानत का कलाई वाला 'यमक' वर्णन मदारी लाल में भी है—

न पहुँचा आपको साअत छुड़ा कर पास गैरों के ।

कलाई हाथ में लेकर मेरे दिल को कल आई है । (अमानत)

खुशनुमा तेरी कलाई का जो आता है खयाल

दिले बेचैन को एक दम न कल आई है । (मदारीलाल)

वियोग के विलाप के भाव भी मिलते जुलते हैं किन्तु दोनों में अन्तर भी बहुत है—

(१) कथानक का अन्तर भी बहुत है । यहाँ जमरूद परी शाहजादे को उसकी प्रियतमा के पास से उठवा मँगाती है । शाहजादा परी को नहीं चाहता । परी उसे कैद कर लेती है । जिनों के शाह को जब शाहजादी के द्वारा समाचार मिलता है तो वह परी को सजा देता है, नर्क में भेज देता है और शाहजादे को शाहजादी से मिला देता है ।

(२) वास्तव में मदारी लाल की इन्द्रसभा का नाम इन्द्रसभा नहीं होना चाहिये । इसमें राजा इन्द्र की सभा नहीं जुड़ती । न परियाँ गाती हैं । जिनों के शाह को इन्द्र बता दिया गया है, अन्यथा इन्द्रसभा की कोई चर्चा कहीं नहीं है । इन्द्रसभा नाम अमानत के अनुकरण पर रख दिया गया है ।

(३) मदारीलाल में प्रकृति-वर्णन प्रचुरता से है, बारहमासा, वर्षा, वसन्त वर्णन । ये वर्णन अमानत में नहीं हैं ।

(४) मदारीलाल की भाषा हिन्दी के अधिक निकट है ।

(५) दोनों के 'अन्त' में बड़ा अन्तर है । अमानत की इन्द्रसभा केवल सुखान्त है । नायक नायिका मिले, बिछुड़े और पुनः मिल गये । मदारीलाल के नाटक का अन्त भी यद्यपि संयोगान्त है, परन्तु सुखान्त नहीं । जमरूद परी को केवल इसीलिये नर्क की आग में डाला जाता है कि उसने शाहजादे से प्रेम किया । हाँ, शाहजादे को शाहजादी से मिला दिया गया है ।

नहुष नाटक (१८५७ ई०)

अनेक आलोचकों ने नहुष नाटक का निर्माण-काल सन् १८४१ ई०

माना है^१। किन्तु भारतेन्दु जी ने स्पष्टतया अपने नाटक नामक निबन्ध में लिखा है 'नहुष नाटक बनने का समय मुझको स्मरण है। आज पचीस बरस हुए होंगे, जबकि मैं सात बरस का था, नहुष नाटक बनता था'^२ अतः इसका रचनाकाल १८५७ ई० है। भारतेन्दु जी इसे हिन्दी भाषा का 'प्रथम नाटक' मानते हैं^३। भारतेन्दु जी ने आनन्द रघुनन्दन को नाटक नहीं माना है क्योंकि वह नाटक की यथावत् रीति से नहीं बना है। नहुष में वे विशुद्ध नाटक रीति—पात्र-प्रवेशादि—देखते हैं। अतः उन्होंने इसे प्रथम नाटक घोषित किया। किन्तु तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि शैली की दृष्टि से नहुष नाटक और आनन्द रघुनन्दन में विशेष अन्तर नहीं है—(१) दोनों में पात्र-प्रवेशादि नियम हैं। (२) दोनों में पद्य-बहुलता है। (३) दोनों में गद्य की मात्रा अल्प है। नहुष में तो गद्य और भी कम है (४) दोनों के कथानकों में गति नहीं है। लेखक बलात् कथा को आगे बढ़ाता है। आनन्द रघुनन्दन से नहुष की श्रेष्ठता इसमें है कि (१) नहुष नाटक में खड़ी बोली का प्रयोग है जबकि आनन्द रघुनन्दन में नहीं, (२) आनन्द रघुनन्दन के पात्रों के नामों की क्लिष्टता नहुष में नहीं है, भाषा सरल और सुबोध है और दृश्य जल्दी नहीं बदलते। इसीलिए भारतेन्दु जी ने इसे हिन्दी का प्रथम नाटक कह दिया है।

नहुष नाटक पूर्व के ब्रजभाषा नाटकों की शृंखला की एक कड़ी ही है। पूर्व भारतेन्दु कालीन ब्रजभाषा नाटकों की अनेक समानताएँ नहुष में प्राप्त होती हैं—

(१) छन्द प्रधानता—इसमें भी छन्दों की प्रधानता है। गद्य तो लजाकर रंगमंच पर आने में संकोच करता है। पात्र कहीं कहीं भूले-भटके एकाध वाक्य गद्य में बोल देता है। नहीं तो सर्वत्र पुराने ब्रजभाषा नाटकों की नाई पद्य महाराज आसन जमाये हैं। अन्तर इतना ही है कि जहाँ आनन्द रघुनन्दन या दो एक प्रबोध चन्द्रोदयों को छोड़ कर अन्यो में गद्य नाम मात्र को भी न था, केवल पद्य ही का एकछत्र राज्य था वहाँ नहुष में गद्य भी दास की नाई 'जो आशा' मात्र कहने के लिए आ जाता है।

१. बाबू राधाकृष्णदास (नहुष की भूमिका पृ० ११ से उद्धृत।)

डा० सोमनाथ कृत 'हिन्दी नाटक सा० का इतिहास,' तृ० सं०, पृ० ५।
राजेन्द्रसिंह गौड़, 'हमारी नाट्य साधना,' प्र० सं०, पृ० ६४।

डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल, 'भारतेन्दु का नाट्य साहित्य' तृ० सं०, पृ० ३२।

२. भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्रथम भाग, सं० बा० बजरत्नदास, प्र० सं०, पृ० ७५२।

३. वही, पृ० ७५२।

(२) पात्र परिचय—प्राचीन ब्रजभाषा नाटकों में जब पात्र का प्रवेश होता है तो कवि उस पात्र की रूप-रेखा का पद्यात्मक वर्णन देता है। यहाँ भी वही किया गया है। उदाहरण—जब राजा नहुष रंगमंच पर प्रवेश कर रहे हैं तब उनका वर्णन देखिए—

हाटक सी दमके दुति देहन हीरन के हिय हार सुहाए ।
जामा सफेद विराजि रह्यो बिबि हाथन में धनुवान बसाए ।
ध्यावत ही 'गिरिधारन' के पद सकपने का गरूर बढ़ाए ।
सोह्यो नरेश सुभेस गुनाकर तेज विसैस दिनेस लजाए ॥

(नहुष ३-२३)

इस प्रकार प्रत्येक पात्र का वेश-वर्णन पात्रागमन के समय किया गया है।

(३) वर्णनात्मक शैली—कवि ब्रजभाषा नाटकीय परंपरा की नाई अन्य प्रकार के वर्णन भी देता जाता है। तीसरे अंक में जब अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं तब कवि स्वयं उनका वर्णन दो कवित्त और एक दोहे में करता है^१। तृतीय अंक में जब राजा नहुष का राज्यतिलक हो रहा है तब कवि ने ५ छन्दो (३१ से ३५ तक) में पूजा-विधान का वर्णन किया है। छठे अंक में अश्वमेध यज्ञ का सांगोपांग वर्णन कवि ने १२ छंदों^२ में किया है। ये सब वर्णन कवि ने स्वयं किये हैं और उसी शैली में किए हैं जिसे पूर्व युग के ब्रजभाषा नाटककारों ने अपनाया था। उदाहरण—

गुरु ने तिलक जब कियो तब जै जै अमर बरनत भए ।
कुसुमन करी बरखा परम लखि नृपहिं सब दुख दुरि गए ॥३-३३॥
बहु बजे दुंदुभि ढाल चग मृदंग ता छन नाक में ।
दे दान दीनन देवपति दारिद मिलायो खाक में ॥३-३४॥
ता छन निज निज भेंट लै आए सगरे देव ।

पृथक् पृथक् देवै लगे बाढ्यो हरष अमेव ॥३-३५॥
सभी अंकों में इस प्रकार की शैली मिलेगी।

(४) शरीरांग-वर्णन—पूर्व भारतेन्दु ब्रजभाषा नाटककार नायिका वर्णन का अवसर अवश्य निकाल लेते थे। धोंकल मिश्र ने तो शकुन्तला नाटक में अलग से नायिका का नखशिख वर्णन दिया है। नहुष नाटक का कवि भी ऐसा अवसर उपजाता है। राज्यतिलक के बाद अप्सराएँ नाचती हैं और कवि नायिका का शरीरांग वर्णन देता है।

१. अंक ३ में ५६ से ६१ तक के छन्द ।

२. अंक ६ में ३८ से ४९ तक के छन्द ।

मैन कामिनी सी नाचै मेनका अनूप रूप,
अति ही कटीली भौंह बनी जाकी असिसी ।

रंभा सी जुगल जानु रंभा निरतत चार

कंचुकी कसीली जामे पति मति कसी सी ।

कवि कंचुकी का वर्णन नहीं भूला है, वह भी कसी हुई कंचुकी का । आगे नायिका के अंगों के साथ उसके रंग और वस्त्रों का भी वर्णन करता है (३-६१) ।

नाटक का नामकरण 'नहुष' के ऊपर किया गया है । फलतः 'नहुष' इसका नायक प्रतीत होता है । परन्तु फल की दृष्टि से नायक नहुष नहीं सिद्ध होता । फल हो सकता है—इन्द्राणी एवं राज्य-प्राप्ति । नहुष ने राज्य पाया पर खो दिया और इन्द्राणी को वह पा न सका । अतः फल-प्राप्ति की दृष्टि से 'नहुष' नाटक का नायक सिद्ध नहीं होता । उसका चरित्र भी गिरा हुआ है । चार प्रकार के नायकों में से 'धीर ललित' भी वह नहीं है । वह लम्पट और कामुक है । अनेक अप्सराओं को प्राप्त करके भी इन्द्राणी को पाने का अनुचित प्रयास करता है । वह सर्वश्रेष्ठ ऋषियों को पशु की नाईं यान में जोतता है । फलतः उसका अन्त दुःखद ही होता है । वास्तव में नहुष के प्रति दर्शक को किसी प्रकार की सहानुभूति पैदा नहीं होती । 'फल' की दृष्टि से इन्द्र ही इसका नायक बैठता है । उसकी हत्या छूट गई । राज्य प्राप्त हो गया और इन्द्राणी भी मिल गई । इन्द्र का चरित्र भी गिरा हुआ अंकित नहीं हुआ है । उसने वृत्रासुर को मारा । मारने का कारण है देवताओं को वृत्रासुर ने कष्ट दिया था । वृत्रासुर का वर्णन कवि ने एक महावीर के रूप में किया है । जब इन्द्र का वज्र गिर पड़ा तो वृत्रासुर ने इन्द्र को मारा नहीं, वरन् कहा कि वज्र उठा और मुझसे लड़ । इन्द्र बड़ी कठिनता से वृत्रासुर को मार सका । उसने यह पाप कर्म ही किया कि ब्राह्मण वृत्र को हत्या की । फलतः वह गिरिकन्दराओं में छिपा रहा । अन्त में उसे राज्य, स्त्री और हत्या से छुटकारा प्राप्त हुआ । किन्तु नाटककार 'नाटक' का नाम नहुष ही रखता है । भारतीय नाट्यशास्त्र की दृष्टि से नहुष नायक सिद्ध नहीं होता, भले ही अन्त में नहुष को इन्द्र से भी ऊपर 'हरिदिग' पहुँचाया गया है । किन्तु यह 'फल' नहीं है, जैसा कि नहुष कहते हैं—वह तो धर्मराज के दर्शन का प्रभाव था जिससे शाप मिट गया था । आरम्भ में अवश्य गुरु बृहस्पति ने नहुष की प्रशंसा की थी, किन्तु वह शाब्दिक प्रशंसा नहुष के कार्यों से प्रमाणित नहीं हुई । उसने देवताओं का राज्य पा कर देवों को कष्ट दिया । फिर अप्सराओं के विलास में पड़ा । पतिव्रता इन्द्राणी को भ्रष्ट करना चाहा । नहुष का चरित्र भारतीय दृष्टि से 'नायक' के अनुरूप नहीं है । हाँ, नाटक की कथा उससे लिपटी पड़ी है । इस दृष्टि से तो नायक माना जा सकता है । किन्तु कथानक को गति देने में गुरु बृहस्पति का

अधिक हाथ है। यदि बृहस्पति न होते तो नहुष का कथानक आगे बढ़ ही नहीं सकता था। वृत्रासुर मर गया। इन्द्रासन पर नहुष को बैठाने वाले गुरु बृहस्पति ही हैं। सब प्रमुख देवता चन्द्र, सूर्य इत्यादि चाहते हैं कि जयंत को बैठाया जाय। किन्तु गुरु बृहस्पति ने सबका विरोध कर जबरदस्ती नहुष का राज्यतिलक किया। राज्यतिलक हो जाने के बाद नहुष को नीचे गिराने में भी उन्हीं का हाथ है। उन्होंने ही ऐसा षड्यंत्र रचा कि नहुष इन्द्राणी पर आसक्त हो जाय। यह पूरा षड्यन्त्र गुरु बृहस्पति का था। उन्होंने एक और राजा को इन्द्राणी पर आसक्त कराने का प्रयास किया तो दूसरी ओर इन्द्राणी को भी बढ़ावा दे कर कहा कि तू उस कामी से कहना कि वह सप्त ऋषियों को घोड़ों की जगह जोत कर यान पर चढ़ कर आवे। इस प्रकार नहुष को गिराया। फिर अश्वमेध यज्ञ करवा कर इन्द्र को राज्य दिलवा दिया। कथानक की गति को देखा जाय तो बृहस्पति ही इसके 'नायक' ठहरेगे। परन्तु गुरु बृहस्पति ने यह सब कार्य दूसरों के लिए किया। उनका अपना स्वार्थ कुछ न था। फलतः 'फल' की प्राप्ति न उन्हें हुई, न वे चाहते थे। वे तो एक सूत्रधार की तरह हैं और पीछे से कठपुतलियों को चला रहे हैं। अतः गुरु बृहस्पति नायक नहीं हो सकते।

वास्तव में नाटककार नहुष को ही नायक मानता है। वह प्रस्तावना में सूत्रधार से कहलाता है—

जा विधि राजा नहुष ने कियो स्वर्ग को राज।

सो नाटक चाहत करन हुकुम कियो महाराज।

कवि का लक्ष्य है कि नहुष के उदाहरण से उपदेश दे कि पर-नारी पर कभी भी दृष्टि नहीं लानी चाहिये (६-१२)। उसने इस बात की चिन्ता नहीं की है कि वह नाट्य शास्त्र की दृष्टि से नायक ठहरेगा या नहीं। उपदेश की दृष्टि से नाटक को चरित्र-प्रधान बनाया गया है।

उन्होंने अन्यत्र भी भारतीय नाट्य शास्त्र की चिन्ता नहीं की है। नाट्य शास्त्र के अनुसार कुछ वर्जित दृश्यों को रंगमंच पर नहीं लाना चाहिये। नाट्य-शास्त्र में यज्ञ करना, वाहन का रंगमंच पर लाना, हत्या इत्यादि वर्जित दृश्य हैं। किन्तु नाटककार ने छूठे अंक में विस्तार से अश्वमेध यज्ञ कराया है। पाँचवें अंक में सप्तर्षि पालकी को उठाकर रंगमंच पर चलते हैं। नाटक का अंत भी पूर्ण सुखान्त नहीं है वरन् बलात् सुखान्त बनाया गया है। राजा नहुष को इन्द्राणी तो मिली नहीं, स्वर्ग का राज्य भी हाथ से गया। ऊपर से हजारों वर्ष सर्प बन कर रहना पड़ा। यह अन्त दुःखमय ही था। उधर प्रतिनायक इन्द्र को राज्य मिल गया। परन्तु नाटककार अन्त में अचानक नहुष को विमान पर बैठा कर स्वर्ग से ऊपर भेज देता है। इस प्रकार बलपूर्वक सुखान्त

कर देता है। हाँ, इन्द्र के नायकत्व की दृष्टि से नाटक पूर्ण सुखान्त है ही।

नांदी पाठ और प्ररोचना हैं। कथोद्घातक नामक प्रस्तावना भी है। प्रथम अंक में युद्ध को रंगमंच पर न ला कर जयंत एवं कार्तिकेय द्वारा युद्ध का वर्णन कराया गया है। शृङ्गार रस को प्रधान रखा है।

इस प्रकार पश्चिमी और पूर्वी दोनों प्रकार के नाट्य शास्त्रों का समन्वय नहुष से ही आरंभ हो गया जो आगे भारतेन्दु युग का सर्वमान्य सिद्धान्त बन गया।

शकुन्तला (१८६३)

राजा लक्ष्मण सिंह ने १८६३ ई० में अभिज्ञान शाकुन्तलम् का अनुवाद गद्य में किया। इसमें पद्य नाम मात्र को ही था। इसी को 'पिनकाट' महाशय ने १८७६ ई० में प्रकाशित कराया। इसकी भाषा शुद्ध हिन्दी है। एक उदाहरण देखिए—

मादव्य—इस मृगयाशील राजा की मित्रता से हम तो बड़े दुखी हैं। मन में ऐसी आती है कि सब छोड़ छोड़ बैठ रहिए। यहाँ तो ग्रीष्म की दुपहरी में भी यह मृग आया, वह बराह गया, उधर शार्दूल जाता है, यही कहते इस वन से उसमें उससे इसमें पशुओं की भाँति भागना रहता है। कहीं छाया भी इतनी नहीं मिलती जहाँ कुछ विश्राम लिया जाय।

२४ वर्ष बाद इसका दूसरा अनुवाद पद्य का पद्य में और गद्य का गद्य में प्रकाशित हुआ। इस अनुवाद को प्रशंसा सर्वत्र हुई। इसके पढ़ने में मौलिक नाटक का सा आनन्द आता है। तब से इस नाटक के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

इस १८६३ ई० के गद्यात्मक अनुवाद का यही महत्त्व है कि इस नाटक ने नाटको में गद्य होना चाहिए, इस तथ्य की स्थापना कर दी, गद्य के प्रति लोगों को प्रेरित किया और भावी गद्य युग के संकेत दिए। भारतेन्दु जी भी इससे प्रभावित हुए।

प्रद्युम्न विजय नाटक (१८६४ ई०)

काशी नरेश महाराज ईश्वरीनारायण सिंह के दरबारी कवि 'गणेश' कृत प्रद्युम्न विजय नाटक एक सुन्दर रचना है। प्रातः प्रद्युम्न विजय नाटक स्वतंत्र ग्रंथ न हो कर गणेश कवि कृत साहित्य सागर नामक काव्य शास्त्र ग्रंथ का एक अंश है।^१ साहित्य सागर का रचना काल १८६४ ई०

१. मुझे इस ग्रंथ की चार प्रतियाँ प्राप्त हुईं। दो हस्तलेख काशिराज

है^१। अतः प्रद्युम्न विजय नाटक का निर्माण काल भी १८६४ ई० माना जा सकता है।

भारतेन्दु जी ने अपने नाटक नामक निबन्ध में प्रभावती नामक नाटक की चर्चा की है।^२ ऐसा अनुमान होता है कि संभवतः प्रद्युम्न विजय का ही नाम प्रभावती रहा होगा। इस अनुमान के आधार निम्नलिखित हैं—

(१) भारतेन्दु जी का कथन है कि प्रभावती नाटक श्री महाराज काशीराज की आज्ञा से बना था। प्रद्युम्न विजय नाटक में स्पष्ट उल्लेख है कि यह नाटक महाराज ईश्वरी नारायण सिंह जी की आज्ञा से निर्मित हुआ था।

(क) भूप मौलि श्री ईश्वरी नारायण महाराज।

लषि मेरे गुन रीझि कै आयसु दयो दराज ॥

गये जीति अनगन वरष नाटक विधि व्योहार।

भये गुप्त तेहि प्रगट करि दरसावो सुष सार ॥ (अंक १, छंद २०)

(ख) दियो हुकुम नृप चाहि (अंक १, छंद ५६)

(ग) नाटक की अन्तिम पुष्पिका में कवि कहता है कि यह नाटक 'श्री ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह बहादुर कारिते गनेश कवि विरचित साहित्य सागर नामनि अलंकार प्रबंध चतुषष्टयंग सहित प्रद्युम्न विजय नाटक निरूपन नाम द्वादशस्तरंगः।

(२) भारतेन्दु जी का इस नाटक के विषय में कथन है कि यह नाटक-रीति से बना है। प्रद्युम्न विजय को देखने से यह तथ्य भी प्रमाणित होता है।

(क) प्रद्युम्न विजय साहित्य सागर में नाटक के उदाहरण में ही प्रस्तुत है।

(ख) हिन्दी में यही अकेला नाटक है जिसमें पाँचों सधियों के ६४ अंग प्राप्त होते हैं। नाटक के अन्य शास्त्रीय नियमों से यह व्यवस्थित है।

(३) भारतेन्दु जी कहते हैं कि प्रभावती छन्द प्रधान ग्रंथ है। यह भी इस पर लागू होता है।

पुस्तकालय में हैं, एक बा० ब्रजरत्नदास के पुस्तकालय में है एवं एक स्व० बा० राधाकृष्ण दास जी के पुत्र के पास है। काशीराज पुस्तकालय की दोनों प्रतियाँ साहित्य सागर की अंश हैं। बा० ब्रजरत्नदास एवं बा० राधाकृष्णदास जी के सुपुत्र वाले हस्तलेख भी साहित्यसागर के अंश प्रद्युम्न विजय की प्रतिलिपियाँ हैं, स्वतंत्र रूप से लिखे नाटक नहीं हैं।

१. गगन पञ्च ग्रह चन्द्रमा शुक्ल अष्टाद द्वितीय।

गुरु बासर साहित्य को सागर पूरन कीय।

—इति साहित्यसागर समाप्तम् (अंतिम पुष्पिका)

२. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहिला भाग, पृ० ७५२।

(४) प्रद्युम्न विजय में 'प्रभावती' नायिका है। यह एक प्रेम नाटक है। प्रायः प्रेम नाटकों का नाम नायक नायिका के ऊपर ही रखा जाता है। उदाहरणों की न्यूनता नहीं है, मालती माधव, रत्नावली, विक्रमोर्वशीय, शकुंतला, वासवदत्ता, प्रेम सुन्दर, विद्यासुन्दर, कर्पूर मंजरी, रणधीर प्रेम-मोहनी, गंगोत्री, मनोरंजनी इत्यादि। फलतः इस नाटक का नाम प्रभावती ही होना चाहिए था। एक और भी तर्क इसके पक्ष में है। प्रद्युम्न-विजय नाम से ऐसा अनुमान होता है कि यह वीर रस प्रधान नाटक है और कथानक युद्ध प्रधान होगा। यह भी संभावना होती है कि प्रद्युम्न के वीरतापूर्ण कार्यों के उल्लेख को प्रधानता मिली होगी। किन्तु ऐसी बात नहीं है। इसमें शृंगार रस प्रधान है और वीर रस उसका सहायक है। विजय, कृष्ण की होती है, प्रद्युम्न की नहीं। इन्द्र ने कृष्ण को युद्ध के लिए प्रेरित किया था। युद्ध वेश में भी कृष्ण की प्रधानता है। इस दृष्टि से इसका नाम इन्द्र-विजय या कृष्ण-विजय होना चाहिए था। प्रद्युम्न ने यदि किसी को विजित किया है तो वह प्रभावती को। वह विजय युद्ध भूमि में नहीं मिली थी वरन् रति प्रसंग में। छठे अध्याय में प्रवेशक के बाद नायक नायिका का परोक्ष रतिवर्णन है। गान्धर्व विवाह हो गया। नारद ने नायिका के पिता वज्रनाभ को सूचना दी। कृष्ण और वज्रनाभ की सेनाओं में युद्ध हुआ। वज्रनाभ सपरिवार मारा गया। इसकी कथा ऊषा-अनिरुद्ध की कथा के समान है। हाँ, यहाँ नायक नायिका को मिलाने वाले हंस-हंसिनी हैं। अतः इस नाटक का नाम प्रभावती अथवा प्रभावती प्रद्युम्न ही अधिक तार्किक प्रतीत होता है।

फिर प्रद्युम्न विजय नाम कैसे रखा गया? ऐसा प्रतीत होता है कि आरंभ में इसका नाम प्रभावती था। यह नाटक स्वतंत्र रूप में रचा गया था (नाटक की प्रस्तावना)। बाद में जब साहित्य सागर रचा गया तो उसमें 'दशरूपक' नाम नाट्यशास्त्र भी एक अंग रूप में रखा गया। नाटक के लक्षण दे कर उदाहरण रूप प्रभावती को प्रद्युम्न विजय नाम से उसमें रख दिया गया। यह द्रष्टव्य है कि रूपक और उपरूपक के किसी भेद में अन्य कोई भी नवीन नाटक उदाहरण रूप नहीं दिया गया है। संभवतः नाम बदलने का कारण शंकर दीक्षित कृत संस्कृत नाटक प्रद्युम्न विजय (१८वीं शताब्दी) है।

विशेषताएँ—(१) जैसा ऊपर कहा गया है कि हिन्दी नाटक जगत का यह सबसे पहिला नाटक है जो नाट्यशास्त्र की सीमाओं को स्वीकार करके लिखा गया। पाँचों सधियों, ६४ अंग^१, एवं अन्य नाट्यशास्त्र की व्यवस्थाओं

१. अंतिम पुष्पिका में नाटककार स्वयं कहता है चतुष्षष्ट्यंग सहित प्रद्युम्न विजय नाटक निरूपन नाम द्वादशस्तरंग।^१

को नाटककार ने पूर्ण रूप से स्वीकार किया है। (२) नाटककार ने नाटक में प्रकृति वर्णन की अच्छी छुटा दिखलाई है। मध्याह्न (अंक १), रात्रि, नक्षत्र, चन्द्र (अंक ४) का आलंबन एवं उद्दीपन रूप से वर्णन किया गया है। (३) तत्कालीन अभिनय शैली पर प्रकाश डाला गया है। (क) नाटकों में पुरुष ही स्त्रियों का अभिनय करते हैं। उदाहरण—प्रस्तावना में नट नेपथ्य में गया और सांववती बन कर आया^१। पुनः अंक ५ में वज्रनाभ की नगरी में 'केते बने रंभा नलकूवर से केते बने।' (ख) मनुष्य ही पशुपत्नियों का अभिनय करते थे। प्रस्तावना से प्रकट है कि नट हंस-इंसिनी बन कर आए। आगे वे प्रभावती से जा कर मानवी भाषा में बोलते भी हैं। (ग) अभिनयकर्ता नटों को मान नहीं मिलता था। सामाजिक रूप से उन्हें हेय माना जाता था (अंक २)। (४) नाटक के पाँचवें अंक में 'रति के छूतीसों आसन' और 'सकल सुरत व्यापार' की चर्चा की है। यह स्थल रीतिकाल की शृंगारिक मनोवृत्ति का परिचायक है। राजाओं और नवाबों में शृंगारिकता की विशेष पहुँच थी। अमानत की इन्द्रसभा और पाँचवें अंक के ये स्थल इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं। (५) नाटक में देवराज इन्द्र से वज्रनाभ राजस का चरित्र उत्तम दिखाया गया है। इन्द्र और वज्रनाभ सौतेले भाई हैं। इन्द्र वज्रनाभ के भाग को भी दबा कर बैठ गया था। वज्रनाभ कहता है—इन्द्र ! मेरे शरीर में भी उसी पिता का रक्त है जिसका तुम्हारे शरीर में है। तब यह भिन्नता क्यों ? एक भाई तो सारा राज्य समेट ले और दूसरा भाई दाने दाने को तरसे^२।

वज्रनाभ पिता से कहता है—इन्द्र मेरा बैरी बन रहा है। वह मुझे मारना चाहता है ताकि निष्कण्टक राज्य भोग करे। आप ग्यानी हैं। स्वयं विचार लीजिए। मेरा अपराध ही क्या है ? पिता कस्यप भी इन्द्र को ही दोषी ठहराते हैं कि इन्द्र बड़ा कामुक है। यदि कृष्ण सहायता न करते तो इन्द्र कभी भी वज्रनाभ को नहीं मार सकता था। उसकी राज्य-सीमा में पशु-पत्नियों का भी प्रवेश कठिन था। दिति और अदिति के चरित्रों में सौतिया डाह और पुत्र प्रेम भरा गया है। (६) प्रस्तावना के २०वें छन्द से प्रकट होता है कि नाटक खेला भी गया था। (७) नाटक उसी शैली पर है जिस शैली पर इससे पूर्व के ब्रजभाषा नाटक लिखे गए थे। यह शैली है जन नाट्य शैली। नाटककार ने वज्रनाभ की नगरी में भी प्रद्युम्न इत्यादि के द्वारा नाटक अभिनीत कराए हैं। वे भी जननाट्य शैली पर खेले गए थे। सूत्रधार वर्णन

१. नटी—कोउ सांव प्रभावती भाव बने।

२. देखों कास्यप पुत्र यक करत भूरि नित राज

एक दुषित बिन अन्न सों विधि विचित्र तुव काज। १-१६८

करता है। साथ ही नृत्य किया जाता है।

ताकी लीला विविध विधि नाटक नञ्चो सयान (अंक ४)।

(८) नाटककार ने अञ्छे नाटक के लक्षण भी दिए हैं जो इस नाटक पर घटते हैं। वे हैं—

पद सुन्दर कोमल अरथ प्रगट विविध रस होय।

औ विभाव अनुभाव मिलि उज्ज्वल गात सँजोय।

कदत मधुर स्वर कंठ तैं, ये वस्तु जेहि माँहि।

सो नाटक हाटक कहत ज्यों भूषन सरसाहि ॥१-४२

नाटककार ऊपर नाटक की चार विशेषताएँ बताता है (१) सुन्दर पद हों, (२) सुबोध हो ताकि दर्शक शीघ्र समझ सकें। (३) अनेक प्रकार के विभाव अनुभावों से युक्त, रस चित्रित हों। (४) गीत हो और वह अभिनेय हों। नाटककार केवल यही नहीं कहता कि वह सुन्दर गीतों से ही सम्पन्न हो वरन् स्पष्ट कहता है कि गीत रंगमंच पर कठ से मधुरता के साथ गाए भी जायें। तभी वह नाटक स्वर्णिम कहला सकेगा। नाटककार ने नाटक को नाट्य से भिन्न माना है। नाट्य नृत्य है (१-६३।६४)। (६) नाटक में नायिका, नायिका का सौंदर्य एवं शरीरांग चित्रण मिलता है।

लक्षण ग्रंथ

दशरूपक (१८६४)

हिन्दी नाटक जगत में सबसे पहिला नाट्यशास्त्र 'गणेश' कवि कृत दशरूपक है। यह नाट्यशास्त्र भी पूर्व कथित साहित्यसागर का एक अंश है। कवि ने अपना लक्षण ग्रंथ, दशरूपक और साहित्य दर्पण दोनों को सामने रख कर रचा है और बीच बीच में भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र की भी चर्चा की है। यह ग्रंथ छन्द प्रधान है। गद्य तो बहुत ही अल्प है। कहीं-कहीं लक्षण स्पष्ट करने के लिए गद्य का प्रयोग किया है तो कहीं उदाहरण को स्पष्ट करने के लिए, जैसे—अंक का लक्षण दशरूपक के अनुसार दिया गया है—

बर्ननीय जहँ है कथा नायक की बिष्यात।

सो चरित्र प्रत्यक्ष करि वरनो जात सोहात ॥

बीज बिन्दु दोउ विविध विधि संविधान तेहि माँहि।

अर्थ अनेक चमत्कृत बहुरस आलय आहि।

सोई अंक है जानिए कवि गनेस चितु लाइ

जाके जाने होत है नाटक सुबुध महाइ ॥

इसकी गद्य में व्याख्या इस प्रकार की गई है—

टीका—जो नायक नायकादि वर्ननीय वस्तु प्रवेश विषै अंक सद्रिस अंक कहे गोद जैसे बालकादि को बैठारने को गोद सुन्दर अस्थान है तैसे वर्नन करने लायक जौन वस्तु है ताकों सुन्दर अस्थान यह है ताते अंक नाम या को है ।

इसी प्रकार प्रतिमुख संधि के 'प्रगमन' नामक अंक का लक्षण-उदाहरण दे कर उसकी गद्य में टीका की है । ये लक्षण और उदाहरण धनंजय कृत दशरूपक से लिए हैं—

उत्तर उत्तर वचन में क्रम करि जहँ अनुराग
बढ़त जात ताको कहत प्रगमन सुधी समाज ।
उदित तिहारो विधि जोगतें तिहारो भाग ,
काहे ते कहो जु वेगि मोसो चित चाइकै ।
कह्यो हाथ रावरी प्रिया के चित्र रावरे को ,
ऐसे जो नहीं तो क्यों छुपाती काम गाइकै ।
ताहि समै बोली सषी सुमोहे मृनाल तुम ,
कामिनी पयोधर तें क्यों जुदे बिहाय कै ।
जात काहे सूपे व्हों न तंत को तिहारो जोग ,
कहा सोच औसे ठौर कीन्हें मन लाइकै ॥

टीका—इहाँ नायक प्रति मित्र के वचन—हे नायक तिहारो भाग उदे भयो । तत्र नायक ने कहो—काहे ते ।

उत्तर नायक करि के—हाथ में तिहारो चित्र यह है ।
औसो तुम्हारो चित्र न होते तो काम के व्याज करि क्यों छुपावती ।
फेर सषी को वचन—कमल दंड सो नायका की तरुनाई प्रगट करिवे हेतु नायक, मित्र सषी इत तीन के परस्पर वचन करि उत्तर उत्तर करि अनुराग बीज को बढ़ाई दियो यातें प्रगमन जानिए ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटककार प्रधानतया दशरूपक को सामने रखता है । किन्तु साथ ही साथ साहित्य दर्पण को भी पूरक रूप में सहायता के लिए बुला लेता है । नाटककार ने दशरूपक के अनुसार प्रस्तावना के तीन ही भेद माने हैं, कथोद्घात, प्रवृत्तक और प्रयोगातिशय । कथोद्घात और प्रवृत्तक का लक्षण तो दशरूपक से उठाया है किन्तु प्रयोगातिशय का लक्षण वह साहित्य दर्पण के अनुसार देता है । दशरूपक-कार का लक्षण है—

“जहाँ पर सूत्रधार यह कहे कि “यह वह है” और इसी आधार को ले कर पात्र प्रवेश हो उसे प्रयोगातिशय कहते हैं (३-११)”

साहित्यदर्पण-कार प्रयोगातिशय का यह लक्षण देता है—

“यदि एक ही प्रयोग में दूसरा प्रयोग प्रारम्भ हो जाय और उसी के द्वारा पात्र का प्रवेश हो उसे प्रयोगातिशय कहते हैं (६—३६)”

गणेश कवि भी प्रयोगातिशय का लक्षण साहित्य दर्पण के अनुसार देते कहते हैं—

“एक प्रयोग में दूसरो आवे जहाँ प्रयोग तेहि करि पात्र प्रवेश जहाँ...”

साहित्यदर्पण के ३६ नाट्य लक्षणों, ३३ नाट्यालंकारों और १८ उपरूपकों को गणेश कवि ने अपने दशरूपक में स्थान दिया है। ये धनंजय कृत दशरूपक में वर्णित नहीं है।

यह लक्षण ग्रंथ हिन्दी आलोचकों से गंभीरतापूर्वक शोध करने योग्य है।

संधिकाल के नाटकों का भावी नाटकों पर प्रभाव—

संधिकाल के नाटक पूर्व ब्रजभाषा नाटकों एवं शैलियों से प्रभावित थे। इसी प्रकार आगे आनेवाले नाटक भी इन नाटकों से प्रभावित हैं।

(१) शकुंतला के गद्यात्मक नाटक ने मार्ग प्रदर्शन किया कि केवल गद्य में भी नाटक लिखे जा सकते हैं और आगे बड़ी संख्या में गद्यात्मक नाटकों का निर्माण हुआ।

(२) इस काल के नाटक छन्द प्रधान है। पद्यों के प्रति यह सधन आकर्षण भावी नाटककारों में मिलता है। ऐसे नाटक कम ही हैं जिनमें पद्य एवं गीतों की ओर विशेष ध्यान न गया हो।

(३) इस काल के इन्द्र सभा नाटक ने भावी नाटकों को कितना प्रभावित किया है यह इन्द्र सभा के प्रसंग में स्पष्ट किया जा चुका है। आगे इन्द्रसभा-थियेटीकल नाटकों के प्रसंग में पुनः इसका प्रभाव वर्णित होगा। इस नाटक की गेयता ने भावी नाटकों में गीतों को अनिवार्य स्थान दिला दिया।

(४) इस काल के नाटकों ने भावी नाटककारों को प्रकृति-वर्णन की ओर आकर्षित किया।

(५) इस काल के नाटकों की शृंगारिकता का प्रभाव आगे बराबर दिखलाई पड़ता है।

(६) नहुष और प्रद्युम्न विजय का नायिका का शरीरांग-वर्णन भावी नाटकों में भी स्थान पाता है।

तृतीय खंड
इतिहास
(१८६७-१९००)

अध्याय १

पौराणिक नाटक

हम पीछे देख चुके हैं कि पूर्व-भारतेन्दु काल में पौराणिक नाटकों के निर्माण की ओर ध्यान अधिक था। समयसार, सभासार, माधवविनोद एवं प्रबोधचन्द्रोदय जैसे नाटकों को छोड़ कर शेष नाटक पौराणिक थे। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना प्रासंगिक होगा कि पौराणिक नाटक और ऐतिहासिक नाटक में क्या अन्तर है?

इतिहास और पुराण शब्द

इतिहास शब्द बहुत प्राचीन है। ऋक्संहिता में इतिहास शब्द प्रयुक्त है^१। छान्दोग्य उपनिषद् में नारद जी ने 'इतिहास' को पंचमवेद की सज्ञा दी है^२। व्यास जी के मत में वेद के अध्ययनार्थ इतिहास-पुराण का अध्ययन भी आवश्यक है^३।

• अट्टारह पुराणों के अतिरिक्त रामायण और महाभारत को भी पुराणों की सज्ञा प्राप्त है^४। साथ ही रामायण, महाभारत इतिहास भी हैं^५। यही नहीं, सभी पुराणों को भी इतिहास माना जाता है। इन पुराणों में इतिहास की प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है। महाभारत को पुराण और इतिहास के साथ साथ आख्यान भी कहा गया है^६।

स्वभावतः प्रश्न पैदा होता है कि पुराण और इतिहास में क्या अन्तर माना जाय। 'इतिहास का अर्थ है, 'इति + ह + आस' जो 'इस तरह से था' अर्थात् जो भूतकाल का आख्यान है^७। उधर पुराण का भी अर्थ है—पुराणा आख्यान^८। तब दोनों में भेद क्या है? पुराणों में ऐतिहासिक तथ्य अवश्य

१. आर्य संस्कृति का मूलाधार, १९४७ का प्रकाशन, पृ० १२३।

२. वही पृ० १२३।

३. वही पृ० १२४।

४. ए. हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर—एम० विंटरनिट्ज, वाल्यूम १, १९२७, पृ० ५१७।

५. आर्य संस्कृति का मूलाधार, पृ० १४५।

६. इंडियन लिटरेचर—विंटरनिट्ज, पृ० ३११

७. आर्य संस्कृति का मूलाधार, १२६।

८. इंडियन लिट०—विंटरनिट्ज, पृ० ५१८।

है, किन्तु वे शुद्ध इतिहास नहीं हैं ? उनमें साथ ही पौराणिकता भी है । विंटरनिट्ज ने अपनी पुस्तक में महाभारत की विदुला कथा^१ को इसके उदाहरण में उपस्थित किया है । यह इतिहास है । यह एक उपाख्यान है जिसे कुन्ती ने अपने पुत्रों के पास कृष्ण के हाथ संदेशा भेजते हुए कहा है । विंटरनिट्ज का कथन है कि यह एक कथा है जो ब्राह्मणों की जादूभरी लेखनी से बची रही । उनके मत में यह एक पुरानी ऐतिहासिक कथा है^२ । ऋषियों ने कुछ पुराना इतिहास लिया । उसमें काल्पनिक कथाएँ जोड़ीं । इस प्रकार पुराणों की सृष्टि हुई । इन ऐतिहासिक गाथाओं से धार्मिक उपदेश देने दिलाने का कार्य किया गया^३ । इतिहास, कल्पना और धार्मिक उपदेश की इच्छा ने पुराणों का निर्माण करा दिया । फलतः पुराणों में इतिहास और पौराणिकता दोनों हैं ।

पौराणिकता से क्या अभिप्राय है ? श्री बलदेव जी उपाध्याय अतिशयोक्ति पूर्ण रचना शैली को पौराणिकता का नाम देते हैं^४ । इसको यदि इस प्रकार कहा जाय तो अधिक स्पष्टता आ जाएगी । जहाँ अलौकिकता दिखाई दे वहाँ पौराणिकता है । इतिहास के पात्र मानव हैं, वे हमारे जैसे खाते-पीते, चलते-फिरते, रोते-हँसते व्यक्ति हैं, 'तो पुराण के पात्र अलौकिकता लिये हैं, वे हमसे बहुत ऊपर हैं । इतिहास में असाधारण व्यक्ति मिल सकते हैं, परन्तु अलौकिक नहीं । कोई व्यक्ति नैपोलियन की भाँति असाधारण वीरता दिखला सकता है किन्तु कृष्ण के समान सुदर्शन चक्र से सूर्य के ऊपर एक नवीन आकाश न बना सकेगा । इतिहास में सब कुछ संभव नहीं है । वहाँ मानवी प्रकृति की सीमाएँ हैं । हाँ, कोई व्यक्ति उन सीमाओं को तोड़ कर असाधारणता प्राप्त कर सकता है ।

पुराण का पात्र सब कुछ कर सकता है । उसके लिये कुछ भी अशक्य

१. महाभारत, ५-१३३ से १३६ तक ।

२. This torso of a heroic poem is one of the few portions of the Mahabharat which have remained almost entirely untouched by Brahmanical influence. This is one of the many instances—an 'old itihās' quoted in The twelfth book of the Mahabharat.

—A History of Indian Literature by M. Winternitz, Vol I, 1927, p. 387.

३. वही, पृ० ३१६ ।

४. आर्य संस्कृति का मूलाधार १९४७, पृ० १६८ ।

नहीं। इसीलिए पुराणों में राक्षस और देवताओं का राज्य होता है। वहाँ पात्र ऐसे काम कर बैठते हैं जो संसार में होते नहीं दिखलाई देते। एक उदाहरण राम का ले लें। वे चित्रकूट में अयोध्यावासियों में उच्चाटन फैला देते हैं। वे काकभुशुंडी को पेट में रख कर उसे ब्रह्मांडों में घुमा देते हैं। वे सीता को अग्नि में रख कर एक और कृत्रिम सीता को साथ ले घूमते हैं। देव सदा उन पर पुष्प बरसाते हैं। जहाँ राम बसते हैं, छत्रो ऋतुएँ वहाँ स्थायी रूप से रहने लगती हैं। यही अलौकिकता है। इसे ही पौराणिकता कहते हैं। यदि कोई लेखक ऐतिहासिक नाटक के पात्र में भी पौराणिकता भर देता है तो वह नाटक या उपन्यास इतिहास का शिविर छोड़ कर पौराणिकता से संधि कर लेता है। भारतेन्दुकालीन दो नाटकों के उदाहरण से यह अंतर बहुत अधिक स्पष्ट हो जायेगा। 'सीताहरण' के उच्चारण मात्र से एक अलौकिक वातावरण सामने आ खड़ा होता है। हम दश शिर वाले रावण को आकाश में राम-प्रियतमा सीता को घसीटकर ले जाते हुए देखने लगते हैं। पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी ने अपने नाटक *सीताहरण* में से अलौकिकता हटाने का प्रयास किया है। इस नाटक के सुग्रीव-हनुमान बन्दर नहीं, मानवों की नाई प्राणों हैं। जयत स्वयं काग नहीं बनता, वह पक्षियों का पालक है। उसके पास एक विशिष्ट काग था जिसे उसने सीता पर झपटने का सकेत दिया। राक्षस मांसाहारी थे जो मानव मांस को बड़े चाव से खाते थे। जटायु भी एक विशेष जाति का मनुष्य हो था। एक दूसरा नाटक बन्दोदीन दीक्षित कृत *सीताहरण* है। इसमें सीता जी अग्निदेव के पास छोड़ दी जाती हैं। जटायु पक्षी राम को ब्रह्म मान स्तुति करता है। इस नाटक के राम ब्रह्म हैं एवं उनमें अलौकिकता है। पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी मानव-जगत को सामने लाते हैं, तो दीक्षितजी अलौकिक लोकों को। त्रिपाठी जी ने अलौकिकता हटा कर पात्रों को ऐतिहासिक बनाने का उद्यम किया है तो दीक्षित जी ने अलौकिकता को भरा है। पं० बलदेव प्रसाद मिश्र का एक नाटक है *मीराबाई*। नाम सुनते ही एक ऐतिहासिक जगत नेत्रों के सामने आ खड़ा होता है। किन्तु मिश्र जी ने इस नाटक में अलौकिकता भरी है। मीराबाई गढ़े में दबी रहने पर भी जीवित रहती हैं। राणा कुम्भा की तलवार मीरा को मारते समय अपने आग टूट जाती है। मीराबाई कृष्ण के साथ मूर्ति में समा जाती हैं। इस प्रकार नाटक पौराणिक सीमा में प्रवेश कर जाता है।

पौराणिक नाटक-धाराएँ

पौराणिक नाटकों में निम्न धाराओं के नाटक प्राप्त होते हैं—

(१) कृष्ण धारा के नाटक

- (२) राम धारा के नाटक
- (३) महाभारत धारा के नाटक (कौरव पांडव सम्बन्धी)
- (४) पतिव्रता स्त्री सम्बन्धी नाटक
- (५) भक्ति धारा के नाटक
- (६) संत धारा के नाटक
- (७) अन्य नाटक

कृष्ण धारा

व्यक्ति परक पौराणिक नाटकों में सबसे अधिक नाटक कृष्ण जीवन सम्बन्धी है। वास्तव में कृष्ण का जीवन बहुत ही लोकप्रिय था और आज भी है। कृष्ण के जीवन की लोकप्रियता का बहुत बड़ा कारण यह है कि उनका जीवन अनेक विविधताओं से भरा है। उसमें एक ओर रंगरेलियों हैं तो दूसरी ओर वीरता की हुंकार भी है, एक ओर कृष्ण जी दक्षिण नायक के रूप में सैकड़ों रमणियों के मुकुमार हृदय को हाथ पर उठाते हैं तो दूसरी ओर गोवर्द्धन पर्वत भी। वे समय की नाड़ी पहिचान कर शत्रु को पीठ दिखाते हैं और मथुरा से भाग दूर द्वारका जा बसाते हैं तो गीता के उपदेश द्वारा धर्म का मार्ग भी प्रदर्शित करते हैं। वे धार्मिक सुधारक हैं तो राजनैतिक नेता भी। इसीलिए हिन्दू जगत् कृष्ण को सोलहों कला का अवतार बताता है। नाटक के क्षेत्र में भी कृष्ण जी के जीवन की विविधता ने अपनी छाप छोड़ी है।

मथुरागमन तक उनका बाल जीवन ही कहा जाता है। नाटककार पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी ने नन्दोत्सव (१८८० ई०) में कृष्ण-जन्म पर उत्सव मनाया है एवं ब्रजजीवन तरंगित हो उठता है। बड़े हो कर वे रसिक बने। ब्रज के उन्मुक्त वातावरण में प्रेम और मधुरता की निर्भरिणी प्रवाहित हो उठी। इस प्रेममय जीवन को नाटककारों ने अपने नाटकों में प्रतिबिम्बित किया। भारतेन्दु जी ने चन्द्रावली नाटिका (१८७६ ई०) के रूप में चन्द्रावली और कृष्ण के भव्य प्रणय की भाँकी प्रस्तुत की है। यह भारतेन्दु जी का परम प्रसिद्ध नाटक है। इस नाटक में भारतेन्दु जी ने अपना प्रेमी हृदय निकाल कर शब्दों में रख दिया है। स्वयं भारतेन्दु जी को भी यह नाटक बहुत प्रिय था और वे इसका अभिनय भी कराना चाहते थे। नाटिका के सभी लक्षणों से सम्पन्न यह नाटक हिन्दी जगत के गले का हार बन चुका है। इस पर रास शैली का प्रभाव पड़ा है। कृष्ण जोगिन बन कर चन्द्रावली के पास पहुँचते हैं और उचित समय पर गले से लगाते हैं। यह 'छुन्नवेश' कृष्ण की

रास लीलाओं का ही कौशल है,^१ जो यहाँ अपनाया गया है। रास के समान नाटिका में गीतों की भरमार है। अन्त में जुगल जोड़ी के दर्शन होते हैं। चन्द्रावली नाटिका की कविता बड़ी सरस है। वियोग की दसो दशाओं का चित्रण इसमें मिलता है।

भारतेन्दु जी ने सखी चन्द्रावली को मान दिया है तो पं० अंबिकादत्त व्यास ने ललिता नाटिका (१८७८ ई०)^२ में सखी ललिता को कृष्ण की प्रेयसी रूप में चित्रित किया है। यह नाटक भारतेन्दु जी की चन्द्रावली नाटिका को नहीं छू पाता है, यद्यपि दोनों में समानताएँ हैं। (१) दोनों नाटिकाएँ हैं। (२) दोनों गीत-कविता प्रधान हैं। (३) दोनों रास शैली का प्रभाव ग्रहण किए हैं। भारतेन्दु जी की चन्द्रावली कुमारी कन्या है। इधर ललिता एक विवाहिता पत्नी है। एक विवाहिता पत्नी के साथ कृष्ण का प्रणय एवं संभोग दिखाना नवीन भले ही कहा जाए किन्तु अनुचित और हिन्दी-संस्कृत के परम्परागत कल्याणमय दृष्टिकोण के विरुद्ध है। नायिकाभेद वाले कवि और आचार्यों ने भी विवाहिता प्रेम को प्रश्रय नहीं दिया है। उसका लक्षण मात्र तो मिलता है किन्तु नायिका रूप में इस प्रेम का विस्तार नहीं मिलता है। ब्रजजोवन दास ने प्रेम बेल नाटक (१८६७) में राधाकृष्ण के प्रेम का अंकन किया है। इसमें भी सहसा कृष्ण जी वृत्त की ओट से प्रकट हो कर प्रिया जी को गले लगाते हैं। भारतेन्दु जी की चन्द्रावली नाटिका का प्रभाव इस पर स्पष्ट है। (१) दोनों नाटकों में प्रेम की व्यञ्जना है। (२) दोनों में अन्त लगभग एक सा ही है, कृष्ण नायिका को गले का हार बनाते हैं। (३) दोनों में गीतों की अधिकता है। (४) दोनों में चार अंक हैं। प्रेम बेल नाटक बहुत ही साधारण कोटि का नाटक है। न कविता में प्रभाव है, न भाषा में बल। कथानक कुछ है ही नहीं। द्विज कृष्णदत्त जी ने भी युगल विहार नाटक (१८६२) में राधा-कृष्ण के विहार का चित्र खींचा है। इस नाटक में घोर शृङ्गारिकता आ गई है। सखी कृष्ण को 'हिजड़ा' कहती है तो कृष्ण उत्तर देते हैं कि 'अजमा लो'

१. चाचा वृन्दावन दास जी की लीलाओं में कृष्ण लुब्ध वेश बना कर पहुँचते हैं। उदाहरण के लिये उनकी चितेरिन लीला, सुनारिन लीला, मनिहारिन लीला इत्यादि लीलाएँ देखी जा सकती हैं। उदयकृत 'जोग लीला' में कृष्ण जोगी बन अपना काम साधते हैं।

२. उनइस सौ पैंतीस के संवत सावन मास।

विरची ललिता नाटिका करि हिय परम हुलास ॥

किन्तु हिन्दी आलोचकों ने इसका निर्माण काल १८८४ ई० दिया है जो अशुद्ध है।

(७-१०)। राधा कृष्ण कुञ्ज भवन में जा कर क्या करते हैं, इसका अश्लील वर्णन किया है (१०-१)। इस रति-वर्णन के सामने रीतिकालीन कवियों का शृंगार-वर्णन कुछ भी नहीं है।

इसमें भले ही कुछ भक्त माया की रजाई के पीछे दैवो विहार देख लें किन्तु वास्तविकता पर परदा नहीं डाला जा सकता। स्पष्ट है कृष्ण-राधा की ओट में मानवी संभोग का वर्णन किया गया है। रीतिकाल से अधिक पारसी नाटक शैली का प्रभाव है। नाटक का वर्णन विस्तार भी पारसी शैली की ओर सकेत कर रहा है। बारात और ज्योनार जैसे नाट्यशास्त्र द्वारा वर्जित दृश्य विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। विदूषक महाराज भी उद्दिष्ट हैं। नाटक की भाषा ब्रज है और पद्यों की अधिकता है। बीच बीच में राजस्थानी शब्द भी आते हैं। रघुवर दयाल पांडेय कृत कृष्णानुराग नाटक^१ और सूर्यनारायण सिंह कृत श्यामानुराग नाटिका भी कृष्ण के इसी अनुरागी जीवन से संबंधित नाटक हैं।

कन्हैया के ब्रजजीवन की प्रसिद्ध घटना है 'महारास'। कृष्ण धारा के कवियों ने तो अपनी प्रतिभा की निपुणता पूर्णरूपेण इस प्रसंग के चित्रण में व्यय की है, भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने भी इस सुन्दर और सरस प्रसंग को अपना बनाया है। नाटककारों ने हरिवंश पुराण^२ और श्रीमद्भागवत^३ से प्रेरणा पा कर रास सम्बन्धी नाटक लिखे हैं^४। श्री हरिहर दुबे और राजा खड्ग-बहादुर मल्ल ने महारास नामक नाटकों को क्रमशः १८८४ एव १८८५ ई० में हृदय की पूर्ण प्रेम-अनुभूति के साथ लिखा। चाँदनी के रस से सिकत रात्रि में पहिले तो कुँवर कन्हैया ने बोंसुरी की सुरीली तान से ब्रजगंगाओं को खींच लिया और आ जाने पर पति-सेवा का उपदेश दिया। ब्रज-बालाएँ रोती हैं, क्रुद्ध होती हैं और फटकारती हैं। राजा खड्गबहादुर मल्ल के महारास की ललिता के शब्द देखिये।

ललिता—(कुछ क्रोध और कुछ विनय सहित) हे निर्दयी ! अब तुम यह वेदोक्त सिखावन किसे सुनाते हो। हम अबलाओं के मन तो अपनी बोंकी छटा तिरछी चितवन मोहनी मूर्ति मन्द मुस्क्यान और बोंसुरी की रसीली तान दिखा और सुना कर ले लिये और अब अमानपूर्वक

१. देखने को नहीं मिला। मिश्रबन्धु ने चर्चा की है।

२. पूर्वाह्न, २१वें अध्याय के १५वें से ३५वें श्लोक तक।

३. स्कंध १०, अध्याय २६-३२।

४. भूमिका, 'महारास' नाटक लेखक राजा खड्गबहादुर मल्ल।

घर जाने को कहते हो ।^१ कृष्ण, गोपियों की अनुनय-विनय मान रासक्रीड़ा रचते हैं । थोड़ी देर बाद अदृश्य हो कर गोपियों का प्रणय-गर्व दूर करते हैं । राधा और गोपियों को अपना ब्रह्मत्व समझाते हैं । राधाकृष्ण का विवाह होता है । मल्लजी का नाटक वातावरण प्रधान है । भाषा शुद्ध हिन्दी (खड़ी बोली) है । कथानक बहुत संक्षिप्त सा है । वह वर्णनों द्वारा आगे बढ़ता है । गद्य की प्रधानता है । अश्लील शृंगारिक अठखेलियों का भी स्थान मिला है । आलिंगन, मुख से मुख का जूठा पान खाना, अघर चुम्बन (३-१) इत्यादि नाट्य शान्त्र में वर्जित दृश्यों^२ को अपनाया गया है । यह काव्य की रास परम्परा का प्रभाव है । नरसिंह मेहता,^३ वैकुण्ठदास,^४ गोविन्ददास इत्यादि कृष्ण कवियों ने रास प्रसंगों में परिरम्भण-चुम्बन का वर्णन किया है । सूरदास में यद्यपि यह अश्लीलता नहीं है, तथापि गलबहियाँ और परिरंभण तो है ही । कुमार-जीवन की समाप्ति पर कृष्ण जी ने कंस का वध किया । पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत कंसवध (१८७८) में भी यही प्रसंग ले कर नाटककार उपस्थित होता है । पं० बलदेवप्रसाद मिश्र कृत नन्द बिदा (१६०० ई०) में कंस-वधोपरांत कृष्ण जी नन्द जी को सगोप व्रज वापिस भेज देते हैं । यह नाटक गद्य-प्रधान है । बीच बीच में गीत भी बहुत से भरे गए हैं । नगरवासी खड़ी बोली का प्रयोग करते हैं और ग्रामवासी व्रज का । कथानक में भागवत की कथा (स्कन्ध ६, अध्याय, ३८-४४) का पूरा अनुगमन किया गया है ।

उद्धव-प्रसंग

कृष्ण मथुरा में ही रह गए । किन्तु वे कुब्जा जैसी पटरानी और अन्य रानियों के होते हुए भी व्रज की भोली ललनाओं को न भूल सके । फलतः उन्होंने उद्धव जी को व्रज भेजा । इस प्रसंग पर भी कई नाटक निर्मित हुए । १८८७ ई० में विद्याधर त्रिपाठी ने उद्धव वसीठिका नाटक लिखा । यह भी एक साधारण नाटक है । रासलीला शैली पर एक उद्धव लीला नाटक १८८६ ई०

१. महारास नाटक (श्री खड्ग बहादुर मल्ल कृत) अंक १, भौकी २ ।

२. सा० द० ६-१६ एवं १७ ।

३. पीन पयोधर कश्यप, हलके आलिंगन लेती ।

(नरसी मेहता कृत 'रास सहस्रपदी का बीसवाँ छन्द, उद्धृत डा० दशरथ ओझा कृत 'रास पंचाध्यायी' से) ।

४. बाहु पसरी परिरंभण करि अधरनां दाँन जी ।

श्री वैकुण्ठदास कृत रासलीला, पद १२ वाँ, डा० दशरथ ओझा कृत 'रास पंचाध्यायी' से उद्धृत) ।

में गोवर्द्धन गोसाईं ने लिखा । इसी नाटक को गोवर्द्धन गोसाईं की मृत्यु के उपरान्त बा० ब्रजनन्दन सहाय ने संशोधित कर १९०७ ई० में प्रकाशित कराया^१ । पूरे नाटक में पदों की प्रधानता है जो सूर, परमानन्ददास, भारतेन्दु जी इत्यादि कवियों के हैं । भाषा खड़ी बोली है । बीच बीच में व्रज का पुट भी पाया जाता है । वर्णनात्मक या कथात्मक पंक्तियों को कोष्ठबद्ध कर दिया है जैसे—

ललिता—गोरस लेहु री कोउ आव ।

(द्रुमन सों यह कहत डोलत कोउ न लेहि बुलाव ।

कबहुँ बंसी बट निकट जुर होत ठाढ़ी धाय)

लेहु गोरस दान मोहन कहाँ रहहु छिपाय ॥

लेखक का अनुमान है कि वर्णनात्मक पंक्तियों को कोष्ठबद्ध कर देने से ये रग संकेत मान लिए जायेंगे । इसी प्रकार का नाटक है प्रेम मंजरी । यह नाटक भिनगाधिप के अनुज श्री राजेन्द्र सिंह जी ने १८९४ ई० में रचा था । उद्धव-गोपी, यशोदा और नद इत्यादि के संवाद अधर्मी और दोहों में लिखे गये हैं । नाटक में तीन छोटे-छोटे दृश्य हैं । गद्य का प्रयोग बहुत कम हुआ है ।

विवाहित जीवन के नाटक

कुमारावस्था के पश्चात् युवावस्था में कृष्ण के विवाहित जीवन को ले कर कई नाटक लिखे गए । पंडित देवकीनन्दन त्रिपाठी ने १८७६ में रुक्मणी हरण नाटक लिखा । इस नाटक में एक ओर संस्कृत के नाटकीय नियमों की रक्षा हुई है तो दूसरी ओर पश्चिमी नाटक प्रणाली को भी ध्यान में रखा गया है । कथोद्घातक नामक प्रस्तावना से नाटक का प्रारंभ होता है । और अन्त में भरत वाक्य भी है । साथ ही पश्चिमी शैली पर अंकों का गर्भांकों में विभाजन भी है । नाटक उत्तम बन पड़ा है । शृंगार के साथ-साथ गौण रूप से वीर रस का भी सफल चित्रण हुआ है । पात्रों के चरित्र-चित्रण पर नाटक-कार का ध्यान रहा है । इसी रुक्मणी हरण के प्रसंग को अपना कर हरिऔध जी ने रुक्मणी परिणय (१८९४) लिखा । यह नाटक त्रिपाठी जी के रुक्मणी हरण की तुलना में नीचे ही बैठ रहा जाता है । त्रिपाठी जी ने कृष्ण को मानवी रूप दिया है और नाटक में मानवी जगत के दर्शन होते हैं । हरिऔध जी का काम नारद के बिना नहीं चलता । नारद जी अनावश्यक रूप से ही आते हैं । रुक्मणी, भिन्नकों के मुख से द्वारिकाधीश के रूप-गुण की प्रचुर प्रशंसा सुन अपना मन दे चुकी थी । प्रेमोत्पत्ति के लिए इतना पर्याप्त था ।

नारद जी आ कर पुनः कृष्ण की प्रशंसा करते हैं। दोनों नाटकों में एक ब्राह्मण रुक्मणी का प्रेम-पत्र द्वारिका ले जाता है किन्तु त्रिपाठी जी के रुक्मणी हरण में यह प्रसंग बहुत सुन्दर और आकर्षक है। हरिऔध जी ने चरित्र-चित्रण पर ध्यान नहीं दिया है। कथन बड़े लम्बे बन गए हैं। भीष्मक का स्वगत कथन (अंक ३, पृ० १६, २०, २१) दर्शकों के धैर्य की परीक्षा लेता है। इसी प्रकार रुक्म का कथन (अंक २, पृ० २६, २७, २८) भी तीन पृष्ठों में पंख फैलाता है। त्रिपाठी जी के नाटक में कथन-विस्तार का मोह नहीं है। केवल अन्त में बलदेव जी का कथन बड़ा है।

कृष्ण की अन्य पत्नियों में से सत्यभामा ने खड्गबहादुर मल्ल का ध्यान खींचा और उन्होंने सौतिया डाह दिखाने की दृष्टि से कल्पवृक्ष नाटक (१८८७)^१ लिखा। इसमें हरिवंश पुराण (११७ से १२८ अध्याय तक) में वर्णित कथा को अपनाया गया है। नाटक साधारण है। कृष्ण परब्रह्म परमात्मा के रूप में चित्रित हुए हैं। नाटक में गद्य की प्रधानता है। युद्ध रंगमंच पर होता है। कृष्ण को इन्द्र अच्छा ताना मारते हैं। जब नारद जी उनसे कहते हैं कि कृष्ण ने अपनी प्रिया सत्यभामा के लिए आपसे कल्पवृक्ष माँगा है और यदि न दिया तो वे बलात् छीन कर ले जायेंगे तो इन्द्र कहता है “काम के वश हो कर स्त्री ही की रुचि को मुख्य जानना वीरता नहीं है” (अंक २)। नाटक में प्रयुक्त कविता साधारण कोटि की है।

भक्तवत्सल कृष्ण

द्रौपदी वस्त्र हरण (१८८५) में भी गजराज सिंह ने कृष्ण का भक्तवत्सल रूप चित्रित किया। द्वारिकाधीश कृष्ण के मित्र रूप ने भी नाटक-कारों का ध्यान आकर्षित किया। मित्र सुदामा के प्रति सच्ची मित्रता कृष्ण ने प्रदर्शित की, इस प्रसंग पर १८७० में श्री शिवनन्दन सहाय ने कृष्ण सुदामा और बन्दोदीन दीक्षित ने मातादीन के साथ सुदामा चरित्र १८७६ ई० में लिखा।

कृष्ण सन्तति

कृष्ण जी की संतति पर भी नाटक लिखे गए। भारतेन्दु जी के धनंजय विजय के अनुकरण पर हरिऔध जी ने प्रद्युम्न को सामने रख कर १८६३ ई० में प्रद्युम्न विजय व्यायोग नाटक लिखा, किन्तु यह नाटक भारतेन्दु जी के धनंजय विजय के समान उत्कृष्ट न बन पाया। प्रद्युम्न से

अधिक नाटककारों के मन को 'अनिरुद्ध' ने मोहा। इसका कारण था, अनिरुद्ध और उषा की प्रेम घटना। इस घटना को ले कर तीन नाटक लिखे गए। चन्द्र शर्मा ने १८८७ में, खत्री ने १८९१ में और हरप्रनाथ ने उषा हरण नामक नाटक लिखे। एक बार सूर्यप्रहण के अवसर पर कृष्ण पुनः ब्रजवासियों से प्रभास क्षेत्र में मिले थे। इसी प्रसंग को लेकर हिन्दी में तीन नाटक लिखे गए। ये हैं (१) मधुसूदनलाल और दुर्गाप्रसाद का प्रभास मिलन (१८९६), (२) बलदेव प्रसाद कृत प्रभास मिलन (१९००) और (३) कालीकृष्ण मुखोपाध्याय का प्रभास मिलन (१९००)। हिन्दी नाटक इतिहासों में इनको मौलिक नाटक मान लिया गया है,^१ परन्तु ये तीनों बँगला से अनूदित हैं। अतः इनकी चर्चा यहाँ नहीं की गई है।

रामधारा

रामधारा में कृष्णधारा की अपेक्षा कम नाटक लिखे गए। कई नाटक तो रामलीला खेलने ही के लिए रचे गए।

रामलीला नाटक

रामलीला नाटक दो श्रेणी के हैं। (१) एक हैं जो केवल रामलीला खेलने के उद्देश्य से ही रचे गए थे और (२) दूसरे हैं राम जीवन संबंधी नाटक जिनमें राम की पूरी जीवन लीला वर्णित है। पहिले प्रकार के नाटकों में श्री शिवशंकर लाल वाजपेयी कृत रामयश दर्पण (१८९२), द्विजदास कृत रामचरित नाटक^२ एवं पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत रामलीला नाटक सम्मिलित हैं। इन नाटकों में (१) पद्यों और गीतों की प्रचुरता है। (२) तुलसी का ऋण सभी पुस्तकों में है। (३) दृश्य बड़ी शीघ्रता से बदलते हैं। कभी कभी तो एक ही पृष्ठ पर कई दृश्य परिवर्तित हो जाते हैं। पं० देवकीनन्दन जी त्रिपाठी ने तो अपने रामलीला नाटक में प्रतिदिन कितनी लीला खेली जाय, इसकी भी चर्चा कर दी है।

दूसरे प्रकार के नाटकों में पं० दामोदर शास्त्री के सात नाटक मुख्य हैं। सात कांडों पर सात रामलीला नाटक (१८८२-१८८७) शास्त्री जी ने

१. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, च० सं०, पृ० ७२।

आधुनिक हिन्दी साहित्य (१८५०-१९००) द्वि० सं०, पृ० २४३।

भारतेन्दु का नाट्य-साहित्य, प्र० सं०, पृ० ५५।

२. काशिराज महाराज ईश्वरीनारायण जी (मृत्यु १८९१ ई०) के प्रसन्नार्थ रामलीला करने के लिए रचा गया (भूमिका)।

रचे । **रामलीला** इनका नाम तो है परन्तु ये नाटक अन्य रामलीला नाटकों की शैली से भिन्न हैं । ये गद्य प्रधान हैं । इनमें पद्य तो बहुत कम हैं । नाटककार ने कथा-क्रम वाल्मीकि रामायण से लिया है । बालकांड में रावण भी सीता-स्वयंवर में जाता है, विवाह के बाद ही परशुराम आते हैं, राम की जटायु से भेंट सीता-हरण के बहुत पूर्व पंचवटी प्रवेश के समय होती है, रावण को खर-दूषण त्रिशिरा के वध की सूचना शूर्पनखा से पूर्व प्रहस्त राक्षस देता है इत्यादि प्रसंग **वाल्मीकि रामायण** के अनुसार ही हैं । वास्तव में शास्त्री जी ने वाल्मीकि जी के कथानक को ले कर नाटक रचे हैं । हाँ, तुलसी का भी प्रभाव परिलक्षित होता है । शास्त्री जी के राम **रामचरितमानस** के राम की नाई परब्रह्म परमात्मा हैं । परशुराम भी उन्हें भगवान् कह कर स्तुति करते हैं । यद्यपि **रामायण** के श्लोक पर्याप्त संख्या में नाटकों में उद्धृत हुए हैं किन्तु **रामचरितमानस** की पंक्तियाँ न आई हो ऐसी बात नहीं है । सुलोचना सती का प्रसंग भी **रामचरितमानस** का ही है । मारीच के दरबार में विदूषक उपस्थित है जो अग्नेजी डाकखाने या तार-आफिस से सूचना पहुँचवाने के पक्ष में है (बालकांड का गर्भांक ४) । यह पारसी नाटकों का प्रभाव है । लेखक ने देशकाल-दोष की चिन्ता नहीं की है । भाषा बहुत भ्रष्ट है । इसका कारण है, लेखक अहिन्दी-भाषी है । यदि कहीं इन नाटकों की भाषा परिमार्जित और साहित्यिक होती तो ये नाटक उस काल के उच्च श्रेणी के नाटकों में स्थान पा जाते परन्तु भाषा की भ्रष्टता ने नाटकों को श्राहीन कर दिया है ।

इसी प्रकार का रामचरित्र से संबंधित नाटक है बन्दोदीन दीक्षित का **सीता स्वयंवर नाटक** (१८६६) । नाटककार ने तुलसी से चौपाइयाँ ही नहीं, स्तुतियाँ भी उधार ली हैं । नाटककार पर रामलीला का प्रभाव है । दूसरे अंक के आठवें दृश्य में केवल नाचगान है, और कुछ नहीं । नाटककार ने राजा दशरथ के चरित्र को गिरा दिया है । राजा दशरथ ने विश्वामित्र के साथ झूल किया । उन्होंने राम-लक्ष्मण के स्थान में भरत-शत्रुघ्न को भेज दिया क्योंकि राम-लक्ष्मण उन्हें बहुत प्रिय थे । मार्ग में विश्वामित्र दशरथ के इस कपट को जान गये । उन्होंने भरत-शत्रुघ्न को राम-लक्ष्मण समझ कर पूछा कि सीधे मार्ग में ताड़का का विघ्न है और लम्बा मार्ग निर्विघ्न है । किस मार्ग से चलें ? दोनों भयभीत हो कर बोले—जबे वाले मार्ग से चलिये । यहाँ भरत-शत्रुघ्न का ही नहीं, रघुवशियों का ही चरित्र गिरा दिया गया है । रंग-संकेत विस्तृत और औपन्यासिक है । शिव जी अयोध्या को जाते समय पार्वती से कहते हैं कि मेरी भोली में भोग-धनूरा, बादाम भर दे और सोटा रख दे । यहाँ हास्यरस का अच्छा प्रस्फुटन हुआ है । नाटक के पात्र द्वारा ही हास्य रस उत्पन्न कराया गया है ।

अन्य नाटक

* रामलीला का ध्यान छोड़कर लिखे गये नाटकों में पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी का *सीताहरण* (१८७६) नाटक है। भारतेन्दु काल का यह एक अत्यन्त पुष्ट नाटक है।

विशेषताएँ

(१) यद्यपि नाटक के पात्र एवं उसकी कथा पौराणिक है तथापि नाटककार ने अलौकिकता हटा कर नाटक में मानवी जगत का वातावरण निर्मित किया है। पात्र स्वाभाविक और हमारे जैसे मानव बन गये हैं। उदाहरण— इस नाटक का जयंत, काक नहीं है। वह एक राजकुमार है, राजा इन्द्र का पुत्र है। वह एक पक्षी-विशेषज्ञ था। उसने अनेक पक्षी पाल रखे थे जिन्हें वह शिक्षा देता था। इसके पास एक काक था। उसने सुन्दरी सीता को राम के साथ देखा और मन में सोचा—काग को भेजता हूँ। वह सीता के स्तन में चोच मारेगा। राम की परीक्षा हो जाएगी। यह काग बड़ा बली था (१-१) इस नाटक के वानर, राक्षस और गृध्रराज मानव हैं। नाटककार का यह प्रयास श्लाघनीय है। जब अन्य सभी नाटककार अलौकिकता के भार से आक्रांत थे तब इस नाटककार ने अलौकिकता के जुए को उतार फेंका है। राक्षसों के विषय में नाटककार की व्याख्या शरभंग के मुख से सुनिष्ट। शरभंग जी राम से कहते हैं, “महाराज ! यहाँ दो प्रकार के मनुष्य अधिक हैं, एक तो वानरों से मिलते हैं, परन्तु कुछ सभ्यता की ओर नहीं झुकते। दूसरे विकट रूप हैं, न तो वानरों से मिले, न आर्यावर्त के मनुष्यों से मिलें। वे लंका द्वीप के निवासियों से उत्पन्न हैं। महाराज क्या कहे, जो काम वन के जन्तु नहीं कर सकते वे सब काम ये लोग कर डालते हैं। इसी से हम लोग इन्हे राक्षस कहते हैं, विशेषकर इनका उपद्रव रात को अधिक होता है इसीसे इन्हें निशाचर भी कहते हैं।”

• (२) उत्तम नाटकों में विचार-प्रौढ़ता भी हुआ करती है। विचारों की दृष्टि से देखें तो यह नाटक बहुत प्रौढ़ है। ऐसे प्रगतिशील विचार अन्य नाटकों में नहीं मिलते। स्त्री का पुरुष के समान अधिकार है, नाटककार इसकी घोषणा करता है। यह घोषणा सीता जी के मुख से कराई गई है (१-१), यह और भी उत्तम हुआ है। प्रसंग इस प्रकार जड़ा गया कि देशकाल दोष पैदा नहीं हुआ है। श्री चतुरसेन शास्त्री ने बीसवीं शताब्दी में

१. सीता जी के शब्द चौथे खंड में ‘देशकाल’ वाले अध्याय में राजनैतिक चित्रण के अंतर्गत दिये जायेंगे।

एक उपन्यास 'वयं रक्षामः' दिया है। इस उपन्यास की विशेषता है कि इसमें रावण राक्षस-संस्कृति के प्रचार में लगा है। इसी राक्षस-संस्कृति के प्रसार के लिए वह आक्रमण करता था। उसकाल में दो संस्कृतियों एक दूसरे से टक्कर ले रही थीं, एक थी आर्य संस्कृति और दूसरी थी राक्षस संस्कृति। कितना आश्चर्य है कि पं० देवकीनन्दन जी त्रिपाठी ने इस विचार को १८७६ ई० में अपने नाटक सीताहरण में स्थान दिया। शरभग राम से कहते हैं कि हम दो पाटो के बीच में हैं। एक ओर उत्तर की आर्य संस्कृति है तथा दूसरी ओर है दक्षिण की राक्षस संस्कृति। लंका का राजा रावण अपनी राक्षस-सम्पत्ता का, राज्य के साथ साथ विस्तार कर रहा है (१-५)। ऐसे ही पुष्ट विचार सवरी प्रसंग में प्राप्त होते हैं। सवरी एक मडल की युवती और त्रिपुरी शसिका थी। वह नीच जाति की थी। उसने राम से पूछा—क्या आप मेरा निमंत्रण स्वीकार कर सकते हैं? राम ने उत्तर दिया कि तुम जाति से ही नीच हो, कर्म और गुणों से नहीं। नीचजन्मा पुरुष भी गुण एवं कर्मों के बल पर ऊँचा उठ जाता है। निमंत्रण स्वीकार करने की ही बात नहीं, तुम अपने हाथ से ही खिलाना। हाँ, वनवासी के योग्य भोजन हो (५-२)।

• (३) पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी अपने नाटकों में अपने प्यारे भारत को नहीं भूलते हैं। इस नाटक में भी उनका देश-प्रेम प्रकट हुआ है। भरत-वाक्य में लक्ष्मण जी भारत का कल्याण माँगते हैं और साथ ही प्रार्थना करते हैं कि देशवासी राजनीति में भी कुशल बने (५-२)।

(४) नाटककार ने पात्रों के सँवारने में विशेष ध्यान दिया है। यह पात्र-प्रधान नाटक है। पात्रों को सजीव और स्वभाविक बना दिया है। जयत और सवरी का दिग्दर्शन हम पीछे करा चुके हैं। यहाँ सूर्पनखा प्रसंग से राम, लक्ष्मण और सूर्पनखा के चरित्रों को लेगे। यह प्रसंग बड़ा ही आकर्षक और सरस बन गया है। सूर्पनखा सुन्दरी है। राम के अनुपम रूप को निहार उसका स्त्री-चित्त डोल गया। उसने अपने रूप को और सँवारा एवं सजाया। राम को वह अपना नाम 'त्रिपुर सुन्दरी' बताती है। वह राम से प्रणय-भिक्षा माँगती है। राम बोले—पर मेरे पास तो एक पत्नी है। तुरन्त 'त्रिपुर सुन्दरी' ने उत्तर दिया,—तो क्या भय है। एक और सहा। राम बहु विवाह पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं—“हम ऐसे मूर्ख राजा नहीं हैं कि छाग मेघ के समान स्त्रियों को पालें। वे लैं महीने में पुरुष का मुख तो देख ही नहीं पातीं पड़ी माल चबाती हैं और चोरी लूका भृत्यों से मदन विलास करवाती हैं” (२-१)। निराश हो उसने लक्ष्मण से भीख माँगी। लक्ष्मण बोले कि हम तो दास हैं। इस पर तुरन्त वह वाक्-निपुणा उत्तर देती है कि इससे क्या हुआ? क्या दास लोग पत्नियाँ नहीं रखते। लक्ष्मण ने खीटा

मारा—तू अपने को सुन्दर समझती है। तेरा क्या दोष? सभी स्त्रियाँ रूपगर्विता हुआ करती हैं। पर सुन्दरता तो तभी है जब देखने वाला भी सुन्दरता को सराहे। इसपर वह त्रिपुरसुन्दरी आगवबूला हो गई। राम ने कुछ गूढ़ संकेत किया। तुरन्त लक्ष्मण स्वर बदल बोले—‘सुन्दरी! तुमसे हमने हँसी की है। अहा प्यारी! तुम्हारी नासिका बड़ी उत्तम है। तुम्हारे ये लाल कपोल त्रिभुवन को मोढ़े डालते हैं। वाह प्यारी, तुम्हारे केशों की क्या बात है। सो सुनो तो प्यारी, एक बात सुनो तो सही।’ स्त्री की सबसे बड़ी मनोवैज्ञानिक निर्बलता है कि वह अपनी रूप प्रशंसा सुनने के लिए सदा कर्णद्वार खोले रखती है। वह बात सुनने के लिए लक्ष्मण के पास गई। लक्ष्मण ने नाक काट ली (२-१)। पात्र एवं प्रसंग में नाटककार ने कितनी कुशलता से वास्तविकता और सजीवता भर दी है। लक्ष्मण बलात् उसे पृथ्वी पर गिरा कर नाक कान काटते, यह शोभनीय न था। स्यात् लक्ष्मण को बाण या छुरी लिए अपनी आँर बढ़ते देख कर वह भाग ही जाती। नाटक में सूर्पनखा की नाक कितने सुन्दर और मनोवैज्ञानिक ढंग से काटी गई है!

(५) नाटक में प्रकृति चित्रण भी अच्छे प्रकार से हुआ है।

(६) नाटक गद्य प्रधान है। पद्य की मात्रा बहुत कम है।

पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी ने रामचरित्र सम्बन्धी दो नाटक लिखे। वे दोनों नाटक हैं पहिला रामचरितावली (१८८७) और दूसरा जानकी मंगल (१८८८) जिसके अभिनय में पहिले स्वयं भारतेन्दु जी लक्ष्मण बने थे।^१ श्रीरामगोपाल विद्यान्त द्वारा लिखित रामाभिषेक नाटक एक सुन्दर नाटक है। इसे भी हिन्दी नाटक के कुछ इतिहास-लेखकों ने मौलिक नाटक मान लिया है।^२ किन्तु भूमिका में स्वयं नाटककार स्वीकार करता है कि यह नाटक वैगला नाटक का अनुवाद मात्र है। इसी प्रकार पं० बलदेवप्रसाद मिश्र कृत सीतावनवास नाटक (१८९५) भी मौलिक नाटक नहीं है यद्यपि आलोचकों

१. बाबू शिवनन्दन सहाय कृत ‘हरिश्चन्द्र,’ प्र० सं० पृ० ३६, एवं प्रतापनारायण मिश्र कृत ‘चरिताष्टक’ में जगन्नाथ तर्कपंचानन प्रकरण, (देखिये अगले खंड में अभिनय वाला ६वाँ अध्याय)।

२. डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल कृत ‘भारतेन्दु का नाट्य साहित्य,’ पृ० ५४।

डा० सोमनाथ कृत ‘हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास,’ च० सं० पृ० ७१।

ने इसे भी मौलिक नाटक माना है ।^१ इन अनूदित नाटकों पर, फलतः यहाँ विचार नहीं किया गया है ।

महाभारत धारा (कौरव पांडव संबंधी नाटक)

अभिमन्यु का चरित्र महाभारत में अत्यन्त आकर्षक है । इसी वीरता के अवतार अभिमन्यु को नायक बना कर श्री शालिग्राम वैश्य ने १८६६ में अभिमन्यु दुःखान्त नाटक लिखा । अभिमन्यु नाटक, करुण, वीर, रौद्र, शृंगार रसों से समन्वित होकर अच्छा नाटक बन सका है । उत्तरा और माँ सुभद्रा से विदा लेकर कुमार अभिमन्यु जब युद्धक्षेत्र की ओर जाता है (१-२) तो नाटककार ने अपनी लेखनी ही में काले आँसू नहीं भरे, पाठकों और दर्शकों की आँखों में भी भर दिए हैं । करुणा की यह निर्भरिणी, सरिता का रूप ले लेती है जब अभिमन्यु कपटी कौरवों से विरा उनके वाण सहता हुआ एक ओर तो उन्हें दुतकारता है और दूसरी ओर मामा, माता, पिता, प्रियतमा, को स्मरण करता है (४-२) । यहाँ अभिमन्यु के अन्तिम उद्गार लेखक ने बड़ी तन्मयता के साथ अश्रुजल की कौरव-कालिमा में डुबो कर लिखे हैं । दर्शक सूखी आँखों से इस दृश्य को देख ही नहीं सकता । लेखक करुण रस के प्रवाह में सफल हुआ है । वीर और रौद्र रस की सुन्दर भौकियाँ भी इधर-उधर सरसता के साथ चित्रित हुई हैं । शब्दों की विशेष तोड़-मरोड़ किये बिना ही वह अभिमन्यु का रौद्र रूप व्यजित कर देता है—“अरे पापिष्ठ दुःशासन ! आज तो भाग्य से तू मेरे सम्मुख आया है । तू ने जो सभा में सबके आगे महाराज युधिष्ठिर को मर्मरीड़ा दी, धन के मद में मत्त हो कपट द्यूत में लित हो महावीर भीमसेन को दुर्वाक्य कहे, आज उसका उचित फल पावेगा । दुर्मति ! आज तू राजद्रोह, परस्त्री-हरण और हमारे पितृ-राज्य के हरण करने का फल ले”(३-२) । युद्ध-प्रसंग में वीभत्स रस का भी सुन्दर चित्रण हुआ है (७-२) । हास्यरस को छोड़कर लगभग शेष सभी रस भली प्रकार दर्शन देते हैं ।

नाटककार ने पात्रों के चरित्र चित्रण की ओर भी ध्यान रक्खा है । द्रोणाचार्य का चरित्र इसका सुन्दर उदाहरण है । अन्तः एवं बाह्य संघर्षों का चित्रण नाटक में स्थान-स्थान पर मिलता है । बीच-बीच में गीतों ने काव्यात्मकता को जड़ा है । भाषा पुष्ट है । पूर्वी और पश्चिमी दोनों नाट्य शैलियों का

१. भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, पृ० ५४,

डा० सोमनाथ कृत 'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, पृ० ७१ ।

डा० वाण्येय कृत 'आधुनिक हिन्दी साहित्य', द्वि० सं०, पृ० २४३ ।

सामंजस्य मिलता है। प्रस्तावना में नांदी पाठ, प्ररोचना और कथोद्घातक आमुख अंग हैं। पौराणिकता तो होनी ही थी, अप्सराएँ गाती हैं, देव-वाणी होती है और राजस-राजसी प्रवेश करते हैं।

द्रौपदी का चरित्र भी सदा से भारतीय साहित्य में मान पाता रहा है। द्रौपदी के चरित्र में उसका वस्त्र-हरण वह मार्मिक प्रसंग है जिसने सभी के मनो को हिलाया है। राय प्रभुलाल ने द्रौपदीवस्त्र हरण (१८६६) में इसी प्रसंग को चित्रित किया है। नाटक बहुत साधारण है। सबलसिंह चौहान के काव्यग्रंथ महाभारत के अनेकशः पद्य उठा कर रख लिए हैं। कई दृश्य (२-३, ४-२, ४-३) व्यर्थ हैं। अन्त में सूत्रधार आकर सबको उपदेश देता है। पौराणिकता सर्वत्र है—आकाश मार्ग से व्याम उतरते हैं। आकाशवाणी होती है, अप्सराएँ लुकती छिपती फिरती हैं। वस्त्र खिंचने पर भी द्रौपदी का कुछ नहीं भिगड़ता। पारसी थियेट्रिकल नाटकों का कानूहल-विधान भी अपनाया गया है। जब दुःशासन वस्त्र खाचता है तो एक भयंकर शब्द होता है। सब सभासद अचेत हो जाते हैं। बा० लक्ष्मीप्रसाद जी ने भी द्रौपदी के चरित्र से प्रभावित हो द्रौपदी नाटक लिखा। अर्जुन और कर्ण के चरित्रों ने भी स्थान पाया और विष्णुगोविन्द शिवादेकर एवं शालिग्राम वेश्य ने क्रमशः कर्ण पर्व (१८७६) एवं अर्जुन मद मर्दन नाटक लिखे।

पतिव्रता स्त्री संबंधी नाटक

भारतेन्दुकाल आदर्शवादी काल था। अतः नाटक भी उद्देश्य प्रधान बने। नाटककारों ने अपने नाटकों में सदा ध्यान रक्खा है कि कोई न कोई शिक्षा मिले। स्त्रियों को पतिव्रत धर्म की शिक्षा देने के लिए पतिव्रताओं के जीवन संबंधी नाटक लिख गए।

पतिव्रताओं में सती सावित्री ने बड़ा मान पाया। सबसे पहिले भारतेन्दु जी ने सती प्रताप (१८८३) नाटक लिखा। दुर्भाग्य है कि यह पूर्ण न हो सका और भारतेन्दु जी केवल चार दृश्य ही लिख सके थे। अतः इस नाटक के विषय में अधिक नहीं कहा जा सकता। १८६७ ई० में बा० कन्हैयालाल ने शील सावित्री नाटक प्रकाशित कराया यद्यपि वह बहुत पूर्व बन चुका था।^१ नाटक साधारण है, न विचारों की परिपक्वता है और न कला का सौन्दर्य। नाटक पर पारसी नाटकों का बहुत प्रभाव है। इसी प्रभाववश वह वर्णन विस्तार में फैसता है। वैवाहिक विधि विधान में विवाह संबंधी क्रियाओं का अत्यन्त विस्तार कर दिया गया है। न प्रस्तावना है, न भरत वाक्य।

१. भूमिका, जिसे लेखक प्रस्तावना का नाम देता है।

नाटक में गद्य की प्रधानता है। सती सावित्री संबंधी सभी नाटकों से अलौकिकता की दर्शक आशा रखता है, सो इसमें भी है। यमराज, नारद, आकाशवाणी, गौतम का तपोबल—सभी उपस्थित हैं।

किन्तु श्री देवराज कृत सावित्री नाटक (१६००) में लेखक ने पौराणिकता हटाने का प्रयास किया है। भूमिका में ही लेखक स्पष्ट कर देता है कि नाटक लिखने में मेरा विशेष उद्देश्य है। वह उद्देश्य क्या है—‘पाठक पाठिकागणों को विदित हो जावे कि प्राचीन समय में बाल विवाह की रीति प्रचलित न थी, शिक्षा का प्रचार था और स्त्रियों को वेदादि सत्य शास्त्रों तक के पढ़ने का अधिकार था। चतुर और धर्मात्मा स्त्रियों किस प्रकार अपने पति की सहायता कर सकती हैं (भूमिका)। प्रस्तावना में नटी भी लेखक के इस कथन का समर्थन करती है। इससे स्पष्ट है कि नाटककार आर्यसमाजी दृष्टिकोण से नाटक लिख रहा है। उसके लिए नाटककार ने सहशिक्षा की योजना की है, शास्त्रार्थ और वादविवाद कराए हैं, दो बार हवन करवाया है, और बारबार वेद की दुहाई दिलाई है। कई दृश्य अनावश्यक रूप से इस दृष्टिकोण की पूर्ति के लिए भरे गए हैं। सहशिक्षा के लिए दृश्य योजना करनी पड़ी है। दूसरे एव तीसरे दृश्य में ज्ञान-ज्ञानाग्रा की परीक्षा कराई गई है। नाटककार का ध्यान स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली पर अटका हुआ है।

नाटककार ने पौराणिकता हटाने का प्रयास किया है। यमराज एक दुष्ट राजा था जो सत्यवान के पिता का शत्रु था। इसी दुष्ट और बली राजा यमराज ने सत्यवान के पिता का राज्य छीन लिया था और बाद में सत्यवान को भी फाँसी देने के लिए बाँध लिया। किन्तु अन्त में नाटककार इस बौद्धिकता की रक्षा न कर सका और यमराज सावित्री को वरदान देता है कि तेरे धार्मिक पुत्र होंगे। नाटककार वरदान पर विश्वास करता है। यम एक मनुष्य है, इस नवीन दृष्टिकोण को छोड़ कर नाटक में कोई विशेषता नहीं है और वह एक निम्न कोटि का नाटक है। सावित्री के जीवन पर कोई भी अच्छा नाटक न बन सका। इन सब में भारतेन्दु जी का चार दृश्योंवाला नाटक ही उत्तम लगता है। यद्यपि चार दृश्यों वाले रूप में वह भी किसी विशेषता से सम्पन्न नहीं है।

सती सुलोचना के जीवन पर भी दो नाटक निर्मित हुए। श्री बलदेव जी अग्रहरि ने सुलोचना सती (१८८७) नाटक लिखा। यह पारसी नाटक शैली का नाटक है जिसमें दो कथाएँ समानान्तर रूप से चल रही हैं। एक कथा है सती सुलोचना की, जो ४ दृश्यों में चित्रित है। दूसरी कथा जो आधुनिक है, ७ दृश्यों में रक्खी गई है। यह मस्ता और गुंडों की उपकथा

मुख्य कथा पर हावी हो जाती है। गीत भी थियेट्रीकल हैं। पद्य और गीतों की प्रधानता है। नाटक देशकाल दोषों से भरा है। (१) पद्मिनी और शिवाजी के नाम आते हैं (२) देश-सुधार का ध्यान है (३) हिन्दुओं को मुसलमान बनाने और उनको शुद्ध कर हिन्दू बनाने की चर्चा है (४) पत्र सम्पादक, नेता, तीर्थ पंडाओं पर कटाक्ष किये गए हैं। अन्य अस्वाभाविकताओं की भी कमी नहीं है। (१) अकेली स्त्री गुंडों को परास्त कर देती है (२) गुंडों का नायक स्त्री की कटार देख और उसका छोटा सा उपदेश सुनकर संन्यासी बन जाता है (३) मस्ता निरन्तर गुण्डों के कार्य में बाधा डालता है और उपदेश देता रहता है, तब भी गुण्डे उसे साथ रखते हैं। क्यों? क्योंकि नाटककार चाहता है कि मस्ता उनके साथ रहे। नाटक में केवल एक विशेषता है। वह है कि अनुकान्त छन्दों का प्रयोग केवल इसी नाटक में है। पौराणिकता भी भरी पड़ी है।

दूसरा नाटक सुलोचना सती नाटक^१ (१८८५) श्री भवदेव का है। यह नाटक, पूर्व भारतेन्दु युग के ब्रजभाषा नाटक (करुणाभरण, हनुमन्नाटक) की शैली का है। रगमच पर सूत्रधार और विदूषक सदा खड़े रहने हैं। बीच बीच में कवि भी बोलता जाता है। यद्यपि मुखपृष्ठ पर लेखक लिखता है कि यह नाटक ब्रजभाषा में लिखा गया है किन्तु इसकी भाषा खड़ी बोली है, ब्रज नहीं। भाषा बड़ी भ्रष्ट है।^२

पतिव्रता दमयन्ती के जीवन को लेकर भी दो नाटक लिखे गए। पं० बालकृष्ण भट्ट ने दमयन्ती स्वयंवर (१८६५) लिखा। यह नाटक महाकवि हर्ष द्वारा रचित नैषध महाकाव्य के आधार पर निर्मित हुआ है। नैषध के श्लोकों का हिन्दी रूपान्तर स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। नैषध में हंस राजा नल से बातें करता है, नाटक में वह नेपथ्य से बोलता है (१-२)। नाटक सरस और सफल है। भाषा व्यवस्थित और सशक्त है। नाटक भारतीय नाट्य शैली को ध्यान में रख कर रचा गया है। पौराणिकता भी है—सरस्वती एवं देवता गण पात्र रूप में अलौकिकता का प्रदर्शन करते हैं। राजा नल अलक्ष्य रूप से दमयन्ती के पास जा पहुँचते हैं।

दमयन्ती नल के जीवन से संबंधित दूसरा नाटक श्री सुदर्शनाचार्य

१. संशोधक श्री भगवानदास जी दुबे, नाटक की भूमिका (१-१८६३ ई० वाले संस्करण की) में कहते हैं कि लेखक ने यह नाटक ८-१० वर्ष पूर्व लिखा था।

२. यह अनुवाद है, अतः विशेष विवरण नहीं दिया गया है। केवल नाटक की मराठी शैली की ओर संकेत कर दिया गया है।

कृत अनर्घ नल चरित्र (१८६६) है। इस नाटक में नलदमयंती के दाम्पत्य जीवन की सुन्दर भौक्तियाँ प्रस्तुत की गई हैं। दमयंती का आदर्श पति-प्रेम भी अंकित है। इस नाटक की ओर हिन्दी आलोचकों ने ध्यान नहीं दिया है। भारतीय नाट्यशास्त्र की दृष्टि से यह हिन्दी का सब से पुष्ट नाटक है। हिन्दी में नाट्यशास्त्र के लेखकों ने प्रस्तावना-भेद, संधियाँ, संध्यंग, पताका, स्थानक, गर्भक, विष्कंभक इत्यादि के उदाहरण संस्कृत नाटकों से ही दिये हैं और इस नाटक की ओर ध्यान नहीं दिया। अकेले इसी नाटक में नाट्य-शास्त्र संबंधी अधिकांश उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं। यह नाटक संधियों और संध्यंगों को दृष्टि में रख कर रचा गया है। हिन्दी सप्तरस में दो नाटक ही ऐसे हैं जो संधि और संध्यंगों के अनुरूप लिखे गए हैं। वे हैं (१) श्री गणेश कवि का प्रद्युम्न विजय (१८६४) और (२) श्री सुदर्शनाचार्य का अनर्घ नल चरित्र।

इस नाटक का गद्य पुष्ट है। नाटक में हिन्दी कविता के स्थान पर संस्कृत के सरस और पुष्ट श्लोक प्रयुक्त हुए हैं। प्रकृति चित्रण भी स्थान स्थान पर हुआ है जो आलम्बन रूप में भी कई स्थानों पर है। शृंगार रस प्रधान है। साथ ही करुण, हास्य, अद्भुत रसों का भी गौण रूप से चित्रण है।

हनुमान हिन्दुओं के पौराणिक देवता हैं। हनुमान के पिता माता थे पवन और अंजना। श्री कन्हैयालाल ने पवन और अंजना—इन पौराणिक पुरुषों को लेकर जैन मत की दृष्टि से अंजना सुन्दरी नाटक (१८६६) लिखा। अंजना एक आदर्श पतिपरायणा पत्नी है। सीता के समान विवाह के बाद निरंतर अंजना को घोर कष्ट उठाने पड़े थे किन्तु अन्त में पवन से मिलन हुआ। वन में रहते ही अंजना को पुत्र की प्राप्ति हुई। यह बालक ही लोक-विश्रुत हनुमान था। नाटक में पौराणिकता भी है, बालक हनुमान आकाशगामी विमान से गिर कर भी हँसता रहा (५-१) और रावण-वरुण का युद्ध हुआ (५-२)। इतने पर भी नाटककार ने पवन, अंजना, हनुमान इत्यादि पात्रों को मानवी रूप में चित्रित किया है। नाटक के गीत थियेट्रोकेल शैली के हैं। विदूषक भी उपस्थित है, किन्तु हास्य रस सफल नहीं है। आकर्षण का केन्द्र है सती अंजना का चरित्र और नाटककार ने सभी प्रकार से इस चरित्र पर प्रकाश डाला है।

भक्तिधारा के नाटक

भक्तों में प्रह्लाद के जीवन पर सबसे अधिक ध्यान गया। भक्त प्रह्लाद ने भारतीय साहित्य में सदा से बहुत मान पाया है। प्रह्लाद संबंधी पाँच

नाटक इस काल में निर्मित हुए। श्री निवासदास जी कृत प्रह्लाद चरित्र नाटक (१८८८) एक बहुत ही साधारण नाटक है। न भाषा में बल है, न कविता में सरसता। लम्बे लम्बे कथन, भाषण बन गए हैं। चरित्रचित्रण का प्रयास तो नाटककार ने किया ही नहीं है। प्रह्लाद की बुआ के होली हो जाने वाली लोक प्रसिद्ध कथा को भी नाटककार ने स्थान नहीं दिया है। वस प्रह्लाद के गुरु षण्डामर्क प्रह्लाद से कहते हैं कि तू अग्नि में प्रवेश कर। यदि जीता बच गया तो हम भी तेरे भगवान को मानने लगेंगे (दृश्य ८)। गुरु षण्डामर्क के चरित्र को बहुत गिरा दिया गया है। प्रह्लाद प्रौढ़ मनुष्यों की नाई बातें करता है। वह गुरु को भी हिन्दू शास्त्रों से उदाहरण देकर उपदेश देता है (दृश्य ३)। नाटककार को पौराणिकता और कौतूहल का विशेष ध्यान रहा है। (१) अग्निदेव प्रह्लाद को गोद में लेकर निकलने हैं (२) भगवान् विपाक्त भोजन करते देख प्रह्लाद का हाथ पकड़ लेते हैं (३) मतवाला हाथी प्रह्लाद को सँड से उठाकर अपनी पीठ पर बैठा लेता है। (४) प्रह्लाद के गले से लगकर तलवार तडाक से टूटती है।

इसी प्रकार का दूसरा नाटक है श्री जगन्नाथशरण कृत प्रह्लाद चरित्रामृत (१९००)। यह भी एक अत्यन्त सामान्य नाटक है। पद्य की प्रधानता है। बहुत से दृश्यों में केवल पद्य ही पद्य भरे हैं (अंक १ के दृश्य १, २, ३ और अंक २ के दृश्य १, २, ३) प्रह्लाद की माँ में पुत्र प्रेम, पति-प्रेम से अधिक दिखाया गया है। वह सॉप पर हाथ धर कहती है कि तू मेरे पुत्र को न काट कर मुझे काट ले। महाराजदीन दीक्षित कृत प्रह्लाद चरित्र नाटक (१९००) स्वांग शैली का नाटक है। गद्य को 'वारतिक' कहा गया है। मोहनलाल विष्णुलाल पड्या^१ और रामगयाप्रसाद दीन^२ ने भी क्रमशः प्रह्लाद नाटक लिखे।

भक्त प्रवर ध्रुव के जीवन संबंधी दो नाटक लिखे गए। श्री दामोदर शास्त्री कृत बाल-खेल या ध्रुवचरित्र (१८८६) बालकों के लिए लिखा गया था। तीन दोहों को छोड़ कर शेष नाटक गद्य में लिखा गया है। उत्तम को माँ का लाड़ बिगाड़ता है तो ध्रुव अपने गुरु और सहपाठियों को अत्यन्त प्रिय है। यह एक साधारण नाटक है। दूसरा ध्रुव सम्बन्धी नाटक मंसाराम कृत ध्रुव तपस्या नाटक (१८९५) है। आधे नाटक तक ध्रुव के दर्शन ही नहीं होते। इस आधे भाग में राजा उत्तानपाद की छोटी रानी के सौतिया डाह की कथा चित्रित है। भाषा संस्कृतनिष्ठ और क्लिष्ट है। सभी पात्र—छोटे

बड़े, बालक बूढ़े, नागर-वनवासी, संस्कृत-पुष्ट हिन्दी बोलते हैं। न संवादों में प्रवाह और चुस्ती है, न पद्यों में सरसता। पौराणिकता भारी पड़ी है।

भक्त जीवन संबंधी एक अन्य नाटक भी शालिग्राम वैश्य ने मोरध्वज (१८८८) लिखा। लेखक भूमिका में ही बता देता है कि इस नाटक में 'भक्ति, प्रेम, वीरता, करुणा, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शांति आदि रस ऐसे झलकाए हैं मानो सन्मुख खड़े वार्तालाप कर रहे हैं। यह भक्ति प्रधान नाटक है। करुणरस का चित्रण बड़ा हृदयद्रावक है। मोरध्वज के मर जाने पर उसकी स्त्री कुसुमावती एवं उसके माता-पिता के विलाप पर नाटककार ने विशेष ध्यान दिया है। तत्कालीन विलाप शैली के अनुरूप कुसुमावती गाकर भी विलाप करती है। नाटक की कविता भी उत्तम है। युद्ध-वर्णन का एक छन्द इसका साक्ष्य देगा—

वीरनि की वाणी सुनि, वैरिन के दलन पै
हरपिउ दोरयौ वैरी, भाजै मति मंद हैं।
माते माते हायिन के, हौदा खंड खंड कीन्हें
मारे बरल्लिख के विदारे वैरी वृन्द हैं।
ताम्रध्वज नाहर के, पंजासो निक्कासे कौन
सहभ्यो अनिरुद्ध ना, चलयो छल छन्द हैं।
बोलत ना डोलत ना, खोलत ना पलक जैसे
सिंह के समीप दबि जात ज्यो गयंद हैं।

संतधारा के नाटक

गोपीचन्द और भर्तृहरि भी आज पौराणिक व्यक्ति बन गए हैं। यद्यपि इनकी चर्चा प्रधान पुराणों में नहीं है, और भारतीय इतिहास भी इनके विषय में मौन है तथापि जनगाथाओं में ये अमर हैं और हिन्दू समाज में इनके चमत्कारपूर्ण जीवन को पौराणिक मान्यता मिल गई है। अब तो छोटे-छोटे पुराण भी गोरखनाथ, गोपीचन्द और भर्तृहरि के जीवन पर बन गए हैं।

संत गोपीचन्द के जीवन पर तीन नाटक लिखे गए। अण्णा जी इनामदार का गोपीचन्द नाटक (१८६६) निम्नकोटि का नाटक है। इसकी भाषा बड़ी अष्ट है। यह नाटक मराठी शैली का है जो प्राचीन व्रजभाषा नाटकों जैसी है। कवि स्वयं रंगमंच पर सदा खड़ा रहता है। नाटक में कवि स्वयं भी वर्णन दे रहा है। पद्य लिख कर आनन्द रघुनन्दन नाटक के समान उसका अर्थ भी लिख दिया गया है जैसे—

साकी

मो पर क्रोध न करिये साईं छोरि मैं हूँ तेरी
इस खातर तुम मेरी काया, चरन धुरि से तारी
मैनावत—साईं मो पर गुस्सा न करिए, मैं आप की छोरिया है।
इस खातर मो पर परसाद करिये और मेरी तन पूत करके
मैं यहि चरन की आस धरि है इस खातर उपदेश देह्य।

नाटक में १३ प्रवेश या दृश्य हैं। नाटक को बलात् सुखान्त बनाया गया है। पौराणिकता बहुत है—(१) जलदर खाई में घोड़ों की लीद से कई दिन तक ढका रह कर भी जीवित रहा। (२) गोरख ने कहा—ग्राम नीचे आ। ग्राम की क्या शक्ति जो आज्ञा न माने। तुरन्त नीचे आ गया। कानिफ ने कहा—ग्राम ऊपर जा। वेचारा ग्राम ऊपर चला गया। (३) कच्चे धागे पर गोरखनाथ चढ़ गए। (४) लोहे का पुतला हुंकार और शाय से भस्म हो गया। मुसलमानी दरवानों की नाईं चोबदार जोर से पुकारता है 'आस्ते कर्द, मुलाकत से कर्द, तफावत से बाजू से निगा रखो मेहरबान (प्रवेश ४)। सखाराम बालकृष्ण सरनायक का गोपीचन्द (१८८३) भी एक साधारण नाटक है। इन दोनों से श्रेष्ठ है श्रीमती लाली कृन् गोपीचन्द नाटक (१८६६)। लेखिका का कथन है कि यह नाटक १५ दिन में लिखा गया था। भाषा, कथानक और पात्र की दृष्टि से नाटक प्रौढ़ है। कथा में बड़ी उत्सुकता मिलती है। लेखिका ने दृश्य योजना ऐसी की है कि दर्शक या पाठक की उत्सुकता बराबर बढ़ती रहे। मच्छीन्द्रनाथ की कथा को अनावश्यक विस्तार दे दिया गया है। मच्छीन्द्रनाथ और गोपीचन्द के चरित्रों का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है। मच्छीन्द्रनाथ योगी थे परन्तु त्रिया चक्र में फँस कर भोगी बन गए। उधर गोपीचन्द भोगी राजा होते हुए भी संन्यासी बनकर अपनी नवविवाहिता सुन्दरी के आसक्ति पाश को भी तोड़ फेंकते हैं। गोपीचन्द का चरित्र विकासवान चरित्र है, स्थायी नहीं। उसमें मानवी दुर्बलताएँ भी हैं। वह माता मैना का जलंदर से अनुचित सम्बन्ध सुनकर योगी को खाई में फिकवा देता है। मैना पहिले तो धार्मिक उत्तेजना में पुत्र को वैरागी बना देती है किन्तु जब वास्तविकता सामने आती है तो दुःखी होती है। जब गोपीचन्द साधु-वेश में दिखाई देता है तो मैना का पुत्रवत्सल हृदय कराह उठता है। पुत्र के न आने पर प्राण तक दे देती है। मैना के चरित्र और स्त्रियों के विलापों में लेखिका ने स्त्री-हृदय को खोल कर पन्नों पर रख दिया है। संयोग (१-७) और वियोग (२-८) के सुन्दर चित्र मोहक हैं। जब गोपीचन्द अपनी प्रिय पत्नियों से भीख माँगने जाता है तो लेखिका अपने हृदय की पूर्णता से चित्र सँजोती है। नव विवाहिता रानी कुमुदा कहती है—'मेरे हृदय के हार !

क्यों शून्य हृदय हो गए। तुम्हारे बिना मैं कैसे जीउंगी। इस चकोर से चन्द्रमा के समान स्नेह लगाय जो अब स्नेह तोड़ोगे तो यह प्राण कैसे रहेंगे। हे नाथ, तुम भ्रमर के बिना यह मुख कमल मुरझाय जायगा। हे प्राणों के प्राण, निर्मोही मत बनो। तुम्हारे बिना कैसे रहूँ, किसकी विनती करूँ। किसकी शरण जाऊँ। प्यारे आपके प्रेम रूपी प्रकाश को न पा कर नेत्रों की ज्योति जाती रहेगी। सब ओर अधियारा होगा। जीवन निष्फल होगा। हाय हाय ! प्रेम-युक्त मधुर वाणी से मुझे कौन बुलायेगा। हे नाथ ! अपनी परतीत के लिए मेरा हृदय चीर कर तो देखो कि अंतर में निराशा रूपी आग कैसी लगी है।' (२-८)

दूसरी स्त्री सुलक्षणा की मनोवैज्ञानिक अनुनय भी बड़ी हृदय-द्रावक है। वह साथ ही नवविवाहिता कुमुदा की ओर संकेत करती है ताकि गोपीचन्द पर प्रभाव पड़े। वह कहती है '...हमारा सौभाग्य आप ही से है। जिस प्रकार चन्द्र बिना यामिनी शोभा नहीं पाती वैसे ही कंत बिना कामिनी शोभा नहीं पाती, (बताकर) अभी तो हम कुमुदा ने कगन भी नहीं उतारा है। इसपर तो दया करो। प्यारे ! क्यों ऐसे निर्दया बन बैठे हो (२-८)। लेखिका ने गीतों में पद शैली अपनाई है तो गजलों की मधुरता का भी प्रयोग किया है। पृथ्वी और स्वर्ग की भोंकियाँ दी हैं, भोगी और योगी जीवन के छोर मिलाए हैं, पारसी थियेटर का अकर्षण भी लिया है और साहित्यिकता का निर्वाह भी किया है, गद्य की प्रधानता रखते हुए भी पद्य और गीतों को भी प्रभुत्व प्रदान किया है। पौराणिकता आरंभ से अन्त तक भरी है। नाटक का आरंभ ही पौराणिकता से होता है। नाटक के आरंभ में कैलाश पर महादेव, पार्वती, वीरभद्र, मच्छीन्द्रनाथ, भूतपति और भृगी वार्तालाप करते हैं। (२) कुन्दन सेन तोता बनता है (३) डंडे के संकेत से ही भय खाकर यमपुरी का रौरव नर्क सामने आ खड़ा होता है जिसमें साँप ब्रीळू गीध इत्यादि दीख पड़ते हैं। (४) अंकावतार में इन्द्र, यम, वरुण, तिलोत्तमा, उर्वशी और गंधर्व दिखलाई देते हैं। नाटक में दोष भी हैं (१) जैसा पहिले कहा गया है मच्छीन्द्रनाथ की कथा को अनावश्यक विस्तार दे दिया है। फलतः दृश्ययोजना में अनावश्यक विस्तार आ गया है। (२) अभिनय की दृष्टि से गोरख और कानीफ का नर्क इत्यादि के दृश्य दिखाना ठीक नहीं है। इसी प्रकार कुन्दनसेन को दर्शकों के सामने ही तोता बनाना अभिनय की दृष्टि से सदोष है (३) राज्यतिलक के समय अंग्रेजी का गीत गवाना भी देशकाल दोष के अन्तर्गत आता है। भर्तृहरि से संबंधित एक नाटक महाराजा भर्तृहरि नाटक (१८७८) लिखा गया, जिसके लेखक हैं श्यामसुन्दर लाल दीक्षित।

अन्य पौराणिक नाटक

सदा से ही भारत और भारतीय साहित्य में सत्यवादी हरिश्चन्द्र ने बड़ा मान पाया है। इस काल में सबसे पहिले भारतेन्दु बाबू ने सत्यहरिश्चन्द्र नाटक (१८७५) लिखा। चन्द्रावली में भारतेन्दु जी ने हार्दिक अनुराग भरा है तो सत्यहरिश्चन्द्र में बौद्धिक सत्य-सिद्धान्त। चन्द्रावली के समान सत्यहरिश्चन्द्र में भी उन्होंने अपना जीवन भर दिया है। वस्तुतः सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक के नायक राजा हरिश्चन्द्र और काशी नगरी के जीवन-राट बाबू हरिश्चन्द्र के जीवनो में अद्भुत समता है—

(१) दोनों के साथ काशी नगरी का नाम जुड़ा है।

(२) महाराजा हरिश्चन्द्र ने अष्ट महासिद्धि, नवनिधि और प्रयोगों से प्रार्थना की थी कि 'यदि हमपर आप लोग प्रसन्न हों तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जनों के और प्रयोग साधकों के पास जाओ' (अंक ४)। बाबू भारतेन्दु ने भी जीवन भर सज्जनों को अपनी निधि दी और कविता, नाटक, निबन्ध के सभी प्रयोग साधकों में भरे। अनेक साधक उनसे प्रयोग पा कर कवि, नाटककार और निबन्धकार बन गये।

(३) हरिश्चन्द्र नाटक के नायक का जीवन बाह्य और आंतरिक संघर्ष में बीता। बाह्य संघर्ष विश्वामित्र से हुआ और अन्तःसंघर्ष अपने हृदय से। चौथा अंक अन्तःसंघर्ष से भरा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी तो अपना जीवन इन दोनों संघर्षों में बिताया। बाह्य संघर्ष उनका अनेकों से हुआ। काशी का समाज, बाबू शिवप्रसाद, अंग्रेजी पद्धति—इन सभी से उनका संघर्ष हुआ। उनका आंतरिक संघर्ष तो जीवन भर रहा। सम्बन्धियों ने, बन्धुमित्रों ने, कृपालुओं ने कहा—छोड़ दो माधवी को, उसके कारण वेदना भी होती है। परन्तु 'अपनाये की लाज' रही। संघर्ष हुआ परन्तु अन्त में समाज की चिन्ता न कर अपने हृदय के द्वन्द्व को शान्त किया।

(४) दान और सत्य में भी बाबू हरिश्चन्द्र सत्यगुणी राजा हरिश्चन्द्र की समानता रखते थे। जब तक धन था द्वार से कोई खाली हाथ न गया। कवि, विद्वान एवं अन्य गुणियों के लिये उनका आश्रय कल्पवृक्ष ही था।^१ वे गुणियों के समस्त अपने को सेवक ही अनुभव करते थे। उन्होंने पं० सुधाकर

१. 'वास्तव में यदि हरिश्चन्द्र सरीखा उदार हृदय, रूपों को मिट्टी समझनेवाला गुणग्राही (नायक) हिन्दी की पतवार को उस समय न पकड़ता और सब प्रकार से स्वार्थ छोड़कर तन-मन-धन से इसकी उन्नति में न लग जाता, तो आज दिन हिन्दी को इस अवस्था पर पहुँचना कठिन था।

राधाकृष्ण ग्रंथावली, पृ० ३६८

द्विवेदी को एक दोहे पर १००) पुरस्कार दिया था। कवि परमानन्द, बिहारी सतसई के दोहों को संस्कृतबद्ध करके लाए तो उन्हें ७००) दिए। ये रुपए बाबू साहब ने एक आवश्यक कार्य के लिए रखे थे। पर गुणीजन के गुण पर तो वे तन-मन-धन वारने को तैयार बैठे थे^१। ऐसे सैकड़ों उदाहरण उनके जीवन-काल के हैं। उनके दान के कुछ उदाहरण बा० शिवनन्दन सहाय ने इनके जीवन चरित्र में गिनाए हैं।^२ एक मुसाहिब ने गरीब बन कह दिया—बाबू साहब आपका ३६०००) चोरी हो गया। बाबू साहब ने क्षमा कर दिया। वह रो कर जो कह रहा था। भारत में कोई लड़की कहीं कोई परीक्षा पास करती, बाबू साहब पारितोषिक भेजते। नानी ने लाखों रुपये इनके नाम किये। फिर लिखा कागज बदल दिया और इनके भाग का रुपया भी इनके छोटे भाई को देना चाहा। भारतेन्दु जी ने लोगों की न मान कर हस्ताक्षर कर दिए। ‘उसपर दस्तखत करने से नगरसेठ हरिश्चन्द्र राजा हरिश्चन्द्र की भोंति धनहीन हो गए’^३। गरीबी में भी जो कुछ पास होता दान कर देते थे, ऋण ले कर गुणियों को आदर देते थे। तभी तो मृत्यु-समय काशी-नरेश ने भारतेन्दु जी को लक्ष्य कर कहा था—

यद्यपि आप दरिद्र सम, जान परत त्रिपुरार

दीन दुखी के हेतु सोई, दानी परम उदार।^४

‘सत्य’ गुण में भी भारतेन्दु राजा हरिश्चन्द्र को आदर्श मानते थे। एक महाशय ने थोड़े से रुपए दे इनसे ३ हजार की हुंडी लिखवा ली। उसने दावा ३ हजार का सूद सहित किया। न्यायाधीश सर सैयद अहमद को यह घटना मालूम हुई। उन्होंने बहुत समझाया। वे बोले—‘मुझे सब मालूम है। आप सच बताइये कितना रुपया आपने पाया। भारतेन्दु बाबू ने कहा ‘पूरा पाया है।’ बारबार समझाने पर भारतेन्दु बाबू बोले ‘मुनिये सैयद साहब ! मैं अपने धर्म और सत्य को साधारण धन के लिए नहीं बिगाड़ने का’^५। वास्तव में राजा हरिश्चन्द्र के समान बाबू हरिश्चन्द्र का कथन था—

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार

पै दृढ़ श्री हरिचन्द्र को, टरै न सत्य विचार॥^६

१. जीवन चरित्र, ले० शिवनन्दन सहाय, पृ० २६६।

२. वही, प्र० सं०, ११वाँ परिच्छेद, पृ० २६४-३०३, एवं १३वाँ अध्याय।

३. वही, पृ० ३२८।

४. वही, पृ० ३३०।

५. बा० शिवनन्दन कृत जीवन चरित्र, पृ० ३०६।

६. सत्य हरिश्चन्द्र नाटक, प्रथम अंक।

कलतः सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में जो दोहा सूत्रधार पढ़ता है और जिस दोहे को शीतलाप्रसाद त्रिपाठी ने^१ कहा था, वह नितांत सत्य है—

जो गुन नृप हरिचंद में, जगहित सुनियत कान ।

सो सब कवि हरिचंद में, लखहु प्रतच्छ सुजान ॥

विद्वानो ने उत्कृष्ट और प्रौढ़ मान इस कृति की प्रशंसा की है^२ । वास्तव में यह नाटक है भी बहुत सरस, प्रांजल और उत्कृष्ट । तीसरे एवं चौथे अंक को पढ़ते या देखते हुए कौन अपने आँसुओं को रोक सकता है ।

शैव्या का दासी रूप में विकना और बालक का यह कहना “अमको बी कोई मोल ले तो बला उपकाल ओ” किसके हृदय को न लरजा देगा । फिर जब बटुक, बालक को ढकेलता है और बालक को गिरा देता है तो दर्शक का हाथ भी क्रोध से उठने लगता है । पुनः चौथे अंक में श्मशान में मृत पुत्र को ला कर शैव्या जब विलाप करती है तब कौन कठोर हृदय, नारी या नर होगा जो नेत्रों को सूखा रख सकेगा । बोभत्स का चित्रण भी बड़ा सरस और मोहक है । बीभत्स रस का चित्रण तीन प्रकार से किया गया है—(१) परम्परागत उद्दीपनात्मक काव्यबद्ध शैली में जिसके अनुसार ‘पापी पावस मसान बन’ कर आता है^३ (२) श्मशान का गद्यात्मक चित्रण और (३) पारसी थियेटर की नृत्य सहित गायन शैली में । पिशाच और डायन नाच-नाच कर इस शैली में गा रहे हैं—

है भूत प्रेत हम, डाइन हैं छुमाछुम

हम सेवें मसान शिव को भजैं बोलैं बम ॥ अंक ४

१. वहीं पृ० ३२८ ।

२. (क)—‘भाई शेक्सपीयर के कई नाटक पढ़ने में आये पर आँख से आँसू बहने वाली शक्ति हमने इसी ‘सत्यहरिश्चन्द्र’ में पाई । बा० महेन्द्र किशोर बी० ए० का कथन, बा० शिवनन्दन सहाय कृत ‘भारतेन्दु बाबू का जीवन चरित्र’ प्र० सं०, पृ० १७८ में ।

(ख) ‘यह उनकी सर्वोत्कृष्ट मौलिक रचनाओं में से है ।’ आधुनिक हिन्दी साहित्य (१८५०-१९००) डा० ल० सा० वाष्णैय, द्वि० सं० पृ० २३१ ।

(ग) ‘कुछ विद्वानों का मत है कि भारतेन्दु जी की यह सबसे प्रौढ़ और उत्तम कृति है ।’ (हिन्दी नाटक, उद्भव और विकास, प्र० सं०, पृ० २१२) ।

(घ) ‘यह भारतेन्दु जी की बड़ी प्रसिद्ध और प्रौढ़ रचना है ।’ हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, ती० सं०, पृ० ४१ ।

३. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहिला भाग, पृ० ३०१ ।

नाटककार ने विशेष कौशल हरिश्चन्द्र के चरित्र-चित्रण में दिखाया है। उनको सर्वोच्च आदर्श रूप में चित्रित किया है। इसका कारण है कि नाटककार का उद्देश्य बालकों के सामने एक ऊँचा आदर्श रखना है।^१ इसीलिए चंड कौशिक का शृंगार बिलकुल छोड़ दिया है।^२ उपक्रम के अन्त में नाटककार लिखता भी है “पाठकगण यदि यह समझ कर कि वे लोग भी भारतवर्ष के निवासी हैं और उन्हीं के पूर्वजों में महाराज हरिश्चन्द्र भी थे निज चरित्र कुछ भी सुधारेंगे तो कवि का परिश्रम सुफल होगा।”^३

सत्य हरिश्चन्द्र के कथानक को ले कर और भी नाटक लिखे गए। श्री चुन्नीलाल ने सत्य हरिश्चन्द्र नाटक (१८८६) लिखा। रामभजन मिश्र स्वतंत्र और ललन पिया के हरिश्चन्द्र नाटक ‘थियेट्रीकल’ नाटक हैं।^४ किन्तु भारतेन्दु जी को कोई न छू पाया।

एक नाटक विश्वामित्र भी कैलाशनाथ वाजपेयी ने १८६७ ई० में लिखा। इस नाटक में विश्वामित्र की तीन भौक्तियों दी गई हैं (१) वशिष्ठ और विश्वामित्र का नंदिनी के लिए संघर्ष और विश्वामित्र का ब्रह्मर्षि बनने का प्रयास करना (२) विश्वामित्र और हरिश्चन्द्र की कथा और (३) राम लक्ष्मण को माँग कर ताड़का इत्यादि का बध करवाना एवं राम का विवाह। वास्तव में यह उपन्यास है। दृश्य बड़ी जल्दी-जल्दी रामलीला की नाई बदलते हैं। कई दृश्य अनावश्यक हैं। लेखक कहानी सी कह रहा है। अन्य पौराणिक नाटकों में देवकीनन्दन त्रिपाठी का लखमी सरस्वती मिलन एवं बाबू लक्ष्मी-प्रसाद का उर्वशी नाटक उल्लेखनीय हैं।

१. नाटक का उपक्रम।

२. चंड कौशिक, प्रथम अंक, राजा एवं शैव्या संवाद, श्लोक २१, २२ &

३. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहिला भाग, पृ० २५६।

४. इनका विवरण जन नाटकों के अन्तर्गत आगे दिया जायेगा।

पौराणिक नाटक

पुस्तक	लेखक	निर्माण या प्रकाशन काल
विद्यासुन्दर	भा० हरिश्चन्द्र	१८६८
गोपीचन्द्र	अन्नाजी इनामदार	१८६६
कृष्णसुदामा	शिवनन्दन सहाय	१८७०
प्रह्लाद	मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या	१८७४
सत्य हरिश्चन्द्र	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१८७५
रुक्मिणी परिणय	देवकीनन्दन त्रिपाठी	१८७६
चन्द्रावली नाटिका	भा० हरिश्चन्द्र	१८७६
रामाभिषेक नाटक	रामगोपाल विद्यान्त	१८७७
ललिता नाटिका	अम्बिकादत्त व्यास	१८७८
महाराज भर्तृहरि नाटक	श्यामसुन्दरलाल दीक्षित	१८७८
कर्ण पर्व	विष्णुगोविन्द शिर्वादेकर	१८७९
रामलीला	देवकीनन्दन त्रिपाठी	१८७९
कंस वध	” ”	१८८६
सुदामा चरित्र	बन्दोदीन दीक्षित व मातादीन	१८७९
नन्दोत्सव	देवकीनन्दन त्रिपाठी	१८८०
रामलीला नाटक ७ कांड	दामोदर शास्त्री सप्रे	१८८२-८७
सती प्रताप	भा० हरिश्चन्द्र	१८८३
गोपीचन्द्र	सखाराम बालकृष्ण सरनायक	१८८३
महारास	हरिदत्त दुबे	१८८४
महारास	खड्गबहादुर मल्ल	१८८५
द्रोपदी वस्त्रहरण	गजराज सिंह	१८८५
सुलोचना सती नाटक	भवदेव	१८८५
उषाहरण	चन्द्र शर्मा	१८८७
सुलोचना सती नाटक	बलदेव जी अग्रहरी	१८८७
कल्पवृक्ष	खड्गबहादुर मल्ल	१८८७
रामलीला विजय नाटक	बलदेव जी	१८८७
रामचरितावली	शीतलाप्रसाद त्रिपाठी	१८८७
मंगल	जीवानन्द शर्मा	१८८७
उद्धवबसीठिका नाटक	विद्याधर त्रिपाठी	१८८७
प्रह्लाद चरित्र नाटक	श्रीनिवासदास	१८८८
मोरध्वज	शालिग्राम कैश्य	१८८८
बालखेल या ध्रुवचरित्र	दामोदर शास्त्री	१८८९

उद्धव नाटक	गोवर्द्धन	१८८६
सत्य हरिश्चन्द्र	चुन्नीलाल	१८८६
उषाहरण	कार्तिकप्रसाद खत्री	१८८१
रामचरित्र नाटक	द्विजदास	१८८१
श्री युगल विहार नाटक	द्विज कृष्णदत्त	१८८२
रामयश दर्पण	शिवशंकर लाल	१८८२-८३
प्रद्युम्न विजय	हरिऔध	१८८३
प्रेम मंजरी	श्री राजेन्द्र सिंह	१८८४
रुक्मिणी परिणय	हरिऔध	१८८४
रामचरित नाटक	जयगोविन्द मालवीय	१८८४
ध्रुव तपस्या नाटक	मंसाराम मारवाड़ी	१८८५
दमयन्ती स्वयंवर	बालकृष्ण भट्ट	१८८५
सीतावनवास नाटक	ज्वालाप्रसाद मित्र	१८८५
सीताहरण नाटक	बन्दोदीन दीक्षित	१८८५
अनर्घनल-चरित्र	सुदर्शनाचार्य	१८८६
अभिमन्यु	शालिग्राम वैश्य	१८८६
द्रौपदी वस्त्रहरण	राय प्रभुलाल	१८८६
गोपीचन्द नाटक	श्रीमती लाली	१८८६
प्रेमवेल नाटक	ब्रजजीवन दास	१८८७
कृष्णानुराग नाटक	रघुवरदयाल पाण्डेय	१८८७
विश्वामित्र	कैलाशनाथ वाजपेयी	१८८७
शील सावित्री नाटक	कन्हैयालाल भरतपुर	१८८७
श्यामानुराग नाटिका	सूर्यनारायण सिंह	१८८६
सीता स्वयंवर नाटक	बन्दोदीन दीक्षित	१८८८
अंजना सुन्दरी	कन्हैया लाल	१८८६
प्रह्लाद चरितमृत	जगन्नाथ शरण	१९००
सावित्री नाटक	लाला देवराज	१९००
प्रह्लाद चरित्र नाटक	महाराजदीन दीक्षित	१९००
पगपखारन लीला	अज्ञातनामा बालक	१९०१
जानकी मंगल	शीलताप्रसाद त्रिपाठी	
लखमी सरस्वती मिलन	देवकीनन्दन त्रिपाठी	
अर्जुन-मद-मर्दन	शालिग्राम वैश्य	
उर्वशी	बा० लक्ष्मीप्रसाद	
नल दमयन्ती	”	

अध्याय २

प्रेम नाटक

इस काल में सख्या, महत्त्व और मूल्य की दृष्टि से तीन कोटि के नाटको की ओर नाटककारों का ध्यान विशेष गया है। ये तीन कोटियाँ हैं, (१) पौराणिक नाटक जिनका विवेचन हो चुका है। (२) पौराणिक नाटकों के बाद प्रेम नाटक और (३) सामाजिक नाटको ने ही नाटककारों का ध्यान खींचा। इन दोनों में हम पहिले प्रेम नाटको का इतिहास और विवेचन देते हैं, क्योंकि इनमें नाटककारों के साहित्यिक सौन्दर्य एवं कलात्मक शैली के दर्शन होते हैं। प्रेम नाटको में हमें दो प्रकार के नाटक मिलते हैं (१) सुखान्त और (२) दुःखान्त।

सुखान्त प्रेम नाटक

भारतेन्दु जी ने तीन प्रेम नाटको का अनुवाद किया^१ और तीन मौलिक प्रेम नाटक लिखे^२। विद्यासुन्दर भी प्रेम नाटक है। पं० रामचन्द्र शुक्ल इसे अनुवाद मानते हैं^३। डा० वाष्णेश का मत है कि यह अनुवाद हो सकता है या बंगाल में प्रसिद्ध कथा की छाया का अनुवाद^४। डा० सोमनाथ^५ और डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल^६ ने इसे रूपांतरित माना है। रूपान्तरिक नाटक न मौलिक होता है, न अनुवाद^७। नाटककार कहीं से कथा और बहुत से भाव एवं उक्तियाँ लेकर अपनी मौलिकता दिखाने का प्रयास करता है। इस प्रकार रूपान्तरित नाटक अनुवाद की अपेक्षा मौलिकता के निकट हो जाता है। विद्यासुन्दर और सत्य हरिश्चन्द्र—भारतेन्दु जी के ये दोनों नाटक रूपान्तरित या छाया अनुवाद नाटक हैं। भारतेन्दु जी विद्यासुन्दर को भी छाया अनुवाद

१. रत्नावली, कर्पूर मंजरी और दुर्लभवन्धु।

२. प्रेम जोगिनी, चंद्रावली और विद्यासुन्दर।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, नवौं सं०, पृ० ४६१।

४. आधुनिक हिन्दी साहित्य, द्वि० सं०, पृ० २३१।

५. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, तृ० सं०, पृ० ४०।

६. भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, प्र० सं०, पृ० १८२।

७. वही, पृ० १६३।

मानते हैं^१। निश्चय ही यह अनुवाद से भिन्न है क्योंकि भारतेन्दु जी ने अनूदित नाटकों को तर्जुमा^२ या अनुवाद^३ नाम की संज्ञा दी है। इससे स्पष्ट है कि विद्यासुन्दर में भारतेन्दु जी केवल अनुवाद मात्र ही नहीं कर रहे हैं वरन् अपनी मौलिकता भी संजो रहे हैं।

भारतेन्दु जी ने इस नाटक को ही छाया अनुवाद करने के लिए क्यों चुना? भारतेन्दु जी कहते हैं कि यह कथा बंगाल में बहुत लोकप्रिय है^४। बंगाल में तो और भी कथाएँ प्रसिद्ध थीं। फिर इसी पर भारतेन्दु जी का मन क्यों फिसला। इसका कारण है, 'इसमें एक विशेष संदेश निहित है। वह संदेश क्या है? वह नाटक के चौथे अंक में लिखा है। विद्या ने हीरा मालिन से कहा कि 'सुन्दर' को किसी प्रकार दिखला दे तो हीरा बोली 'वाह वाह! यह तुमने अच्छी कही। पहिले राजा से कहें, वह देख सुनके जाँच ले, पीछे तुम देखना।

विद्या—नहीं ऐसा न होने पाये, पहिले मैं देखूँ तब और कोई।

हीरा मालिन और विद्या के रूप में यहाँ दो विचारधाराएँ प्रवाहित हैं। हीरा मालिन हिन्दू समाज का परम्परागत विचार प्रकट करती है कि माँ-बाप ही पुत्री के लिए वर की देख भाल करें। इसके विपरीत विद्या नवीन विचारधारा को प्रतिपादित कर रही है कि लड़की और लड़का स्वयं पहिले एक दूसरे को पसंद कर ले। यही विचार उनके सती प्रताप नाटक के पीछे है।

विद्यासुन्दर उनका आरंभिक (१८६८) नाटक है। स्वभावतः उससे उस प्रौढ़ता की आशा नहीं की जा सकती जो आगे आने वाले नाटकों, सत्यहरिश्चन्द्र एवं चन्द्रावली में प्राप्त होती है। किन्तु विद्यासुन्दर नितान्त निर्बल और अपरिपक्व रचना है, यह भी कोई नहीं कह सकता। इसी नाटक से 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' वाली लोकोक्ति चरितार्थ हो जाती है। नाटक, वस्तु प्रधान है। नाटककार का ध्यान कथा पर अधिक केंद्रित है, पात्रों पर कम। नाटक में कौतूहलवर्द्धक स्थल भरे पड़े हैं। इस काल के सभी प्रेम नाटकों में कौतूहलवर्द्धक स्थल मिलते हैं और इस कार्य का मार्ग-प्रदर्शन भारतेन्दु जी ने किया। इस नाटक में कौतूहलपूर्ण प्रसंग ये हैं—(१) सुन्दर, छद्मवेश से वाटिका में आता है और हीरा मालिन के यहाँ रहता है (२) एक

१. 'नाटक' के उपक्रम में स्वीकारोक्ति।

२. रत्नावली की भूमिका।

३. धनंजय विजय, मुद्राराक्षस और कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना।

४. नाटक की द्वितीय आवृत्ति का उपक्रम।

विशेष माला गूँथ कर नायक नायिका के पास भेजता है। माला में गुप्त रूप से पुष्प निर्मित धनु-शर रख दिया गया था। (३) वाटिका से राजमहल तक नायक सुरंग बनाता है और सहसा नायिका के सामने आ खड़ा होता है। (४) नायक सन्यासी का वेश बना कर राजसभा में जाता है। (५) नायक जब पकड़ा गया तब ठीक समय पर सहसा गंगा भाट ने चिल्लाकर बताया कि यह तो राजकुमार है। भारतेन्दु-कालीन कथानकों में कौतूहलपूर्ण स्थल लाना युग की माँग थी। एक ओर पारसी और पश्चिमी नाटक, कौतूहल प्रदर्शनों के साथ प्रसिद्धि पा रहे थे। दूसरी ओर ऐयारी और तिलस्मी युग के बीज वातावरण में साँस ले रहे थे।

यद्यपि नाटककार ने चरित्रचित्रण पर विशेष ध्यान नहीं दिया है, तब भी स्त्री-चित्रण बड़ा स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक हुआ है। (१) स्त्री-मनो-विज्ञान का सुन्दर उदाहरण हीरा मालिन के जीवन से मिलता है। हीरा मालिन युवती न थी। अवस्था से क्या होता है, तुलसी के कथन 'पुरुष मनोहर निरखत नारी' का वह उदाहरण उपस्थित करती है। प्रौढ़ावस्था में तो सौन्दर्य की परख अधिक हो जाती है। अनुभवी आँखें जो ठहरीं। एक अपूर्व सुन्दर युवा पुरुष को देखकर वह बोली, 'हाय ! हाय !! ऐसा सुन्दर रूप तो न कभी आँखों देखा, न कानों सुना, इसकी दोनों हाथ से बलैया लेने को जी चाहता है। ऐसी कौन स्त्री है जो इसको देख धीरज धरेगी...' निश्चय ही इसकी स्त्री नहीं है, नहीं तो ऐसे पति को कभी न छोड़ती' (१-२)। (२) घनिष्ठता हो जाने पर पुरुष उस बेपर्दी से बातें नहीं कर सकते जितनी निःसंकोचता से स्त्रियाँ कर लेती हैं। थोड़ा परिचय होने पर भी स्त्रियाँ हास्यविनोद कर लेती हैं, चुटकियाँ लेती हैं। संभवतः इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि स्त्री कभी अपने को बूढ़ी नहीं समझती। विद्या और मालिन पर्दा उठाकर बातें करती हैं (१-४, २-२)। (३) स्त्री का अचूक अस्त्र आँसू तो सभी जानते हैं। उसके पास एक और भी अस्त्र है जिसका प्रयोग भारतेन्दु जी ने मालिन से कराया है। जब उसे राजकर्मचारी पकड़ते हैं, तो वह शोर मचाकर कहती है 'दोहाई महाराज की धर्म देवता, तुम साक्षी रहना, देखो यह सब मुझे अकेली पाकर धर्म लिया चाहते हैं' (३-१)। 'धर्म लिया चाहते हैं' में एक मनोवैज्ञानिक पुकार है।

शृंगार रस प्रधान है। संयोग शृंगार की प्रधानता है। शृंगार पर रीतिकालीन प्रभाव पड़ा हुआ है। शारीरांग-वर्णन भी दिया गया है। कविता और गीत सरस हैं। सुंदर और चौकीदार के संवाद से हास्यरस की फुलझड़ी भी छूटती है (१-२)। संवाद सशक्त हैं। घूस द्वारा (१-२) तत्कालीन प्रचलित राज्यदोष पर पकावा जाला गया है। नाटक में अपरिपक्वता और अस्वाभाविकता।

भी है। हीरा मालिन और राजकुमार का विनोद स्वाभाविक तो है किन्तु फूहड़ भी बन गया है। विदुषी राजकुमारी हीरा को गाली देती है (१-४, २-२)। नायिका ने नायक को देखा नहीं था, वर्णन मात्र सुना था। तब भी वह विरह आग में भुनने लगी थी और गाने लगी 'पिया बिन निसदिन डरपावत मोहि अकेली जान (१-४)। कुछ क्षण पूर्व ही तो उसने हीरा से नायक की रूप चर्चा सुनी थी और तुरन्त ही कहने लगी, 'निसदिन' तड़प रही हूँ। इन कुछ साधारण सी त्रुटियों को छोड़ कर नाटक सफल, सुन्दर और सरस है। इस नाटक का एक और भी महत्त्व है, जिसके कारण यहाँ इसकी विशेष चर्चा की गई है। इस नाटक ने आगे आनेवाले हिन्दी के प्रेम नाटकों को मार्ग दिखाया। भावी प्रेम नाटक *विद्यासुन्दर* से प्रभावित मिलते हैं। वे प्रभाव ये हैं (१) सभी सुखांत प्रेम नाटकों ने संयोग शृंगार को ही प्रधानता दी (२) प्रेम नाटकों में कथानक की ही ओर विशेष ध्यान दिया गया (३) नाटककारों ने कौतूहल उपजाने पर भी ध्यान रक्खा (४) नायक नायिका के मिलन में कोई 'बिचवई' या माध्यम रक्खा^१ (५) छद्मवेश को भी अपनाया^२ (६) गीतों को प्रेम नाटक में महत्त्व दिया (७) नाटककारों ने शरीरांग वर्णन में निपुणता दिखाई^३।

भारतेन्दु जी के सीधे अनुकरण पर श्री विन्ध्येश्वरीप्रसाद त्रिपाठी ने *मिथिलेश कुमारी* (१८८८) नाटक लिखा। उक्त दोनों नाटकों में कई समान ताएँ हैं (१) विद्या के समान मिथिलेशकुमारी का भी व्रत है कि जो उसे शास्त्रार्थ में पराजित कर देगा वह उसी से विवाह करेगी (२) *विद्यासुन्दर* में पद्यात्मक अंग-प्रत्यंग वर्णन दिया गया है (१-३) तो *मिथिलेश कुमारी* में गद्यात्मक (अंक २)। (३) *विद्यासुन्दर* के ही समान यहाँ भी नायक छद्मवेश से नायिका के नगर में राज बाटिका में आकर ठहरता है और माली से बातचीत करता है। (४) *विद्यासुन्दर* के समान इस नाटक में भी नायिका का पिता अपने मंत्री से पूछता है कि राजकुमारी का विवाह किससे किया जाय ? और जैसे *विद्यासुन्दर* में मंत्री कांचीपुर के राजकुमार की प्रशंसा करता है, वैसे ही यहाँ भी मंत्री ने नायक का गुणगान किया। (५) *विद्यासुन्दर* में वर की खोज में 'गंगाभाट' भेजा गया था, यहाँ गंगाधर मिश्र। (६) दोनों नाटकों में नायक राजकुमारी के महल से पकड़े गए। (७) *विद्यासुन्दर* में गंगाभाट ने नायक की रक्षा की तो यहाँ अयोध्या के राजदूत ने। (८) दोनों

१. कमलमोहिनी भँवरसिंह, प्रेम स्वरूप, मदनमंजरी

२. मयंकमंजरी, यौवन योगिनी, कमलमोहिनी भँवरसिंह,

३. माधवानल कामकंदला, मयंक मंजरी, मिथिलेशकुमारी, संयोगता स्वयंवर, प्रेम सुंदर।

में नायिका का पिता अन्त में प्रसन्न हो कर अपनी पुत्री का विवाह नायक से कर देता है । (६) दोनों में नायिका-नायक अपना गंधर्व विवाह कर लेते हैं । (१०) विद्यासुन्दर में नायक संन्यासी बनता है तो यहाँ पुजारी ।

नाटक का कथानक शृंखलित है, और उत्सुकता से सम्मन्न है, तथापि है तो भारतेन्दु जी का अनुकरण ही । भारतेन्दु का काव्यरस और व्यंग्य-हास्य यहाँ नहीं फटकते । अनुकरण मूल तक कब पहुँच सकता है !

विद्यासुन्दर की सीधी परम्परा का दूसरा नाटक राजा खड्गवहादुर मल्ल कृत रति-कुसुमायुध^१ है, किन्तु इसमें केवल विद्यासुन्दर से ही सहायता नहीं ली गई है वरन् भारतेन्दु जी की चन्द्रावली नाटिका का भी ऋण प्रकट है, और साथ ही महाकवि कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुंतलम् की ओर भी नाटककार की दृष्टि गई है । विद्यासुन्दर के समान नायक नायिका का प्रथम साक्षात्कार दोनों को प्रेम सूत्र में बाँध देता है । 'विद्यासुन्दर का विवाह संबंधी विचार भी इस नाटक में मिलता है । माधुरी कहती है 'हाँ, यह तो है ही यदि कन्याओं का अभिप्राय लेकर ब्याह किया जाय तो क्या कुछ अप्रतिष्ठा हो' (दृश्य ४) । चन्द्रावली के समान यहाँ भी प्रेम पत्र लिखा गया है । 'हाँ, अन्तर यह है कि नायक भी उत्तर देता है । चन्द्रावली का झूला यहाँ भी पड़ा है । पंचम दृश्य शकुंतला नाटक को दृष्टि में रख कर लिखा गया है । विद्रूपक भी है जो नायक को रति-उद्यान तक छोड़ जाता है । नायक छिपे छिपे नायिका को देखता है । भौरा भी नायिका को सताता है । नायक नायिका का गंधर्व विवाह भी होता है । नाटक की भाषा गंभीर है और स्थान स्थान पर अलंकार पहिने बैठी है जैसे 'पृथ्वी माता ने इस वृद्धावस्था पर भी हरित-वस्त्र धारण कर हाथों में इन्द्र-वधुओं की मेंहरी रची है । सखी यह गर्जना सुनो, मानो कामदेव विरहियों को चप्पों में पीस रहा है' (दृश्य ४) । कुछ कविताएँ भी सुन्दर हैं । प्रकृति का उद्दीपनात्मक चित्रण सरम है ।

किन्तु नाटककार पौराणिकता भी ले आता है जो विद्यासुन्दर में नहीं है । इस नाटक में देवता आशीर्वाद देते हैं और आकाशवाणी होती है । नाटककार विद्यासुन्दर के लौकिक वातावरण में सती प्रताप की पौराणिकता भरकर अनुमान करता है कि नाटक का मूल्य बढ़ गया । यह उस युग का प्रभाव था । युग के लेखक और कवि पौराणिकता से अभिभूत थे । पात्रों की ओर नाटककार ने ध्यान नहीं रक्खा है ।

विद्यासुन्दर की सहायता लेकर रतिकुसुमायुध रचा गया तो रति-कुसुमायुध के अनुकरण पर श्री बजरप्रसाद ने अपना मालती वसंत (१८६६)

नाटक लिखा। दोनों नाटकों में अनेक समानताएँ हैं—(१) दोनों में नायक नायिका को उद्यान में देखता है और मूर्च्छित होता है। हाँ, एक अन्तर कराया गया है। रतिकुसुमायुध में नायक 'रति' को देखकर मूर्च्छित हुआ था। यहाँ नायिका के चरण-चिह्न को देखकर मूर्च्छित हो जाता है जो अत्यन्त अस्वाभाविक है। (२) दोनों नाटकों में नायक छिपे छिपे नायिका के सौन्दर्य से अभिभूत होता है और सराहता है। यहाँ भी एक अन्तर किया गया है। रति कुसुमायुध में नायक केवल सौन्दर्य की सराहना ही करता है, किन्तु यहाँ वह एक दम कहने लगता है 'हे प्रिये, तेरी कटि का आलिंगन कभी होगा।' यह अकेला वाक्य नायक के चरित्र को नीचे गिरा देता है। वह आलिंगन मात्र ही नहीं, कटि का आलिंगन चाहता है, जो नायक की व्यभिचारी प्रवृत्ति का द्योतक है। (३) रतिकुसुमायुध के समान यहाँ भी पौराणिकता भरी गई है। पौराणिकता भरने में नाटककार ने शकुंतला नाटक की कथा से सहायता ली है और नारद के द्वारा नायक को शाप दिलवाया है कि जिसके ध्यान में मूर्ख तू भूला है, वही तुझे भूल जाएगी। तुरन्त ही नारद अपना शाप निष्फल भी बना देते हैं। नाटककार का कोई उद्देश्य इस प्रसंग से सिद्ध नहीं हुआ। (४) दोनों नाटकों में भूला चित्र प्राप्त होता है। हाँ, इस नाटक में नाटककार भूले के बाद नायिकाओं के साथ नायक से कन्दुक क्रीड़ा भी कराता है जो अस्वाभाविकता की सीमा पर पहुँच जाती है।

नाटक बहुत निम्न कोटि का है। भाषा बड़ी अशक्त और सद्दोष है। कविता तो पद्यमात्र है। एक ही विशेषता है कि नाटक में तीनो ऐक्य प्राप्त होते हैं। स्थल ऐक्य है क्योंकि तीनों अंक जो तीन दृश्य मात्र हैं एक ही स्थान 'नन्दनवन' में चित्रित किये गए हैं। कार्य-ऐक्य तो है ही। तीनों अंका में तीन दिन का समय लगा है। इस प्रकार काल-ऐक्य भी माना जा सकता है।

भारतेन्दु जी की पुस्तकों की सहायता लेकर^१ श्री अमानसिंह गोतिया एवं पं० जागेश्वर दयाल—दोनों—ने मिल कर^२ मदनमंजरी नाटक (१८८४)

१. जब काशी में था तब श्रीयुत बा० हरिश्चन्द्र की बनाई हुई बहुत सी पुस्तकें देखीं तो मन में उत्पन्न हुआ कि मैं भी बाबू साहब की सहायता से इस पुस्तक को प्रचलित करूँ—भूमिका।

२. मदन मंजरी नाटक दोनों लेखकों ने सहयोग से लिखा है और नाटक पर दोनों लेखकों का नाम भी दिया है। तब भी पता नहीं क्यों डा० सोमनाथ ने दोनों लेखकों के दो 'मदन मंजरी नाटक' मान लिए हैं। डा० साहब अपने 'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास' तृ० सं०, पृ० ७८ पर सूचं में देते हैं 'अमान सिंह गोतिया कृत मदनमंजरी (१८८४), जागेश्वर दयाल

लिखा। यह अत्यन्त साधारण और अपरिपक्व नाटक है। कविताएँ जसवंत, रामचंद्र, भूषण और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे कवियों की अपनाई गई हैं और साथ ही पं० जागेश्वर दयाल ने अपनी कविताएँ भी नाटक में रक्खी हैं। विद्यासुन्दर के समान प्रथम दर्शन ही आँखों का जादू फेंकता है। संयोग वर्णन तो है पर सरस नहीं। शेक्सपियर के मर्चेन्ट आफ वेनिस से मुद्रिका प्रसंग ग्रहण कर सातवाँ अंक लिखा गया है। यह पूरा अंक अनावश्यक है। पूरा अंक केवल मुद्रिका कौतूहल के ही लिए लिखा गया है। किन्तु नाटककार शेक्सपियर का मुद्रिका कौतूहल उत्पन्न करने में बुरी तरह असफल रहा है। नायिका मंजरी गायिका का वेश बना कर अपनी दी मुद्रिका 'मदन' से पुरस्कार रूप ले आती है। किन्तु प्रसंग का सारा स्वाद समाप्त हो जाता है क्योंकि विदूषक नायक को बता देता है कि यह 'मंजरी' ही थी। इससे शत होता है, राजा का साथी विदूषक रानी को अधिक निकटता से जानता था। घर जाने पर रानी मुद्रिका माँग कर छुड़ाना चाहती है, पर असफल रहती है! कथानक, पात्र, रस, संवाद, अभिनय किसी भी दृष्टि से नाटक उत्तम नहीं है।

भारतेन्दु जी के विद्यासुन्दर और सती प्रताप नाटकों की परम्परा में लिखे नाटकों में नाटककारों का उद्देश्य गंधर्व विवाह रहा है। इन नाटकों में नायक नायिका एक दूसरे को देख आसक्त होते हैं। परस्पर विवाह सूत्र में सामाजिक विवाह से पहिले ही बंध जाते हैं। नाटककारों का उद्देश्य है कि वर-कन्या एक दूसरे को देख कर पसंद करें, माता पिता की प्रेम-राज्य में क्या आवश्यकता है। ये प्रेम नाटक सोद्देश्य लिखे गए हैं। एक दूसरे प्रकार के भी प्रेम नाटक मिलते हैं जिनमें नाटककार केवल शृंगार की सरिता मात्र बहाता है, केवल प्रेम कथा कहता है, कथा के संवारने पर अधिक ध्यान देता है, कथा में कौतूहल भरता है, ऐयारों के समान वेश-परिवर्तन कराता है और कथा को मोड़ दे दे कर आगे बढ़ाता है। श्रीशालिग्राम कृत माधवानल कामकंदला^१ ऐसा ही नाटक है। यह आलम कृत माधवानल कामकंदला की कथा को आधार मानकर लिखा गया है। हाँ, नाटककार ने कथा को

कृत मदनमंजरी (१८८४)।' इसी की शब्दशः प्रतिलिपि डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल ने अपने प्रबंध भारतेन्दु का नाट्यसाहित्य (प्र० सं०, पृ० ५६) में की है। निश्चय ही यह भूल नागरीप्रचारिणी सभा के टाइप सूचीपत्र के कारण हुई है जिसमें दोनों लेखकों के दो मदनमंजरी नाटक दिये गए हैं। संभवतः दोनों विद्वानों ने पुस्तक देखे बिना ही सूचीपत्र से प्रतिलिपि कर दी है।

१. १८८८ ई० से पूर्व निर्मित हुआ क्योंकि १८८८ में लिखे गये लावण्यवती सुदर्शन में इस नाटक की चर्चा है।

अधिक विस्तार दे दिया है। आलम के कुछ दोहे भी उधार लिये हैं। कथा में गति और घुमाव हैं। कथा की ओर अधिक ध्यान रखने से पात्रों के चरित्र चित्रण का अवकाश ही नहीं मिला है। पात्रों द्वारा छद्मवेश कई स्थान पर कराया गया है। नायक साधु बना, नायिका की सखी बूढ़ा ब्राह्मण बन राज-सभा में पहुँची और विक्रम, वैद्य बन कर कामकंदला के पास गया। पौराणिकता भी है क्योंकि उर्वशी अप्सरा नाटक में आती है और फिर वही कामकंदला रूप में जन्मती है।

नाटक का सौन्दर्य है 'रस'। शृंगार रस प्रधान है जो अपने संयोग और वियोग दोनों रूपों में सुन्दरता के साथ प्रकट होता है। वीर, रौद्र, वीभत्स अद्भुत और करुण सहायक हो कर आते हैं। शृंगार वर्णन में, नायिका वर्णन की ओर नाटककार ने अधिक रुचि दिखाई है और नायिका का नखशिख वर्णन भी विस्तार से किया है। प्रेम, नायक और नायिका दोनों पक्षों में सम है। नायक भी वियोग में वन-वन खोजता है और भ्रमर, गंगा, पवन एवं बादलों को दूत बना कर भेजता है (१-६)। उधर नायिका विरह में मल्लूनी बनी तड़पती है और होली जलती देख कहती है—

हाय मैं अकेली पड़ी मच्छी सी तलफ रही

बालम विदेश आग लगे ऐसी होली में।

“आग लगे होली में” बड़ी काव्य पूर्ण उक्ति है। होली में अभिधा और लक्षणा दोनों से ही आग लगवाई गई है। वह मधुमास को आते देख कहती है—

प्रीतम न आये तू पहिले ही आय गयो

अभी चलो जाय सखी कह दो मधुमास तैं।

नाटककार ने वीर रस वर्णन में 'ओज गुण' का प्रयोग किया है—

बैरी भुंड मुड लुंड से भरत कुड

प्रबल प्रचंड मुड मुंड मुंड खंडिका। ७-१

नाटक अभिनेय न होकर 'सुपाठ्य' बन गया है। अभिनय की दृष्टि से सदोष है किन्तु पढ़ने में सरस है।

इसी परम्परा का दूसरा नाटक पं० किशोरीलाल गोस्वामी कृत मयंक मंजरी (१८६१) है। किशोरीलाल अपने शृंगार और ऐयारी भरे उपन्यासों के लिए हिन्दी जगत में प्रसिद्ध हैं। उनका यह नाटक भी इन दोनों गुणों से पूर्ण है। इस नाटक में माधवानल कामकंदला की अनुरूपता मिलती है—
(१) घुमावदार कथानक है। (२) माधवानल कामकंदला के समान नायिका वर्णन और नखशिख वर्णन है। हाँ, नाटककार का मन नखशिख वर्णन में भी छाती और कुच पर अधिक मँडराया है। (३) माधवानल कामकंदला में

नाटककार ने 'सुरतांत' के मिस से 'संभोग' का वर्णन किया है किन्तु मयंक [मंजरी का कवि 'सुरति सम्पन्न' सरस सवैयों द्वारा स्पष्टरूप से संभोग सुरा बहाता है। इन छन्दों के सामने महाकवि देव का 'अष्टयाम' और अन्य रीतिकालीन कवियों का रति-वर्णन भी लज्जित है। अपने उपन्यासों में कामशास्त्र-वर्णित पताका इत्यादि अंगों को स्थान देने वाला रस-सरदार भला नाटक में क्यों न वही सुरा रस बरसाता ? (४) छद्मवेश, माधवानल कामकंदला नाटक से बहुत अधिक है। 'सुकेशी' तो पूरी जासूस और ऐयार है जो सदा वेश बदले नायिका के साथ है। ऐयारी की और भी घटनाएँ घटती हैं। प्रतिनायक के सामने सन्दूक में सिर आता है, नायक सहसा खाट के नीचे से निकल पड़ता है, प्रतिनायक वसंत के मित्र के हाथ में से कोई सहसा पत्र छीन कर ले जाता है। इस ऐयारी और जासूसी की चकाचौंध में पात्रों का चरित्रचित्रण खड़ा ही कैसे रह सकता था। नाटक में चन्द्रावली के समान भूला प्रसंग भी है। रति कुसुमायुध नाटक को नाई भौरा नायिका को सता कर अपने आप ही भाग जाता है। नाटक अस्वाभाविकताओं से भी भरा है—(१) जात्रालि ऋषि विष द्वारा अर्द्धमृत नायक के जीवन की चिन्ता न कर केवल एक पत्र वहाँ छोड़ कर भाग जाते हैं। (२) नायक का मित्र भी मूर्च्छित नायक के जीवन की चिन्ता न कर विष देने वाले को मारना अधिक आवश्यक समझता है और उसकी खोज में जाता है (३) नायिका भी मूर्च्छित नायक को बचाने का उद्योग न करके वहाँ पड़े पत्र में जैसा लिखा था वैसा ही करती है और नायक को अर्द्धमृतावस्था में छोड़ जाती है। यह पूरा पाँचवाँ अंक व्यर्थ सा ही है। नाटक पढ़ने में सरस है किन्तु अभिनेय नहीं है।

इसी श्रेणी का नाटक है श्री खिलावनलाल का प्रेम सुन्दर (१८६२)। पहिले दोनों नाटकों की अनेक समानताएँ इसमें हैं (१) सहसा नायक नायिका, देख कर आसक्त हुए। (२) कथानक में ऐयारी और जासूसी वातावरण है जिससे कथा सरपट दौड़ती है। नायिका का कंदरा में धर्मभ्रष्ट होने ही वाला था कि अचानक पीछे से नायक का मित्र 'वल्लभ' प्रहार करता है। पुनः दुष्ट भ्रमजालक द्वारा यह कली मर्दित होने ही वाली थी कि किसी के वाण ने ठीक समय पर आकर दुष्ट भ्रमजालक का ढेर कर दिया। (३) छद्मवेश भी

१. एक उदाहरण—

लखि लौंग लता घन कुञ्ज में मन मोहन दोउ समाय रहे।
मुख चूमि उरोज सरोज गहे बहियाँ गर बीच मिलाय रहे।
छिन ही छिन प्रेम प्रमोदन तैं मन को मदमस्त बनाय रहे।
लपटाय रहे, मुख पाय रहे, छवि देखि किशोरि लुभाय रहे ॥

हे (क) नायिका पुरुष का वेश बना कर वल्लभ के साथ कारागार से भागती है। (ख) नायक साधु बनता है। (४) पहले दोनों नाटकों के समान पात्रों के चरित्र-चित्रण पर भी ध्यान नहीं दिया गया है। केवल नायक के मित्र वल्लभ को आदर्श मित्र के रूप में चित्रित किया गया है।

भाषा पुष्ट और अलंकृत है। कहीं-कहीं तुकांत गद्य का भी प्रयोग हुआ है जो पारसी नाटकों की देन है—‘कोई-कोई मनुष्य ईश्वर का ध्यान लगाय औरों को ज्ञान सिखाते हैं, कोई अपना मन बुरी बातों की ओर लगाये व्यर्थ समय बिताते हैं। कोई जोगी जती गृहस्थ है, कोई गणिका के उपरत ही में मस्त हैं—’ (१-१)। संवादों को सरस बनाने की ओर भी नाटककार का ध्यान गया है—

चन्द्रा—क्या फूल से भी सुन्दर चीज दीख पड़ी।

सुन्दर—इसको तोड़ने को जी नहीं चाहता बड़ा सुन्दर है।

चन्द्रा—इस गुलाब के समान ही जिसने तुझे देखा होगा उसका हृदय भी टूटे गुलाब की नाईं मुरझा जाएगा। (१-३)

पहले दो नाटकों से इस नाटक की कुछ भिन्न विशेषताएँ भी हैं—
• (१) देशकाल चित्रण बहुत अधिक हुआ है। नाटककार ने अपने युग की दशा को भी चित्रित किया है, घूस का बाजार गर्म है, सिपाही चोरों से मिले हैं, न्याय बिकता है। (२) प्रकृति वर्णन भी अच्छा मिलता है। वर्षा (४-१) प्रभात (४-१) के सुन्दर चित्र हैं। (३) नाटक के पात्र, प्रेम, सुन्दर, विलासी, खुदगरज प्रसाद, रिश्वत अली, भ्रमजालक—यथा नाम तथागुण हैं।

अन्य सुखान्त प्रेम नाटक भी इन्हीं विशेषताओं के साथ इन्हीं की शैली पर लिखे गए। यह निर्विवाद सत्य है कि सभी पर थोड़ा बहुत भारतेन्दु जी का प्रभाव है। श्रीनिवास दास कृत तप्ता संवरण^१ भी ऐसा ही प्रेम नाटक है। नाटककार ने एक ही चतुरता की है कि अन्त में इसको पौराणिक बना दिया है। तप्ता को सूर्य की पुत्री मानकर वशिष्ठ द्वारा उसका विवाह करा दिया जाता है। नायक नायिका चौथे अंक में गधर्व विवाह कर लेते हैं। पाँचवाँ अंक तो केवल इसीलिए लिखा गया है कि भारतेन्दु जी के व्यक्त विचार के अनुसार माता पिता भी विवाह की स्वीकृति दे दें। फलतः पाँचवें अंक को नाटककार एक दम पौराणिक बना देता है और सूर्य विवाह का आशं दे देता है। नहीं तो नाटक का अन्त स्वाभाविक रूप के चौथे अंक पर हो गया था। अन्य प्रेम नाटकों के लक्षण—भूला, कंदुक-क्रोडा, गंधर्व विवाह—इसमें भी हैं। व्रज जीवनदास कृत प्रेमस्वरूप नाटक (१८६७) में

एक प्रेम नाटक है। यह अत्यंत निम्न कोटि का नाटक है। नाटककार ने इधर-उधर से भानमती का पिटारा जोड़ा है। रात में नायक ने नायिका को देखा, न जाने दिन में कहाँ से आ गई है। 'पतंगिणी' सखी उड़कर नायक नायिका को मिलाली है। सात पृष्ठों में चार अंक समाप्त हो जाते हैं। वास्तव में यह नाटक है ही नहीं। नाटककार उपन्यास को नाई कथा अधिक कहता है, पात्रों से संवाद कम कराता है।

इन सुखान्त प्रेम नाटकों में प्रायः सभी नाटककारों का यह दृष्टिकोण रहा है कि विवाह, वर और वधू की रुचि के अनुसार होना चाहिए। युवक या युवती का मन जहाँ चिपका है, वहाँ ही उसका शरीर भी जाना चाहिए। मन के आकर्षण का केन्द्र सभी नाटककारों ने रूय को माना है। नेत्र-मन्त्री के द्वारा ही हृदयराज सदा संचालित हुए हैं। नायक नायिका प्रथम प्रदर्शन में ही मन बेच कर व्याकुल हो उठे हैं। फिर तो एक ही धुन लग जाती है कि किसी प्रकार प्रिय से मिलाप हो। इसके लिए सखी या सखा माध्यम बने हैं। मार्ग में बाधाएँ भी पड़ी हैं। प्रतिनायक बाधा डालता है। वह नायिका को हड़पना चाहता है। परन्तु अन्त में मिलन अवश्य हो ही जाता है। नाटककारों ने कौतूहल-विधान में आस्था दिखाई है। कथा में मोड़ दे देकर उसमें उत्सुकता लाने का प्रयास किया है। अचानक कोई सहायता अवश्य मिल जाती है। इन नाटकों में सुन्दर कविता मिलती है, विशेषतया शृंगार की। पात्रों के चरित्र पर कथा के घटाटोप में ध्यान जा ही नहीं सका है।

दुःखान्त प्रेम नाटक

अभी तक हिन्दी जगत रणधीर-प्रेममोहिनी नामक दुःखान्त नाटक से परिचित है। किन्तु इस काल में और भी बहुत से दुःखान्त नाटक लिखे गए हैं, हाँ रणधीर-प्रेममोहिनी का प्रचलन हिन्दी ससार में अधिक रहा है। रणधीर-प्रेममोहिनी (१८७७) इस काल का सबसे आरंभिक दुःखान्त नाटक है। यह नाटक कई बार खेला भी गया था।^१ रणधीर और प्रेममोहिनी की प्रेम कथा इसकी आधिकारिक कथा है। इस आधिकारिक कथा के साथ-साथ 'सुखवासी लाल' की विस्तृत कथा भी बराबर चलती रहती है। बीच बीच में 'प्रकरी कथाएँ' भी छोटी छोटी सरिताओं के रूप में आकर मिलती हैं, जैसे सरोजनी वाला प्रसंग। सुखवासी लाल की कथा पताका कहला सकती है किन्तु पताका की नाई यह गुम्फित नहीं है। पारसी नाटकों

१. लावण्यवती सुदर्शन (१८६०) और कमलमोहिनी भँवरसिंह (१८६७) नाटकों की प्रस्तावना।

की नाई यह कथा दुष्ट सेवक का चरित्र दिखाने के लिए ही रची गई है। यदि इस कथा को निकाल भी दिया जाय तो मुख्य कथा में निर्बलता नहीं आती है।

नाटक पात्र-प्रधान है। नाटककार ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में सावधानीपूर्वक ध्यान दिया है। नायक धीरोदात्त कहा जा सकता है, पर है नहीं क्योंकि वह हठी है और बुद्धिहीनता का भी परिचय देता है। 'जीवन' के रोकने पर भी वह निःशस्त्र युद्ध में कूद पड़ा। यह केवल उसकी हठधर्मी थी। इसी प्रकार वह चौबे जी को दंड देने के लिए तैयार हो जाता है और अपराध के मूल में प्रवेश नहीं करता। दोष सुखवासीलाल का था। वही वेश्या से मिला था। यदि रिपुदमन बीच में न पड़ता तो चौबे जी को दंड मिल ही जाता। वह अपने स्वामिभक्त सेवक से भी क्रुद्ध हो गया था। वास्तव में नाटककार दुःखान्त नाटक लिखने जा रहा है और इस दुःखमय अन्त का आधार उसने शेक्सपियर की भोंति वीर और उच्च नायक के चरित्र में कुछ निर्बलता को ही बनाया है। यदि हठ-धरा वह निःशस्त्र युद्ध में न कूद पड़ता तो संभव था घटनाओं का क्रम बदल जाता। वह किसी को न कुछ समझता है और न किसी का सुनने का प्रवृत्त है। फलतः अनेक गुणों के होते हुए भी निराशा और दुःख ही नायक के हाथ लगे। नाटककार यद्यपि भाग्यवादी है परन्तु उसने दुःखान्त अवस्था का कारण, नायक की निर्बलता को ही सिद्ध किया है। रिपुदमन सच्चे मित्र के रूप में चित्रित हुआ है। चरित्र-चित्रण की विशेष निपुणता सुखवासी लाल और जीवन के जीवनों से प्रकट होती है। सुखवासीलाल और जीवन दोनों रणधीर के सेवक हैं किन्तु सुखवासी लाल स्वार्थी और धूर्त सेवक है और इसके विपरीत जीवन स्वामिभक्त और सच्चा है। सुखवासीलाल, राजकुमार रणधीर को वेश्यागामी बना कर उसका धन ऐंठने का जाल पूरता है। जब वह युद्धक्षेत्र में घिर जाता है तो सुखवासी लाल उसकी सम्पत्ति के हथियाने में लग जाता है। उधर जीवन सदा दुःख में साथ देता है। वह पिता की नाई उपदेश देता है, मित्र की नाई परामर्श प्रदान करता है और सेवक के समान गाढ़े समय में आड़े आता है। मारवाड़ी बनिये के चरित्र पर भी लेखक ने पर्याप्त प्रकाश डाला है कि बनिया सदा धन-का मीत है और धोखा धड़ी से रुपया जोड़ना ही उसका धर्म है।

नाटक का प्रधान गुण है कथन रस। दो स्थल बड़े कारुणिक हैं जो हृदय पर प्रभाव डालते हैं। नायक नायिका जब विदा होते हैं तो नाटककार 'वियोग' का सरस चित्र सामने ला बिठाता है। यद्यपि दोनों रात्रि में मिलने का वचन देते हैं, परन्तु वातावरण में ऐसी निराशा भरी है कि दर्शक सोचने

लगता है कि क्या ये रात में मिल सकेंगे, क्योंकि नायिका ने जो स्वप्न में हंस पकड़ा था और जो गिर पड़ा था, दर्शक के चित्त पर खिंचा है। रणधीर सिंह की मृत्यु वाला दृश्य तो दर्शक को रुला देता है। उसपर जब प्रेममोहिनी विलाप करती है तो दर्शक के नेत्र भी वेग पकड़ लेते हैं।^१ नायिका के पिता का विलाप सत्य हरिश्चन्द्र के शैव्या-विलाप की शैली का है जिसमें 'हाय हाय, हाय पुत्र' इत्यादि संबोधनात्मक शब्दों का प्रयोग अधिक है। नाटक में कहीं भी अश्लीलता नहीं आई है। चौबे जी का हास्य, सफल हास्य रस का उदाहरण है (१-४, २-२, २-३)। वैसे इस काल के हिन्दी नाटककार हास्य रस वर्णन में अधिक सफल नहीं हुए हैं। वीर रस का भी अच्छा चित्रण हुआ है। संवाद नाटक के प्राण होते हैं। जो नाटककार संवादों में सौन्दर्य भर देता है वह यशस्वी हो जाता है। इस नाटक के संवाद सरस, सजीव और सुन्दर हैं और इसीलिए इस नाटक ने बड़ी लोकप्रियता पाई। संवादों में कहीं साहित्यिकता भरी है तो कहीं उनको अलंकारों से मजाया गया है। लक्षणा और व्यंजना के प्रयोग से भी संवादों को चुभता हुआ बना दिया गया है। संवाद तभी बोल सकते हैं जब कि नाटककार के पास सशक्त भाषा हो। यह गुण इस नाटककार के पास है। यह ठीक है कि बहुत से स्थानों पर भाषा में व्याकरण दोष आ गए हैं, किन्तु प्रवाह, सरसता और प्रौढ़ता के पदों के पीछे वे दोष खटकते नहीं। नाटक सुन्दर उक्तियों का तो कोप है 'गुण की प्रीति के समान रूप की प्रीति मन में नहीं केवल आँखों में ही होती है' (१-१)। इल्म की रहनुमाई और गौहरे मुराद का दस्तयाब्र होना भी आसान नहीं (१-३)। गुरु के उपदेश को ही उपदेश नहीं कहते मन के लिए दुःख भोगना सबसे अच्छा उपदेश है (२-४)। मनुष्य का मन भी पवन की तरह सदा बदलता रहता है (३-३)। बात बनाने में पुरुषों की अपेक्षा स्त्री स्वभाव से ही चतुर होती हैं (३-४)।^१ ऐसी ऐसी सैकड़ों सूक्तियों और मुहावरों के बल पर भाषा में सजीवता आई है। पात्रों के अनुसार भाषा बदली गई है। सुखवासीलाल उर्दू बोलता है, मारवाड़ी बनिया राजस्थानी का प्रयोग करता है और चौबे जी के मुख से ब्रजभाषा प्रवाहित होती है।

प्रौढ़ नाटक की एक और कसौटी होती है। यदि नाटककार नाटक में

१. जिस समय रिपुदमन मारा गया और उसके शोक में रणधीर सिंह ने भी अपने प्राण तजे, उस समय का प्रेममोहिनी का विलाप सुन कर सैकड़ों मनुष्य नेत्रों से अश्रुधारा बहाते थे और जब प्रेममोहिनी ने 'हाय रणधीर!' कह कर अपना शरीर छोड़ा, उस समय सब मनुष्य अचानक हाहाकार पुकार सँठे। (लावण्यवती सुदर्शन की भूमिका)।

प्रौढ़ विचार दे सका है तो वे भी नाटक के मूल्य बढ़ाने में सहायक होते हैं। इस नाटक में स्थान स्थान पर प्रौढ़ विचार व्यक्त हुए हैं, जो दर्शक की बुद्धि को झकझोर डालते हैं। नाटककार ने नाटक में पश्चिमी नाट्य शैली अपनाई है। इसके अनेक प्रमाण हैं—

(१) नाटक दुःखान्त है। (२) नायक का वध हो जाता है जो भारतीय नाट्यशास्त्र की दृष्टि से सर्वथा वर्जित है। (३) नाट्यशास्त्र द्वारा वर्जित दृश्य—युद्ध, मरण, शव, मंच पर दिखाए गए हैं। (४) नाटक संघर्ष को आधार मान कर लिखा गया है, एवं उसमें आन्तरिक एवं बाह्य संघर्ष भरे हैं। (५) पश्चिमी दुःखान्तकी के कई अनिवार्य कारणों^१ में से 'नायक का अभिमान और उसकी दुर्बलता'—दुःखमय अन्त का कारण हैं।

रणधीर प्रेममोहिनी की ख्याति ने शालिग्राम वैश्य को लावण्यवती सुदर्शन (१८६०) दुःखान्त नाटक लिखने की प्रेरणा दी है। इस नाटक की भी उस काल में प्रशंसा हुई।^२ यह नाटक खेला भी कई बार गया।^३ इस पर भी यह कहना ही पड़ेगा कि नाटक रणधीर प्रेममोहिनी की ऊँचाई न पकड़ सका। नाटककार ने कथानक निर्माण में अन्य नाटकों से सहायता ली है। 'उपा' के समान नायिका नायक को स्वप्न में देख कर मन खो बैठती है। उसकी सखी जो 'उपा' की सखी के समान तंत्र-मंत्र चित्रकला-संगीत में निपुण है, नायिका को नायक से मिलाती है। विद्यासुन्दर एवं अन्य हिन्दी प्रेम नाटकों के सदृश नायक नायिका का प्रथम साक्षात्कार राजवाटिका में ही होता है। विद्यासुन्दर के नायक सुन्दर के समान 'सुदर्शन' भी पकड़ा जाता है। रणधीर प्रेममोहिनी से तो पर्याप्त ऋण लिया है और दोनों में बहुत सी समानताएँ आ गई हैं (१) दोनों दुःखान्त नाटक हैं (२) संयोग वियोग के चित्रों में भी रणधीर प्रेममोहिनी की छाया है। रणधीर प्रेममोहिनी में प्रेममोहिनी प्रथम दर्शन के अन्त पर विदाई के समय कहती है—'प्राणवल्लभ ठैरो, कुछ देर और ठैरो, मुझको एक बात आपसे कहनी है (३-१)। लावण्यवती सुदर्शन में नायक सुदर्शन कुछ इसी प्रकार के शब्द कहता है 'प्यारी ठहर जाओ, एक बात कहनी और शेष रह गई (४-३)।' लावण्यवती सुदर्शन का नायक यहीं मूर्च्छित

१. दुःखान्त नाटक के अनिवार्य कारण—नायक की अपनी दुर्बलता, उसका अभिमान, देवता, भूतप्रेत या भाग्य से संघर्ष, बाह्य परिस्थिति या समाज से संघर्ष, अन्तः संघर्ष के समय की दुर्बलता, नायक जान बूझकर त्रुटि कर दे। (निकल, थ्योरी आफ़ ड्रामा, पृ० १४८-१५२)।

२. नाटककार भूमिका में कहता है।

३. कमलमोहिनी भँवरसिंह नाटक की प्रस्तावना।

भी हो जाता है जो उस परिस्थिति में अस्वाभाविक जँचता है। (३) दोनों नाटकों में नायकों के मित्र सहायता के लिए प्रस्तुत रहते हैं। रणधीर का मित्र रिपुदमन अपने मित्र के पक्ष में युद्ध करता मारा गया, यहाँ सुदर्शन का मित्र 'सुलोचन' मित्र को मरा देख आत्मघात कर प्राण त्यागता है। (४) दोनों नाटकों में नायिका आकर नायक के शव के पास विलाप कर प्राण त्याग देती हैं। (५) दोनों में नायिका का पिता अपनी पुत्री के मर जाने पर दुःखी होता है। एक अन्तर है, लावण्यवती का पिता दुःखी होता है और प्राण भी छोड़ बैठता है। (६) दोनों नाटकों में विदूषक पात्र है, किन्तु लावण्यवती सुदर्शन का हास्य सफल नहीं है। (७) विलापो में भी रणधीर प्रेम-मोहिनी की ही विलाप शैली अपनाई गई है।

इन समानताओं से अधिक महत्वपूर्ण हैं विषमताएँ। (१) रणधीर प्रेममोहिनी का नाटककार सावधान था और उसने यथाशक्ति अस्वाभाविकताओं को नहीं आने दिया है, किन्तु लावण्यवती सुदर्शन में अनेक अस्वाभाविकताएँ उत्पन्न हो गई हैं। (क) सुलोचन मित्र वियोग में विलाप करता हुआ पतिपरायणा विरहिणी पत्नी को भी मात देता है (१-३)। (ख) सुलोचन नायक से कह गया था कि मैं साधना करने जा रहा हूँ। सात दिन आत्मघात न करना और मेरी प्रतीक्षा करना, किन्तु उसके जाने के तुरन्त बाद नायक कहता है कि सात दिन बीत गए, अब प्राण दूँगा। नाटककार को चाहिए था कि सात दिन के समय का अन्तर किसी प्रकार प्रकट करता (२-१)। (ग) सुलोचन अपने मित्र का पता नीलकंठ, मृग और कोकिल के साथ चन्द्रमा से भी पूछता है। नाटककार ने ध्यान नहीं रक्खा कि नीलकंठ दिन का पक्षी है (२-१)। इसी प्रकार नाटककार ने वसंत वर्णन में वीर बहूटियों का वर्णन किया है (३-२)। (२) रणधीर प्रेममोहिनी में पौराणिकता नहीं है और कौतूहल-प्रवृत्ति कम है किन्तु ये दोनों बातें लावण्यवती सुदर्शन में बहुत मात्रा में हैं। (क) राज्ञस नायक को उठा कर ले जाता है (२-३)। (ख) सारिका-शुक मानवी भाषा में बोलते हैं (२-३)। (ग) सुलोचन चिता में बैठता है, तब एक महापुरुष प्रकट होता है (२-२)। (घ) वह महापुरुष सहसा अन्तर्धान हो जाता है (३-३)। (३) रणधीर प्रेममोहिनी में नायक नायिका का मरण हो जाता है और दोनों के पिता बड़े दुःखी हैं किन्तु लावण्यवती सुदर्शन में नाटककार नायक नायिका के मर जाने के बाद शेष सब को बलात् मार डालता है। नाटककार सुलोचन और नायिका की सखियों को चिता में डाल देता है। (४) दोनों नाटककारों का नाटक-निर्माण में उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न था। रणधीर प्रेममोहिनी का कर्त्ता दुःखान्त नाटक लिखकर हिन्दी माँ की गोद भरना चाहता है, हिन्दी प्रेमियों की सेवा करने की उसकी

इच्छा है।^१ किन्तु लावण्यवती सुदर्शन का लेखक प्रेम रूपी कुमार्ग के दोष दिखा कर पाठकों एवं दर्शकों को इस मार्ग से विरत करना चाहता है। वह बताना चाहता है—प्रेम मार्ग के यात्री खड़ा रह। देख यह काँटों से भरा पथ है। यदि आगे बढ़ेगा तो खाई में गिर दुःख उठाएगा।^२ (५) रणधीर प्रेम-मोहिनी का लेखक अपने युग के प्रति सजग है और तत्कालीन चित्रण देता है। लावण्यवती सुदर्शन में नाटककार अपने समय के प्रति उदासीन है। जो एक चित्र तत्कालीन दशा का दिया भी है वह अश्लील और नितांत अशोभनीय है। नाटककार अप्राकृतिक मैथुन (इश्लामबाजी) का दृश्य चित्रित करता है। राजस इसी के लिए सुन्दर और युवा नायक को उठा कर ले गया था (२-३)। (५) न नाटक में वह सुन्दर समृद्ध भाषा है और न वह प्रौढ़ विचारों और सूक्तियों का कोष है जो रणधीर प्रेममोहिनी नाटक में है।

नाटक अपने रूप में साधारण नाटक माना जा सकता है किन्तु तुलनात्मक रूप में ऊँचा नहीं उठ पाता। अनेक दृश्य अनावश्यक हैं। राजस वाली घटना नाटक में कोढ़ ही है जिसके बिना नाटक निखर सकता है।

रणधीर प्रेममोहिनी को देख लावण्यवती सुदर्शन की रचना हुई तो लावण्यवती सुदर्शन के अनुकरण पर भी जवाहरलाल वैद्य ने कमलमोहिनी भेंवरसिंह (१८६६) को लिखा। वास्तव में यदि इस नाटक को लावण्यवती सुदर्शन का रूपान्तर कहा जाय तो कुछ भी अत्युक्ति न होगी, लावण्यवती सुदर्शन की ही कथा थोड़े से परिवर्तन के साथ वस्त्र बदले खड़ी है। (१) दोनों में नायिका नायक एक दूसरे को स्वप्न में देखकर आसक्त होते हैं। (२) दोनों में नायिका की सखी योगिन बन कर नायक को लिवा लाती है। (३) दोनों में प्रेम मार्ग की कठिनाई चित्रित है। (४) दोनों में सखी नायक को ठहरा कर नायिका को लिवाने जाती है। (५) दोनों में नायिका वहाँ पहुँचती है जहाँ सखी, नायक को ठहरा आई है। (६) दोनों में नायक के अदृश्य हो जाने से नायक के माता-पिता दुःखी दिखाये गये हैं। (७) दोनों में नायिका अपने पिता पर समाचार पहुँचाती है कि जिस युवक के प्राण लिये जा रहे हैं वह साधारण युवक नहीं, राजकुमार है। (८) दोनों में अधिक नायक को मार डालते हैं। (९) दोनों में नायक मर गया है। उसे मृत देख नायिका भी प्राण त्यागती है। (१०) दोनों में प्रयास तो हुआ कि नायक बच जाय, परन्तु वह प्रयास विफल होता है। दोनों में नायिका का पिता यह जान कर कि जिसे फौसी दी जा रही है वह राजकुमार है, सूचना भेजता है कि राजकुमार को फौसी न दी जाय परन्तु समाचार पहुँचने से पूर्व ही

१. रणधीर प्रेममोहिनी की भूमिका।

२. लावण्यवती सुदर्शन की भूमिका एवं प्रस्तावना।

नायक मार दिया जाता है। (११) दोनों में नायिका के माता पिता विलाप कर प्राण छोड़ देते हैं। (१२) दोनों में, नाटकान्त में सब पात्रों की समाप्ति कर मंच बुद्धार दिया जाता है, कोई पात्र नहीं बचाया जाता। (१३) दोनों में अन्त में लेखक बताता है कि प्रेम करने का परिणाम बुरा ही होता है। (१४) दोनों में पात्रों की भाषा में परिवर्तन नहीं है। अन्त में, कहना पड़ेगा, यह नाटक निम्न कोटि का है। न भाषा में बल है, न संवादों में सौंदर्य। 'कमल—महाराज ! अब यहाँ से कहीं चलना चाहिये नहीं तो मेरा पिता किसी दूसरे के साथ विवाह कर देगा' (३-२) में कमल अपने नवागन्तुक प्रेमी को 'महाराज' जैसे बड़े ही शिथिल शब्द से सम्बोधित करती है। नाटक असफल है, मानो कोई नवसिख जंग लगी छुरी चाँड रहा हो।

कमलमोहिनी भैरवसिंह से उत्तम दुःखान्त नाटक है श्रीबालमुकुन्द पांडेय कृत गंगोत्री नाटक (१८६७)। इस नाटक में नाटककार ने कुशल करों से एक प्रेमिका की अनन्यता और जमींदार की जघन्य लम्पटता का यथार्थ चित्र खींचा है। नाटक सफल, सुन्दर और प्रौढ़ है। एक ही मुख्य कथा है। कथानक सुसम्बद्ध एवं उत्सुकता से सम्पन्न है। रणधीर प्रेममोहिनी और लावण्यवती सुदर्शन में ऐसी प्रासंगिक कथाएँ हैं जिनके बिना नाटक अपने रूप में खड़ा रहता है। गंगोत्री में जो एक दो प्रासंगिक कथाएँ हैं वे नाटक को गतिमान करती हैं। कोषाध्यक्ष, सेठ जी और पंडित जी वाली प्रासंगिक कथाएँ मुख्य कथा को बल देती हैं (२-२)।

नाटक में चरित्र-चित्रण पर भी ध्यान है। रामकृष्ण जैसे पात्र राजा और धनिकों के साथ देखे जाते थे और आज भी देखे जा सकते हैं। रणधीर प्रेममोहिनी का मुखवासी लाल अपने स्वामी को कुमार्गी बनाना चाहता था ताकि रुपया ऐंठ सके। ऐसा ही एक पात्र 'रामकृष्ण' यहाँ है जो राजा के कुकृत्यों का सहायक है और इसीसे धनवान बनता जाता है। समाज में पुत्री की प्रतिष्ठा बेचने वाले पिता भी पैदा हो जाते हैं। गंगोत्री का पिता हरवल्लभ ऐसा ही है। ये दोनों असद् पात्र हैं। राजा की रानी बड़ी साधुवृत्ति वाली है परन्तु गंगोत्री को नहीं बचा पाती। प्रजा रानी से प्यार करती है और राजा से वृणा। नायिका की माँ साधारण पति-परायणा भारतीय नारी है जो पति को सर्वस्व मानती है और जब पति प्राणघात का भय देता है तो अपनी इच्छा के विरुद्ध पति का प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है कि गंगोत्री राजा के पास भेजी जाय।

करुण रस का प्रवाह सुन्दर और मनोहर है। गंगोत्री को कामुक राजा के खूनी पंजे से बचाने के लिए जब गंगोत्री का नवविवाहित पति अपना प्राण भौंकने को तैयार हो जाता है तो गंगोत्री बड़े मार्मिक शब्द, नेत्रों में

आँसू भर कहती है 'मेरे प्यारे स्वामी, यह प्रथम समागम है कि मैं तुमसे बात करती हूँ और संभव है कि कदाचित् यही अंतिम भी हो। (बलात्कार आँसुओं को रोकती है, व पोंछती है)। इसके पूर्व गुप्त या प्रकट किसी अवस्था में हमारे तुम्हारे वार्तालाप नहीं हुई थी। मुझको कालान्तर से तुम पर स्नेह था। और मैं भलीभाँति जानती हूँ कि तुम भी मुझे चाहते थे। यह मैं नहीं कह सकती हूँ कि आज मैं किन-किन उमाहों में थी और प्रभात से किन-किन अभिलाषाओं को मन में संचित कर रखा था, परन्तु यह भी उसी सिर्जनहार विधाता की इच्छा थी कि हम तुम दोनों की मनोकामनाएँ अपूर्ण रही जाती हैं और मैं अपना प्राण देने को उद्यत हुई हूँ' (५-२)। गंगोत्री का दुःख और निराशा से भरा यह कथन बड़ा मनोवैज्ञानिक है। गंगोत्री इसी संध्या को नव विवाहित पति के साथ विदा हो कर जाने वाली थी। इसी बीच राजा वज्रपात के रूप में आ खड़ा हुआ। प्रातःकाल से ही वह उमाहें ले रही होगी, नवमिलन की रंगीली कल्पनाएँ कर रही होगी। उसी का चित्रण इस कथन में हुआ है। आगे गंगोत्री का अन्तिम विलाप भी हाय-हाय वाली शैली से भिन्न बड़ा स्वाभाविक एवं सुन्दर है (५-२)। ऐसा स्त्री-मनोविज्ञान के आधार पर लिखा विलाप उस काल के कम हिन्दी नाटकों में मिलता है। इस नाटक की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं :—(१) उस काल का यह अकेला प्रेम नाटक है जिसमें नायिका राजकुमारी न होकर निम्न वर्ग की युवती है। (२) नाटक के दुःखान्त होने का कारण एक ज़मींदार का अत्याचार है जो राजा कहलाता था। वह अपनी ही प्रजा पर कुदृष्टि डालता है। (३) नाटक बड़ा यथार्थवादी है। लेखक ने निकट से जीवन का अनुभव किया है और नाटक में भरा है। गोरखपुर में गाने और रोने की स्वर लहरी में भेद करना कभी कभी कठिन हो जाता है। राजा पूछता है 'रोने का सा शब्द प्रतीत होता है', रामकृष्ण उत्तर देता है—'मेरे जान मधुर स्वरों से कोई गा रहा है' (१-१)। (४) नाटक में पद्य और गीतों का समावेश बहुत ही कम हुआ है।

नाटक के संवादों में साहित्यिकता नहीं है। भाषा भी साधारण है। वैसे नाटक बुरा नहीं है। दुःखान्त प्रेम नाटकों में रणधीर प्रेममोहिनी के बाद गंगोत्री को ही स्थान मिलेगा। सभी दुःखान्त प्रेम नाटकों पर पश्चिमी प्रभाव है जिसके कारण सब संघर्ष प्रधान हैं और सब में भारतीय नाट्य शास्त्र की दृष्टि से वर्जित दृश्य—नायक का वध—दिखाया गया है। मरण समय के या मरणोपरान्त के विलाप लम्बे हैं। अधिकांशतः उनमें हाय हाय वाली शैली अपनाई गई है। ये नाटक पात्रप्रधान हैं।

प्रेमनाटक

पुस्तक	लेखक	निर्माण या प्रकाशन का काल
विद्यासुन्दर	भा० हरिश्चन्द्र	१८६८
रणधीर प्रेममोहिनी	श्रीनिवासदास	१८७७
मनमोहिनी	मोतीलाल जौहरी	१८८०
तप्ता संवरण	श्रीनिवासदास	१८८३
चन्द्रकला	नानकचन्द	१८८३
चन्द्रप्रभा मनस्वी	महादेवप्रसाद	१८८४
मदन मंजरी	अमानसिंह गोटिया एवं पं० जागेश्वर दयाल	१८८४
रतिकुसुमायुध	खड्गबहादुर मल्ल	१८८५
मिथिलेश कुमारी	त्रिपाठी विध्वेश्वरीप्रसाद	१८८८
माधुरी रूपक	कृष्णदेवशरण सिंह	१८८८
माधवानल कामकंदला	शालिग्राम वैश्य	१८८८
लावण्यवती सुदर्शन	”	१८९०
प्रणयिनी परिणय	किशोरीलाल गोस्वामी	१८९१
मयंक मंजरी	”	१८९१
प्रेम सुन्दर	खिलावन लाल	१८९२
पुष्पवती	गोकुलचन्द्र औदीच्य	१८९४
प्रफुल्ल	कालिकाप्रसाद अग्निहोत्री	१८९५
कमलमोहिनी भँवरसिंह	जवाहरलाल वैद्य	१८९६
गगोत्री	बालमुकुन्द पाण्डेय	१८९७
मालती बसन्त	बजरप्रसाद	१८९९
प्रेम कुसुम	ज्ञानानन्द	१८९९

अध्याय ३

सामाजिक और धार्मिक नाटक

भारतेन्दुकालीन नाटककारों की दृष्टि सामाजिक समस्याओं की ओर बहुत गई थी। वह युग ही सामाजिक चेतना का था। अनेक सामाजिक आन्दोलन हिन्दू-जीवन को तरंगित कर रहे थे। इस काल के सज्जग नाटककार आँख मूँद कर नहीं रहते थे। फलतः सामाजिक गुणदोषों की ओर इन नाटककारों का ध्यान विशेषतः गया। हिन्दी में पहली बार सामाजिक जागरण के चिह्न नाटकों के रूप में प्रकट हुए। नाटककारों का ध्यान प्रधानतः निम्न सामाजिक समस्याओं की ओर गया—

- (१) बाल विवाह समस्या—इसके अन्तर्गत (क) विवाह पर अपव्यय (ख) बाल विधवा दुर्दशा (ग) अनमेल विवाह
- (२) विवाहित जीवन की समस्या—(क) लम्पट पुरुष और (ख) लम्पट स्त्री (ग) आदर्श पत्नी
- (३) अंध विश्वास—तीर्थ पंडा, ओम्हा, गोसाईं
- (४) अन्य सामाजिक कुरीतियाँ ,

विवाह समस्या नाटक

नाटककारों का ध्यान विवाह समस्या पर प्रधानतया जा कर टिका। उन्होंने समाज में गहरी पैठो वैवाहिक कुरीतियाँ देखी। इस विवाह समस्या के कई रूप देखे गए। (१) विवाह समय का अपव्यय देख कर नाटककारों को दुःख हुआ। उन्होंने देखा कि हिन्दू लोग ऋण लेकर थोथी शान की रक्षा कर रहे हैं। नाटककारों ने नाटकों में इस अपव्यय के दोष दिखलाए। श्रीतोताराम वकील ने *विवाह विडंबन* (१८८६) में इस वैवाहिक अपव्यय का करुण चित्र खींचा। कन्या का पिता ऋण ले कर विवाह की प्रसिद्धि सुनना चाहता है, स्त्री के कहने से अपनी चादर से बाहर पैर फैला देता है। परिणाम हुआ कि जेल की हवा खानी पड़ी। *सर्राफी नाटक* (१८६०) में पं० गौरीदत्त ने इसी अपव्यय का कुफल दर्शाया है। बरेली का बड़ा सेठ इसी के परिणाम स्वरूप लोगों को रुपया न दे पाया और भिखारी बना। (२) हिन्दुओं में बाल विवाह

प्रचलित है।^१ इस विवाह के माध्यम हैं नाई और ब्राह्मण। ब्राह्मण स्वार्थवश जन्मपत्री मिला देते हैं और विवाह करा देते हैं।^२ विवाह विडंबन में ब्राह्मण रुपये के लालच से नाई जन्मपत्री बना कर मिला देता है। यद्यपि लड़का काना था किन्तु नाई ब्राह्मण रुपये के लोभ से उसे सुन्दर बता देते हैं, और सुन्दर कन्या से विवाह करा के कन्या का जीवन दुःखी कर देते हैं। राधाकृष्णदास कृत दुःखिनी बाला रूपक (१८८०) में भी जन्मपत्री बड़ी उत्तम प्रकार से मिलाई जाती है किन्तु उत्तम जन्मपत्री वर की मृत्यु न रोक सकी, दो लड़के हैं—एक सुन्दर और सुशिक्षित और दूसरा कुरूप और अशिक्षित। लड़की की जन्मपत्री दूसरे से मिलती है। सुशिक्षित और सुशील लड़की दूमरे के पल्ले से ही बाँधी जाती है। वह विधवा भी हो जाती है। फलतः विधवा समस्या को ही ले कर इन नाटककारों ने बाल विवाह की बुराई की। बाल-विधवाओं की दयनीय अवस्था पर इन्होंने आँसू बहाए। राधाकृष्णदास जी के उक्त दुःखिनी बाला रूपक में बाल विधवा, दुर्बल जीवन से घबड़ा कर विषमयान कर लेती है। काशीनाथ खत्री कृत बाल विधवा संताप नाटक (१८८१)^३ में बाल विधवा अन्नला देई की ताई अपने पुत्र के विवाह में अन्नला देई को देख कर उसे दुत्कारती है। घर जाकर बालिका फूट फूट कर रोती है। उसने माँ से भी यह बात कही। माँ बोली कि कल जो मानस की पक्तियाँ पढ़ी थीं, आज भी पढ़। मानस की पक्तियों से नाटककार जले हृदय को बुझाता है। इस प्रकार अन्त बड़ा अस्वाभाविक बन

१. श्रीशरण कृत बाल्यविवाह नाटक (१८७४), श्री देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत बाल्य विवाह (१८८१), प० देवकी प्रसाद शर्मा कृत बाल्य विवाह नाटक (१८८४), प० देवदत्त मिश्र कृत बाल्य विवाह रूपक (१८८५), छुट्टनलाल स्वामी कृत बाल्य विवाह नाटक (१८६८)

२. (क) भूमिका १ अक्टूबर १८८१ की लिखी हुई।

(ख) हिन्दी के विद्वानों ने काशीनाथ खत्री कृत विधवा विवाह नाटक माना है (डा० सोमनाथ कृत हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, तृ० सं० पृ० ७८, डा० बीरेन्द्र कुमार शुक्ल कृत हिन्दी नाट्य साहित्य, प्र० सं०, पृ० ५८)। वास्तव में विधवा विवाह एक लेख है जो बाल विधवा संताप नाटक की पृष्ठभूमि रूप में लिखा गया है। यह लेख भी प० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कृत इसी नाम के लेख का अनुवाद मात्र है। स्वयं इस पुस्तक के आरम्भ में लेखक की स्वीकारोक्ति है कि यह लेख अपने भाइयों, देश के विद्वानों, रईसों और प्रधान ब्राह्मणों के विचारार्थ बंगाली और अंग्रेजी ग्रंथ से उल्था किया।

गया है। बा० राधाकृष्णदास जी के दुःखिनी बाला रूपक और इस बाल विधवा संताप नाटक में कई समानताएँ मिलती हैं। समानताएँ मिलनी ही चाहिए थीं, जब इस नाटककार ने बाबू राधाकृष्णदास जी के नाटक से ही प्रेरणा पा कर अपना नाटक निर्मित किया था।^१ (१) बा० राधाकृष्णदास जी की 'सरला' ७ वर्ष की है तो श्री काशीनाथ खत्री की अन्नला देई ६ वर्ष की। (२) दोनों में ब्राह्मण द्वारा जन्मपत्री उत्तम प्रकार से मिलाई गई थी। (३) दोनों विधवा हो गईं। (४) दोनों में जन्मपत्री मिलाने वाले ब्राह्मणों को कोसा गया है। (५) दोनों में गर्भियों को प्रवेश कहा गया है। (६) दोनों लघु रूपक हैं। (७) दोनों का अन्त अस्वाभाविक है। दुःखिनी बाला रूपक में विष बलात् पिलाया गया है। विष पीने की स्वाभाविक परिस्थिति नहीं उत्पन्न हो सकी है। सखी समझाती है कि चल दूमरे पुरुष से संबंध करा दूँ। विधवा बालिका उसे डौटती है और विष पी लेती है। आदर्शवाद की भोक में मानवी मन झुलसा दिया गया है। बा० काशीनाथ का अन्त तो और भी अस्वाभाविक है। भला कहीं ओस से प्यास बुझती है, कविता पक्तियों से काम-अग्नि शान्त होती है? (८) दोनों सुधारवादी नाटक हैं। आदर्श के सामने कला घायल हो गई है।

बा० काशीनाथ खत्री कृत बाल विधवा संताप नाटक में एक विशेषता भी है। वह है पात्रों के नाम। पात्रों का नामकरण यथा-गुण किया गया है। लीकपीटनदास पुरानी रूढ़ियों पर पूर्ण आस्था रखने वाले हैं, कुपंथी-राम पुरोहित, कुलप्रकाशचन्द्र, इत्यादि नाम भी ऐसे ही हैं।

श्रीकृष्ण टकरू कृत विद्याविलासी सुखबंधनी (१८८४) नाटक के मुखपृष्ठ पर नाटककार का कथन है कि वह छोटी अवस्था में विवाह और विवाह समय के अपव्यय के बुरे परिणाम दिखायेगा। किन्तु नाटककार ने अपव्यय का कुफल कहीं नहीं दिखाया है। हाँ, बाल अवस्था के विवाह का यही परिणाम दर्शाया है कि जन्मपत्री भलीभाँति मिल जाने पर भी दोनों नायिकाएँ विधवा हो गईं और दोनों के पति नदी में डूब गए। किन्तु यह विधवापन कुछ वर्ष ही चला और एक दिन अचानक दोनों नायक अपने ग्राम में लौट आए। नाटक इस प्रकार बलात् सुखांत बना दिया गया है। यह नाटक बड़ा असफल और निम्नकोटि का है। कथानक, चरित्र-चित्रण, रस, शैली सभी दृष्टियों से सदेष्ट है। यह नाटक कहा जाय या उपन्यास। दो दो पंक्तियों के बाद दृश्य बदल जाता है और एक एक पृष्ठ पर पाँच-पाँच दृश्य बदलते हैं। किन्तु उपन्यास भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि नाटककार

स्वयं कहीं भी कुछ नहीं कहता । न भाषा में बल है और न शैली में कोई सजीवता ।

अनमेल विवाह

अनमेल विवाह के तीन रूप मिलते हैं—(१) पति तो बालक है, परन्तु स्त्री है युवा । उधर युवा पत्नी में काम का ज्वार उठता है और उधर सामने दिखाई पड़ता है अबोध बाल पति । इसी का परिणाम दिखाया है प० देवदत्त मिश्र ने बाल्य विवाह दूषक (१८८५) में । नाटककार ने सुहागरात के समय युवा पत्नी के मनोभावों का बड़ा ही सरस, यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण किया है (अंक ३) । उसकी सभी उमंगों का खून हो गया, उसकी जवानी पर तुषारपात हो गया । काम के आवेश में वह पुनः बालपति के पास जाती है, परन्तु उस अबोध बालक से पाती क्या है ? यही उत्तर 'तुम चुप हो जाव और मैं आनन्द से पॉव फैला कर सो रहूँ' (अंक ३) । परिणाम है कि युवती दुल्हन, जो व्यक्ति सामने आता है, जो उससे सहानुभूति दिखाता है, जो उसे फँसाता है, उसी दुराचारसिंह के साथ रात्रि में भाग जाती है । पात्रों के नाम, गुण कर्म के अनुसार रखे गए हैं । भगानेवाला गुण्डा है 'दुराचार सिंह', वर के पिता का नाम है 'अज्ञानचन्द' । संस्कृत के विद्यार्थियों का अच्छा चित्रण हुआ है ।

गुरु जी—बहुधा संस्कृत के विद्यार्थी लंठ कहे जाते हैं—

शिष्य—फारसी अंग्रेजी वाले हैं, हमारे तो रूप ही से उन्हें घृणा होगी ।'

ब्राह्मणों की भी खबर ली गई है । अशिक्षित ब्राह्मणों पर बड़े तीखे व्यंग्य-वाण्य बरसाए गए हैं । नाटक यथार्थवादी है ।

(२) अनमेल विवाह का दूसरा रूप है जब सुन्दर युवती किसी वृद्ध के साथ बंध दी जाती है । श्रीधनश्याम दास ने अपने नाटक वृद्धावस्था विवाह नाटक^१ में इसी कुरीति का कुफल दिखाया है । 'कुरुचन्द्र' एक धनी वृद्ध पुरुष नवयुवती से विवाह करता है । नायिका मन ही मन बिसूरती रहती है, मन मसोसती रहती है । सखी सुभागवती का समझाना कि भाग्य पर संतोष कर, हृदय की व्यास को शांत न कर सका । ऐसी स्त्रियों को सहायता करने वाली भी मिल जाती हैं । पुरोहितानी काम आई । उसने नवयुवती नायिका को एक छत्रीले, पर दुष्ट युवक से अपने घर पर भिला दिया । नायिका वहाँ जाने लगी । एक दिन पकड़ी गई । वृद्ध पति को भी समाचार मिला । बेचारे

दुःखी हो डूबने के लिए चल दिए । उनके एक मित्र ने समझाया कि वृद्धा-वस्था में विवाह कर और क्या आशा कर सकते थे । नाटककार का नाटक लिखने में यही उद्देश्य था । ब्राह्मणों की बुराई इसमें भी की गई है कि वे रुपये के लोभवश सिंहनी एवं ऊँट का जोड़ा जोड़ देते हैं । नाटक साधारण है । न भाषा ही में बल है और न संवादों में सजीवता । पात्रों के नाम गुणकर्मनुसार रखे गए हैं । ,

इसी वृद्धावस्था के विवाह की समस्या को श्री गोपालराम गहमरी ने अपने नाटक *विद्याविनोद* (१८६२) में उठाया । नाटक में राजकुमारी विद्या का प्रेम तो था एक नवयुवक राजकुमार से किन्तु माता पिता विवाह कर देते हैं एक वृद्ध राजा से, नायिका पहिले ही दिन बूढ़े पति को पिता कह देती है । राजा राजसभा में आ कर अपने मुसाहिव से कहता है कि वह तो मुझे पिता कहती है (५-१) । स्वाभाविक तो यह था कि वह नायिका को दंड देता परन्तु नाटककार ऐसा नहीं चाहता था । नाटककार का उद्देश्य था ऐसी अवस्था में युवा पत्नियाँ साहस करें और अपने प्रेमी के पास चली जायें । फलतः उसने यही कराया है । युवा पत्नी विद्या को वृद्ध राजा घर से निकाल भर देता है और वह भी अपने प्रणयी के पास जा पहुँचती है (अंक ६) । ,

फलतः नाटक का कलात्मक रूप नष्ट हो जाता है और उसमें अस्वाभाविकताएँ आ जाती हैं । (१) नाटककार कथा को जैसा चाहता है, माँड़ता है । स्वयं कथा को अपने आप नहीं चलने देता । (२) छूटे अंक में नायिका विद्या वृद्ध पति को छोड़ एकदम पूर्व प्रणयी के पास नहीं पहुँच जाती । वह भारत के नगरों का भ्रमण करती है । ४४ पक्तियों के एक पद्य में वह राजकुमार को भारत के सभी नगरों के नाम गिनाती है कि मैं कहाँ कहाँ गई । इस दीर्घ कथन से लेखक केवल अपना भौगोलिक ज्ञान मात्र प्रकट करता है । नहीं तो इससे अन्य कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । यह दृश्य अनावश्यक है । अन्य दृश्य (२-२, ५-१) भी कथानक से निष्कासित कर देने पर कोई क्षति कथा की न होगी । भाषा शिथिल है और संवाद निर्जीव हैं । न कोई सामाजिक व्यंग्य प्राप्त होता है, न कोई कुरीति पर आघात । इससे अच्छे व्यंग्य हैं प्रेमघन जी के वृद्ध *विवाह* नाटक में ।

(३) अनमेल विवाह का तीसरा रूप है जब कोई अशिक्षित, शिक्षित के पल्ले पड़ जाती है अथवा पड़ जाता है । ऐसी अवस्था में भी जीवन असह्य सा हो जाता है । इसी वैवाहिक समस्या को पं० देवीदत्त शर्मा ने *बाल्यविवाह नाटक* (१८६०) में उठाया है । मिट्टू पढ़े लिखे पुरुष की पत्नी अपढ़ है । वह लखई बाबा की पूजा करने पर उतारू है और उसका शिक्षित पति धूतों के चंगुल से बचने का उपदेश देता है । लखई बाबा उसे पुत्र दे देंगे । जब

ने दाम्पत्य जीवन का एक पहलू अपने वास्तविक रूप में रक्खा है। स्थान-स्थान पर दुःखी चम्पा के हृदय की रम्य भाँकियाँ नाटक में रख दी गई हैं। वह सखी से कहती है 'इन घटाओं को कह दे कि ललितमोहिनी के यहाँ जा कर गरजें बरसें जहाँ मनधीर है। यहाँ तो हमारी आँखें ही नित्य सावन-भादों की झड़ी लगाये रहती हैं।' कितनी सरस उक्ति है विरहिणी नायिका की ! इसी प्रकार अन्यो को सुखी देख उसे दुःख होता है। वह कहती है 'पत्नी लोग भी अपने पर समेटे हुए पत्तो की आड़ में बैठे हुए सुख भोग रहे हैं। नदियों के करारे धमाधम टूट कर गिर रहे हैं। परदेशी भी ऐसा समय देख कर अपने घर आते हैं और अपनी स्त्रियों से मिलते हैं पर प्यारी सखी (आँखों में आँसू भर कर) देखो तो मनधीर ऐसा निरमोही हो गया है—

भावति है पिय की व्रतियाँ सखि लागति हैं उर शूल सी वोई ।

काली घटा बिजुरी चमकै तिसरे पपिहा पिउ पिउ रटाई ।

भोर रटे भ्रमभामिनि को लरजैं छुतियाँ तन काम बिगोई ।

सासत श्वास उसोसत है बरसात गई वर साथ न सोई ।'

(भाँकी ४) .

रस की दृष्टि से सामाजिक नाटकों में ऐसे नाटक बिरले ही हैं। विप्र-लंभ शृङ्गार प्रधान है। ऊपर का चम्पा का कथन बड़ा मनोवैज्ञानिक है। वह पत्नियों से अपनी तुलना करती है और अपने को अधिक दुःखी पाती है। पत्नी भी घाँसले में लौट आए हैं और अपनी मादाओं के साथ सुख भोग रहे हैं। नदी का करारा टूटता है, और साथ ही विरहिनी का धैर्य भी। अन्यो के बालम लौट आए हैं, उसका नहीं लौटा है। बड़ी सरल और भावपूर्ण विरहोक्ति है। अंतिम पंक्ति अलंकरण भी रखती है और हृदय की व्याकुलता भी।

• पं० राधाचरण गोस्वामी कृत बूढ़े मुँह मुँहासे (१८८७) में उक्त दोनो नाटकों से हट कर एक अन्य लम्पट पुरुष का चरित्र दिखाया गया है। इस नाटक का नायक एक बूढ़ा लाला है जो बड़ा धनी है परन्तु है लम्पट। लाला जी मौला असामी का घरबार हड़प लेने के लिए उतारू हो उसके गाँव में गए। वहाँ कल्लू नौकर बताता है कि मौला की बीबी बड़ी सुन्दरी है। लाला जी की लार टपक पड़ी। "यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि" कह कर ३५ में मौला की बीबी का सौदा कल्लू नौकर से पटाया। इसी बीच चैना तेली की लड़की मन्नो को देख मन मचल गया। कल्लू से कहा—इसे भी फँस। कल्लू ने कहा—यह संभव नहीं है। लाला कहते हैं—'क्या कम्बखती है। ऐसा उम्दा सोने का कमल निकाल न सका ! हा ! ससागरा पृथ्वी को जीत करके अन्त में अर्जुन को क्या प्रमिला के हाथ से

पराभव होना पड़ा ?' (२-१) परिणाम भी इस लम्पट पुरुष को अच्छा मिला। कल्लू ने मौला से मिल कर षड्यंत्र किया। मौला की बीबी गई। ठीक समय पर मौला पहुँच गया। पं० विद्याधर भी पहुँच गए। लेखक का ध्यान चरित्र-चित्रण पर रहा है। लाला जी के दो रूप बड़े सुन्दर हैं। पं० विद्याधर की ज़मीन लाला जी ने बलात् छीन ली थी। पं० विद्याधर माँ की तेरहवीं के लिए रुपया लेने लाला जी के पास गए तो बूढ़े लाला बोले—महाराज ! यह हमारा बड़ा कुसमय है (१-१) और पंडित जी को टरका दिया। तुरन्त उधर कल्लू से मौला की बीबी को फँसाने के लिए कहते हैं—हाँ देख रुपये का लोभ मत करना जो खरच लगेगा मैं दूँगा' (१-१)।

• वेश्यागामी लम्पट पुरुषों का चरित्र कई नाटकों में चित्रित किया गया। पं० बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन कृत वारांगना रहस्य महानाटक^१ (१८८५) में नायक राजीवलोचन कुसंगी मित्रों के कारण वेश्यागामी बन जाता है। उसी की दुर्गति का चित्रण है। नाटक बड़ा सरस और कलापूर्ण है। प्रकृतिपरक सुन्दर कविताओं का अच्छा संग्रह इसमें है। प्रकृति-वर्णन, उद्दीपन और आलम्बन दोनों रूपों में हुआ है। पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत वेश्याविलास में नायक मकरध्वज, पन्नाजान एक मुस्लिम वेश्या के चंगुल में पड़ कर मद्य-मांस खाना सीख लेता है और अन्त में मुसलमान बन जाता है। एक अन्य पात्र बलिराम, पन्नाजान से काम निकाल लेने पर रुपये नहीं दे पाता तो पन्ना जान उसकी जूते से ख़बर लेतो है (१-२)। चंगुल में फँसे मकरध्वज का घरवार सब कुछ नीलाम हो जाता है और और वह पछुताता है। नाटक सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखा गया है। नाटककार अपने इस दृष्टिकोण को 'रंगीले' नामक पात्र के मुँह से प्रकट कर देता है—'देखो धनियों की कैसी उलटी बुद्धि है ऐसे ही मन यदि देश की भलाई से लगावे तो भारत-वर्ष थोड़े ही काल में सुधर जावे' (२-२)।

• पं० कृष्णविहारी मिश्र कृत आनन्दोद्भव नाटक (१८८६) में भी वेश्यागामियों की दुर्गति कराई गई है। वेश्या बोसा मॉगनेवाले संन्यासी की जूती से मरम्मत करती है (गर्भांक २)। वेश्या नाटक^२ (१८६३) में नायक

१. यह नाटक अपूर्ण है और आनन्दकादंबरी पत्रिका में भाद्रपद १९४२ से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ था। लगभग डेढ़ वर्ष तक प्रकाशित होता रहा। फिर बन्द हो गया। कहा जाता है कि भारतेन्दु का वेश्या-विनोद इसमें व्यंजित किया गया था।

२. यह मौलिक नाटक नहीं है जैसा कि डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल (भारतेन्दु का नाट्य साहित्य पृ० ६१), डा० सोमनाथ (हिंदी नाटक

प्यारे लाल कुत्सित बीमारियों से पीड़ित होता है और भिन्नक बन जाता है । वास्तव में यह नाटक नहीं, उपन्यास है ।

पं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा कृत कुन्दकली नाटक (१८६०) का नायक स्वयं लंपट नहीं है, लंपटों के कुसंग में लम्पटता करता अवश्य है । नाटककार इस नाटक में शृङ्गार रस के साथ साथ यह भी प्रकट करना चाहता है कि दुष्ट मित्र अच्छे मित्र का सर्वनाश कर देता है ।^१ नाटककार भूमिका में स्पष्ट कहता है कि नाटक एक सत्य घटना के आधार पर लिखा गया है । नायक 'मधुकर' का एक धूर्त मित्र है 'काग' । यह मुँह का मीठा और पेट का काला है । काग मधुकर को 'कुन्दकली' की ओर आसक्त कराता है । कुन्दकली विवाहिता बालिका थी । उसका पति उसे छोड़ कर दूर बैठा है और उसकी चिन्ता नहीं करता है ।^२ कुन्दकली नीच जाति की है । एक वृद्धा मालिन उसकी संरक्षक बनी हुई है । मधुकर ऊँची जाति का युवक है । काग, कुन्दकली के रूप गुण की अत्यंत प्रशंसा कर धीरे धीरे नायक मधुकर के मन पर कुन्दकली का दिव्य चित्र खींच देता है । मधुकर कहता है 'अभी इस पर मन गड़ाने अथवा नेत्र अड़ाने से क्या लाभ है । न तो वह पूर्ण कली ही हुई है, और न इसमें अभी वह मत्त सुगंध ही प्रवेश हुई है' (अंक २) । किन्तु काग किसी न किसी प्रकार मधुकर को कुन्दकली पर आसक्त करने में सफल हो जाता है । उसका उद्देश्य

साहित्य का इतिहास, तृ० सं०, पृ० ८२) एवं डा० वाष्णेंय (आधुनिक हिंदी साहित्य, द्वि० सं०, पृ० २५२) ने माना है । यह नाटक उर्दू से अनूदित है जिसके मूल लेखक चौधरी नवलसिंह वर्मा हैं । हिन्दी में पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने अनुवाद किया है । प्रकाशक का कथन है 'चौधरी नवलसिंह वर्मा मुजफ्फराबाद जिला सहारनपुर ने देशोपकारार्थ बनाया और पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा सदर बाजार मेरठ ने सर्व मनुष्यों के उपकारार्थ उर्दू भाषा से अनुवाद कर देवनागरी अक्षरों में सुशोभित करके प्रकाशित किया । अनुवादक की स्वीकारोक्ति है 'यह प्रहसन प्रथम उर्दू अक्षरों में छपा था हमने सर्व सामान्य के उपकारार्थ देवनागरी भाषा में उल्था किया है' (भूमिका) ।

१. नटी—क्या मुजन मंडली में सज्जनता का रूपक इससे और बढ़ कर दृष्टिगत हो सकता है । सत्य मित्रों का और उदाहरण कहाँ खोजना पड़ेगा (प्रस्तावना) ।

२. मालिन—इसका स्वामी जो कुछ कर सके उस मूढ़ अज्ञानी को इसका तनक भी प्रेम नहीं है ।

मालिन—यदि स्वामी ही इस योग्य इसके रूप गुण का ग्राहक होता तो यह सब व्याकुलता मुझे क्यों सताती ।

था कि धनी, सुन्दर और सदाचारी मधुकर द्वारा वह भी कुंदकली को चला सकेगा। परन्तु ऐसा न होने पर वह गुवरिल नामक अन्य दुष्ट मित्र के सहयोग से मधुकर की नगर भर में निंदा करता है। फलतः मधुकर को नगर छोड़ भाग जाना पड़ता है। दुष्ट साथी कुंदकली पर डोरे डालते हैं। कुंदकली एक बार पुनः मधुकर से मिलती है और बुरा भला कहती है कि तुम मेरी नौका में भ्रमण छोड़ भाग आए। नायक एक बार मिलकर सदा के लिए नायिका से अलग हो जाता है।

नाटक उद्देश्य प्रधान है। नायक अन्त में कहता है 'तो क्या प्रिया यह सम्भव हो सकता है कि मेरा और तुम्हारा महा नीच दुष्कर्म सर्वसाधारण को उपयोगी हो सकेगा। मैं तो अपने गत कर्मों को स्मरण कर लज्जित होता हूँ, (अंक १०)। नाटक की सबसे बड़ी निर्वलता है इसकी भाषा। भाषा बड़ी भ्रष्ट और अव्यवस्थित है। नाटक अस्वाभाविकताओं से भी भरा है—(१) नायिका कुंदकली गेंद खेलने वाली एक बालिका है परन्तु वह नायक से प्रकांड पंडित की नाई तर्क करती है और प्रश्न पूछती है। (२) कुंदकली और मधुकर के प्रश्नोत्तर (अंक ७) जो कई पृष्ठों को घेरे हुए हैं, कथानक और अभिनय की दृष्टि से व्यर्थ है। नाटक की कुछ विशेषताएँ भी हैं (१) यह उस काल का अकेला नाटक है जिसमें पात्रों का नामकरण 'पत्तियों' और फूलों के ऊपर हुआ है। इन पात्रों के नाम गुण-कर्मानुसार हैं। 'मधुकर', नायक है, काग, धूर्तमित्र है; गुवरिल एक दुष्ट पुरुष है; कीर और हस, शीलवान एवं विवेकी पुरुष हैं; कुंदकली, मुग्धा बाला है। (२) नाटक में शृङ्गार रस की सुन्दर भाँकियाँ हैं। नायिका का रूप-वर्णन और नखशिख चित्रण भी है। साथ ही 'रति-वर्णन' भी दिया गया है। नाटककार ने बड़े चाव से इसका वर्णन किया है—(मधुकर कुंदकली का समीपस्थ होता है। गृह कपाट मुँद गये, दोनों अज्ञात स्थल में जा पहुँचे परन्तु फिर भी क्या हुआ गुप्त स्थान के व्यवहारों का संक्षिप्त वर्णन वायु द्वारा शब्द दूत पहुँचा ही गया।)

पायल ज्यों भोँभ मनो मजीरा बिछियान के

कर्क चुरियानक ज्यो सप्त सुरतान है।

बेंदी शीश फूल कर्णफूल जड़ित घूँघट

शब्दैँ टकोर त्यो तुरही धुन कान है।

प्यारी को मन्द कूल्ह कुँहकत यो बोंसुरी

पर्यंक की चटक मृदंग - टकरान है।

ऐसी साज सज्यो रती काल वाद्य अरु गान को

मनो जगन्नाथ काम स्वयं विद्यमान है।

(अंक ७)

लम्पट स्त्री—

‘पं० प्रतापनारायण मिश्र ने अपने काल कौतुक रूपक (१८८६) में लम्पट स्त्रियों का भंडाफोड़ किया है। त्रिया चरित्र का, यह नाटक सुन्दर उदाहरण है। पुरुष की लम्पटता का प्रभाव पत्नी पर भी पड़ सकता है। नायक किशोरीदास रात्रि के समय देर से घर आते हैं तो मानस की चौपाइयाँ बोलते आते हैं और बहाना बनाते हैं कि रासलीला देखता रहा। पत्नी श्यामा पति से भी अधिक है। जब पति देव घर से बाहर हैं तो वह अपने यार रसिकबिहारी के साथ गुलछुरें उड़ाती है। यदि पति आ जाता है तो उपपति को छिपा देती है और पति से कहती है—‘खाना खा लो। वह कहता है—‘मैं नहीं खाऊँगा, तुम खा लो। श्यामा कहती है—“भला तुम्हारे बिना मैं कैसे खा लूँ ?” पति जब पुनः रात में रासलीला के बहाने जाने को कहता है तो कहती है ‘दुपहर के गए तो अब आए हो रात भर को फिर जाओ हो ले इकल्ली मैं कैसे रहूँगी’ (१-१)। श्यामा की सखी चम्पा भी इसी घाट का पानी पिये है। वह ‘मंदिर मंदिर में चन्नामिर्त लेती फिरती है, साधुओं से संतान लाती है, दुर्गादेवी के मेले में आँख लड़ाती है’ (१-१)। दोनों सखियाँ परम वैष्णव हैं। कंठी माला धारती हैं। नाटक में देशकाल की सुंदर भौकियाँ हैं। कथानक सुगठित नहीं है। अश्लीलता की भी कमी नहीं है। शब्द- और कार्य-अश्लीलता, दोनों के दर्शन होते हैं।

आदर्श पत्नी

पिछले सामाजिक नाटकों से एक बात स्पष्टतः प्रमाणित हो गई है कि नाटककारों का दृष्टि-केन्द्र नारी है। नाटककारों ने ‘नारी’ को सामाजिक नाटकों में प्रमुख स्थान दिया है। विधवा विवाह नाटक, अनमेल विवाह नाटक और लम्पट पुरुष सम्बन्धी नाटक में नारी का ही दुःखी जीवन चित्रित हुआ है। लम्पट स्त्री संबंधी नाटकों में तो वह सदा ध्यान में है ही। नाटककारों ने एक दूसरे दृष्टिकोण से भी स्त्री जीवन को सामने रखा। उन्होंने आदर्श स्त्रियों को नाटकों में चित्रित कर नारियों को उपदेश दिया। कुँवर हनुमत सिंह रघुवंशी कृत सती चरित्र नाटक (१८६०) में लेखक स्वयं मुख-पृष्ठ पर ही नाटक रचने का उद्देश्य स्पष्ट करता कहता है, ‘एक कुलीन पतिव्रता के सचचरित्र का आदर्श !’ नाटककार आगे उपक्रम में पुनः कहता है, ‘मैंने इस नाटक के रचने में इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि नाटक के प्रत्येक अंक से पाठकों को कोई उचित सामाजिक शिक्षा मिल सके।’ शिक्षा दिलाने का यह उपक्रम इतना बड़ा है कि नाटकीय कला जान बचाकर भाग गई है। वास्तव में पूरा नाटक पहिले और सातवें—इन दोनों अंकों में समाप्त

हो जाता है। शेष अंक तो बलात् ठूँसे गए हैं। न चरित्र-चित्रण है, न अन्य कोई सौंदर्य। यह एक निम्नकोटि का नाटक है।

इस नाटक से बढ़कर है कुँवर रघुवीर सिंह वर्मा कृत मनोरंजनी नाटक (१८६०)। यद्यपि यह भी उत्तम कोटि का नाटक नहीं है, तब भी पहिले नाटक से अच्छा है। नाटक रचना का उद्देश्य मुखपृष्ठ पर ही प्रकट है कि यह नाटक 'भारतीय महिलाओं के शिक्षार्थ' रचा गया है। इसमें भी नायिका मनोरंजनी पति-परायणा स्त्री है। किन्तु उसने साधुवेशधारी लम्पटों से धोखा खाया। वह उनसे पुत्र माँगने गई थी। दोनों साधुवेशधारी गुण्डे उसे उड़ाकर ले जाते हैं। नाटक में स्वामिभक्त नौकर 'छोटे सिंह' का चरित्र बड़े आदर्श रूप में चित्रित हुआ है। अन्त में मनोरंजनी को अपना पति-परायणता का पुरस्कार राजा से मिलता है, उसे 'देवी मनोरंजनी' की उपाधि से भूषित किया जाता है। नाटक में देश काल संबंधी सुन्दर चित्रण हैं। कथानक में गति और शृङ्खला है। हाँ, अस्वाभाविकताएँ भी बहुत हैं (१) नायक मोतीराम एक धनी पुरुष है। उसके प्रतिनायक के रूप में एक सिपाही को रखना उचित न था। (२) इसी का फल है कि दोनों प्रतिनायकों—बॉके खाँ और अब्दुला—का मनोरंजनी को थैली दिखा कर फँसाने का प्रयास बड़ा उपहासास्पद हो गया है। वे दोनों मिट्टी को घिस घिस कर रुपये बनाते हैं और एक कपड़े की थैली में भरकर नायिका के सामने खनखनाते हैं। नाटककार ने यह न सोचा कि नायिका सेठ की पत्नी है। वह प्रथम तो रुपये से नहीं मोल ली जा सकती। दूसरे वह मिट्टी के रुपयों की खनक को क्या रुपयों की झनझनाहट समझ जायगी। (३) नायिका जब गुफा में नग्न की जानेवाली थी, सहसा छोटेसिंह डंडा लेकर पहुँच जाता है (६-१)। छोटे सिंह को गुफा का पता कैसे चला, इसका कोई उत्तर नाटककार के पास नहीं है।

• श्री किशोरीलाल गोस्वामी कृत चौपट चपेट (१८६१) में पति परायणा पत्नी का चित्र अंकित किया गया है। बाबू अभयकुमार की रूपवती पत्नी चंपकलता पर भौरें मँडराए। पड्यंत्र कर पति के मन में संदेह डाल दिया गया कि पत्नी चरित्र भ्रष्ट है। नायक साधु बन गया। उसने पत्नी की परीक्षा ली। देखा कि प्रतिनायक मदनमोहन जो संबंधी भी था, वास्तव में असत्यवादी था। मदनमोहन के दो साथी छक्कूलाल और रजनीकांत भी नायिका को फँसाने की चेष्टा में थे। एक और बिसाती गुलफाम भी नायिका की सुन्दरता पर दिल हार बैठा। नायिका ने सखी और अनजान साधु (जो वास्तव में नायक ही रूप बदले हुए था) की सहायता से चारों पुरुषों की दुर्गति बनाई। पति-परायणा पत्नी परीक्षा में सफल हुई। नायक व्यर्थ संदेह करने के लिए ज़मा मॉगता है। यह एक प्रहसन है। देश काल संबंधी सुन्दर

चित्र प्राप्त होते हैं। नायिका चम्पकलता के हृदय में द्वन्द्व का भी अच्छा चित्रण अंकित है जब कि नायिका, परोपकारी, सुन्दर और युवा साधु (छुन्न-वेशी नायक) को देखती है (अंक ३)। भारतेन्दु जी के नाटक प्रेम योगिनी के यात्री के गीत 'देखी तुमरी कासी लो गो, देखी तुमरी कासी' (गर्भक २) के अनुकरण पर यहाँ भी साधु, बैजू बावला गाता है 'देखो जगत तमासा साधो, देखो जगत तमासा' (४-२)।

इस वर्ग में एक अत्यंत समर्थवान और सरस नाटक है श्री दुर्गाप्रसाद मिश्र कृत सरस्वती नाटक (१८८७ ई०)। नाटक पात्र प्रधान है। आकर्षण केन्द्र है, नाटक की नायिका सरस्वती जो बड़ी सुशीला और पति-परायणा है। नाटक में सम्मिलित परिवार प्रथा का दृश्य अंकित है जिसमें कर्कशा और स्वार्थी जिठानी 'लक्ष्मी' अपनी सुशीला सरस्वती को सताती है। यह नाटक यद्यपि आदर्शवाद लिए है परन्तु इसका संपूर्ण प्रासाद यथार्थवाद की आधार-शिला पर खड़ा है। दूसरे शब्दों में कलात्मक आदर्शोन्मुख यथार्थवाद इसमें मिलता है।

लक्ष्मी और कालीदास दंपति के पतन और उत्थान की कथा ही आधिकारिक कथा है। लवटू की कथा पताका है और कई प्रकरी कथाएँ हैं। कथा शृंखलित, गतिमान और उत्सुकतामयी है। नाटक की विशेषता है इसका सफल चरित्र-चित्रण। सामाजिक नाटकों में सुन्दर चरित्र-चित्रण वाला इस नाटक के समान दूसरा नहीं है। सरस्वती तो साक्षात् प्रेम और विनय की प्रतिमूर्ति है और कष्ट-सहिष्णुता की संगिनी है। इसकी तुलना में जिठानी का चरित्र रक्खा है जिसके द्वारा 'सरस्वती' का चरित्र चमक उठता है। नाटक का सबसे आकर्षक और प्रभावपूर्ण चरित्र है 'दया' का। दया कालीदास की नौकरानी है किन्तु इस ममतामयी नारी ने 'सरस्वती' की सदा दुःख में सहायता की। वास्तव में यदि 'दया' न होती तो नाटक का अन्त ही बदल जाता। इसके विरोध में पंडाइन का चरित्र खड़ा किया गया है। पंडाइन बड़ी स्वार्थी और बातूनी है और आग लगा कर तापने वाली है। इस प्रकार नाटककार ने चरित्रों का तुलनात्मक चित्र खींचा है। दुर्गाप्रसाद, और कालीप्रसाद लक्ष्मी और सरस्वती एवं पंडाइन और दया को एक दूसरे के विरोध में खड़ा कर कालीदास, सरस्वती और दया के चरित्रों को अधिक स्पष्ट कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त 'लवङ्गधूराम', दारोगा फिदा मुहम्मद, एवं भारतीदास के चित्रों पर भी सुन्दर, उचित एवं वास्तविक प्रकाश डाला गया है। सब चरित्र मने-विशान की भूमि पर खड़े हैं, और उनके जीवन में बाह्य एवं आन्तरिक द्वन्द्व के ताने बाने बुने गए हैं।

नाटक के संवाद भी बड़े सरस, स्वाभाविक एवं गतिमान हैं। इस

नाटक की यह भी एक बड़ी विशेषता है। सर्वत्र संवाद-सौन्दर्य झलक रहा है। इस प्रकार का सुन्दर संवाद इस काल के अधिकांश नाटकों में नहीं मिलता। भाषा पर नाटककार का अधिकार है और मुहावरे जड़कर वह उसमें सजीवता भर देता है। लक्ष्मी, सरस्वती को रोते देख कहती है, 'समझी पंडाइन, मेरे नाम से चूल्हे की राख भी रखी रहे तो भी लोगों के मारे बचने नहीं पाती, अरे आँखों से जल क्यों निकलने लगा, रोती है क्या ? इसमें रोने की बात कौन सी हुई ? बातें नहीं सुनी जाती, मानो फूटी गगरी है जल पड़ा कि चू निकली, टपकने लगी' (५-१)। स्वाभाविक संवाद प्रवाह युक्त, सरल और भावमयी भाषा में रक्खा गया है। फूटी गगरी का उदाहरण बड़ा ही करुण और खरा है। देशकाल का चित्रण भी है। तीर्थों में, भिखारियों से यात्री कैसे सताए जाते हैं, इसका बड़ा ही सुन्दर चित्र नाटककार ने उपस्थित किया है (२-५)। पुलिस, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज इत्यादि के संघर्ष में भी बताया गया है। गीत बहुत थोड़े हैं। इस काल में हास्यरस भोड़पन पर उतर कर ही प्रायः हँसाता है किन्तु इस नाटक का हास्य, व्यंग्य-प्रधान और सयत है। सब मिलाकर नाटक उत्तम कोंटि का समर्थ नाटक है।

अन्य विश्वास

हिन्दू समाज में अधविश्वास की कमी न थी, विशेषतः स्त्रियों में। इसी को लक्ष्य कर नाटककारों ने अपने नाटक लिखे। 'भारतेन्दु जी ने अपने अपूर्ण नाटक प्रेम जोगिनी (१८७५) में गंगा पंडा और भोजन भट्ट ब्राह्मणों का चित्रण किया (गर्भांक ४)। हिंदू लोग तीर्थों में जाकर पंडों को दान करना और ब्राह्मणों को भोजन कराना मोक्ष का खुला द्वार समझते थे। इसी पर भारतेन्दु जी ने इस नाटक में चाँट की है। निश्चय ही यदि यह नाटक कहीं पूर्ण हो जाता तो जैसे भारत दुर्दशा राजनैतिक नाटक है वैसे ही यह सामाजिक नाटकों में ऊँचा स्थान पाता। पहिले इसका नाम था काशी के छाया चित्र,* बाद में भारतेन्दु जी ने इसका नाम प्रेम जोगिनी रख दिया। भारतेन्दुजी इसे 'नाटिका' रूप में समाप्त करना चाहते थे। अपने वर्तमान रूप में तो यह विशृंखलित है किन्तु कुछ अनुमान लगा सकते हैं कि भारतेन्दु जी इसे किस ओर मोड़ते। जब यह 'नाटिका' है तो उसमें किसी स्त्री के प्रेम की कथा अवश्य

* १. काशी के छायाचित्र या दो भले बुरे फोटोग्राफ नाम से प्रथम संस्करण हरिश्चन्द्र चन्द्रिका सन् १८७६ ई० में छपना आरंभ हुआ था। बा० ब्रजरत्न दास जी द्वारा संपादित भारतेन्दु ग्रंथावली, प्र० सं० में 'प्रेम-जोगिनी' नाटिका से उद्धृत।

होती। वह ख़री कौन हो सकती है? इसका संकेत तो मिलता है। चतुर्थ गर्भांक में एक सुन्दरी विधवा बाला एक 'यजमान' के यहाँ धनी पिता के साथ ठहरी है। वह ठहरी भी 'पाप नगर' में ही है। यह पाप नगर पंडों के मुहल्ले के अतिरिक्त और कौन हो सकता था? आरम्भ से ही भारतेन्दु जी ने गंगा-पुत्रों, पंडों और भंडारों की गाथा गानी आरंभ कर दी है। परदेसी यात्री दूसरे गर्भांक में इन पंडों और भांड-भंडेरियों की कलाई खोलता आता है जो निकम्मे, भंगी, गंजड़, लुच्चे, बेविसवासी, महाआलसी, भूठे, शोहदे, बेफिकरे, बदमास' हैं (१-२)। भूरीसिंह भी कहता है कि ये सुप्त का माल चावते हैं आर यात्रियों को नाचते हैं (१-२)। इसी को लक्ष्य कर भारतेन्दु जी ने कहा है कि वह विधवा बाला, पाप नगरी में ठहरी है। महाश बताता है कि सभा होने वाली है जिसमें विचार होगा कि इस सुन्दरी विधवा के बाल कटवाए जायें या नहीं। यही कथा का बीज है। संभवतः पंडों द्वारा इस सुन्दरी कन्या का अपहरण होता और नायक रामचन्द्र अच्छे पंडा सुधाकर की सहायता से इसका उद्धार करता। दोनों में अनुराग पैदा होता किन्तु नायक का घोर विरोध होता, उसे कष्ट दिये जाते एव अन्त में यही बाल-विधवा, प्रेम में योगिनी बन जाती। 'कुछ लोगों का अनुमान है कि हरिश्चन्द्र अपने जीवन की भाँकी इसमें देने वाले थे। बा० शिवनन्दन सहाय भारतेन्दु जी के जीवन चरित्र (पृ० १७२) में कहते हैं कि 'नायक रामचन्द्र हरिश्चन्द्र ही हैं।' भारतेन्दु जी ने हिन्दुओं के तीर्थस्थान संबंधी अंध विश्वास को यहाँ चित्रित किया है। इसी नाटक की प्रेरणा पाकर हरशंकर प्रसाद ने आगे अपने काशी दर्शन नाटक में पंडों और भण्डारों की खूब खबर ली और दिखाया कि धूर्त चिथरू यात्री के माथे पर गंगा जल का लोटा रख कहता है कि सच-सच कह दे तेरे पास सब कितना रुपया है। अंधविश्वासी देवीदास बता देता है कुल सात सौ साठ (दृश्य ३)। पंडा अनेक धूर्तताओं से उसके धन को ही नहीं, उसकी सुन्दर पत्नी को भी हथिया लेता है।

• पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी ने एक अन्य अंध विश्वास को अपने नाटक जय नारसिंह की (१८७६) में चित्रित किया है। आज भी हिन्दू समाज में ओम्हा और दरसनियों पर विश्वास करने वालों की कमी नहीं है। फिर भारतेन्दु युग में तो ओम्हों की और अधिक पूछ थी। इस नाटक में शिक्षित मोतीलाल की अनपढ़ पत्नी 'स्यामा' औषधि पर विश्वास नहीं करती, भाड़-फूँक पर करती है। फलतः औषधि फेंक भाड़-फूँक कराती है। परिणाम सामने आता है और उसका इकलौता पुत्र चल बसता है। नायक मोतीलाल गहलू ओम्हा की जूतो से मरम्मत करता है। नाटक कई बार खेला भी गया था। भारतेन्दु जी कृत प्रेमयोगिनी के 'मालो लूटें मेहरवों लूटें' के

गोसाईं जी श्री राधाचरण जी गोस्वामी के नाटक *तन मन धन गोसाईं जी के अर्पण* (१८६०) में अपना पूरा रूप दिखलाते हैं जो स्त्रियों का तन, मन, और धन हड़पते हैं ।

अन्य सामाजिक कुरीतियाँ

हिन्दुओं में मद्य-मांस का प्रचार बढ़ गया था । मद्य-मांस खाने का भी एक सामाजिक ढंग चतुर मनुष्यों ने ढूँढ निकाला था । भारतेन्दु जी ने अपने नाटक *वैदिकी हिसा हिसा न भवति* (१८७३) में इसी सामाजिक पाखंड की पोल खोली है । नाटककार ने बड़े तार्किक और प्रभावपूर्ण ढंग से इस सामाजिक दोष को प्रस्तुत किया है । नाटक उद्देश्य प्रधान है । धर्म की आड़ में मांस खाने वालों पर करारी चोट की है, उनकी यमराज के यहाँ दुर्गति दिखलाई गई है । नाटक का सौन्दर्य है इसकी तर्कशैली । वैसे नाटक कलात्मक दृष्टि से उत्तम नहीं कहा जाएगा । नाटक के तर्क आज भी सुने जाते हैं । मछली खाने वाले आज भी 'बंगाली' पात्र के शब्दों में तर्क देते हैं 'मत्स्य की उत्पत्ति वीर्य और रज से नहीं है । इनकी उत्पत्ति जल से है । इस हेतु जो फलादिक भक्ष्य है तो ये भी भक्ष्य है' (अंक २) । ऐसा ही सुन्दर तर्क गंडकीदास के मुख से दिलवाया गया है । उसने पाप किया ही नहीं । वह तो कुछ भी नहीं करता । यमराज ने जब पूछा, 'अपने पापों का क्या उत्तर देते हैं' तो गंडकीदास तुरन्त उत्तर देते हैं, 'मैं क्या उत्तर दूँगा । पाप पुण्य जो करता है, ईश्वर करता है, इसमें मनुष्य का क्या दोष है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति

भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ (अंक ४)

देशकाल के अनेक चित्र नाटक में हैं । नाटककार की सहानुभूति वैष्णवों के साथ है । वैष्णव को स्वर्ग दिलाया गया है । नशा खाने और पीने के अवगुण, पं० शिवराम वैद्य कृत *होलिका दर्पण नाटक* (१८६५) में दिखलाये गए हैं । यह नाटक नहीं, वास्तव में वैद्यराज जी की एक वैद्यक संबंधी पुस्तिका है जो संवाद रूप में लिख दी गई है । वैद्य जी ने नुस्खे भी दिए हैं । जैसे कई वैद्यक की संस्कृत पुस्तकें पद्यबद्ध हैं किन्तु वे काव्य नहीं कहला सकतीं, उसी प्रकार संवाद-बद्ध होते हुए भी यह नाटक नहीं है । पं० देवदत्त शर्मा कृत *दिवारी के ज्वारी* (१८८७ से पूर्व) में दिवारी के अवसर पर हिन्दुओं में जो द्यूतक्रीड़ा की जाती है, उसका कुपरिणाम दिखाया गया है । श्री जगन्नाथ कृत *समुद्र यात्रा वर्णन* (१८८७) में समुद्र यात्रा निषेध का जो हिन्दुओं में सामाजिक नियम बन गया था उसका विरोध किया गया है । जगन्नाथ भारतीय

कृत *वर्णव्यवस्था* नाटक में हिन्दू समाज की नीच ऊँच भावना की बुराई की गई है । ,

धार्मिक नाटक

वैसे तो हिन्दुओं की दृष्टि में धर्म, समाज से भिन्न नहीं है । हिन्दुओं में विवाह भी धार्मिक है और पति की सेवा भी धर्म का अभिन्न अंग है । तब भी कुछ क्रियाएँ अवश्य हैं जो शुद्ध धार्मिक हैं । यद्यपि इनका रूप सामाजिक है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से इन धार्मिक क्रियाओं को करता है । खड्ग बहादुर मल्ल कृत *हरितालिका नाटिका* (१८८७) में स्त्रियों की हरताल तीज के अवसर पर कही जाने वाली कथा को ही नाटककार ने प्रस्तुत किया है । इसमें भाद्रपद शुक्ला तीज के दिन रखे जाने वाले 'हरताल तीज' व्रत का क्या फल है, यही बताया गया है । प० समुद्रदत्त शर्मा ने अपने नाटक *आर्य मतमार्त्तण्ड नाटक* (१८६५) में आर्य धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है । वास्तव में यह वादविवाद या संवाद मात्र है, नाटक नहीं । इसी दृष्टिकोण का दूसरा नाटक है श्री जगन्नाथ भारतीय कृत *नवीन वेदान्त नाटक* (१८६०) इसमें भी आर्यसमाजी दृष्टिकोण है । वेदान्ती, वैष्णव, चक्रांती और आर्य का वाद-विवाद है । अन्त में आर्य-धर्म सर्व श्रेष्ठ ठहरता है । वैष्णव भी इसी का समर्थन करता है । श्री स्वामी शंकरानन्द कृत *विज्ञान नाटक* (१८६८) भी प्रश्नोत्तर रूप में है । इसके पात्र—विज्ञान, प्रज्ञा, जीव, संतोष, शम, दान—प्रतीकवादी शैली के हैं । समाधि क्या है, क्या मन का नाश हो जाता है, माया से मन कैसे छूटेगा, आत्म-अनात्म क्या है—इत्यादि विषयों पर तर्क-वितर्क हैं । इन सबमें भिन्न है श्री जैनेन्द्रकिशोर कृत *सोमासती नाटक* (१९००) । यह नाटक जैन धर्म की व्याख्या और उसके प्रचार के लिए लिखा गया है । हाँ, साथ में एक कथा भी है । सोमा पति के जीवन की चिन्ता नहीं करती । उसे पति से प्यारा है जैन धर्म । जैन धर्म की महिमा, आर्यका व्रत, जैन धर्म के अंग और जिन भगवान की महिमा दिखलाना ही लेखक का उद्देश्य है । ये सभी नाटक, नाटक नहीं, धार्मिक पुस्तिकाएँ (पैम्फलेट) हैं ।

सामाजिक नाटक

पुस्तक	लेखक	निर्माण या प्रकाशन काल
वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति	भा० हरिश्चन्द्र	१८७३
बाल विवाह	श्री शरण	१८७४
जय नारसिंह की	देवकीनन्दन त्रिपाठी	१८७६
दुःखिनी बाला	राधाकृष्णदास	१८८०
बाल विवाह	देवकीनन्दन त्रिपाठी	१८८१
बाल विधवा संताप नाटक	काशीनाथ खत्री	१८८१
सती प्रताप	भा० हरिश्चन्द्र	१८८३
वीर वामा	वैजनाथ	१८८३
विद्या विलासी सुख बधनी नाटक	श्री कृष्ण टकरू काश्मीरी	१८८४
बाल्य विवाह नाटक	देवीप्रसाद शर्मा	१८८४
अबला विलाप	रुद्रदत्त शर्मा	१८८४
बाल्यविवाह दूषक	देवदत्त शर्मा	१८८५
अद्भुत नाटक	कमलाचरण मिश्र	१८८५
वीरांगना रहस्य	बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन	१८८५
कलि कौतुक रूपक	प्रतापनागयण मिश्र	१८८६
समुद्र यात्रा वर्णन	जगन्नाथ भारतीय	१८८७
वर्णव्यवस्था	जगन्नाथ भारतीय	१८८७
हरितालिका नाटक	खड्गबहादुर मल्ल	१८८७
कन्या संबोधिनी नाटक	कामताप्रसाद	१८८८
भारत ललना	खड्गबहादुर मल्ल	१८८८
पाखंडमूर्ति	रुद्रदत्त शर्मा	१८८८
वृद्धावस्था विवाह नाटक	धनश्यामदास	१८८८
विवाह विडम्बन	तोताराम वकील	१८८९
आनन्दोद्भव भाग १	कृष्णविहारी शुक्ल	१८८९
मनोरंजनी	रघुवीरसिंह वर्मा	१८९०
सती चरित्र नाटक	हनुमंत सिंह रघुवंशी	१८९०
नवीन वेदान्त नाटक	जगन्नाथ भारतीय	१८९०
चौपट चपेट	किशोरीलाल गोस्वामी	१८९१

पुस्तक	लेखक	निर्माण या प्रकाशन काल
विद्याविनोद	गोपालराम गहमरी	१८६२
वेश्या नाटक	अनु० ईश्वरीप्रसाद शर्मा	१८६३
होली दर्पण नाटक	शिवराम पाण्डे वैद्य	१८६५
आर्यमतमार्तण्ड नाटक	रुद्रदत्त शर्मा	१८६५
गंगोत्री	बालमुकुन्द पाण्डेय	१८६७
दिवारी के ज्वारी	देवदत्त शर्मा	१८६८
विवाहिता विलाप नाटक	निद्धीलाल	१८६८
सरस्वती	दुर्गाप्रसाद मिश्र	१८६८
बालविवाह नाटक	छुट्टनलाल स्वामी	१८६८
सुखानन्द मनोरमा	एक हिन्दी हितैषी	१६००
सोमा सती	जैनेन्द्र किशोर	१६००
गोत्रोच्चार		
आडम्बर तोड़क		
सत्यासत्य नाटक		
वेश्या विलास	देवकीनन्दन त्रिपाठी	

अध्याय ४

राजनैतिक नाटक

भारतेन्दुकाल की पत्रिकाएँ एवं पत्र एक राजनैतिक उद्घोष से भरे पड़े हैं। वह उद्घोष है 'हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान।' वास्तव में उस काल की पूरी राष्ट्रीयता इन तीन शब्दों में भरी है। नाटककारों के राजनैतिक नाटक भी, जो पौराणिक और सामाजिक नाटकों के समान महत्त्वपूर्ण हैं, इन्हीं तीन विभागों में विभाजित हो जाते हैं:—हिन्दी संबंधी नाटक, हिन्दू संबंधी नाटक और हिन्दुस्तान संबंधी नाटक।

हिन्दी सम्बन्धी नाटक

हिन्दी भाषा का प्रश्न भारतेन्दु काल में एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न था। इसमें सदेह ही क्या है कि जो गौरव आज हिन्दी को राष्ट्रभाषा होने का प्राप्त है उसका प्रधान श्रेय भारतेन्दु काल को है। कविता, लेख और क्रियात्मक जीवन के समान ही नाटकों में भी 'हिन्दी' भाषा की समस्या उठाई गई। यह समस्या उर्दू-फारसी की प्रधानता के कारण उठी। उर्दू-फारसी ने हिन्दी को दबोच लिया था। अतः भारतेन्दुकाल में हिन्दी के पक्ष-समर्थन के लिए प्रबल प्रयास हुए और उर्दू-फारसी का विरोध किया गया। यह ध्यान में रखने की बात है कि हिन्दी के समर्थकों ने कभी भी अंग्रेजी का विरोध नहीं किया।

श्री नन्हेमल ने सत्योदय नाटक (१८८३) में हिन्दी उर्दू को सौत रूप में चित्रित कर हिन्दी उर्दू की समस्या पर प्रकाश डाला। भारत सिंह दोनों का पति है। भारत सिंह और कोई नहीं भारतीय हिन्दू ही हैं जिसने उर्दू को अपना लिया था। उर्दू का भाई 'यवन' है। नाटककार का इससे यही अभिप्राय है कि उर्दू यवनों की भाषा है। उर्दू बेगम गाते हुए कहती है— 'हमीं शमा इस्लाम रोशन करेगे' (१-१) 'बेगाने मुल्क' में (१-२)। उर्दू के लिए यह बेगाना मुल्क है। उर्दू बड़ी दुखी होती है क्योंकि भारतसिंह हिन्दी की ओर कुछ कुछ झुकने लगा है। बेगम उर्दू अपने भाई यवन की सहायता से हिन्दी को मिटाने का भरपूर प्रयत्न करती है किन्तु लार्ड रिपन, रानी हिन्दी की प्रार्थना सुनकर द्रवीभूत होते हैं और आश्वासन देते हैं कि 'तुमको जल्द तुम्हारे महलों में दखल मिलेगा, कोई उर्दू के दखल में न रहेगा' (दृश्य ८)। इस प्रकार नाटककार लार्ड रिपन द्वारा हिन्दी उद्धार की आशा प्रकट कर रहा है।

नाटककार ने उर्दू भाषा के वर्णमाला संबंधी दोष भी कलात्मक ढंग से उदाहरणों द्वारा प्रकट किए हैं। न्यायाधीश की आज्ञा हुई कि 'नारवनी' की जायदाद कुर्क हो' किन्तु उर्दू में होने से पढ़ा गया 'पारवती'। फलतः पारवती की जायदाद कुर्क कर ली गई। 'होली फुकवा दी जाय' को दारोगा ने पढ़ा 'होली फिकवा दी जाय' (दृश्य ६) अतः उसने होली जलने न दी वरन् फिकवा कर ही आज्ञा पाली। कश्ती और कस्बी वाला उदाहरण भी नाटक में है। लाट साहब ने कश्ती एकत्र करने की आज्ञा दी थी, जबकि उनके स्वागत में 'कस्बी' अर्थात् रडियो इकट्ठी की गईं। क्यों? कश्ती को कस्बी पढ़ा गया। उर्दू अक्षरों के दोष से ही यह गड़गड़ी पैदा हुई। नाटक में अनादृष्टि के कारण दुर्भिक्ष पड़ गया है, इसका भी संकेत है (दृश्य २)। अंग्रेजी सरकार और लार्ड रिपन की प्रशंसा की गई है। नाटककार ने भारतेन्दु जी के *भारतदुर्दशा* वाली लावनी के अनुकरण पर लावनी लिखी है (दृश्य ४) और भारतेन्दु जी का प्रसिद्ध गीत 'दुनियाँ में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा' उसी रूप में उठा कर रख लिया गया है। भारतेन्दु जी के *अधेर नगरी* के राज-सभा के दृश्य (अंक ४) के अनुकरण पर 'पान' को लेकर सातवें दृश्य में हास्योत्पादन का प्रयास किया गया है।

इसी प्रकार का नाटक है 'पं० रविदत्त शुक्ल कृत देवाक्षर चरित्र (१८८४) जिसका सफल अभिनय बलिया में हुआ था। देवाक्षर और कोई नहीं 'हिन्दी वर्ण' या अक्षर ही हैं। देवाक्षर (हिन्दी) जिलाधीश मिस्टर फेयरब्रू की अदालत में प्रार्थना पत्र भेजता है कि उर्दू के स्थान पर हिन्दी के प्रयोग की आज्ञा जनता को दी जाय। लगभग दस पृष्ठों में १६० पक्तियों का भीमकाय प्रार्थना पत्र भी नाटक में लिखा गया है। इसमें हिन्दी के गुण और उर्दू के दोष भी गिनाये गए हैं। सत्योदय में होली फिकवाने वाला उदाहरण दिया है तो यहाँ कचहरी के दफ्तर के मगरिब वाला छुप्पर फिकवाने की आज्ञा हुई थी जो कि उर्दू में होने से 'फुँकवा' दिया गया। फुँकवाने में दफ्तर की अनेक मिस्त्रे भी जल गईं। यहाँ भी कस्बी और कश्ती वाला उदाहरण दिया गया है। देशकाल के सुन्दर चित्र हैं। हिन्दुस्तानी समय के पाबंद नहीं, बन्दोबस्त में गाँव वालों को कैसे लूटा जाता था, गाँव वाले उर्दू में लिखी पुर्जियाँ आठ आने देकर शहर के मुशी से पढ़ाते थे, घूस का दौरा होता था—इत्यादि इन देशकाल संबंधी भाँकियों से नाटककार अपने नाटक को महत्त्व प्रदान करता है। नाटक प्रहसन है जिसमें सफल हास्य की योजना की गई है।

• रामगोविंद चतुर्वेदी ने *नागरी विलाप* (१८८५) में इसी हिन्दी उर्दू की समस्या को उठाया है। यह नाटक *देवाक्षर चरित्र* के अनुकरण पर लिखा

गया है। दोनों में बड़ी समानताएँ हैं (१) देवाक्षर के स्थान पर यहाँ 'देव नागरी' है (२) यहाँ भी हिन्दी के पक्ष में प्रार्थनापत्र भेजा जाता है (३) १०२ पंक्तियों का प्रार्थना पत्र भी लगभग वही है जो देवाक्षर चरित्र में दिया गया है (४) देवाक्षर चरित्र के 'फेअर प्ले' के स्थान पर यहाँ अंगरेज प्रिंसिपल है जो सहानुभूति दिखलाता है। नाटक में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की प्रशंसा की गई है। अंग्रेज प्रशंसा भी बहुत है। हिन्दी के गुण और उर्दू के दोष बताए गए हैं। सत्योदय और देवाक्षर चरित्र का कश्तियों और कस्वियों वाला उदाहरण इस नाटक में भी दिया गया है (दृश्य ५)। पहिले दोनों नाटकों से यह नाटक हीनतर है। लेखक था भी एक विद्यार्थी किन्तु इस नाटक से पता चलता है कि तत्कालीन काशी के वायुमंडल में हिन्दी-प्रेम व्याप्त हो गया था।

• श्री रत्नचन्द्र वकील ने हिन्दी-उर्दू नाटक (१८८७) में भी हिन्दी का पक्ष एक वकील के रूप में लिया है। यह नाटक एक मुकदमे के रूप में लिखा गया है। हिन्दी का अर्जीदावा पढ़ा जाता है और आज्ञा होती है कि इसे उर्दू में पेश करो। हिन्दी के पक्ष में 'जिरह' हांती है। हिन्दी के गुण और उर्दू के दोष दिखाए जाते हैं। हिन्दी की श्रेष्ठता प्रतिपादित की जाती है।

इन नाटकों में हिन्दी की तुलना उर्दू से की गई है और हिन्दी को उर्दू से श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है। उर्दू में लिखा कुछ जाता है और पढ़ा कुछ जाता है। हिन्दी में यह दोष नहीं है। उसमें जो लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है। हिन्दी की इस शुद्धता को पं० गौरीदत्त ने सराफी (१८६०) नाटक में भी सिद्ध किया। इस नाटक में नाटककार ने हिन्दी को 'सराफी' वर्णमाला से श्रेष्ठतर बताकर व्यापारियों को शिक्षा दी है कि 'सराफी' के स्थान पर हिन्दी का व्यवहार करो। सराफी के दोष दिखाना ही लेखक का नाटक में मुख्य उद्देश्य रहा है। उर्दू के समान 'सराफी' में भी लिखने और पढ़ने में भेद पड़ जाता है। नाटक के नायक, जगत सेठ के यहाँ महमूदअली और मुहम्मदअली ने क्रमशः दस हजार और पचास हजार रुपये थाती रूप में रख दिए। पढ़ने की गड़बड़ी से महमूदअली को मुनीम ने पचास सहस्र रुपये दे दिये। जब मुहम्मदअली ने अपने पचास हजार रुपये माँगे तो कहा कि आपके केवल दस सहस्र ही थाती रूप रखे हैं। मुहम्मदअली ने राजकीय कचहरी में अभियोग उपस्थित किया। जगत सेठ पर दो लाख की डिग्री हो गई। जगत सेठ विवाह में धन फूँक चुका था, डिग्री का भुगतान कैसे करता। फलतः भिखारी बन

१. सराफी को 'मुंडी' 'मुंडिया' या 'वाणिका' भी कहते हैं।

ठोकरें खाने लगा। वह गा गाकर सबको बताने लगा—

सर्पाफी के हरफों के मारे हुए हैं। सर्पाफी के हम तो बिगाड़े हुए हैं। नाटक की शैली अन्य नाटकों से भिन्न है। नाटक औपन्यासिक शैली पर लिखा गया है। नाटककार स्वयं अधिक कहता है, पात्र कम बोलते हैं। पूर्वभारतेन्दु के ब्रजभाषा नाटकों में भी कवि स्वयं रंगमंच पर बैठा है, यहाँ भी। कविता केवल तुकबंदी है। •

सर्पाफी नाटक, शैली में अन्य नाटकों से भिन्न है, भाव में नहीं। किंतु शरत्कुमार मुखोपाध्याय कृत, भारतोद्धारक नाटक अन्य नाटकों से भाव में भी भिन्न है। इस नाटक में उर्दू के स्थान पर फारसी हिन्दी की विरोधिनी है, हिन्दी को गुणवती और उत्तम बताया गया है, किन्तु नाटक का अन्त सभी नाटकों से भिन्न है। हिन्दी का भाई आर्य, फारसी को पकड़ लेता है। हिन्दी उसे छुड़ा देती है। फिर आर्य को फारसी अपने पोष्यपुत्र मुसलमानों की सहायता से पकड़ लेती है, तब हिन्दी आर्य को छुड़ाती है। आर्य हिन्दुओं से कहता है कि तुम फारसी को अपनाओ और एक हो जाओ। उधर भारत-माता फारसी से कहती है—‘बेटी फार्सी! हमारे पूर्वकार्यों को भूल कर हिन्दू मुसलमानों में मेल कर दे, हिन्दी के साथ मित्रता कर’ (परिशिष्टक)। हिन्दी और फारसी गले मिलती हैं, तब आर्य उद्धोष करता है ‘हिन्दी फार्सी की जय, जय ऐक्य की जय।’ भारतेन्दुकाल में एक ऐसा भी हिन्दुओं का दल था जो इस मेल में विश्वास करता था। राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द इसी दल से सम्बद्ध थे। भारतेन्दु जी इस दृष्टिकोण के विरोधी थे और हिन्दी के नाटककारों ने अधिकांशतः भारतेन्दु जी का समर्थन किया है। केवल यही एक नाटक है जिसने हिन्दी-उर्दू के मेल का पक्ष लिया है। नाटक की भाषा भ्रष्ट है। अन्त में देववाणी होती है जिससे पौराणिकता आ गई है। सरस्वती भी प्रकट हो कर वरदान देती है। नाटक अत्यन्त साधारण है। •

इन सभी नाटकों से भिन्न कोटि का है, ‘पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत भारतीहरण (१८९८) नाटक। यह नाटक भी भाषा संबंधी है किन्तु इसमें संस्कृत भाषा में सुरक्षित साहित्य को दृष्टि में रख कर कथा को अग्रसर किया गया है। भारती का अर्थ है—सरस्वती। सरस्वती क्या है? संस्कृत का अपूर्व साहित्य जिसमें दर्शन-विज्ञान, सब कुछ भरा है। नाटककार ने एक सुन्दर कल्पना-प्रसूत कथानक को आधार बना कर इस नाटक की रचना की है। नाटक का नायक भारत है और नायिका ‘भारती’। ब्रह्मा से प्राप्त भारती को ऋषिगण, भरत के पुत्र भारत को विवाह स्वरूप सौंप देते हैं। भारत इस संस्कृत रूपी भारती को सदा अपने साथ न रख सका। मुसलमानों ने संस्कृत रूपी भारती को मारने का षड्यंत्र रचा। उन्होंने ‘भारत’ को अपने वश में कर

लिया। भारतवासी कल्यनाशील अधिक हो गए जिससे उनमें दुराचार आ गया। तभी तो कलिरूपी मुसलमान भारत में प्रवेश पा सके। कल्यना यवनों के साथ संस्कृत विद्या को मारना चाहती थी कि यूरोपवासी इस विद्या को अपने देश में ले गए। वहाँ इसके बल से ज्ञानविज्ञान का प्रकाश चमक उठा। पुनः जब वे श्वेतांग पुरुष भारत में आए तब उन्होंने पुनः संस्कृत में सुरक्षित विद्या का प्रचार किया। इसी कथानक को प्रतीकात्मक रूप में नाटककार ने बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है। नाटक गद्य प्रधान है, केवल पाँच-छे गीत हैं और है थोड़ी सी कविता जो साधारण श्रेणी की है! मंदिर, पंडों इत्यादि से संबंधित तत्कालीन चित्र दिए गए हैं।

‘हिन्दू’ नाटक

हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष नाटक

इस काल के नाटककार सबसे पहिले ‘हिन्दू’ थे। हिन्दू होने ही के नाते वे ‘हिन्दी’ और ‘हिन्दुस्तान’ से अटूट प्रेम करते थे। वैसे तो नाटककारों ने सर्वत्र ही हिन्दुत्व का ध्यान रखा है, परन्तु दो क्षेत्रों में हिन्दुत्व की भावना अधिक प्रबल दिखलाई देती है। वे ‘दो क्षेत्र हैं, सामाजिक और राजनैतिक। सामाजिक क्षेत्र में हिन्दुत्व की भावना का निरूपण किया जा चुका है जिसके वश में पड़कर सामाजिक दोषों का उद्घाटन किया गया। राजनैतिक रूप से हिन्दू दृष्टि कोण का अर्थ था—यवन विरोध। नाटकों में यह यवन-विरोध दो रूपों में चित्रित हुआ है—(१) हिन्दुओं की फूट मुसलमानों को यह साहस देती है कि वे हिन्दुओं को सता सकते हैं। मुसलमान बहुत थोड़ी सी बात का बतंगड़ बना कर संघर्ष की आग फैला देते थे। रामलीला और मुहर्रम एक साथ पड़ गए तो मुसलमान संघर्ष की तैयारी करेंगे। वैद्य बलदेवप्रसाद कृत *रामलीला विजय नाटक* (१८८७) में इसी संघर्ष का चित्रण है। इटावे में मुसलमान अक्रड गए कि रामलीला की शोभा-यात्रा नहीं निकलेगी क्योंकि हमारे मुहर्रम निकलेंगे। उन्होंने उपद्रव करने की ठान ली। अंग्रेज अफसरों ने कड़ाई बरती और रामलीला की भाँकी बड़ी धूमधाम से निकली। इटावे के हिन्दू संगठित हो गए। वास्तव में यह नाटक नहीं है, डायरी या रोजनामचा है जिसमें तिथिक्रम से प्रत्येक दिन हिन्दुओं ने इस संबंध में क्या किया, इसका व्योरेवार वर्णन है। श्रीरत्नचन्द्र वकील कृत *न्यायसभा नाटक* (१८८७) में भी हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का चित्रण है। नाटक को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रखकर अंग्रेजी राज्य में होनेवाले हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का चित्रण किया गया है। इसमें हिन्दुओं को संगठित होने का उपदेश दिया

गया है। अकबर बीरबल से कह देता है कि यदि हिन्दू संगठित हो जायें तो उन्हें राज्य की ओर से न्याय मिल सकता है, नहीं तो नहीं, क्योंकि निर्बल का सहायक दैव भी नहीं होता। सब हिन्दू संगठित हो जाते हैं। नाटक में अकबर हिन्दू-मुसलमानों को विभाजित करके राज्य करता है। जब उसने हिन्दुओं को संगठित देख लिया, तो हिन्दुओं का पक्ष लिया। तत्कालीन अनेक चित्रण हैं। आई० सी० एस० की परीक्षा को 'फाजिल' परीक्षा का नाम दिया गया है जो काबुल अर्थात् इंग्लैंड में होती थी। परीक्षक भी काबुली अर्थात् अंग्रेज ही होते थे (३-३)। नाटक अत्यंत साधारण है। संवाद, भाषणों का रूप ग्रहण कर लेते हैं। कथानक में गति नहीं है।

गोरक्षा नाटक

* हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का दूसरा कारण था 'गऊ'। यही प्रधान कारण था। हिन्दू, गऊ की रक्षा करना अपना परम धर्म समझते थे तो मुसलमान गाय की कुर्बानी करने को अपना मजहब मान रहे थे। फलतः गोरक्षा के प्रश्न पर अनेक बार हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष हुआ। नाटककारों ने इस समस्या को नाटकों में स्थान दिया। गोरक्षा संबंधी नाटक दो प्रकार के हैं—(१) वे नाटक जिनमें गोरक्षा के प्रश्न को लेकर अंग्रेजों काल का हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष चित्रित किया गया और (२) वे नाटक जिनमें मुसलमानों से प्रार्थना की गई कि गोरक्षा करो, देखो तुम्हारे अकबर बादशाह ने भी गोवध दंडित ठहरा दिया था।

पहिले प्रकार के नाटकों में पं० देवकीकन्दन त्रिपाठी का प्रचंड गोरक्षण नाटक (१८८१) यथार्थवादी नाटक है। हिन्दू-मुसलमानों के संघर्ष का कारण है कि मुसलमान गाय की कुर्बानी पर तुले हैं। यवन कोतवाल मुसलमानों का पक्ष ले हिन्दुओं को सताता है। अंग्रेज जिलाधीश पहिले तो मुसलमानों की ओर झुका था किंतु मेम साहिब के समझाने और डॉटने पर गोवध रुकवा देता है। देशकाल के बड़े सुंदर चित्र नाटक से प्राप्त होते हैं। कांजीहाउस का जमादार गायों को अधिक दामों में बेच कर, कम में बेचा दिखलाता है। अंग्रेज बैरिस्टर से जज भी भय खाता है। संवाद सुन्दर हैं। इसी प्रकार का नाटक है पं० जगतनारायण कृत भारत डिमडिमा नाटक। 'लालची पंडा' दान में मिली बूढ़ी गाय को मुसलमान को बेचता है। एक डोम उसे बचाना चाहता है और पंडा जी से स्वयं गाय खरीदना चाहता है किंतु पंडा जी मुसलमान के ही हाथ बेचते हैं। पं० ज्वालादत्त गाय की रक्षा करते हैं। तभी उनका पुत्र निरोग होता है। अन्त में गोरक्षा पर एक व्याख्यान है। नाटक में न शृंखलित कथानक है और न पात्रों का चरित्र-चित्रण। कई

कथाएँ बलात् पात्रों के पगों से लपेट दी जाती हैं। नाटक की एक ही विशेषता है कि मुसलमानों में से भी एक दयालु मुसलमान 'मेलअली' निकल आता है जो गाय की रक्षा के पक्ष में व्याख्यान देता है। नहीं तो नाटक में अस्वाभाविकताएँ भरी हैं। (१) गाय रोती है और गाती है। (२) गोरक्षा भयकर रोग को भी दूर कर देती है जबकि मूल्यवान औषधियाँ व्यर्थ सिद्ध होती हैं। नाटक साधारण है।

गोरक्षा संवन्धी अकबर की घोषणा पर कई नाटककारों का ध्यान गया। पं० देवकी नन्दन त्रिपाठी ने गोवध निषेध (१८८१) नाटक में अकबर की घोषणा को अपना कर कथानक का निर्माण किया। मुसलमानों ने शाहंशाह अकबर से प्रार्थना की कि सब स्थानों पर गाय की कुर्बानी करने की आज्ञा दी जाय। वे एक गाय को बुढ़िया से छीन कर ले जाते हैं। हिन्दू छुड़ा लेते हैं। अकबर की राज-सभा में गोरक्षा के पक्ष और विपक्ष में हिन्दू-मुसलमानों का शास्त्रार्थ हुआ। बड़े बड़े दिग्गज पंडित और आलिम फाजिल मौलवी चोटी-दाढ़ी फटकारते वाग्युद्ध में प्रवृत्त हुए। विजय हिन्दुओं के हाथ लगी। अकबर बादशाह ने घोषणा करवा दी कि जो कोई गाय को मारेगा उसे चौदह वर्ष का कारागार दंड मिलेगा एवं उसका घर द्वार लूट लिया जायेगा। नाटक अत्यन्त साधारण है। कथानक में दोष मिलता है। बुढ़िया की गाय मुसलमानों ने छीन ली थी। उसकी लड़की, माँ के पास जाने के लिए घोड़े पर सवार हो कर चली किन्तु आगे क्या हुआ, यह नहीं बताया। यह दृश्य (३-८) व्यर्थ है। देशकाल-दोष भी वर्तमान हैं। नाटक में 'अखबारों' का प्रचलन वर्णित है। अंग्रेज व अंग्रेजी की चर्चा है।

इसी अकबरी घोषणा को ग्रहण कर पं० अंबिकादत्त व्यास ने गो संकट नाटक (१८८२) लिखा। इसमें भी गाय की कुर्बानी के प्रश्न पर हिन्दू मुसलमानों में संघर्ष हुआ। हिन्दू गोपीसिंह के नायकत्व में गाय को छुड़ा लाए। हिंदुओं ने हड़ताल की। उन्होंने सहस्रो हस्ताक्षर करके शिष्टमंडल के साथ अकबर बादशाह की सेवा में प्रार्थना पत्र भेजा कि गोवध बन्द किया जाय। अकबर ने गो-हत्या दंडनीय घोषित कर दी। व्यास जी का नाटक पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी के गोवध निषेध नाटक से उत्तम बन पड़ा है। कथानक श्रुत खलित है और लक्ष्य की ओर गतिमान है। संवाद सजीव हैं।

इसी प्रसंग पर पं० जगतनारायण ने अकबर गोरक्षा न्याय नाटक (१८८६) लिखा। यह नाटक है या भानमती का पिटाया, यह कहा नहीं जा सकता। यह नाटक पौराणिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक नाटक का मिश्रित रूप बन गया है। इसमें नारद जी आते हैं। यमदूत, परीक्षक बन कर कृष्ण को आगे बढ़ाता है। गाय घंटा बजा बजा कर अकबर को आकर्षित

करती है। ऐतिहासिक रूप में अकबर और महाराणा प्रताप उपस्थित हैं। नाटककार समझता है कि सब प्रकार की कौतूहलपूर्ण और शृंगारिक सामग्री से भरी घटनाओं को संवाद रूप में ठूस कर भर देने से नाटक बन जाता है। नाटक में तीन अंक हैं और ५७ दृश्य। कुछ दृश्य तो बिजली की नाईं दर्शन मात्र देकर छिप जाते हैं। अनेक दृश्य व्यर्थ के हैं (१-१०, १-११, १-१२, १-१७, २-१, २-३, २-१३, ३-७, ३-८, ३-१२)। यदि इन दृश्यों को निकाल भी दिया जाय तो नाटक का रूप बिगड़ेगा नहीं, वरन् सुधरेगा ही। अस्वाभाविकताओं की भरमार है। पता नहीं कौन पात्र कब आ टपके। पात्र सब कुछ करने में समर्थ हैं। भवानीचन्द्र पूरा ऐयार और जादूगर है। अकबर बदमाशों की खुशामद करता है। वह कुर्सी पर बैठता है (२-५)। संवाद भरती के हैं। व्यर्थ में महाराणा प्रताप को घसीटा गया है। कान्हिसिंह को ही अकबर तक पहुँचा कर गोवध निषेध करा देना था। यह एक निम्नकोटि का नाटक है। गोरक्षा की धुन में चंदा माँगने के लिए भी नाटक लिखा गया। श्री सन्नूलाल गुप्त अपने *सुरभि संताप नाटक* में कसाई से गाय को बचवाने के लिए दयानिधि नामक प्रधान पात्र द्वारा चंदा मँगवाते हैं। बस यही कथानक है। लोग चंदा देने में आनाकानी करते हैं। कुछ देते भी हैं। एक सभा का आयोजन कर चंदा देने वालों को धन्यवाद दिया जाता है। पं० प्रतापनारायण मिश्र ने भी *गोसंकट नाटक* (१८८२ ई०) लिखा जिसमें गऊओं पर यवनों द्वारा दिया गया कष्ट दिखाया गया।

हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान उद्घोष के 'हिन्दुस्तान' संबंधी नाटक

भारतेन्दु कालीन नाटककारों के हृदय में देश का बड़ा ध्यान था, वे देश-प्रेमी थे। ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनैतिक नाटकों में तो उनका देश-प्रेम मिलता ही है, पौराणिक और प्रेम नाटकों में भी उनके देश संबंधी उद्गार मिलते हैं। इन युगचेता कलाकारों ने जब अपने भारत की दुर्दशा देखी तो इनका हृदय रो पड़ा। इन्होंने तत्कालीन दुर्दशा-ग्रस्त अवनत और पीड़ित भारत की तुलना प्राचीन भारत से की, तो दोनों दशाओं में महान् अंतर पाया और सच्चाई से उनका चित्रण किया। इस काल के भारतदशा संबंधी नाटकों में जहाँ एक ओर तत्कालीन भारत का दुर्दशा से जकड़ा चित्र मिलता है, वहाँ दूसरी ओर भारत की प्राचीन महिमा भी गाई गई है। नाटककारों ने प्राचीन उच्चासन से गिरे भारत में दो हाथ देखे। एक हाथ था खून से रँगा काला हाथ। यह यवनों का था। दूसरा हाथ अंग्रेजों का भी था परन्तु यह खून से भरा न था। उस खूनी हाथ के सामने यह कर्कश मात्र जैँचा। नाटककारों ने भारतीय दुरवस्था के दोनों बाह्य कारणों के साथ ही साथ आन्तरिक

कारणों पर भी प्रकाश डाला जिनके कारण भारत का अधः पतन हुआ था। ये आन्तरिक कारण थे हिन्दुओं की फूट, धर्माधिता, शिक्षा का अभाव इत्यादि। इसी पृष्ठभूमि में भारतेन्दुकालीन हिन्दुस्तान संबंधी राजनैतिक नाटक लिखे गए थे। ये तीन प्रकार के हैं—

- (१) भारत की दुर्दशा संबंधी नाटक
- (२) राजकीय प्रबन्ध संबंधी नाटक
- (३) अन्य

भारत की दुर्दशा-सुदशा के नाटक

भारतेन्दु जी का भारत दुर्दशा नाटक (१८७६) राजनैतिक नेता के रूप में मार्ग-प्रदर्शक सिद्ध हुआ। आगे आने वाले प्रायः सभी नाटककार इससे प्रभावित हुए। यह नाटक चड़ा ही लोकप्रिय हुआ। यह प्रतीकवादी शैली पर लिखा गया नाटक है। पाँचवें अंक के महाराष्ट्री, बंगाली, ऐडोटर, देशी इत्यादि पात्रों को छोड़कर शेष सब पात्र—भारत-दुर्दैव, मदिरा, सत्यानाश, रोग, अधकार, आलस्य, भारत-भाग्य, निर्लज्जता और आशा—प्रतीकवादी पात्र हैं। पाँचवें अंक का सीधा कोई संबंध कथानक से नहीं है। ये प्रतीकवादी पात्र साभिप्राय प्रयुक्त हैं। सभी आलोचकों ने इस नाटक को प्रतीकवादी माना है परन्तु प्रतीकों पर विचार नहीं किया है। रोग, आलस्य, अधकार, सत्यानाश तो स्पष्ट संकेत देते हैं। नाटक में दो प्रतीक अस्पष्ट हैं। वे हैं भारत दुर्दैव और भारत भाग्य। इन दोनों पात्रों का नाटक में मुख्य स्थान है। (१) भारत दुर्दैव — भारत दुर्दैव दो दुर्भाग्यों का सूचक है (१) पहिला और प्रमुख भारतीय दुर्भाग्य है यवन। यवन रूप से भारत दुर्दैव हिन्दुस्तान पर चढ़ आया था! इसका संकेत नाटककार पहिले ही अंक में कर देता है 'बुलाई जवन सेन पुनि भारी।' भारत दुर्दैव के सहायकों के कथनों से भी यही प्रकट होता है कि भारतदुर्दैव 'यवन' ही है। भारत दुर्दैव का प्रधान सेनापति सत्यानाश फौजदार कहता है कि मेरे सिपाही 'हलाकू, चंगेज, तैमूर, अहमदशाह, नादिरशाह थे' (अंक २)। छठे अंक की पंक्ति 'मंदिर महलन तोरि गिराए। सबै चिह्न तुव धूरि मिलाए' भी इसी तथ्य को स्पष्ट करती है। (२) भारत दुर्दैव, अंग्रेजी शासन का भी प्रतीक है किन्तु गौण रूप से। भारत दुर्दैव को वेश भूषा इसका स्पष्ट प्रमाण है। भारतेन्दु जी ने अंग्रेज और अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा की है। इसे देखकर बहुतों का अनुमान होता है कि भारतेन्दु जो अंग्रेजों की प्रशंसा और चापलूसी करने वाले थे, न कि देश-भक्त। कुछ उन्हें पूरा देशप्रेमी मानते हैं और भारतेन्दु जी की अंग्रेज-प्रशंसा को भी व्यंग्यात्मक समझते हैं। सत्य दोनों के मध्य में स्थित है। भारतेन्दु जो ने प्रशंसा भी की है और निन्दा

भी । उन्होंने अंग्रेजों को दो रूपों में चित्रित किया है । (१) विक्टोरिया, लार्ड रिपन, मैक्समूलर इत्यादि अंग्रेजों को उन्होंने दयालु और सहानुभूति-सम्पन्न रूप में देखा । इनके प्रति उनकी आस्था थी । विक्टोरिया, राजकुमार वेल्स, लार्ड रिपन की उन्होंने भरपूर प्रशंसा की । भारत दुर्दशा और उनकी कथिताएँ इसका प्रमाण हैं । वे राजभक्त थे, इसलिए भी प्रशंसा की है । मैक्समूलर जैसे अंग्रेजों को देख वे अंग्रेजों के प्रति अच्छे विचार रखते थे । अंग्रेजी राज्य की भी इन्होंने बढ़ाई की । क्यों ? मुस्लिम राज्य से तुलना करके उन्होंने अंग्रेजों को मुसलमानों से अनेक प्रकार से उत्तम पाया ।^१ अंग्रेजों का यह सद् रूप है । (२) असद् रूप—अंग्रेजों का दूसरा रूप भी था । वह था उनका प्रशासकीय रूप । इस रूप में उन्होंने भारत को चूँसा । फलतः उन्होंने 'अंग्रेजों' की बुराई भी की है । भारतेन्दु जी द्वारा लिखित अंग्रेज स्तोत्र में अंग्रेजों के दोनो रूप भली प्रकार चित्रित है । स्तोत्र में 'दिवाकर' रूप में उनकी प्रशंसा की गई है तो अग्नि और यम रूप में निंदा^२ । भारत दुर्दैव भी इस दूसरे रूप में चित्रित किया गया है । इसके प्रमाण भारत दुर्दशा में भरे पड़े हैं । भारत दुर्दैव हिन्दुओं को 'काला नीच' पुकारता है (अंक ३) । 'काला नीच' अंग्रेज ही भारतीयों को पुकारते थे । भारत दुर्दैव भारत में 'महामारी, दुर्भिक्ष और मरी बुलाता है । इतिहास से सिद्ध है, अंग्रेजी शासन में दुर्भिक्ष बराबर पड़ते रहे हैं ।^३ महामारी ने कई बार खून से हाथ रंगे । भारत दुर्दैव अन्न को महंगा करने की धमकी देता है । अंग्रेजी राज्य में अन्न महंगा हो ही गया था । भारत दुर्दैव दूसरे अंक में देश सुधारकों की खबर

१. जी हों मुसलमानों की भोंति इन्होंने हमारी आँख के सामने हमारी देवमूर्तियाँ नहीं तोड़ी और स्त्रियों को बलात्कार से छीन नहीं लिया । न घास की भोंति सिर काटे गए और न जबरदस्ती मुँह में धूँक कर मुस्लिम किये गए । अभाग्य भारत को यही बहुत है । विशेष कर अंग्रेजों से हम लोगों को जैसी शुभ शिक्षा मिली है उसके लिए हम इनके ऋणी हैं 'भारतेन्दु ग्रंथावली, तीसरा भाग, (संपादक, बाबू वजरत्नदास) में 'बादशाह दर्पण' नामक लेख पृ० ३१६ ।

२. तुम दिवाकर हो—तुम्हारे प्रकाश से हमारा अज्ञानांधकार दूर होता है, तुम अग्नि हो—क्योंकि सब खाते हो । तुम यम हो—विशेष करके अमला-वर्ग के—अतएव हे अंगरेज हम तुमको प्रणाम करते हैं (स्तोत्र पंचरत्न, १८८२ ई०) भारतेन्दु ग्रंथावली, तीसरा भाग, पृ० ८५५)

३. पृष्ठभूमि या तत्कालीन परिस्थितियाँ खंड दो, अध्याय १ में देखिये ।

लेने का जो जाल रचता है वह अंग्रेजों का ही है। वह कहता है—‘हा हा ! पढ़े लिखे लोग मिल कर देश सुधारा चाहते हैं—ऐसे लोगों को दमन करने को मैं जिले के हाकिमों को न हुक्म दूँगा कि इनको डिसलायल्टी में पकड़ो जितना जो बड़ा मेरा मित्र हो उसको उतना बड़ा मेडल और खिताब दो। हैं, हमारी पालिसी के विरुद्ध उद्योग करते हैं मूर्ख !’ चौथे अंक में भारत दुर्दैव द्वारा भेजी हुई यह डिसलायल्टी देश सुधार सम्बन्धी सभा में विघ्न डालती है। इस डिसलायल्टी का भारतेन्दु जी की व्यक्तिगत अनुभव भी हुआ था। टिक्कस का लानेवाला भारत दुर्दैव अंग्रेजी राज्य ही तो हो सकता है। (२) भारतभाग्य—सैद्धान्तिक रूप से भारत भाग्य, भारत का प्राचीन सौभाग्य है। यह वही सौभाग्य है जिसकी प्रशंसा भारतेन्दुजी ने गाई है—‘भारत के भुजबल जग रच्छित। भारत विद्या लहि जग सिच्छित’। यह तो प्राचीन भारत की बात रही। वे भारत के सौभाग्यशाली दिन थे। वर्तमान काल में भारत भाग्य या भारत के सौभाग्य को व्यजित करने वाले थे वे महापुरुष जिन्होंने हिन्दुओं को जगाने की चेष्टा की थी। दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, स्वयं भारतेन्दु जी इत्यादि भारत के हिन्दुओं को जगा रहे थे। ये भारत के सहायक थे। इन्हीं ही भारत-भाग्य रूप में चित्रित किया गया है। इन्होंने भारत को जगाया किन्तु भारत न जगा। फलतः इन महापुरुषों को घोर निराशा हुई। यही उसका कठार मारना है। इस प्रकार भारत-भाग्य भारत-नायक का सहायक या पीठ-मर्द सिद्ध होता है और नाटक दुःखान्त बन जाता है।

डा० दशरथ ओझा ने भारत-भाग्य को प्रच्छन्न शत्रु माना है। जो प्रच्छन्न शत्रु हुआ, वह प्रतिनायक ही माना जाएगा। क्या भारत-भाग्य इस रूप में चित्रित हुआ है? थोड़ा इसका विश्लेषण कर लें। नाटक में कोई वाक्य ऐसा नहीं मिलता जिससे यह शत्रु सिद्ध हो सके। यदि यह प्रच्छन्न शत्रु होता तो भारत-दुर्दैव जो प्रधान प्रतिनायक है, कहीं न कहीं स्पष्ट या संकेत रूप से इस अपने मित्र की चर्चा अवश्य ही करता। किन्तु ऐसा कहीं नहीं हुआ है। इसके विपरीत भारत का अभिन्न मित्र अर्थात् पीठमर्द सिद्ध करने वाले कई उदाहरण नाटक से प्राप्त होते हैं (१) पीठमर्द नायक के समान गुण वाला होता है, नायक से कुछ ही घटकर^१। इसीलिए इसे उपनायक भी कहा गया है।^२ भारत-भाग्य भारत-दुर्दशा में भारत से अपनी अभिन्नता प्रकट करता है। भारत-भाग्य भारत को देखकर कहता है कि हाय इस भारत

१. साहित्यदर्पण, ३-३६।

२. भावप्रकाश, चतुर्थ अधिकार, पृ० ६३, पंक्तियाँ ११ से १४ तक।

का भाग्य देखा नहीं जाता। इसका भाग्य कैसा हो गया है।^१ भारत के पुत्रों को वह अपना पुत्र स्वीकार कर कहता है 'सोइ यह प्रिय मेरे' 'हूँ' रहे आज चेरे' 'ये मेरे भारत भरे सोइ गुन रूप समान' (अंक ६)। वह भारत का मित्र और भाई है।^२ भारत-भाग्य जन्म जन्मान्तर में भारत में अपना जन्म मँगता है। छूठे अंक में उसके विस्तृत रोदन और विलाप में सहानुभूति और स्नेह भरा है। इससे सिद्ध होता है कि भारत-भाग्य, भारत नायक का सहायक है, प्रतिनायक या किसी प्रकार का शत्रु नहीं।

यह प्रधान सहायक, भारत-भाग्य आत्मघात कर लेता है। तब तो नाटक दुःखान्त हुआ। वास्तव में है भी दुःखान्त ही। अनेक प्रमाण इसी की पुष्टि में भारत दुर्दशा से दिये जा सकते हैं (१) नाटक का नाम ही दुःख और निराशा का व्यञ्जक है। लेखक या कवि अपनी कृति का नाम सदा साभिप्राय रखता है। भारत दुर्दशा नाम से भारतेन्दु जी का यही अभिप्राय है कि भारत की दुःखमय अवस्था दिखाई जाय। (२) नाटक में आरम्भ से अन्त तक निराशा और दुःख का वातावरण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से घना होता रहता है। अंक १—योगी लावनी में कहता है—सब मिल कर रोओ। भारत की दुःखमय अवस्था नहीं देखी जाती। आरम्भ से ही नाटक में रोना आरम्भ हो जाता है। अंक २—भारत निराश्रित और अवलम्बन-हीन हो मूर्च्छित हो गिर पड़ता है। अंक ३-४ में प्रतिनायक पीड़ित और मूर्च्छित नायक भारत को घेरने और मारने का उपक्रम कर रहा है। भारत-दुर्द्व कहता है 'अब भारत कहाँ जाता है, ले लिया है। एक तस्सा चाकी है, अबकी हाथ में वह भी साफ है' (अंक ३) 'चारों ओर से मेरी सेना ने उसको घेर लिया, अब कहाँ बच सकता है' (अंक ४)। इसी अंक के अंत में वैतालिक सूचना देता है कि भारत का सर्वनाश निश्चित है। भारत और उसके पुत्रों को कहीं शरण न मिलेगी (अंक ४)। पाँचवें अंक में भारत के कुछ पुत्र भारत की सहायता करने का विचार कर ही रहे थे कि वे भी पकड़े जाते हैं। छूठे अंक में चरम सीमा आ जाती है। भारत का प्रधान सहायक 'भारत-भाग्य' बारबार नायक को जगाता है किन्तु वह नहीं जागता। वह निराश हो कहता है "क्या निस्सन्देह परमेश्वर इससे ऐसा ही रूठा हुआ है? हाय क्या भारत के फिर वे दिन न आवेंगे?" संसार के सब देश सुखी हैं केवल भारत ही दुखी है।^३ भारत भाग्य को कोई मार्ग सहायता का नहीं दिखाई देता। वह क्या

१. भारत भाग्य न जात निहारे (अंक ६)

२. जब भारत ऐसा मित्र.....जन्म-जन्म मुझे भारत-सा भाई मिले।

३. सबै मखी जग के नरनारी। रे विधना भारतहि दखारी (६)

करे ? कहाँ जाए^१ । दुखी होकर भारत भाग्य कहता है “ऐसी मोह निद्रा ने घेरा है कि अब इसके उठने की आशा नहीं । हाय इसे तो बड़ा ही ज्वर चढ़ा है । (रोककर) अरे कोई नहीं जो इस समय अवलम्बन दे ।” अन्त में भारत भाग्य आत्मघात कर लेता है । इस प्रकार आरंभ से अन्त तक दुःख की छाया गहरी होती हुई मरण में समाप्त होती है । हिन्दी की यह कहावत सिद्ध हो जाती है ‘रोते गए मरो की खबर लाए’ । रोने से नाटक का आरंभ हुआ और मरण में अन्त हुआ ।

किन्तु नाटक पूर्ण निराशावादी नहीं कहा जा सकता । भारतेन्दु जी ने प्रत्यक्षरूप में तो निराशा और दुःख के काले बादल भारतीय गगन में एकत्र कर दिए हैं किन्तु इन काले बादलों के पीछे से आशा की एक चन्द्रकिरण भाँकती है । (१) नायक का मरण नहीं हुआ है, वह केवल जान बूझ कर सोया पड़ा है, मकर साधे पड़ा है । (२) द्वितीय अंकान्त में मूर्च्छित भारत को आशा अपने अंक में लेटा लेती है । (३) पाँचवें अंक में डिसलायल्टी देश सुधारकों को पकड़ने आती अवश्य है किन्तु देश प्रेमियों का उत्साह डिसलायल्टी को देखकर मद नहीं पड़ता है । महाराष्ट्री कहता है ‘इसमें भय की कौन बात है ।’ सभापति पूछता है, ‘तो पकड़ने का आपको किस कानून से अधिकार है ।’ महाराष्ट्री आगे पुनः कहता है, ‘पकड़ नहीं सकती । हमको भी दो हाथ दो पैर हैं ।’ बंगाली को भी उत्साह आता है और वह भी कहता है, ‘हाँ चलो, ओो का बात, पकड़ने नहीं शेकता ।’ इस प्रकार लेखक ने घोर निराशा और दुर्धर दुःख के गर्भ में आशा को छिपा रखा है ।

भारतेन्दु जी की राष्ट्रीयता, हिन्दू राष्ट्रीयता है । वे हिन्दुओं को दृष्टि-कोण में रखकर ही हिन्दुस्तान की दुर्दशा का चित्रण करते हैं । इसके प्रमाण भारत-दुर्दशा में भरे पड़े हैं । पता नहीं डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल किस आधार पर उन्हें मानवतावादी बना देते हैं ।^२ यवन विद्रोह उनके राष्ट्र प्रेम में सम्मिलित है । नाटक में तत्कालीन सामाजिक चित्रों का अतुल भंडार है । व्यंग्यात्मक शैली, नाटक की एक बड़ी विशेषता है । भारत-दुर्दशा में भारतेन्दु जी के व्यंग्य सबसे प्रखर हैं । कुछ उदाहरण ये हैं (१) जो जितना बड़ा मित्र

१. कहाँ करें कित जाय नहिं सूझत कछू उपाय (६)

२. उस युग की समस्याओं ने कलाकार का व्यक्तित्व पूर्ण मानववादी (ह्यूमैनिस्ट) बना दिया है और अपने सेवा कार्य में संपूर्ण मानव समाज का हित देखना चाहता है—डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल कृत भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, प्र० सं०, पृ० २६८ ।

हो उसको उतना बड़ा मेडल और खिताब दो; सब हिन्दू ब्रह्म हो गए, किसी को इतिकर्त्तव्यता बाकी ही न रही; तुहफे, घूँस और चढ़े के ऐसे बम के गोले चलाए कि बम बोल गई बाबा की; 'भई जात में ब्राह्मण, धर्म में वैरागी, रोज-गार में सूद और दिल्लगी में गप सबसे अच्छी' इत्यादि। भाषा व्यवस्थित, सरल और प्रवाहमय है। नाटक अभिनेय है। इसका अभिनय अनेक स्थानों पर हुआ भी था। बा० शिवनन्दन सहाय अपनी पुस्तक भारतेन्दु जी के जीवन चरित्र—हरिश्चन्द्र—में कहते हैं कि इस नाटक का अभिनय प्रयाग, कानपुर, काशी, आदि स्थानों पर हुआ था (प्र० सं०, पृ० १८५)। इसका अभिनय इतना सुगम और आकर्षक हुआ कि कानपुर में यह नाटक कई बार खेला गया था। पं० प्रतापनारायण मिश्र एक बार तो अभिनय से खीज गए थे कि अभिनय ठीक नहीं हुआ (ब्राह्मण, १५ अक्टूबर १८८५)। तब भी डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल ने इसे अनभिनेय मान लिया है।^१ जो कारण उन्होंने दिए हैं वे बड़े असत्य, भ्रामक और गोल-मोल हैं। उनके कारण हैं (१) “प्रबोध चन्द्रोदय की भाँति पात्रों में अभिनेयता नहीं”। ऐसी बात नहीं है वरन् इन्द्र सभा की भाँति पात्रों में बड़ी अभिनेयता है। पात्र अपने विषय में गद्य, पद्य और गीत में बताना उसी प्रकार आता है जिस प्रकार इन्द्र सभा में। पात्र प्रवेश की इन्द्र सभा वाली शैली है, न कि प्रबोध चन्द्रोदय की। पात्रों ने अपना परिचय स्वयं दिया है। (२) दूसरा कारण डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल देते हैं—पात्र भाव-प्रधान हैं। अतः वे दर्शकों के काम के नहीं, पाठकों की कल्पना का ही मनोरंजन कर सकते हैं। तब तो बँगला के नाटक भी जिनके पात्रों को भाव-प्रधान कहा जाता है, दर्शकों का मनोरंजन नहीं कर सकते। दूसरे भारत दुर्दशा के पात्र कार्य-प्रधान हैं, केवल भाव से बोझिल नहीं। फिर डा० शुक्ल किस पात्र में भाव की प्रधानता देख रहे हैं? यहाँ तो सभी पात्र व्यावहारिक हैं। क्या कविता और गीत गाने से ही भाव-प्रधान हो गए? (३) तीसरा कारण दिया है ‘दर्शकों की मौलिक रुचि के अनुकूल उनका विकास नहीं हो सका है’^२ बड़ा गोलमाल भरा वाक्य है। ‘दर्शकों की मौलिक रुचि’ से क्या अभिप्राय है? यदि दर्शकों में मौलिक रुचि होती है तो अनूदित भी होती होगी। क्या नाटक के पात्र दर्शकों की रुचि के अनुकूल नहीं हैं? इसका प्रमाण कुछ नहीं दिया।

इसके विपरीत नाटक अभिनेय है इसके पक्ष में अनेक प्रमाण हैं।

(१) नाटक अभिनय के ही लिए लिखा गया था। तभी तो पात्रों की वेशभूषा

१. भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, प्र० सं०, पृ० २८६।

२. भारतेन्दु का नाट्य-साहित्य, प्र० सं०, पृ० २८७।

एवं अभिनय संबंधी संकेत नाटक में दिये गए हैं। (२) दृश्य-योजना कठिन नहीं है। पदों से काम चल सकता है। दृश्य-योजना सम्बन्धी रंग-संकेत दिये गए हैं। इन संकेतों के आधार पर दृश्य-योजना की जा सकती है। (३) भाषा सरल और बोधगम्य है। (४) नृत्यगीत की प्रधानता है। (५) हास्य और व्यंग्य की मात्रा इसे अभिनेय अधिक बना देती है। (६) जनता की रुचि का नाटक था। वेशभूषा भी अधिक व्ययशील एवं दुःसाध्य नहीं है। (७) जैसा ऊपर कहा गया है इन्द्र सभा एवं थियेद्रीकल नाटकों की प्रणाली का प्रभाव स्पष्ट है। (८) अनेक स्थानों पर अभिनय हुआ भी था जो सफल रहा।

भारतेन्दु जी के इस नाटक की प्रेरणा से कई नाटक लिखे गए। राजा खड्गबहादुर मल्ल कृत भारत आरत (१८८५), पं० अंबिकादत्त व्यास कृत भारत सौभाग्य (१८८७), पं० बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन कृत भारत सौभाग्य (१८८६), श्री दुर्गादत्त कृत वर्तमानदशा (१८६०), श्री गोपाल-राम गहमरी कृत देशदशा नाटक (१८६२), एवं पं० जगतनारायण कृत भारतदुर्दिन (१८६५) इसी परंपरा के नाटक हैं।

भारत आरत में राजा खड्ग बहादुर मल्ल ने तत्कालीन शासन प्रबन्ध की दशा चित्रित की है। सरकारी कर्मचारी मद्य, मांस और वेश्या के ऊपर अपना धन व्यय करते हैं। पैसा आता भी तो घूस द्वारा है (दृश्य ३)। नाटककार विद्यार्थी पात्र के द्वारा अपने विचार प्रकट करता है। विद्यार्थी जब देश की दुर्दशा का रोना रोता है और सरकारी कर्मचारियों की टीका टिप्पणी करता है तो एक कोतवाल उसे आकर पकड़ लेता है। भारत दुर्दशा में 'डिसलायल्टी' ने पकड़ा था, यहाँ कोतवाल ने। कचहरी के न्यायवाले दृश्य में जमींदार की मौख उखाड़ ली जाती है और कचहरी वास्तव में 'कच (वाल) हरी (हरनेवाली) सिद्ध हो जाती है (दृश्य २)। विद्यार्थी अग्नेज हाकिम से कहता है कि हम राज्य-विरोधी नहीं हैं, हम राजभक्त हैं, परन्तु हमारी कष्ट कथा सुनना भी राजा का धर्म है (दृश्य ४)। यही लेखक का नाटक के लिखने में उद्देश्य है। भारत दुर्दशा की नाई प्राचीन भारत से अर्वाचीन भारत की तुलना की जाती है। शैली व्यंग्यात्मक है। विद्यार्थी के व्यंग्य तीखे और प्रभावपूर्ण हैं। नाटक गद्य प्रधान है। नाटक में एक बड़ा दोष है। वह है कि विद्यार्थी वृद्ध एवं प्रौढ़ विचारवान पुरुष की नाई भाषण देता एवं उपदेश करता है।

पं० अंबिकादत्त व्यास का नाटक भारत सौभाग्य भी भारत दुर्दशा की प्रतीकवादी शैली में लिखा गया है। पात्र भी कुछ भारत दुर्दशा के हैं जैसे फूट, भारत दौर्भाग्य, भारत। अन्य नवीन पात्र भी आते हैं। भारत दुर्दशा में शब्दों द्वारा जो राजनैतिक संकेत दिये गए थे वे संकेत यहाँ पात्र बन-

जाते हैं, जैसे शिक्षा, एकता, प्रताप, राजभक्ति, उदारता, विषयभोग इत्यादि । भारतेन्दु जी कृत **भारत दुर्दशा** के प्रतिनायक भारत दुर्भाग्य ने यहाँ जूता छोड़ कर मुकुट पहिन लिया है और दौर्भाग्य बन गया है, किन्तु व्यास जी का भारत सौभाग्य, **भारत दुर्दशा** के 'भारत भाग्य' से भिन्न है । भारत सौभाग्य यहाँ महारानी विक्टोरिया की जुबिली बना है । भारतेन्दु जी के प्रतीकवादी पात्र स्पष्ट नहीं हैं किन्तु **भारत सौभाग्य** के पात्रों के विषय में संदेह का स्थान नहीं रहता । **भारत दुर्दशा** वाली लाक्षणिक शैली यहाँ नहीं मिलती है । भारत दुर्दशा यहाँ भी सोया हुआ है । एक और बड़ा अन्तर है । **भारत दुर्दशा** में भारत दुर्भाग्य एवं उसके सहायक प्रबल हैं, तभी तो नाटक दुःखान्त हो गया । इसके विपरीत यहाँ प्रतिनायक भारत दुर्भाग्य एवं उसके सहायक आपस में ही लड़ते हैं, एक दूसरे को गाली देते हैं और फलतः वे भारत की अधिक हानि नहीं कर पाते । इसी कारण नाटक सुखान्त बन जाता है । भारतेन्दु जी की राष्ट्रीय भावना, प्राचीन भारत के प्रति अटूट श्रद्धा और मुस्लिम विरोध, यहाँ भी हैं । भारतेन्दु जी ने प्रान्तीय भाषाओं का पुट दे कर पात्र के अनुसार भाषा बनाई थी । उनका बंगाली, बँगला उच्चारण और बँगला व्याकरण वाली हिन्दी बोलता है, किन्तु इस नाटक में अंग्रेजी, संस्कृत, प्राकृत, बँगला, तिरहुती, जयपुरी भाषा की कविताएँ प्राप्त होती हैं । यहाँ नाटककार ने भारतेन्दु जी के **पाखंडविडंबन** का अनुकरण किया है ।

पं० बद्रीनाथगण चौधरी प्रेमघन ने भी **भारत सौभाग्य** नाटक लिखा । प्रेमघनजी ने कुछ पात्र **भारत दुर्दशा** और कुछ व्यासजी के **भारत सौभाग्य** से ग्रहण किये और बड़ी सख्या में अपने नए पात्र संजोए । कुछ पात्र तो **भारत दुर्दशा** या व्यास जी के **भारत सौभाग्य** के हैं, केवल उनका नाम 'उदू' में लिख दिया है जैसे भारत दुर्भाग्य (**भारत दुर्दशा नाटक**) या भारत दुर्भाग्य (व्यास जी कृत **भारत सौभाग्य**) यहाँ बद-यकबाले हिन्द बन गया है । बद-यकबाले हिन्द हो जाने से पात्र की प्रतीकात्मकता को धक्का पहुँचा है । भारतेन्दु जी ने भारत-दुर्भाग्य से यवन और अंग्रेज अभिप्राय लिया था । व्यास जी का भारत-दुर्भाग्य केवल यवनो का सूचक था । किन्तु प्रेमघन जी का 'बद-यकबाले हिन्द' इन दोनों की सूचना स्पष्टता से नहीं देता । वह यवन तो है ही परन्तु मुस्लिमकाल से बहुत पूर्व सतयुग, त्रेता, द्वापर में भी हिन्दू राज्य में प्रवेश पा गया था । वह स्वयं कहता है—“मधुकैटभ, हिरनकशिप, मालवन्त या रावन अपने ही अजीज थे सब मुफ़सिद व पुरफ़न । (१-१)

व्यास जी के **भारत सौभाग्य** में १७ पात्र (७ पुरुष + १० स्त्री पात्र) थे । किन्तु यहाँ तो पात्रों का रावणी कुटुम्ब है, ११० पात्र हैं जिनमें ६६ बड़े पात्र हैं । यह नाटक प्रयाग में होने वाले इंडियन नेशनल कांग्रेस

के अधिवेशन के समय खेलने के लिए लिखा गया था किन्तु खेला न जा सका। नाटक में इंडियन नेशनल कांग्रेस का बड़े विस्तार से वर्णन है। भारत-सौभाग्य, यहाँ भी व्यास जी के भारत सौभाग्य के अनुरूप महारानी विक्टोरिया और लार्ड रिपन से शासित अंग्रेजी राज्य ही है जिसने १८५७ के विद्रोह को शान्त किया। १८५७ के विद्रोह का भी विस्तार से वर्णन है।

बाबू गोपालराम गहमरी का नाटक देशदशा कई घटनाओं का समूह है। इसमें एक शृंखलित कथानक नहीं है। इसमें ७ अंक हैं और ७ ही घटनाएँ। वे ७ चित्र हैं—पुलिस कचहरी, डाकखाना, रेल का टिकटघर, बालविवाह, वैवाहिक अपव्यय, बालविधवा और भूतप्रेत-विश्वास। नाटक का जो कुछ मूल्य है, वह तत्कालीन चित्रण के लिए है, नहीं तो यह नाटक नहीं है। श्री दुर्गादत्त कृत वर्तमान दशा और पं० जगतनारायण कृत भारत-दुर्दिन भी देशकाल प्रधान नाटक हैं जिनमें भारत की तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक अवस्था के चित्र चित्रित हैं। व्यास जी एवं प्रेमधन जी ने मुस्लिम राज्य को दुर्भाग्य मान कर अंग्रेजी राज्य को सौभाग्य माना। इसी दृष्टिकोण का नाटक है श्री छगनलाल कासलीवाल का सत्यवती नाटक (१८९६)। इस नाटक में यवन, हिन्दू राजा के यहाँ प्रवेश कर राजा को अपने वश में कर लेते हैं। वे ही वास्तविक शासक बन बैठते हैं। पड़यंत्र कर वे राज्य से 'सत्यवती' (सच्चाई) को निष्कासित करा देते हैं। 'मुप्रबधा' और 'लक्ष्मी' भी देश को छोड़ जाती हैं। राजा को भी राज्य छोड़ जंगल में जाना पड़ता है। सत्यवती की दासी, युरोपखंड से वहाँ के निवासियों को लेकर आती है। यवनो का राज्य नष्ट होता है। मुप्रबधा और लक्ष्मी लौट आती हैं (७-६)। कथानक सुश्रुत खलित नहीं है। अनावश्यक दृश्य योजना भी है (२-६, २-८, ४-२, ६-४, ७-३)। शैली औपन्यासिक है। नाटककार स्वयं भी कथा कहता है।

राजकीय प्रबन्ध संबंधी नाटक

भारत दुर्दशा और उस शैली के नाटकों में भी राजकीय प्रबंध पर छींटे कसे गये थे किन्तु उनमें स्पष्ट निंदा न थी। ऐसे नाटक भी निर्मित हुए जिनमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कुछ राजकीय विभागों एवं कर्मचारियों की निंदा की गई। प्रत्यक्ष रूप से निंदा करने वाले नाटकों में काशीनाथ खत्री के दो नाटक ग्राम पाठशाला और निकृष्ट चाकरी (१८८३), एवं पं० मूलचन्द कृत पुलिस नाटक (१८८३) हैं।

ग्राम पाठशाला में शिक्षक की दुर्दशा चित्रित की गई है। उसके साथ ऊपर के अफसरों का कैसा दुर्व्यवहार है यह बताया गया है। साथ ही

इन अफसरों के नौकर उसे चूँसते हैं। वैसे ही विद्यार्थी न पाने से वह दुःखी है और उस पर से इन चपरासियों की लंबी माँगें : ये दोनों दानव उसे पीस डालते हैं। निकृष्ट चाकरी में अंग्रेज अफसर भारतीय अधीनस्थ कर्मचारियों से कैसा कठोर व्यवहार करते हैं, यह प्रदर्शित किया गया है। वे गाली और जूते की ठोकर से ही बात करते हैं। दोनों लघुरूपक हैं। पं० मूलचन्द ने पुलिस नाटक (१८८३) में पुलिस के हथकंडों का भंडाफोड़ किया है। पुलिस के सिपाही और दारोगा चोरों से तो मिले ही रहते हैं, ये उसको भी बहुत सताते हैं जिसके यहाँ चोरी हुई है। इनका उद्देश्य है, बस जेबें भरें, चाहे जैसे भरें।

भारतेन्दु जी का प्रसिद्ध नाटक अंधेर नगरी (१८८१) भी राजनैतिक नाटको में भारत दुर्दशा के बाद प्रसिद्ध है। भारतेन्दु जी ने इसमें राजकीय न्याय-प्रथा पर चोट की है। इसमें एक भारतीय राजा के न्याय की प्रणाली की निन्दा की गई है^१। यह संभव है कि उनकी दृष्टि में तत्कालीन भारतीय नरेश भी रहे हों, किन्तु ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं जिनसे अंग्रेजों की ओर भी संकेत पाया जाता है। यह ठीक है, भारतेन्दु जी यवनों की अपेक्षा अंग्रेजों को बहुत उत्तम समझते थे और उनकी प्रशंसा भी करते थे किन्तु यह भी सत्य ही है कि भारतेन्दु जी का अनुभव धीरे धीरे उन्हें अंग्रेजी राज्य-व्यवस्था के दोष भी दिखा रहा था। उनके नाटको से उनका यह परिवर्तित दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। भारतेन्दु जी आरंभिक जीवन में अंग्रेजों के अत्यंत प्रशंसक थे। १८६६ में ड्यूक आफ एडिनबरा के आने पर उन्होंने बड़ा भारी उत्सव मनाया था। १८७१ में जब युवराज रुए हुए तो उनका दिल दुखी हुआ था। उन्होंने आरोग्य-कामना भेजी थी। १८७५ में जब युवराज भारत पधारे तो स्वागत में भारतेन्दु जी का स्वर, धन, मन और कार्यरत हाथ, सहस्रों से ऊपर थे। १८७६ में महारानी विक्टोरिया राजराजेश्वरी बनीं तो भारतेन्दु जी ने भी प्रशस्तियाँ भेजीं और बधाई का उत्सव किया। किन्तु भारतेन्दु जी की आस्था कुछ कुछ ढिगने लगी थी। १८७५ में जब सरकार ने व्यभिचारी शासक बडौदा नरेश मल्हारराव को राज्यच्युत किया तो वे प्रसन्न हुए। राजा, प्रजा-पीड़क था, अतः उन्हें प्रसन्नता हुई। उसे भारतेन्दु जी हिन्दुओं का कलंक कहते हैं। भारतेन्दु जी, भण्डाचार्य के द्वारा राजा का

१. बा० शिवनन्दन सहाय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन-चरित्र की पादटिप्पणी में लिखते हैं 'एक सज्जन मुझसे कहते थे कि विहार प्रान्त के किसी राजा की असावधानता देख उनके सुधारने के लिये कवि ने इसकी रचना की थी।' (प्र० सं०, पृ० १६५)

व्यभिचार और प्रजापीडन प्रकट करते हैं 'जब महाराज शहर के अमीरों के घर जाते थे तो उनके डर के मारे औरतें कुएँ में उतारी जाती थीं' (विषयविषमौषधम्) परन्तु साथ ही वे मीठी मार भी करते हैं। यदि अंग्रेज इतने न्यायकारी हैं तो वे नवाब रामपुर के अन्यायो से हिन्दुओं की रक्षा क्यों नहीं करते। वे अंग्रेजों की हँसी उड़ाते कहते हैं '१५६६ में जो लोग सौदागरी करने आए थे वे आज स्वतंत्र राजाओं को यो दूध की मक्खी बना देते हैं।' वे अपने देशवासी राजाओं को सावधान करते हैं 'बुढ़िया मरने का डर नहीं जम परचने का डर है।' (विषयविषमौषधम्)

१८७६ में लिखे भारत दुर्दशा में भी अंग्रेज-प्रशंसा के साथ अंग्रेज-निन्दा भी है, हम यह भारत दुर्दशा के सम्बन्ध में लिखते हुए पीछे बता चुके हैं। भारतेन्दु जी की अंग्रेजी-आस्था अवश्य डोलने लगी थी। विषयविषमौषधम् का अंग्रेजी न्याय हिन्दुओं की रक्षा कभी न कर सका। अंग्रेजी व्यवस्था के व्यक्तिगत अनुभव भी उनका हुए। उनको भी राज्यद्रोही समझा जाने लगा था। इसी परिवर्तित दृष्टिकोण का परिणाम है अन्धेर नगरी नाटक (१८८१)। दो ही वर्ष बाद लिखा नाटक नामक निबन्ध, अन्धेर नगरी वाले दृष्टिकोण को और पुष्ट करता है। वे नाटक निबन्ध में लिखते हैं 'गवर्नमेंट की तो कृपा दृष्टि चाहिए, योग्यायोग्य के विचार की आवश्यकता नहीं।' आगे कितना सुन्दर व्यंग्य करते हैं जो अन्धेर नगरी के न्याय की पुष्टि करता है 'सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास'।^१

नाटक के सभी कथन व्यंग्यपूर्वक कुछ न कुछ रहस्य खोलते हैं। दूसरे अंक में वस्तु विक्रेताओं के कथन वक्रोक्ति और व्यंग्य से भरे हैं और वे स्पष्ट कर देते हैं कि नाटककार अंग्रेजी राज्य प्रबन्ध पर चोट कर रहा है। नाटककार कहता है—अंग्रेज शासक टैक्स दुगुना कर रहे हैं। बराबर टैक्स बढ़ता जा रहा है।^२ न्यायाधीश बड़े अन्यायी हैं। ये अन्याय करते हैं तब भी प्रजा ध्यान नहीं देती है।^३ इस अंग्रेजी राज्य में हिन्दुओं का सब धन इंग्लैंड चला जा रहा है। अंग्रेज जब से भारत में आए हैं, भारतीयों के धन बल को खा गए हैं।^४ अंग्रेज सारे भारत को हड़प गए

१. नाटक निबन्ध, भारतेन्दु ग्रन्थावली, पहिला भाग, प्र० सं० पृ० ७५४।

२. चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दुना टिकस लगाते। (२)

३. जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। (२)

४. हिन्दू चूरन इसका नाम। विलायत पूरन इसका काम। (२)

चूरन जब से हिन्द में आया। इसका धन बल सभी घटाया। (२)

हैं ।^१ इस अंग्रेजी राज्य का न्याय कैसा है ! जो झूठा है छलिया है वह पुरस्कार पाता है । इसके विपरीत सच्चा अपमान सहता है ।^२ राज्य करने वाले वास्तव में हाकिम और चपरासी ही हैं ।^३ नाटककार आगे कहता है कि यह राज्य विधर्मियों का है । इस विधर्मी के राज्य में गौ, ब्राह्मण और वेद का कोई मान नहीं होता ।^४ इस पंक्ति का 'विधर्मी' शब्द स्पष्टतः अंग्रेजों की ओर संकेत कर रहा है । ऐसे ही राज्य में 'साधु महात्माओं की दुर्दशा है ।' (अंक ५)

भारतेन्दु जी की आशावादिता इस नाटक में सब से स्पष्ट है । वे कहते हैं कि प्रजा-पीड़न का अन्त होगा । किन्तु लोग पश्चिम के रंग में न रंग जायें । भारतेन्दु जी ने एक स्पष्ट संकेत इस विषय में दिया है । महत जी के दोनो चेले दो द्वारों से नगर में प्रवेश करते हैं । पहिला चेला गोवरधनदास इस राज्य में 'पश्चिम' के द्वार से प्रवेश करता है ।^५ गोवरधन दास का नाम साभिप्राय रक्खा गया है । यह गोबर (मूर्ख) और धन का दास है । भाव यह है—कुछ हिन्दू भौतिकवादी हो गए थे । पश्चिम के द्वार से गोवरधन दास प्रवेश करता है । इसका अभिप्राय है कि ये भौतिक वादी हिन्दू पश्चिमी सभ्यता में दीक्षित हो चुके हैं । इसके विपरीत नारायण उन हिन्दुओं की ओर संकेत करता है जो अपनी भारतीयता की रक्षा कर रहे हैं । भौतिक सभ्यता में दीक्षित हो अंग्रेजों की नाईं रहने वाला हिन्दू अंग्रेजी राज्य में दृष्ट पुष्ट हो जाता है, आनन्द से जीवन निर्वाह करता है । परन्तु अन्त अच्छा नहीं होता इसका । भारतेन्दु जी आशा दिलाते हैं कि अन्याय करने वाले हाकिमों का अन्त होगा ही^६ जैसे चौपट राज का हुआ ।

यह प्रहसन हास्यरस की दृष्टि से भी सफल है और बड़ा लोकप्रिय भी हुआ । इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए । यह अभिनय के ही लिये लिखा गया था । दशाश्वमेध घाट पर स्थापित 'नेशनल थियेटर' के संयोजकों के अभिनय करने के लिए इसकी रचना एक दिन में की गई

१. चूरन साहेब लोग जो जाता । सारा हिन्दू हजम कर जाता । (२)
२. सोंच कहैं ते पनहीं खावैं । झूठे बहुविधि पदवी पावैं ॥ (४)
३. भीतर स्वाहा बाहर सादे । राज करहिं अमले औ प्यादे । (५)
४. गो द्विज श्रुति आदर नहिं होई । जानहु नृपति विधर्मी कोई । (५)
५. बच्चा गोवरधन दास तू पच्छिम की ओर से जा और नारायण ! पूरब की ओर से जायगा (अंक १) ।

६. जहाँ न धर्म न बुद्धि नहिं नीति न सुजन समाज ।

वे ऐसे आपुहिं नसे जैसे चौपट राज ॥ (अंक ५)

थो ।^१ बाद में इसका अभिनय डुमरौव, काशी, प्रयाग, कानपुर आदि अनेक स्थानों पर हुआ^२ । खेल ही खेल में राष्ट्रीयता की सुरसरिता प्रवाहित करना एवं हार्दिक भावों को अवगुंठनवती नायिका के रूप में चित्रित कर देना भारतेन्दु जी जैसे उत्कृष्ट कलाकार ही का काम था ।

• भारतेन्दु जी के अनुकरण पर दो नाटक ऐसे ही लिखे गए । वे हैं पं० विजयानन्द त्रिपाठी कृत *महा अंधेर नगरी* और पं० देवदत्त शर्मा कृत *अति अंधेर नगरी* । उद्देश्य वही है जो *अंधेर नगरी* में है परन्तु न भारतेन्दु जी की कुशल कला है और न वह व्यंग्य-प्रधान शैली । नकल, असल कब बन सकती है । यद्यपि पं० विजयानन्द जी नटी से अपने नाटक *महा अंधेर नगरी* की बड़ी प्रशंसा करा देते हैं और कहला देते हैं कि भारतेन्दु जी का नाटक इस नाटक का एक छुद्ररूप है^३ । किन्तु इतनी प्रशंसा के पुल बाँधने पर भी यह नाटक *अंधेर नगरी* रूपी सुरसरी के सामने एक तलैया ही है । पात्र भारतेन्दु जी के ही हैं ! हाँ, कुछ पात्र और बढ़ा दिये गए हैं । बाज़ार में *अंधेर नगरी* के समान इसमें भी सब वस्तुएँ टके सेर विकती हैं । किन्तु बेचने वाले वस्तुओं की सूची सी बना डालते हैं । उनके कथनों में *अंधेर नगरी* की वकता नहीं है । कथा भी महंत जी और दो शिष्यों वाली है जिसमें कुछ प्रासंगिक कथाएँ बढ़ा दी गई हैं । किन्तु *अंधेर नगरी* से बड़ी इस *महा अंधेर नगरी* में भारतेन्दु जी की दीप ज्योति नहीं दिखलाई देती है ।

अन्य नाटक

• तत्कालीन स्थिति को दिखाने वाले और भी नाटक बनाए गए । ठगी के ऊपर दो नाटक लिखे गए । वे हैं पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत *बैल छे टके को* और श्री हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ कृत *ठगी की चपेट* (१८८४) । कृषक साहूकार समस्या को लेकर पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी ने एक एक के तीन तीन (१८७६) नाटक लिखा । उस काल का यह अकेला नाटक है जिसमें कृषक समस्या को अपनाया गया है । साहूकार थोड़े से रुपये और बीज उधार दे कैसे किसान का सर्वस्व जीम जाता है, यही इस नाटक का विषय है । नाटक यथार्थवादी और दुःखान्त है । पात्रों का सुन्दर चरित्र-चित्रण है ।

१. बा० शिवनन्दन सहाय कृत 'हरिश्चन्द्र' प्र० सं०, पृ० १६५ ।

२. वही पृ० १६८ ।

३. ऐसे ही नाम का तो कोई रूपक पहिले से भी लिखा मिलता है—
ओं, उसे तो इस विराट रूप का एक क्षुद्र रोम समझो (प्रस्तावना) ।

राजनैतिक नाटक

पुस्तक	लेखक	निर्माण या प्रकाशन काल
विषस्य विषमौषधम्	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१८७६
भारत दुर्दशा	”	१८७६
एक एक के तीन तीन	देवकीनन्दन त्रिपाठी	१८७६
गोवध निषेध	”	१८८१
अधेर नगरी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१८८१
प्रचण्ड गोरक्ष	देवकीनन्दन त्रिपाठी	१८८१
गो संकट	अम्बिकादत्त व्यास	१८८२
पुलिस नाटक	पं० मूलचन्द्र	१८८३
निकृष्ट नौकरी (या चाकरी)	काशीनाथ खत्री	१८८३
सत्योदय	नन्हे मल	१८८३
ग्राम पाठशाला	काशीनाथ खत्री	१८८३
देवाक्षर चरित्र	रघुदत्त शुक्ल	१८८४
ठगी की चपेट	हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ	१८८४
नागरी विलाप	रामगरीब चतुर्वेदी	१८८५
भारत आरत	खड्गबहादुर मल्ल	१८८५
गोसंकट	प्रतापनारायण मिश्र	१८८६
हिन्दी उर्दू नाटक	रत्नचन्द वकील	१८८७
भारत सौभाग्य	अम्बिकादत्त व्यास	१८८७
महा अंधेर नगरी	विजयानन्द त्रिपाठी	१८८७
रामलीला विजयनाटक	वैद्य बलदेव प्रसाद, इटावा	१८८७
न्याय सभा नाटक	रत्नचन्द वकील	१८८७
भारतोद्धारक	शरत्कुमार मुखोपाध्याय	१८८८
अकबर गोरक्षा न्याय नाटक	जगत नारायण	१८८६
भारत सौभाग्य	प्रेमघन	१८८६
वर्तमान दशा	दुर्गादत्त व्यास	१८६०
सर्पाफी नाटक	गौरीदत्त	१८६०
देसी कुत्ता विलायती बोल	राधाचरण गोस्वामी	१८६०
देश दशा नाटक	गोपालराम गहमरी	१८८२

पुस्तक	लेखक	निर्माण या प्रकाशन काल
अति अंधेर नगरी	देवदत्त शर्मा	१८६५
भारत दुर्दिन	जगतनारायण	१८६५
सत्यवती नाटक	छगनलाल कासलीवाल	१८६६
भारती हरण	देवकीनन्दन त्रिपाठी	१८६८
जन्मभूमि नाटक	गोपालराम गहमरी	
बैल छै टके को	देवकीनन्दन त्रिपाठी	
गोरक्षा प्रहसन	रामधारी कायस्थ	
सुरभि सन्ताप नाटक	सन्मूलाल गुप्त	
भारत डिमडिमा नाटक	पं० जगतनारायण	

— — — — —

अध्याय ५

ऐतिहासिक नाटक

पूर्व भारतेन्दुकाल में कोई ऐतिहासिक नाटक नहीं लिखा गया। हाँ, पौराणिक नाटकों को ऐतिहासिक नाटक कह सकते हैं। इतिहास लिखने की वर्तमान प्रथा हमारे यहाँ न थी। इतिहासिक को कल्पना के साथ मिला पौराणिक रूप दिया गया था। इसका विस्तृत विवेचन हम पीछे कर चुके हैं। शुद्ध इतिहास के दर्शन हिन्दी में भारतेन्दु काल से ही होते हैं। फलतः ऐतिहासिक नाटकों की रचना भी हिन्दी में पहिली चार भारतेन्दुकाल में ही हुई। इन नाटकों में भी 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान' उद्घोष में से हिन्दी माध्यम द्वारा हिन्दू और हिन्दुस्तान की भावना को अपनाया गया है। हिन्दुत्व की भावना का ही प्रभाव है कि नाटककारों ने प्रधानतः मुस्लिम काल के हिन्दू वीरों और वीरांगनाओं के जीवन-चरित्र को लेकर नाटक लिखे और मुस्लिम शासकों, सैनिकों एवं कर्मचारियों की निन्दा की। नाटकों में अपने देश हिन्दुस्तान के प्रति प्रेम प्रकट किया गया है। ऐतिहासिक नाटकों में वीर रस को प्रधानता मिली है। हाँ, साथ ही प्रणय गाथाओं को भी तानेबाने में बुन दिया गया है। इन ऐतिहासिक नाटकों में से अधिकांश दुःखान्त हैं जिनमें नाटककारों के निराश हृदय के आँसू बहे हैं। मुसलमान उर्दू बोलते हैं और हिन्दू हिन्दी। भारतेन्दुकाल में उर्दू मुसलमानों की भाषा मानी जाती थी। फलतः प्रत्येक प्रकार के नाटक में मुसलमान उर्दू ही बोलते हैं। ऐतिहासिक नाटक लिखने के दो ढंग हैं। एक ढंग है कि नाटककार किसी ऐतिहासिक प्रसंग या चरित्र से प्रभावित हो कर उसको नाटक में स्थान देता है। दूसरा ढंग है कि नाटककार पहिले से एक विचार या दृष्टिकोण अपनाए होता है, और उसी की पुष्टि के लिए इतिहास से प्रसंग या पात्र ढूँढ़कर नाटक लिखता है। भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने दूसरे ढंग को अपनाया है।

नायिका प्रधान नाटक

इन नाटकों के दो वर्ग हैं। एक प्रकार के नाटक हैं—नायिका प्रधान और दूसरे हैं नायक प्रधान नाटक। नाटकों में वीरांगनाओं को प्रधानता मिली है और ऐतिहासिक नाटकों का आरम्भ, भारतेन्दु जी कृत नायिका प्रधान नाटक, नीलदेवी (१८८०) से हुआ। यह नाटक दुःखान्त है। नायक का वध कर दिया जाता है और नायिका सती हो जाती है। दर्शक नायक के

वध पर अवश्य दुःखी हुआ था किन्तु अन्त में प्रतिनायक की हत्या से संतोष की साँस लेता है। भारतेन्दु जी ने दो 'गीतिरूपक' नीलदेवी और सती प्रताप लिखे। दोनों में आदर्श पत्नी का साहस सामने रखा है। यदि सती प्रताप पूर्ण हो गया होता तो निश्चय ही उसमें वे सती सावित्री द्वारा पति के जीवन को वापिस मँगवाते। सावित्री, सती सीता के समान छलहीन आदर्श पत्नी थीं। समय के बदल जाने पर कार्य-शैली भी बदल दी जाय, यह वे नीलदेवी के चरित्र द्वारा प्रकट करते हैं। नीलदेवी के द्वारा उन्होंने भारत रमणी से कहा—साहस कर, पत्थर का जवाब पत्थर से दे। नीलदेवी नाटक के आरंभिक संवोधन से नाटककार के इस उद्देश्य पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। नाटककार चाहता है कि उसके देश की स्त्रियाँ भी अंग्रेज रमणियों की भाँति साहसी, आत्म-निर्भर और व्यवहार-कुशल बन जायें, हाँ अपनी भारतीयता न छोड़ें।

भारतेन्दु जी ने अपने हिन्दू विचारों को बड़ी स्पष्टता से रक्खा है। भारत-दुर्दशा में जिस भारतदुर्दशा को प्रतीक शैली में व्यक्त किया था, उसको यहाँ प्रत्यक्ष कर दिया है। भारतेन्दु जी ने इस नाटक में प्रकाशित कर दिया है कि भारत-दुर्दशा का मूल कारण 'यवन' हैं। हिन्दुओं को वे उद्बोधित करते हैं कि संगठित हो कर इन शत्रुओं को मार डालो। पागल का सांकेतिक प्रलाप (दृश्य ८ दृश्य ९) भग उद्बोधन

जो आरज-गन एक होइ निज रूप सम्हारैं

तो ये कितने नीच कहा इनको बल भारी

एव स्थान-स्थान के ऐसे ही अन्य वाक्य, इस भावना पर पर्याप्त प्रकाश प्रक्षिप्त करते हैं। निराशा और दुःख का वातावरण फैला हुआ है। देवता (दृश्य ७ में) इसी ओर सकेत करता है। मुसलमानों के अनेक अत्याचारों की चर्चा इस नाटक में की गई है। ये गो-भक्षक और द्विज-श्रुति-हिंसक हैं (दृश्य ९)। हिन्दुओं को मुसलमान बनाते हैं।^१ ये मंदिर तोड़ मजिद बनाते हैं (दृश्य ६)। ये हिन्दू ललनाओं को कुदृष्टि से देखते हैं (दृश्य १०)। नाटककार ने कथा में उत्सुकता तो भरी ही है, चरित्र-चित्रण पर भी ध्यान दिया है। गीतिरूपक होने से गीतों की प्रधानता है।

नीलदेवी के एक वर्ष बाद बा० राधाकृष्ण दास जी ने नीलदेवी के ही पदचिह्नो पर पद्मावती (१८८२) नाटक लिखा। इन दोनों नाटकों में बहुत सी समानताएँ हैं। पद्मावती में नायिका वैसी ही है जैसी नीलदेवी में। पद्मावती

१. पागल—कल उन दुष्ट यवनो ने महाराज से कहा कि तुम जो मुसलमान हो जाओ तो हम तुमको अब भी छोड़ दें (दृश्य ८)।

का पति प्रतिनायक द्वारा मार दिया जाता है। नायिका पद्मावती नीलदेवी के समान सती हो जाती है। दोनों में नायिकाएँ प्रतिनायक को धोखा देती हैं। दोनों में एक विशेष समानता यह भी है कि दोनों नाटकों में जब नायक कारागार में है तो निराशा प्रकट करता है। दोनों में कोई अदृश्य रूप से नायक को ढाढ़स देता है, नीलदेवी में वह देवता है और पद्मावती में एक राजपूत। नीलदेवी के समान पद्मावती में भी दो राजपूत, वेश बदलकर शत्रु की टोह लेते हैं। कथा और चरित्रों के अतिरिक्त भाव, रस एवं उद्गारों की भी समानता है। दोनों में हिन्दुत्व की भावना है, और मुसलमानों के प्रति घृणात्मक उद्गार प्रकट किए गए हैं। दोनों में वीर, करुण रस का सहकारी है। दोनों में देश-प्रेम के उद्गार प्रकट किये गए हैं। हाँ, पद्मावती गीतिरूपक नहीं है, नाटक है। इसमें गद्य को प्रधानता मिली है परन्तु पद्यांश भी बहुत हैं।

भारतेन्दु जी के नाटक नीलदेवी की परम्परा में श्री काशीनाथ खत्री ने दो नग जोड़े। वे हैं (१) सिन्धु देश की राजकुमारियाँ (१८८४) एवं गुज्जौर की रानी। ये दोनों लघु नाटक, नायिका प्रधान हैं और नायिकाएँ साहसी हिन्दू स्त्रियाँ हैं। दोनों में नीलदेवी की भाँति नायिकाएँ प्रतिनायकों को, जो मुसलिम हैं, छकाती हैं। सिन्धु देश की राजकुमारियाँ नाटक में देवल देवी पिता के हत्यारे की खलीफ़ा द्वारा खाल खिचवा लेती है और साहस पूर्वक मरती है। दूसरे नाटक में गुज्जौर की रानी अपने पति के हत्यारे को विप बुझी पोशाक दे कर मार डालती है और आप भी आत्मघात कर लेती है। दोनों नीलदेवी की नाईं दुःखान्त है। हाँ, एक अन्तर है। काशीनाथ खत्री के दोनों नाटक गद्यात्मक लघु रूपक हैं। आधुनिक एकांकियों के लक्षण इनमें मिलते हैं।

इसी परम्परा का नाटक है पं० राधाचरण गोस्वामी कृत सती चन्द्रावली (१८८६)। यह भी पहिले चारो नाटकों के सदृश दुःखान्त है। इसमें भी मुसलमान शासकों का अत्याचार वर्णित है। मुसलमानों के प्रति इसमें भी हिन्दुत्व की भावना से प्रेरित उद्गार मिलते हैं। नायिका इसमें भी आत्मघात करती है। किन्तु यह नाटक पहिलो की अपेक्षा दुःखान्त अधिक है। इसमें प्रतिनायक नहीं मरता, न उसे कोई कष्ट मिलता है। केवल नायिका अन्त में निराश हो अपने प्राण खो देती है। दूसरा बड़ा अन्तर है कि पहले के नाटकों में नायिका उच्च वर्ग की थी, इसमें मध्यम वर्ग की है। नाटक गद्यात्मक है। अन्त में करुण रस का प्रवाह सुन्दर है। चन्द्रावली का चरित्रचित्रण बड़ी कुशलता से चित्रित किया गया है।

सन् १८६३ ई० में श्री गोपालराम गहमरी ने यौवन योगिनी नाटक

इसी शृङ्खला में जोड़ा। यह भी दुःखान्त एवं नायिका प्रधान नाटक है। माया पृथ्वीराज की प्रेमिका है। बौद्ध भिन्नुक शंकराचार्य उसे धोखे से प्रतिनायक मुहम्मद गोरी के पास पहुँचा देता है। माया भी सिन्धु देश की राजकुमारी देवल देवी के समान कह देती है कि मुझे पहिले ही इस बौद्ध भिन्नुक ने भ्रष्ट कर दिया है। मुहम्मद गोरी उस बौद्ध भिन्नुक को मार देता है किन्तु वह माया को नहीं पा सका। पृथ्वीराज ने आक्रमण कर दिया। पृथ्वीराज गोरी को तो मार देता है किन्तु स्वयं भी मारा जाता है। नायिका आत्मघात करती है। नीलदेवी, पद्मावती एवं इस श्रेणी के अन्य नाटकों की नाईं इसमें भी मुस्लिम अत्याचार दिखाया गया है। नीलदेवी की राष्ट्रीयता भी इसमें है। भारत की जय बोली जाती है (अंक ६)। नाटक इस परम्परा का सबसे साधारण नाटक है। गहमरी जी की जासूसी प्रवृत्ति इस नाटक में भी दिखाई देती है। पारसी नाटकों के संवाद और गीत भी हैं।

नायिका प्रधान दो नाटक वीरवामा और मीराबाई इस परम्परा से हट कर बने हैं। हैं दोनों नायिका प्रधान नाटक, परन्तु इस परम्परा के नहीं हैं। वीरवामा (१८६३) में श्री वैजनाथ जी ने अवश्य नायिका का साहस और वीरत्व दिखाया है परन्तु यह सुखान्त नाटक है। वीरवामा अपने सैनिकों द्वारा पति के शत्रु कमालार्जुन को पराजित करती है। मुसलमानों का हिन्दुओं पर अत्याचार इसमें भी संवाद रूप में वर्णित है। कमालार्जुन अपने सैनिकों को हिन्दुओं को हर प्रकार से कष्ट देने के लिए उत्साहित करता है (दृश्य ५)। यद्यपि नाटककार इसे गीति-रूपक बताता है किन्तु प्रधानता गद्य की है। ६ दृश्यों के इस नाटक में ३८० पक्तियाँ गद्य की हैं और २१६ पद्य-गीतों की।

इन सब नाटकों से सर्वथा भिन्न है, पं० बलदेव प्रसाद कृत मीराबाई (१८६०) नाटक। नायिका प्रधान ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास विरोध सब से अधिक इसी में है। अकबर और राणा कुम्भा को समकालीन बना कर नाटक लिखा गया है। नाटककार का ध्यान कौतूहल वर्द्धन एवं पौराणिकता पर बहुत रहा है। फलतः नाटक पौराणिक अधिक हो जाता है जैसा कि आरम्भ में बताया गया है। तलवार का टूट जाना, मीराबाई का गड्ढे में जीवित रहना, कृष्ण के साथ अदृश्य हो जाना—ऐसी ही घटनाएँ हैं जो इसे शुद्ध ऐतिहासिक नाटक नहीं रहने देती। नाटक में चरित्र-चित्रण की ओर ध्यान नहीं है। नाटक का अन्त नाटककार की सबसे बड़ी असफलता है। मीरा एक ओर पति के साथ चित्तौड़ लौटने की इच्छुक है, वचन भी दे चुकी है और दूसरी ओर कृष्ण से कहती है, मुझे रोक लो। कृष्ण मूर्ति में से निकल सुन्दरी मीरा को हथिया लेते हैं और नायक, महाराणा कुम्भा मूर्च्छित हो जाता है। महाराणा का क्या अपराध था? वह बलात् मीरा को नहीं ले जा रहा

था। स्वयं मीरा ने घर लौटने की स्वीकृति दी थी। यहाँ कृष्ण ने दूसरे की पत्नी को बलात् छीना है। न नाटककार चरित्र-चित्रण कर सका है और न भक्ति की पावन सरिता बहा सका है। पारसी नाटकों के चक्कर में यह सब कुछ हुआ है।

नायक प्रधान नाटक

नायक प्रधान ऐतिहासिक नाटकों की संख्या नायिका प्रधान नाटकों से कम है। इनमें भी मुस्लिम काल के नाटकों को ही महत्त्व मिला है। हिन्दूकाल के नाटक संख्या में भी अल्प हैं और महत्त्व में भी। काशीनाथ खत्री कृत लवजी का स्वप्न (१८८४), श्री बैकुण्ठ दुग्गल कृत श्रीहर्ष (१८८४) और श्री शालिग्राम कृत पुरुविक्रम नाटक (१८९५) हिन्दूकाल के नाटक हैं। तत्कालीन नाटककार मुस्लिम विद्रोह से इतने भरे रहते थे कि सिकंदर कालीन पुरुविक्रम नाटक में यूनानी 'अल्ला हो अकबर' का उद्धोष करते हैं और नाटककार उनको 'मुसल्ले' भी बताता है (३-१)। नाटक वीर रस और राष्ट्रीयता से परिपूर्ण है। पुरु, इलविला और उदासिनी देश प्रेम से ओतप्रोत हैं। शृंगार, वीर रस का प्रधान सहायक है। नाटककार तत्क्षणीय की बहिन को सिकंदर की असफल प्रेमिका के रूप में चित्रित करता है। नाटक में तत्क्षणीय की बहिन अंबालिका के ही ऊपर उत्तरदायित्व है कि उसने अपने भाई को देश-द्रोही बनाया। यदि वह न होती तो तत्क्षणीय देशभक्त पुरु का साथ देता। नाटककार इस अंबालिका के चरित्र चित्रण में नवीनता के लोभ वश प्रविष्ट हुआ है किन्तु नवीनता के मोह ने कला एवं इतिहास पर पानी फेर दिया है। सिकंदर भी अपना काम निकालने वाला भँवरा है जिसने कलौ का रस चूस प्रेमिका से मुँह मोड़ लिया। नाटक में प्रस्तावना है। नायक धीरोदात्त है। नाट्यशास्त्र द्वारा वर्जित दृश्य—युद्ध, मरण एवं आक्रमण, मंच पर दिखाये गए हैं। अंत में नायिका और नायक का मिलन होता है परन्तु साथ ही अंबालिका सदा के लिए संन्यासिनी बन जाती है। उसे एक विदेशी आक्रान्ता से प्रेम करने का और देशद्रोह करने का फल भग्न-हृदय होकर मिलता है।

श्री राधाचरण गोस्वामी ने अमरसिंह राठौर (१८९५) में हिन्दू राष्ट्रीयता का चित्रण किया है। नाटक, टाड साहब के राजस्थान के आधार पर लिखा गया है। अमरसिंह देश भक्त भी है और मुस्लिम विद्रोही भी। भारत के प्राचीन गुण गाए गए हैं, देशी नरेशों को भारत से मुसलमानों को निकालने का निमन्त्रण भी अमरसिंह द्वारा दिलाया गया है, और भारत की जय भी बुलवाई गई है। साथ ही नायक, अमरसिंह मुसलमानों का शत्रु

भी है। उसका पिता अपने राज्य से उसे निकाल देता है किन्तु वह शाहजहाँ से बदला लेने का उद्गार प्रकट करता है। नाटककार नायक के चरित्र की रक्षा नहीं कर पाता। यदि शाहजहाँ हिन्दू धर्म और देश का शत्रु था तो अमरसिंह ने शाहजहाँ की नौकरी स्वीकार क्यों की? फिर शाहजहाँ से संघर्ष भी व्यक्तिगत कारण से होता है, जातीय भावना से नहीं। शाहजहाँ ने अर्थ-दंड लगाया और सलावत खाँ को दंड-प्राप्ति के अर्थ भेजा तभी तो अमरसिंह क्रुद्ध हो आगरे आया। नाटककार नायक के चरित्र को संभाल नहीं पाया है। नायक मूर्ख भी है। वह बिना सोचे-समझे जो मुँह से निकल गया उसपर अड़ने वाला चित्रित हुआ है। उसके मुख से निकल गया 'हमारा खड्ग दिल्ली के मैदान में ही सबसे पहिले म्यान में से निकलेगा' (दृश्य २)। बलभद्र मन में कहता है कि अमरसिंह की यह 'दुर्बुद्धि' है। वह अमरसिंह को समझाता है। अमरसिंह अपने वीरत्व की प्रशंसा बहुत करता है जिसका प्रमाण केवल अन्त में थोड़ा सा मिलता है। अभिनय का भी ध्यान नहीं रखा गया है और रंग-मंच पर सुअर और हिरन की आखेट कराई गई है। रंगमंच पर शेर का आक्रमण भी इसे अनभिनेय बनाता है। नाटक दुःखान्त है क्योंकि नायक युद्ध करते मर जाता है। पं० प्रतापनारायण मिश्र के नाटक हठी हमीर में भी नायक हठी है किन्तु वहाँ उसका हठ मिद्धान्त पक्ष का है, मूर्खता का हठ नहीं। हमीर के हठ का अर्थ उसका प्रण है जिसे उसने पूरा किया।

नायक प्रधान ऐतिहासिक नाटको में बा० राधाकृष्णदास जी के महा-राणा प्रतापसिंह (१८६७) ने अच्छी ख्याति पाई थी। इसका कई बार अभिनय भी हुआ था। कई दृश्य रस की दृष्टि से बड़े मार्मिक हैं (६-२, ७-३)। राणा की कष्टदशा तो दर्शक का दिल हिलाती ही है किन्तु रानी का केवल उत्तर में रो उठना इस दृश्य को और करुण बना देता है (७-३)। वीर रस, प्रधान रस है जिसका अच्छा परिपाक हुआ है। भामा शाह के चरित्र का बड़ी सफलता से अंकन हुआ है, वह दानवीर के रूप में सामने आता है (६-६)। मालती-माधव की प्रणय-कथा शृंगार से सिंचित है। राणा और रानी दोनों का चरित्र ऊँचा उठा है। पृथ्वीराज की पत्नी भी वीरांगना रूप में चित्रित हुई है जिसने अकबर से उसकी लम्पटता छुड़ाई। इसमें हिन्दुत्व की भावना और देश प्रेम दोनों का सुन्दर सामंजस्य है। नाटक पर पश्चिमी शैली का प्रभाव स्पष्ट है। युद्ध एवं मृत्यु के दृश्य दिखाये गए हैं। बाह्य एवं अन्तः संघर्ष चित्रित हैं। कविता और गीत सरस हैं। नायक-प्रधान नाटकों में यह नाटक सबसे सुन्दर बन पड़ा है।

श्रीनिवास दास द्वारा लिखित संयोगिता स्वयंवर (१८८५) का नामकरण न नायक के ऊपर है, न नायिका के ऊपर, वरन् एक घटना विशेष

के ऊपर है। तब भी नाटक नायक-प्रधान है। पृथ्वीराज नायक है। यह नाटक अन्य सभी नाटकों से भिन्न है। यहाँ युद्ध देश के कारण नहीं होता बरन् पत्नी-प्राप्ति के लिए होता है। अन्य मुस्लिम कालीन नाटकों में प्रतिनायक विजातीय है किन्तु इसमें एक हिन्दू नरेश दूसरे के विरुद्ध तलवार उठाता है। लेखक ने ऐयारी की भी सहायता ली है और संयोगिता ढाटे से मुख छिपा कर युद्ध भूमि में लड़ती है। भाषा प्रौढ़, सरस और सुन्दर है। संवाद एवं गीत थियेट्रीकल भी हैं। संयोगिता, राग भिम्भोटी में विग्रह निवेदन कर रही थी, सहसा पृथ्वीराज भी उसी राग में आकर गाता है (४-१)। रंग संकेत आधुनिक नाटकों की नाईं विस्तृत एवं वर्णनात्मक है।

ऐतिहासिक नाटक

पुस्तक	लेखक	निर्माण काल
नीलदेवी	भारतेंदु हरिश्चन्द्र	१८८०
महारानी पद्मावती	राधाकृष्णदास	१८८२
वीर वामा	वैजनाथ	१८८३
सिन्धु देश की राजकुमारियों	काशीनाथ खत्री	१८८४
गुन्नौर की रानी	,,	१८८४
लवजी का स्वप्न	,,	१८८४
श्रीहर्ष	वैकुण्ठनाथ दुग्गल	१८८४
संयोगिता स्वयंवर	श्रीनिवासदास	१८८५
सती चन्द्रावली	राधाचरण गोस्वामी	१८८६
मीराबाई	बलदेवप्रसाद मिश्र	१८९०
यौवन योगिनी	गोपालराम गहमरी	१८९३
अमरसिंह राठौर	राधाचरण गोस्वामी	१८९५
पुरु-विक्रम नाटक	शालिग्राम	१८९५
मिहल विजय	रामनरेश शर्मा	१८९६
प्रताप सिंह	राधाकृष्ण दास	१८९७
कल हकीकतराय	सैयद शेर अली	१८९७
हठी हमीर	प्रतापनारायण मिश्र	
चन्द्रसेन	बालकृष्ण भट्ट	

अध्याय ६

अनूदित नाटक

संस्कृत से अनूदित नाटक—

अभी तक मौलिक साहित्य की ही चर्चा की गई है। किसी भाषा की समृद्धि का पता उसके मौलिक साहित्य से ही चला करता है किन्तु अनूदित साहित्य का भी मूल्य और महत्त्व होता है। भारतेन्दु पूर्व के व्रजभाषा नाटकों में अनुवादों और छायाानुवादों की संख्या अधिक है, यह हम आरंभ में प्रतिपादित कर चुके हैं। संधिकाल (१८५०-१८६७) में गणेश कवि कृत प्रद्युम्न विजय नाटक संस्कृत के प्रद्युम्न विजय नाटक के आधार पर ही लिखा गया था। राजा लक्ष्मणसिंह का शकुंतला नाटक अनुवाद ही था।

रत्नावली—भारतेन्दु जी ने भी नाटक जगत में संस्कृत के अनुवादों के साथ प्रवेश किया। उन्होंने १८६८ ई० में रत्नावली नाटिका की प्रस्तावना का अनुवाद किया। नांदी के तीन श्लोकों का अनुवाद गद्य में है। शेष पूरी प्रस्तावना का गद्य का गद्य में और पद्य का पद्य में अनुवाद किया गया है। यद्यपि यह भारतेन्दु जी का आरंभिक प्रयास था किन्तु उनको इसमें पूरी सफलता प्राप्त हुई है।

भारतेन्दु जी के इस अनुवाद ने नाटककारों को अनुवादों की ओर प्रेरित किया। १८७२ में पं० देवदत्त तिवारी ने भी रत्नावली का अनुवाद किया। यह अनुवाद असफल ही नहीं, बड़ा भ्रष्ट भी है। भारतेन्दु जी ने अपने नाटक नामक निबंध में इस अनुवाद की बड़ी निन्दा की है।^१ पं० रामेश्वर भट्ट ने १८६५ में और श्री बालमुकुन्द गुप्त ने १८६८ में रत्नावली का अनुवाद किया। ये दोनों अनुवाद तिवारी जी के अनुवाद से उत्तम हैं। भट्ट जी ने ऊपर मूल संस्कृत देकर नीचे अनुवाद दिया है। गुप्त जी के प्रथम संस्करण में पद्यांश कम था। यह दूसरे संस्करण (१९०२) में बढ़ा दिया गया। इसकी भाषा शुद्ध है।

प्रबोध चन्द्रोदय—पूर्व भारतेन्दु काल में प्रबोध चन्द्रोदय नाटक की ओर नाटककारों का ध्यान प्रमुखता से गया और इस नाटक के १० अनुवाद और छायाानुवाद हुए। भारतेन्दु युग में प्रबोध चन्द्रोदय के ५ अनुवाद हुए।

सबसे पहले भारतेन्दु जी ने १८७२ में प्रबोध चन्द्रोदय के तीसरे अंक का अनुवाद पाखंड विडंबन नाम से किया। यह अनुवाद बड़ा सफल और सरस है। भारतेन्दु जी ने पात्रों की भाषा में भिन्नता रखी है। दूसरा अनुवाद पं० सीतलाप्रसाद जी ने १८७६ में किया। श्री अयोध्याप्रसाद चौधरी (१८८५ ई०), श्री देवीदीन ने (१८८५ ई०) और श्री भवदेव जी दुबे (१८६६) ने गद्यात्मक अनुवाद किए। भवदेव जी दुबे का केवल प्रथम अंक का ही अनुवाद प्राप्त है।

मृच्छकटिक—मृच्छकटिक के ५ अनुवाद हुए जिनके अनुवादक हैं पं० बालकृष्ण भट्ट, श्री दामोदर शास्त्री, पं० गदाधर भट्ट (१८८०), श्री दयालसिंह ठाकुर और ला० सीताराम (१८६६)।

भवभूति—भारतेन्दुकाल में भवभूति को बहुत सम्मान मिला। उनके उत्तररामचरितम् के पाँच अनुवाद हुए। पं० देवदत्त तिवारी (१८७१ ई०) का सब से पहिला अनुवाद है। रत्नावली के अनुवाद के समान यह भी बड़ा असफल अनुवाद है। संस्कृत नाटक समझा जा सकता है किन्तु इस अनुवाद के स्थलों को समझना जरा टेढ़ी खीर है। उदाहरण के लिए इस एक वाक्य को ले लें। 'इसीलिए कठोरतामय हमारे समान वीर पुरुषों का आचार रूप समय स्नेह के क्रम को नहीं अनुवर्त्तन करता है (अंक ५, पृ० १६७)। अनुवाद मूल नाटक से भी अधिक क्लिष्ट हो गया है। श्री नदलाल विश्वनाथ द्वे (१८६६), ला० सीताराम (१८६७) और पं० बलदेव-प्रसाद मिश्र ने भी उत्तररामचरितम् के अनुवाद किए। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने उत्तररामचरितम् को आधार बनाकर १८६५ में सीता वनवास लिखा जो छायानुवाद कहा जा सकता है।

भवभूति के दूसरे नाटक मालती माधव के दो अनुवाद हुए। ला० शालिग्राम ने १८८१ में और ला० सीताराम ने १८६८ में अनुवाद किया। ला० सीताराम के अनुवाद में गद्य का गद्य में और पद्य का पद्य में अनुवाद है। भाषा शुद्ध और सरल है। भवभूति के तीसरे नाटक महावीरचरितम् का अनुवाद ला० सीताराम (१८६६) और पं० बलदेवप्रसाद मिश्र ने किया।

कालिदास—महाकवि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् का गद्यात्मक अनुवाद राजा लक्ष्मण सिंह ने १८६३ ई० में किया था जिसकी चर्चा सधिकांल के अन्तर्गत की जा चुकी है। १८८८ ई० में राजा साहब ने दूसरा अनुवाद प्रकाशित कराया। इसमें गद्य के स्थान पर गद्य और पद्य के स्थान पर पद्यात्मक अनुवाद रखा गया। यह अनुवाद बड़ा लोकप्रिय हुआ। आज तक हिन्दी जगत में इस अनुवाद का बड़ा मान है। पढ़ने में मूल का सा

आस्वादन प्राप्त हो जाता है। पं० नन्दलाल विश्वनाथ ने १८८७ में *शकुंतला* का अनुवाद किया। इस अनुवाद की विशेषता है कि 'संस्कृत के छन्दों का अनुवाद उन्हीं छन्दों में' हुआ है।^१ स्त्रियों व्रज में वार्तालाप करती हैं, विदूषक बुन्देलखड़ी बोलता है, कोतवाल उर्दू में बात करता है। इस प्रकार पात्रों की भाषा में परिवर्तन कराया गया है। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने १९०१ ई० में अभिनय को ध्यान में रखकर अनुवाद किया^२। यह पारसी थियेट्रीकल शैली पर लिखा गया है। गीतों की अधिकता है। इन गीतों में भी दादरा, सोरठ, कलिगडा, काफी, जोगिया, अंग्रेजी धुन के गीत इत्यादि चलते गानों की ओर विशेष ध्यान गया है। कालिदास के *विक्रमोर्वशीयम्* नाटक का अनुवाद गदाधर मालवीय ने किया तो *मालविकाग्निमित्र* का ला० सीताराम ने।

अन्य—ला० सीताराम ने *नागानन्द* का अनुवाद किया। *वेणीसंहार* के भी दो अनुवाद हुए, एक पं० अत्रिकादत्त व्यास का और दूसरा पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र (१८८७) का। रामनाथ कायस्थ ने *हनुमन्नाटक* का अनुवाद १८७२ ई० में किया।

भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र ने *मुद्राराक्षस* का बड़ा सफल और पुष्ट अनुवाद किया। उन्होंने प्राकृत से कर्पूर मंजरी का भी अनुवाद किया।

१. भूमिका में लेखक का कथन।

२. भूमिका में लेखक का कथन—'मन में आया कि एक इसका हिन्दी अनुवाद ऐसा भी किया जाय जो नाटक खेल के उपयोगी हो (भूमिका)।

संस्कृत से अनूदित नाटक

पुस्तक	लेखक	निर्माण या प्रकाशन-काल
शकुन्तला (गद्यात्मक)	राजा लक्ष्मण सिंह	१८६३
रत्नावली	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१८६८
उत्तरगमचरित	देवदत्त तिवारी	१८७१
रत्नावली	देवदत्त तिवारी	१८७२
पाखंड विडम्बन	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१८७२
हनुमन्नाटक	रामनाथ कायस्थ	१८७३
धनंजय विजय	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१८७३
मुद्राराक्षस	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१८७५
कर्पूर मंजरी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१८७६
प्रबोध चन्द्रोदय	प० सीतला प्रसाद	१८७६
मृच्छकटिक	गदाधर भट्ट	१८८०
मालती माधव	ला० शालिग्राम	१८८१
प्रबोध चन्द्रोदय	देवीदीन	१८८५
प्रबोध चन्द्रोदय	अयोध्या प्रसाद चौधरी	१८८५
शकुन्तला	नन्दलाल विश्वनाथ दूबे	१८८७
शकुन्तला (गद्य-पद्य)	राजा लक्ष्मण सिंह	१८८८
सीता-वनवास	ज्वालाप्रसाद मिश्र	१८९५
रत्नावली	रामेश्वर भट्ट	१८९५
उत्तरगमचरित	नन्दलाल विश्वनाथ दूबे	१८९६
प्रबोध चन्द्रोदय	भवदेव दूबे	१८९६
उत्तरगमचरित	ला० सीताराम	१८९७
महावीर चरित	ला० सीताराम	१८९७
वेणी संहार	ज्वालाप्रसाद मिश्र	१८९७
मालती माधव	ला० सीताराम	१८९८
मालविकाग्निमित्र	ला० सीताराम	१८९८
रत्नावली	बालमुकुन्द गुप्त	१८९८
मृच्छकटिक	ला० सीताराम	१८९९
नागानन्द	ला० सीताराम	१९००

पुस्तक	लेखक	निर्माण-या प्रकाशन-काल
शकुन्तला	ज्वालाप्रसाद मिश्र	१९०१
मृच्छकटिक	दयालसिंह ठाकुर	
मृच्छकटिक	दामोदर शास्त्री	
मृच्छकटिक	बालकृष्ण भट्ट	
वेणीसंहार	अभिकादत्त व्यास	
विक्रमोर्वशी	गदाधर मालवी	

बंगला से अनूदित नाटक

बंगला भाषा का नाटक साहित्य बड़ा समृद्ध है। बंगला नाटकों की परम्परा प्राचीन है। बंगला रंगमंच भी बहुत पुराना है। १७५३ ई० में लाल बाजार गली के उत्तरी पूर्वी कोने पर सबसे पहिली नाट्यशाला स्थापित हुई थी। १७७५ में कलकत्ता थियेटर की स्थापना हुई। यह १८०८ ई० तक अपना कार्य करता रहा^१। इस नाट्यशाला का निर्माण एक लाख रुपये की लागत से हुआ था। कलकत्ता थियेटर के बाद से बंगला रंगमंच की नियमित परंपरा प्राप्त होती है। निश्चय ही रंगमंच के बिना उन्नत नाटक-साहित्य का निर्माण नहीं होता। बंगला के रंगमंच की अनवरत परंपरा ने बंगला नाटक साहित्य की उत्पत्ति की। बंगला का सबसे पहिला नाटक भरतचन्द्र गुणाकर का *विद्यासुन्दर* था। यह नाटक बड़ा लोकप्रिय सिद्ध हुआ। यह पद्यात्मक नाटक था। इस नाटक के बाद से बंगला नाटकों की शृंखला जुड़ती ही गई। १८५३ में बा० पंचानन बनर्जी का *प्रेम नाटक* दर्शकों के सम्मुख आया। यह कई बार खेला गया। राय बहादुर दिनेशचन्द्र सेन इसी को बंगला का प्रथम नाटक कहते हैं। उनका कहना है कि इससे पूर्व के नाटक, नाटक नहीं हैं क्योंकि उनमें नाटकीय पात्रों एवं संवादों का अभाव है।^२ माइकेल जी के नाटकों ने बंगला नाटकों को प्रोत्साहन दिया और श्री दीनबन्धु के *नील दर्पण* (१८६०) ने तो धूम मचा दी। इसी के बाद आधुनिक बंगला नाटक के जनक और कलाकार गिरीश बाबू का युग आरम्भ हो गया।

भारतेन्दु जी पर भी इस उन्नत बंगला रंगमंच और नाटक साहित्य का अनुल प्रभाव पड़ा। उनका *विद्यासुन्दर* नाटक (१८६८) इसी प्रभाव के फलस्वरूप उपजा। नाटक की भूमिका में भारतेन्दु जी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है। भरतचन्द्र गुणाकर और यतीन्द्रमोहन टैगोर से आख्यान ले कर *विद्यासुन्दर* की रचना की जो अनुवाद मात्र नहीं है। हाँ, उनका दूसरा नाटक *भारत जननी* (१८७७) बंगला का अनुवाद है। यह नाटक उनका लिखा हुआ नहीं है। भारतेन्दु जी ने इसका संशोधन मात्र किया था। इसके विषय में वे लिखते हैं *भारत जननी* रूपक जो गत नवम्बर से छपता है उसके ऊपर मेरा नाम लिखा है। वह रूपक मेरा बनाया नहीं है। बंग भाषा में *भारतमाता* नामक जो रूपक है यह उसी का अनुवाद है जो मेरे एक मित्र ने

१. इंडियन स्टेज, भाग १, पृ० १७६।

२. वही, भाग २, पृ० १५।

किया। जिन्होंने अपना नाम प्रकाशित करने को मना किया है। मैंने उसको शोधा है और जो अंश कुछ भी अयोग्य था उसे बदल दिया है। कवि की कीर्ति का लोप नहीं करना, अतएव यह प्रकाश करना, मुझपर आवश्यक हुआ है। यह सन् १८७७ ई० के दिसम्बर की चन्द्रिका में छपा था उससे ही कवि-वचन सुधा में पुनर्मुद्रित हुआ था।

(कविवचन सुधा—२६-११-१८७८)

भारतेन्दु जी जिस मित्र के नाम को लोप नहीं करना चाहते थे, आज वह लुप्त हो गया है, और नाटक भारतेन्दु जी कृत ही माना जाने लगा है। बाबू राधाकृष्णदास जी एव बाबू ब्रजरत्नदास जी का कहना है कि अनूदित नाटक इतना शोधा गया था कि उसका रूप ही बदल गया था।^१ क्या संशोधन करने मात्र से वह नाटक भारतेन्दु जी का मौलिक माना जाना चाहिए? जब भारतेन्दु जी ने इस अनुवाद को दूसरे का माना है तब क्यों हमें उनके शब्दों पर अविश्वास करना चाहिए और इस नाटक को बलात् भारतेन्दु जी का मौलिक नाटक बताना चाहिए जैसा कि कई विद्वानों ने किया है।^२

ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों ने नाटककारों का ध्यान अधिक आकृष्ट किया। बालकृष्ण भट्ट ने माइकेल के पद्मावती (१८७८) और शर्मिष्ठा (१८८०) का अनुवाद किया।^३ किशोर दे कृत पद्मावती नाटक का अनुवाद बा० रामकृष्ण वर्मा ने किया। यह काल्पनिक नाटक है और इसके द्वारा नारद जी की लड़ाई करने वाली प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। बा० रामकृष्ण वर्मा ने इसके अतिरिक्त माइकेल कृत कृष्णकुमारी और द्वारिका नाथ गांगुली कृत वीरनारी का अनुवाद १८६६ में किया। श्री उदितनारायण लाल जी ने श्रीमनमोहन वसु कृत सतीनाटक का १८८६ ई० में, श्री ज्योतिन्द्र नाथ ठाकुर कृत अश्रुमति का १८६५ में और दीप निर्वाण^४ का अनुवाद किया। श्री शिवनंदन त्रिपाठी ने लक्ष्मीनारायण चक्रवर्ती कृत नवाब सिराजुद्दौला नाटक का अनुवाद १८६६ में किया। श्री मनमोहन बांस का एक सुन्दर नाटक है रामाभिषेक नाटक।^५ रामगोपाल विद्यान्त ने १८७६

१. हिन्दी नाट्य साहित्य, च० स०, पृ० ८०।

२. वही, तृ० सं०, पृ० ५१। आधुनिक हिन्दी साहित्य, द्वि० स०, पृ० २३३। भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, प्र० सं०, पृ० ७४।

३. बाबू ब्रजरत्नदास जी का कथन है कि शर्मिष्ठा का अनुवाद पं० रामचरण शुक्ल ने किया था। (हिन्दी नाट्य साहित्य, पृ० १४१)

४. १८६५ से पूर्व।

५. बंगला का यह नाटक १८६८ ई० में बो बाज़ार के बंगाली थियेटर

में इसका सरूप अनुवाद किया। अनुवादक स्वयं भूमिका में कहता है कि मैं हिन्दी में अनुवाद कर रहा हूँ,^१ तब भी डा० सोमनाथ^२ और डा० वीरेन्द्र कुमार शुक्ल^३ ने इसे रामगोपाल विद्यान्त कृत मौलिक नाटक मान लिया है। लेखक अहिन्दी-भाषी है। तब भी भाषा अनेक हिंदी-भाषी नाटकों से अच्छी है। बड़ा सफल अनुवाद है। श्री बिहारीलाल चट्टोपाध्याय का एक बँगला नाटक है प्रभास यज्ञ। हिंदी में प्रभास मिलन नाम से इसके तीन अनुवाद हुए।^४ (१) इनमें से पहिला है श्री मधुसूदन लाल (१८९६) का जिसे पं० दुर्गाप्रसाद शर्मा ने संशोधित करके प्रकाशित किया था। (२) दूसरा अनुवाद श्री कालीकृष्ण मुखोपाध्याय ने १९०० में किया।^५ और (३) तीसरा अनुवाद पं० बलदेवप्रसाद मिश्र ने किया जो पहिले सत्यसिन्धु में छपा था और कुछ समय बाद (१९०३ में) पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। मिश्र जी का अनुवाद, केवल मात्र अनुवाद नहीं है। उन्होंने कुछ नमक-मिर्च अपनी ओर से भी लगाया है। मिश्र जी का कृष्ण और ब्रजगोपों का मिलन वाला दृश्य (६-१) अधिक है। इसी प्रकार मिश्र

में बड़ी धूमधाम से खेला गया था। १८७२ में पुनः ढाका में भी खेला गया था। इंडियन स्टेज, भाग १, पृ० १२३ व १६७।

१. 'इस समय तक लखनौस्थ विद्यान्त नाट्यशाला में बँगला भाषा में नाटक का अभिनय होता है वह अत्रदेशीय महज्जनो के समझ में नहीं आता, सुतराम् उन लोगों को विशेष आनन्द नहीं होता, इस कारण सर्वजनों के मनोरंजनार्थ नागरी भाषा में अभिनय करने के लिए इस पुस्तक का अनुवाद किया'—आश्विन शु० दशमी संवत् १९३३।

२. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, पृ० ७१।

३. भारतेंदु का नाट्य साहित्य, पृ० ५४।

४. इन अनुवादों को भी डा० सोमनाथ (पृ० ७२ पर) और डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल ने (पृ० ५५) अपने प्रबंधों में मौलिक माना है।

५. अनुवादक स्वयं कहता है कि मैं अनुवाद कर रहा हूँ। इतनी स्पष्टता के बाद भी डा० सोमनाथ और डा० वीरेन्द्रकुमार ने न जाने कैसे इसे भी मौलिक नाटक कह दिया है। विद्वान् डाक्टरों ने एक और भ्रम अपने प्रबंधों द्वारा हिन्दी जगत में फैलाया है। लेखको ने हिंदी प्रभास-मिलन नाटक के दो लेखक दिए हैं 'बिहारीलाल चटर्जी और कालीकृष्ण मुकर्जी' (हिंदी नाटक साहित्य का इतिहास पृ० ७२ और भारतेंदु का नाट्य साहित्य, पृ० ५५)। वास्तव में श्री बिहारीलाल चटर्जी बँगला नाटक के लेखक हैं और श्री कालीकृष्ण मुखोपाध्याय हिंदी में अनुवादक हैं।

जी ने राधा को विवाहिता पत्नी के रूप में स्पष्टता से नहीं रक्खा है, केवल संकेत मात्र दे दिया है।

बंगाल में श्री उपेन्द्रनाथ दास (छद्म नाम दुर्गादास) के दो बंगला नाटकों—शरत् सरोजिनी और सुरेन्द्र विनोदिनी—ने नाम पैदा किया।^१ ये दोनों नाटक साम्राज्य-विरोधी उद्गारों से परिपूर्ण थे।^२ इसी लिए लेखक ने नाटकों के प्रथम संस्करण पर अपना छद्म वेश—दुर्गादास—दिया था। श्री केशवराम भट्ट ने १८७४ में शरत्-सरोजिनी^३ का अनुवाद सज्जाद संबुल नाम से और अगले वर्ष १८७५ में सुरेन्द्र विनोदिनी का अनुवाद शमसाद सौसन नाम से किया। दोनों केवल अनुवाद मात्र नहीं हैं, पं० केशवराम भट्ट ने कुछ जोड़ तोड़ भी की है। मूल नाटकों की साम्राज्य-विरोधी भावना को अनुवादक ने स्थान नहीं दिया है। भट्ट जी के अनुवाद सफल हैं और मूल का आनन्द देते हैं। बंगला का एक प्रसिद्ध नाटक है श्री ज्योतिन्द्रनाथ टैगोर कृत सरोजिनी। १८७५ में जब यह नाटक खेला जा रहा था तो सरोजिनी के बलिदान के समय दर्शक इतने उत्तेजित हो गए थे कि उसे बचाने के लिए वे रंगमंच पर कूद पड़े थे। कुछ दर्शक तो मूर्च्छित हो गए थे।^३ भारतेन्दु जी ने अपने नाटक नामक निबन्ध में पं० गणेशदत्त एवं राधाचरण गोस्वामी कृत सरोजिनी नाटकों की सूचना दी है। संभवतः ये दोनों नाटक इसी मूल बंगला नाटक के अनुवाद हो।

माइकेल बाबू का तीखे व्यंग्य भरा एक नाटक है एड़ कि बोले सभ्यता। इसका सुन्दर और सरस अनुवाद १८८४ में पं० ब्रजनार्थ शर्मा ने किया। इसमें नायक नवकुमार नवीन सभ्यता के चगुल में फँसकर मद्य-मांस और वेश्या में लीन हो जाता है। वह अपने दोष छिपाने के लिए सच्चे और वैष्णव पिता से असत्य बोलता है। इसमें नवीन पाश्चात्य सभ्यता की निन्दा की गई है। श्री गोकुलचन्द ने बूड़ो शालिकेर वाहन नामक बंगला

१. शरत् सरोजिनी २ जनवरी १८७४ को खेला गया था। इसमें पहिली बार गोली चलती दिखाई गई थी। दर्शक मंत्र मुग्ध हो गए थे। अमृत बाजार पत्रिका (१४ जनवरी १८७४) ने इस नाटक के अभिनय की प्रशंसा की। सुरेन्द्र-विनोदिनी नवम्बर-दिसम्बर में ग्रेट नेशनल थियेटर में भी धूमधाम से खेला गया। (इंडियन स्टेज, भाग २, पृ० २४० एवं २५८)।

२. भारतेन्दु का नाट्य साहित्य, पृ० ६३, हिंदी नाटकों का इतिहास तृ० सं०, पृ० ८७ और आधुनिक हिंदी साहित्य, द्वि० सं०, पृ० २६७ में मूल नाटक का नाम 'शरत् और सरोजिनी' दिया गया है जो अशुद्ध है।

३. इंडियन स्टेज, भाग २, पृ० २५८।

नाटक का अनुवाद बूढ़े मुँह मुँहासे लोग देखें तमासे नाम से किया है^१। पं० राधाचरण गोस्वामी कृत बूढ़े मुँह मुँहासे (१८८७) पर भी मूल बँगला नाटक का प्रभाव है। श्री गोपालराम गहमरी जी ने दादा ओ आमि नामक बँगला नाटक का अनुवाद दादा और मैं नाम से १८६३ में किया।

अंग्रेजी से अनूदित—

आधुनिक हिन्दी साहित्य अपने आरंभिक समय से ही अंग्रेजी से प्रभावित है। नाटक क्षेत्र में यह प्रभाव दो रूपों में परिलक्षित होता है (१) अंग्रेजी विचार और शैली को अपनाया गया जिसके फलस्वरूप दुःखान्त नाटकों का प्रणयन हुआ, एकांकी का निर्माण हुआ, वर्जित दृश्य रंगमंच पर दिखाए जाने लगे एवं अंकों वा विभाजन हुआ। इस प्रभाव को हम पीछे दिखा चुके हैं और अगले खंड में पुनः इसकी चर्चा करेंगे। (२) अंग्रेजी नाटकों का अनुवाद हुआ।

१८७६ में श्री तोताराम जी ने जोसेफ एडोसन के केटो नाटक का केटो वृत्तान्त नाम से अनुवाद किया। पं० ब्रद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन ने अपनी आनन्द कादम्बिनी पत्रिका (१-२ भाद्रपद सं० १६३८) में इसकी कटु आलोचना की। अन्य दोषों के साथ दो दोषों पर प्रेमघन जी ने विशेष ध्यान दिया। वे हैं—(१) इसमें गीतों की योजना नहीं है और (२) 'आदि से अंत तक पढ़ जाइये पर तो भी यह न मालूम हो कि यह क्या था, जैसे कृतकेय या कार्तिकेय या कृतकेटर्क कि जिसका ठीक नाम भी याद नहीं उसका अर्थ कौन जाने।' इसके द्वारा प्रेमघन जी का मत है कि नाटक के पात्रों के नामों का भारतीयकरण ठीक से नहीं हुआ है। नामों का भारतीयकरण भारतेंदु जी द्वारा उत्तम हुआ। भारतेंदु जी ने १८८० में शेक्सपियर के संसार प्रसिद्ध नाटक मर्चेन्ट आफ वेनिस का अनुवाद दुर्लभ बन्धु अर्थात् वंशपुर का महाजन नाम से किया। इसमें वेनिस नगर का नाम 'वंशपुर' रक्खा गया है। बैसेनियो ने बसंत नाम अपनाया है तो ऐन्टोनियो ने अनन्त। पोरशिया ने अपना नाम पुरश्री कर लिया है तो शाइलाक ने शैलाक्ष। इस अनुवाद को भारतेंदु जी पूरा न कर सके थे। उनके बाद पं० रामशंकर जी ने पूर्ण किया था।^२ शेक्सपियर के इस नाटक के तीन अनुवाद और हुए। वे हैं—आर्य (एक महिला) जबलपुर ने वेनिस नगर का व्यापारी

१. डा० सोमनाथ कृत हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, पृ० ८७।
बहुत प्रयास करने पर भी मैं पुस्तक नहीं पा सका हूँ।

२. बा० शिवनन्दन सहाय कृत 'हरिश्चन्द्र' पृ० २०२।

(१८८७) नाम से अनुवाद किया । (२) श्री बालेश्वर प्रसाद के अनूदित नाटक का नाम है वेनिस का सौदागर (३) और श्री दयाल सिंह ठाकुर ने भी इसी नाम से नाटक का अनुवाद किया ।

शेक्सपियर के एक दूसरे नाटक मैकबेथ के अनुवाद साहसेन्द्र साहस (१८६३) में भी पं० मथुराप्रसाद शर्मा ने भारतेन्दु जी की नामकरण की शैली को अपनाया । इसमें 'डंकेन' का नाम 'सौजन्यसेन' है तो 'मैकबेथ का साहसेन्द्र' । भारतेन्दु जी ने उच्चारण के अनुसार नाम रखे थे जैसे वेनिस का वंशपुर और पोरशिया का पुरश्री । पं० मथुराप्रसाद शर्मा ने भारतेन्दु जी के समान अंग्रेजी नामों का भारतीयकरण तो किया है किन्तु स्वतन्त्र रूप से । शेक्सपियर के ऐज़ यू लाइक इट का अनुवाद पुरोहित गोपीनाथ ने मनभावन (१८६६) नाम से किया । पुरोहित गोपीनाथ ने शेक्सपियर के दूसरे नाटक रोमियो एण्ड जूलियट का अनुवाद प्रेमलीला नाम से किया है । ब्राह्मण १५ अप्रैल १८८३ में श्री काशीनाथ ने विज्ञापन दिया था कि मैंने शेक्सपियर के नाटकों का सुन्दर अनुवाद किया है और वे शीघ्र ही सामने आएँगे किन्तु ये नाटक कहीं नहीं देखे गए हैं । शेक्सपियर के अन्य नाटक किंगलियर का अनुवाद पं० बट्टीनारायण बी० ए० (जयपुरवासी) ने किया । इस चर्चा से यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि अनुवादकों का ध्यान शेक्सपियर पर प्रधानतया केन्द्रित रहा और नामों के भारतीयकरण की शैली को अधिकांशतः अपनाया गया ।

अध्याय ७

जन नाटक

जन नाटक की चर्चा हमने पूर्वभारतेन्दु युग (प्रथम खंड) में की है । हमने वहाँ दिखाया है कि संस्कृत के साहित्यिक नाटक, सीमित और विशिष्ट प्रेक्षकों के ही लिए निर्मित हुए थे । किन्तु इन साहित्यिक नाटकों के सीमित संसार से बाहर साधारण जनता जन नाटको से अपना मनोरंजन कर रही थी । ब्रजभाषा नाटको का निर्माण भी जननाट्य शैलियों को ध्यान में रखकर हुआ था । सधिकाल में एक ओर गणेश कवि का प्रद्युम्न विजय एवं राजा लक्ष्मण सिंह का शकुंतला नाटक साहित्यिक दृष्टि से रचे गए तो दूसरी ओर इन्द्रसभा जैसे जन नाटको ने जनता को मंत्र-मुग्ध कर लिया था । भारतेन्दुकालीन साहित्यिक नाटको का परिचय दिया जा चुका है । अब तत्कालीन जन नाटको पर दृष्टि डालना अप्रासंगिक न होगा ।

डा० सोमनाथ और उनके अनुकरण पर डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल ने नाटकों को दो भागों में विभाजित किया है : (१) साहित्यिक और (२) रंगमंचीय । इस विभाजन ने हिन्दी में एक भ्रम फैलाया है कि साहित्यिक नाटक रंगमंचीय नहीं होते और रंगमंचीय नाटक साहित्यिक नहीं कहला सकते । कालिदास का नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम् साहित्य का सुरभित सुर-कुसुम है । किन्तु क्या यह रंगमंचीय नहीं ? क्या यह रंगमंच पर नहीं खेला गया था ? क्या भारतेन्दु जी का सत्य हरिश्चन्द्र नाटक रंगमंचीय अर्थात् अभिनेय नहीं यद्यपि यह साहित्यिक है । अतः यह विभाजन अस्पष्ट और भ्रामक है । यदि नाटक वास्तव में नाटक नाम का अधिकारी बनने का इच्छुक है तो उसे नाट और रंगमंच से संबंध जोड़ना ही पड़ेगा ।^१

साहित्यिक नाटकों से भिन्न विधा है जन नाटकों की । पश्चिम में साहित्यिक नाटको और जन नाटकों के बीच में अधिक खाई नहीं बन सकी है, किन्तु भारत में यह संस्कृत काल में भी थी और भारतेन्दुकाल में भी । संस्कृत के नाटक, नाट्य-शास्त्र के सामने सिर झुकाए खड़े हैं । नाट्य-शास्त्र से पूर्व एक समृद्ध नाटक साहित्य होगा, ऐसा अनुमान तर्क-सम्मत है किन्तु वह

१. नाटक और रंगमंच का सम्बन्ध, खंड ४ के अध्याय ६ (अभिनय) में वर्णित है ।

कोष अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। संस्कृत के प्रात नाटक, साहित्यिक हैं जो नाट्य-शास्त्र के अंकुश को मान कर ही आगे बढ़े हैं। उपरूपकों में से कुछ जन नाटक थे जिनकी ओर भावप्रकाश में संकेत है। भावप्रकाश-कार का कथन है कि रासक, नाट्यरासक, हल्लीशक, प्रेक्षण इत्यादि उपरूपक नृत्य भेद हैं^१। साहित्यदर्पण-कार ने इनको भी साहित्य की सीमाओं में बंध दिया और उन्हें केवल नृत्य भेद नहीं माना है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपरूपक पहिले नृत्यप्रधान जन नाटक थे। भावप्रकाश के ही समय में साहित्य की ओर घसीटे जाने लगे थे। साहित्यदर्पण-कार ने उन्हें उस ओर से हटाकर साहित्य-सीमा में बंध दिया। जब ये साहित्य की सीमा में बंध गए तो जन नाटक न रहे। इस विवेचन से और पूर्व विवेचन से स्पष्ट है कि संस्कृत काल में नाटकों के दो भेद थे। जन नाट्य विकृत होते गए, साहित्यिक नाटक सीमा में बंधते गए। फलतः जन नाटकों में शृङ्गार और अश्लीलता आ गई। हमारे आलोच्य काल में तो इन जन नाटकों के प्रतिरोध में ही साहित्यिक नाटकों का निर्माण हुआ। भारतेन्दु जी ने थियेटीकल नाटकों से वृणा प्रकट की है और इन्द्रसभा रासलीला, रामलीला, यात्रा इत्यादि को 'भ्रष्ट' की संज्ञा दी है^२। इसकी प्रतिक्रिया में वे साहित्यिक नाटकों का निर्माण करने बैठे। उनके सहयोगियों और मानसिक शिष्यों ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया।^३ साहित्यिक और जन नाटकों की खाई और चौड़ी हो गई। भारतेन्दु जी ने रंगमंच का ध्यान रखा है जिसका स्पष्ट संकेत हरिश्चन्द्र, भारत दुर्दशा इत्यादि में है। उन्होंने पात्रों की वेशभूषा, अभिनय, रंग-सज्जा एवं प्रकाश संबंधी रंग-संकेत दिए हैं। अन्य नाटककारों ने भी ऐसा किया है। फलतः ये नाटक साहित्यिक भी हैं और रंगमंचीय भी। भारतेन्दु जी ने अपने नाटक नामक निबन्ध में अभिनय और रंगमंच संबंधी कई नियमों का उल्लेख किया है^४। इसके अंतर्गत रंगमंच की व्यवस्था का भी उल्लेख है। उन्होंने अपने नाटकों से अभिनय और रंगमंच के संबंध में उदाहरण भी दिए हैं। अतः उनके नाटक रंगमंचीय तो हैं परंतु जन नाटक नहीं हैं।

इस काल में जन नाटक दो प्रकार के मिलते हैं (१) धार्मिक दृष्टिकोण के और (२) आर्थिक दृष्टिकोण के। धार्मिक दृष्टिकोण से लिखे जन

१. नवम अधिकार, नवम पंक्ति, पृ० २५५

२. भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ७१६।

३. पं० देवकीनंदन त्रिपाठी कृत भारतीहरण की भूमिका, श्रीमती लालीकृत गोपीचंद की भूमिका, मोहनलाल कृत संसार सागर रत्न की भूमिका।

४. भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ७२६, ७३१, ७३३ और ७४१।

नाटक रामलीला और रासलीला खेलने के लिए लिखे गए थे। शिवशंकर लाल वाजपेयी कृत रामयश दर्पण, द्विजदास कृत रामचरित्र नाटक, देवकी-नन्दन त्रिपाठी कृत रामलीला नाटक और गोवर्द्धन गोसाईं कृत उद्धवलीला नाटक ऐसे ही नाटक हैं जिनका परिचय राम और कृष्ण धारा के अंतर्गत दिया जा चुका है। ये साहित्यिक कोटि में आ जाते हैं क्योंकि इनमें तुलसी सूर इत्यादि कवियों की कविता प्रयुक्त है। आर्थिक दृष्टिकोण से लिखे नाटकों में से हम सांग नाटक और थियेटरिकल नाटकों की चर्चा यहाँ करेंगे। इन नाटकों के निर्माण के पीछे लेखकों का लक्ष्य पैसा प्राप्त करना था।

सांग या स्वांग नाटक

स्वांगों का प्रचलन पश्चिमी प्रदेशों—पूर्वी पंजाब, पूर्वी राजस्थान, दिल्ली और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बहुतायत से था। भारतेंदु जी के साहित्यिक नाटकों के प्रणयन से बहुत पूर्व स्वांग लिखे जा रहे थे। इनका साहित्य विशाल है, किंतु वह घर के कोनों में मूर्च्छित पड़ा है या ऊँच रहा है। १८५४ ई० में मुरादाबाद निवासी श्री शालिग्राम जी ने इश्क चमन नामक स्वांग नाटक लिखा^१। इसमें रंग संकेत तुकांत गद्य में दिए गए हैं जैसे (उधर शहजादे ने वजीरजादे से कहा कि चलो भाई बाग की सैर करें जिससे रास्ते की हरात दूर हो दिल को शरूर हो अरु जो कि उस रश्के हूर का दीदार हो जावे तो तमाम काम भरपूर हो)। इस स्वांग नाटक में शहजादा परिवार, शहजादी के प्रेम में प्राण त्यागता है। प्रेम, स्वप्न-दर्शन से आरम्भ होता है। शहजादा गुप्त रूप से राजकीय वाटिका में शहजादी से मिलते पकड़ा गया और उसे शूली दी गई। शहजादी ने भी प्राण छोड़ दिए। इन्द्रसभा के समान यह सांग भी घोर शृंगार से संपन्न है। वस्त्र, बोसा, पलंग पर ऐश उड़ाना, दहन से दहन मिलाना इत्यादि अश्लीलताओं के वर्णन में रचयिता ने बड़ी रुचि दिखाई है। यह हिंदी का प्रथम दुःखांत जन नाटक है। माशूक की बेवफाई बार-बार बताई गई है। १८६८ ई० में इन्दर (या इन्द्र) उस्ताद ने सांगीत गोपीचन्द बनाया। गोपीचंद की कथा राजस्थान, पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गाँव-गाँव सुनी जाती है। उसी लोकप्रिय कथा को स्वांग शैली में लिखा गया है। उस्ताद इन्दर ने अन्य कई स्वांग भी लिखे। इन स्वांग नाटकों में गद्य नहीं है। जब कि शालिग्राम वैश्य ने उर्दू को प्रधानता दी थी तो उस्ताद इन्दर ने ~~शैली~~ ^{शैली} की हिंदी को ऊँचा स्थान दिया। उस्ताद लछमन (या लक्ष्मण) ने भी

१. संघत उल्लेख सी ग्यारह है, हर एक शब्द की याद रहे (इश्क चमन)।

गोपीचंद की लोकप्रिय कथा को अपना कर सांगीत गोपीचन्द लिखा।^१ इश्क चमन के समान इस 'स्वांग' में गद्य भी है। इश्क चमन में गद्य को ब्रैकेटों में बंद किया गया है, यहाँ उसका नाम 'वार्ता' दिया गया है। 'वार्ता' के बाद रचयिता इश्क चमन के समान रंग-संकेत देता है। उदाहरण— वार्ता 'यह बात कह गोपीचन्द ने भरथरी को छाती से लगा लिया तब भरथरी ने कहा तुम पहिले ठैरो'।' इस स्वांग नाटक का अन्त न सुखमय है, न दुःखमय। गोपीचन्द की बहिन अत्यंत दुखी हो मूर्च्छित हो जाती है। किन्तु गोपीचन्द शांत भाव से गुरु के समीप चला जाता है। शृंगारिकता इसमें भी भरी है। उस्ताद लछमन (या लक्ष्मण) ने भी प्रह्लाद, नौटंकी इत्यादि कई स्वांग नाटक लिखे। इनमें से नौटंकी की चर्चा करना आवश्यक है। आज हम सांग, स्वांग या सांगीत को नौटंकी भी कहते हैं। पूर्वी प्रदेश में स्वांग मंडली, नौटंकी नाम से ही ख्यात है। पंजाब में भी नौटंकी नाम चलता है। सांग या स्वांग को नौटंकी नाम उस्ताद लछमन के इस नाटक ने ही दिया। नौटंकी नामक स्वांग जनता में इतना लोकप्रिय हुआ कि स्वांग को नौटंकी भी कहने लगे। नौटंकी एक सुन्दरी थी जिसकी ख्याति दूर दूर फैल गई थी। मुलतान के राजकुमार को एक बार ताना मारा गया कि क्या नौटंकी लाएगा। राजकुमार के हृदय में यह बात बाण की नोक के समान चुभ गई। वह माता, सातो पत्नियाँ और परिवार को बिलखता छोड़ कर नौटंकी की खोज में निकल पड़ा। आगे की कथा विद्या सुन्दर जैसी है। राजकुमार नायिका के नगर में पहुँचा और राजकीय वाटिका में ठहरा। मालिन से साँठगाँठ की। मालिन राजकुमार को स्त्री बनाकर रनिवास में ले गई। नायक और नायिका का मिलन हो गया। पंजाबी, गबरू, भेना इत्यादि पंजाबी शब्द नाटक में प्रयुक्त हैं क्योंकि उस्ताद लछमन पंजाबी थे। घोर शृंगार भी चित्रित है।^२ उस्ताद टीकाराम, घासीराम, खुशीराम और कुँवर सेन के स्वांग नाटक भी खेले गए थे। मुंशी कुँवर सेन ने १८७४ में सांगीत नागलीला लिखी। इसमें रंग-संकेत छोटे-छोटे हैं जैसे "यह दोहा श्री बलराम जी कहते हैं" "श्रीनंद और जसोदा जी और ग्वाल गोपियाँ जमना जी के किनारे पर बहुत विरह से कहती हैं।" घासीराम के पुत्र खुशीराम के सांग राजा सरवणनाथ (१८७६) ने अच्छी ख्याति पाई थी। इसमें पितृभक्त श्रवणकुमार को राजा सरवणनाथ रूप में चित्रित किया गया है। राजा सरवण नाथ अयोध्या के राजा थे किन्तु ब्राह्मण रूप बनाए रहते थे। राजा सरवणनाथ की स्त्री बड़ी कपटिन थी। वह बूढ़े सास-

१. दूसरा संस्करण सन् १८६७ में प्रकाशित हुआ था।

२. कीनी जोरावरी कुमर पलिका पै डारी।

समुद्र को रूखा सूखा खिलाती थी। जब राजा को यह ज्ञात हुआ तो वे माता-पिता को काँवर में बिठाकर ले चले और स्त्री को त्याग दिया। आगे राजा दशरथ के बाण द्वारा 'सरवण' के मारे जाने की कथा है। भाषा बड़ी भ्रष्ट है।

पं० प्रतापनारायण मिश्र ने स्वांगों की अत्यन्त लोकप्रियता को देख महा-कवि कालिदास के प्रसिद्ध नाटक *अभिज्ञान शाकुन्तलम्* को स्वांग शैली पर १८६१ में लिखा और उसका नाम रखा *सांगीत शाकुन्तल*। मिश्र जी ने दुष्यन्त के विरह-वर्णन लिखने में मेघदूत से भी सहायता ली है और ऐसे छन्दों को स्थान दिया है—

शिला पै गेरु से कुपित ललना तोहि लिख धरौं
जो लौं चाहूँ तन अपन तेरे पगन में
चले तोलों ओसू दगन मग रोके उमगि के
नहीं धाता धाती चहत हम याहू विधि मिलें।

थियेट्रीकल नाटकों के अनुकरण पर 'धूमकेतु' की प्रासंगिक कथा अपनी ओर से जोड़ दी है। भाषा हिन्दी है। मारवाड़ी रंगत के गाने भी दिए हैं। टीकाराम एवं घासीराम कृत *सांगीत शाकुन्तला नाटक* (१८६५) मिश्र जी के सांगीत नाटक से हीनतर है। नरोत्तम दास जी के *सुदामा चरित्र* के आधार पर *सुदामा जी का स्वांग वो नाटक* १८६१ में लिखा गया।

संसार सागर रत्न या वैश्य नाटक (१८६३) खड़ी ताल का सांगीत नाटक है। इसके लेखक श्री मोहनलाल हैं। इस नाटक में वैश्यागमन के दोष दिखाए गए हैं। गद्य का प्रयोग नहीं है। कवि स्वयं 'रंगाचार' नाम से रंगमंच पर उपस्थित होकर कथा को अग्रसर करता है एवं वर्णन देता है। मुंशी रमजान ने *लैलामजनू* का स्वांग लिखा। गद्य का प्रयोग बहुत कम है। महाराजदीन दीक्षित का *प्रह्लाद चरित्र नाटक* (१९००) भी सांगीत नाटक कहा जा सकता है। *हरीचन्द, रूपवसंत, गुलफाम, पद्मावत, चित्रमुकुट, गुलबकावली* इत्यादि अनेक स्वांगों का निर्माण हुआ।

ये स्वांग गीतबद्ध नाटक ही हैं। अभिनेयता तो इनमें भरी पड़ी है। ये खेलने ही के लिए लिखे गए थे और प्रायः सब खेले भी गए थे। ये कथोपकथन रूप में रचे गए हैं। हाँ, बीच बीच में ब्रजभाषा नाटकों की नाई कवि भी पात्रों का परिचय देता रहता है और कथा को आगे बढ़ाता रहता है। वह कहीं 'कवि' है तो कहीं 'रंगाचार'। इन सांगीतों में शास्त्रीय राग-रागनियों की अपेक्षा जनप्रिय चलते रागों को अधिक गौरव प्राप्त हुआ जिनमें से कुछ का नाम है—चौबोला, टपाल, गज्ज, कड़ा, दादरा, दोहा, पद, सोरठा, चहरतवील, भूलना। इनमें से भी चौबोला, कड़ा, दौड़ और दोहे को प्रधानता मिली। सभी स्वांग नाटकों में चौबोले की पाँचवीं पंक्ति में संबोधन है—प्यारी

जी, प्यारे जी, राजा जी, रानी जी, जोगी जी, स्वामी जी, इत्यादि। घोर शृङ्गारिकता से ये भरे हैं। इसी शृङ्गारिक अश्लीलता ने स्वांग नाटकों को धक्का पहुँचाया है। बीच-बीच में रचयिता फल, फूल, आभूषण, भोजन, शस्त्र इत्यादि के नाम भी गिना देता है। सभी में आरम्भिक स्तुति है जिसमें पंचदेव, देवी, सरस्वती या गुरु की वंदना है।

इन्द्रसभा और थियेट्रीकल नाटक

इन्द्रसभा शैली के नाटक :—हम पीछे बता आए हैं कि १८५३ में निर्मित उस्ताद अमानत की इंदरसभा ने अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त की। प्रचलित सांगीत या रास शैली को पश्चिमी औपरा से मिला कर ही उस्ताद अमानत ने इस शैली का विकास किया। इन्द्रसभा शैली पर दर्याई इन्द्रसभा^१ (१८८०) और कृष्णविहारी शुक्ल की इन्द्रसभा निकलीं। कृष्णविहारी शुक्ल ने अमानत की इन्द्रसभा में कुछ राग-रागनियों अपनी ओर से जोड़ दी हैं। १८६७ में रामवचन मिश्र स्वतंत्र ने दर्याई इन्द्रसभा को नाटकीय रूप दिया। उन्होंने इसे 'बाव अर्थात् एकट' में बाँटा और 'बाव' को पदों में। वास्तव में अमानत की इन्द्रसभा में ही और गजले एवं गति जोड़ कर यह नाटकीय रूप दिया गया है। इन्द्रसभा की हँसी उड़ाने के लिए भारतेन्दु जी ने बन्दर सभा नाटक लिखा।^२ श्री सूर्यनारायण सिंह ने १८६८ में मुछ्न्दर सभा लिखी जिसमें इन्द्रसभा का परिहासात्मक चित्र उपस्थित किया गया है। यह प्रतीक रूप से लिखा राजनैतिक नाटक है। शरारत, रिश्वत, खयानत इत्यादि पात्र भारत दुर्दशा की शैली के हैं।

इन्द्रसभा के नाटकों के ही उत्तराधिकारी हैं पारसी थियेट्रीकल नाटक। इन्द्रसभा नाटकों की अत्यंत लोकप्रियता ने व्यवसायी पारसी कंपनियों को आकर्षित किया। कंपनियों के स्वामियों ने हिन्दू मुस्लिम कथानकों को इन्द्रसभा एवं पश्चिमी शैली पर उपस्थित करना आरम्भ किया। एक ओर बंगाल और महाराष्ट्र अपनी नाटकीय परंपरा को समृद्ध कर रहे थे तो दूसरी ओर उत्तर प्रदेश में पारसी कंपनियाँ धन बटोर रही थीं जिनका उद्देश्य कदापि न था कि उत्तम नाटकों का प्रणयन हो। उन्हें चाहिए था धन। फलतः इन्होंने लोकप्रिय इन्द्रसभा शैली के शृंगार, गजल-गीत, गीतात्मक संवाद और

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य (लेखक डा० वाष्ण्य) द्वि० सं० पृ० २७१।

२. डा० दशरथ ओझा कृत हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास, पृ० २८८।

नाच-कूद को अपना कर हिन्दी-उर्दू मिश्रित नाटक बनवाए एवं अभिनीत किए। इन्द्रसभा का प्रभाव इसी से देखा जा सकता है कि कई थियेट्रीकल नाटकों में इन्द्रसभा जुड़ती है।^१ कुछ नाटकों में तो इन्द्रसभा बलात् रखी गई है जैसे रामभजन मिश्र के प्रह्लाद नाटक में।

सबसे पूर्व बंबई में १८६० में पारसी नाटक कंपनी की स्थापना हुई। हिन्दी थियेट्रीकल नाटकों में सबसे प्राचीन नाटक बिल्वमंगल या सूरदास है। श्री श्रीलाल उपाध्याय ने १८६६ ई० में इसे उर्दू से अनूदित किया। भाषा पुष्ट है। थियेट्रीकल नाटकों में यह सबसे पुष्ट नाटक है। सेठ पेस्टन जी की 'ओरिजिनल थियेट्रीकल' कंपनी की सफलता ने कई नाटक कंपनियों को जन्म दिया और कई नाटककार भी उत्पन्न हुए। हाफिज मुहम्मद अब्दुल्ला, मिर्जा नजीर बेग, रौनक, जरीफ इत्यादि कई नाटककारों ने उर्दू नाटक लिखे जिनमें कहीं कहीं हिन्दी के शब्द और प्रचलित गीत भी स्थान पा जाते थे। मौहम्मद मियाँ रौनक साहब के नाटकों में से इन्साफे महमूद शाह ने बहुत धन कमाया। मियाँ 'जरीफ' ने लगभग २० नाटक लिखे जिनमें से शीरी फरहाद, चाँद बीबी, अलीबाबा, लैला मजनूँ, गुलबकावली, हातिमताई, छैल बटाऊ, नौरंगेइश्क, लाल गौहर मुख्य हैं। हाफिज मुहम्मद अब्दुल्ला और नजीर बेग के नाटकों में हिन्दी को, रौनक और जरीफ साहब की अपेक्षा अधिक स्थान मिला है। वास्तव में रौनक और जरीफ भूले भटके ही हिन्दी का प्रयोग करते हैं। हाफिज मुहम्मद अब्दुल्ला ने कई नाटक लिखे जिनमें से चार ने बड़ी ख्याति पाई। वे हैं इश्क फरहाद व शीरी या फसाने गमगीन (१८८१), लैला मजनूँ (१८८६), जोहरा बहिराम नाटक (१८८१) और शकुन्तला नाटक। हाफिज साहब के शकुन्तला नाटक ने बहुत प्रसिद्धि पाई। नजीर बेग के नाटक हिन्दी के और अधिक निकट आ गए हैं। उनके नाटक रामलीला नाटक अर्थात् नाटक मार्के लङ्का (१८६०), नाटक राजा सखी कृष्ण औतार अथवा नाटक चमन नौ बहार, सत् हरिश्चन्द्र नाटक अथवा तमाशा गर्दिशे तकदीर (१८६०-६१), नई चन्द्रावली लासानी या गुलशन पाकदामनी (१८६६) ऐसे ही नाटक हैं। 'हरिश्चन्द्र' को लेकर और

१. नजीरबेग का हरिश्चन्द्र नाटक, रामभजन मिश्र स्वतंत्र का हरिश्चन्द्र नाटक, हाफिज मुहम्मद अब्दुल्ला का शकुन्तला नाटक, रामभजन मिश्र का प्रह्लाद नाटक।

२. मिति भादों कृष्ण ८ संवत् १६२६, लेखक द्वारा दिया गया संवत्। लेखक की एक अन्य पुस्तक 'विद्यांकुर' (पाठ्य पुस्तक) १८६६ ई० की ब्रजरत्नदास जी के पुस्तकालय में है। अतः १८६६ में लेखक था।

भी थियेट्रीकल नाटक लिखे गए। चुन्नीलाल ने १८८६ में, महताप राय कायस्थ ने १८६० में और रामभजन मिश्र स्वतंत्र ने १८६६ में हरिश्चन्द्र नाटक लिखे। शेरअली के क़त्लहक़ीक़तराय (१८६६) ने भी नाम पाया था। इसमें न हक़ीक़तराय की धर्मभावना है न किसी पात्र के चरित्र चित्रण का प्रयास। इसके विपरीत हक़ीक़तराय के विवाह की क्रियाओं का अत्यंत विस्तार करा दिया गया है।

इन सभी थियेट्रीकल नाटकों में शृंगार को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान मिला है। बोसा, वस्ल, आलिंगन इत्यादि का बाज़ार खुलता है। कौतूहल प्रदर्शन तो इन नाटकों का आवश्यक अंग था। ताली बजाते ही विमान का उतरना, परियों का आना, आग पर से चलना, परी का ज़मीन में समा जाना, मोर का आस्मान से आना—ऐसे दृश्यों की योजना अवश्य की जाती थी। संवाद गीत-प्रधान होते थे। सब पात्रों को गाने का रोग है। नाटकों में चाहे जितनी अस्वाभाविकताएँ आ जायें नाटककार को चिन्ता न थी। विश्वामित्र का शिष्य, ब्रह्मचारी नक्षत्रा हरिश्चन्द्र की रानी से कहता है कि मैं तेरी जॉध पर सर रखकर सोऊँगा और सोता भी है (नज़ीरकृत हरिश्चन्द्र नाटक २-३)। दुष्यंत, कण्व के बगीचे में गुलनार, नरगिस, सुम्बुल लाला फूलों को ही देखते हैं, माधवी, पाटल, मल्लिका के पुष्प नहीं मिलते। (हाफ़िज़ कृत शकुन्तला)

अध्याय ८

‘आलाप’ साहित्य

संवाद नाटक के प्राण हैं। भारतेन्दुकाल में अकेले ‘संवाद’ भी लिखे गये। ‘संवाद’ नाटक का अंग भी है, अतः ऐसे संवादों को जो नाटक के अंग नहीं, कोई दूसरा नाम देना चाहिए। मैंने उनका नामकरण ‘आलाप’ किया है। यह नाम भी उसी काल का है। बाबू गंगाधर-गुप्त जी की प्रकाशित पुस्तक धर्मालाप हिन्दी संसार में प्रसिद्ध है। पत्रिकाओं और पत्रों में इन संवादों या आलापों के कई नाम दिये गये हैं। ‘वातचीत’, ‘वार्ता’, ‘पंच’, ‘परिहास’ इत्यादि। हमने हिन्दी संसार में प्रचलित नाम को ही ग्रहण करना उचित समझा है। इन आलापों की संख्या सहस्रो है और ये खोज के स्वतंत्र विषय हैं। ये आलाप कई प्रकार के हैं। यहाँ कुछ का संक्षिप्त परिचय मात्र दिया गया है।

(१) राजनैतिक

(क) जुबिली जमघट या यारों का ठट्ठा—इसमें तीन पात्र, पंचानन, पिलपिली साहब और टर्रे खाँ की बातचीत है। जो राजा लोग इंग्लैंड में जुबिली महोत्सव के अवसर पर गए थे उनको मान नहीं मिला, यद्यपि इन राजाओं ने लाखों रुपये चढ़े में दिये थे। इस पर ही दुःख प्रकट किया गया है। पंचानन हिन्दी बोलता है, पिलपिली साहब बगुआई हिन्दी और टर्रे खाँ उर्दू। कथन लम्बे हैं। यह आलाप, सूचनाओं से भरपूर हैं। टर्रे खाँ इन सूखे अंग्रेज सम्राटों से मुस्लिम बादशाहों को ही उत्तम बताता है जो प्रमत्त होकर कुछ न कुछ दे ही देते थे। इन्होंने तो बस अंग्रेजों के अच्छर—नाइट ब्राण्ड कमाण्डर आफ़ दी मोस्ट एक्जालटेड, आर्डर आफ़ दी स्टार इत्यादि ही दिये।

(ख) पण्डित मुंशी महाजन^१—इनकम टैक्स लगने पर तीनो पात्र दुःख प्रकट कर रहे हैं। तीनों की भाषा में भिन्नता है। मुंशी जी और महाजन टैक्स को कोस रहे हैं। अन्त में मुंशी जी टैक्स पर ग़जल पढ़ते हैं।

१. आनन्द कादम्बिनी, आश्विन कार्तिक, १९४४ वि०।

२. आनन्द कादम्बिनी, फाल्गुन-चैत्र १९४२।

हुआ फिर हिन्द में शोगाय टिक्स ।
मचा फिर हाय टिक्स, हाय टिक्स ।
बिगाड़ा हिन्द ने क्या कैसरे हिन्द ।
गरीबों पर है क्यों ईभाय टिक्स ।

(ग) वसन्त पूजा^१ में यजमान सर्वभट्ट और मुद्रभट्ट की बातचीत है । इसमें अनेक बातों पर व्यंग्य है जैसे 'गोरो देवता हनुमान देवता' 'अमला देवता स्वार्थी देवता—धोखा देवता—लाटो देवता—कोतवाली देवता—स्टार आफ इंडियाच में कौंसिलच में वरत्वंच में उपाधिच में ।

(घ) जैन्टिलमैन और जमींदार का वार्तालाप^२—जैन्टिलमैन, जमींदार के एक पटवारी का लडका है जो काशी में अंग्रेजी पढ़ कर गाँव में आया है । आलाप में इस जैन्टिलमैन और जमींदार की बातचीत है । इसमें अंग्रेजी शिक्षा के कुप्रभाव को दिखाया गया है । यह युवक बड़ों के प्रति सम्मान करना भूल गया है । इसने काशी में तीन वर्ष व्यतीत किए, पर न तो कभी गंगा जी में स्नान किया, न विश्वनाथ जी के दर्शन किए । युवक अंग्रेजी के वाक्य भी बोलता है ।

(ङ) डिपार्टमेंट समूह और तख्तीफ^३—यह प्रतीकवादी धारा पर लिखा आलाप है । इसमें बीबी तख्तीफ, सिविल एजुकेशनल पब्लिक वर्क्स डिसऑबिडियंस पात्र हैं । बीबी तख्तीफ एजुकेशनल और सिविल डिसऑबिडियंस को तो खा जाती है परन्तु पब्लिक वर्क्स डिसऑबिडियंस उसके पेट में से 'लैसंस टिक्स' नामक अंडा घूसा मार कर निकाल लेती है । यह लैसंस टिक्स पर व्यंग्यात्मक चित्र है ।

(च) लैसन टैक्स^४—आर्य और महापुरुष इसी टैक्स पर बातचीत करते हैं और दुख प्रकट करते हैं ।

(छ) हिदी उदू^५—दो मित्र इन दोनों भाषाओं की आलोचना करके हिन्दी को श्रेष्ठ ठहराते हैं ।

(ज) डाक्टरी डाका^६—एक सुन्दर आलाप है । एक डाकू रात में आ डाका डालता है किन्तु डाक्टर रूमी डाकू दिन रात डाका डालता है इसमें

१. हरिश्चन्द्र मैगजीन, मई १८७४ ।

२. कवि वचन सुधा, २७ नवंबर सन् १८७६ ।

३. वही, २२ अप्रैल १८७७, ८१२५ ।

४. कवि वचन सुधा, २ जुलाई, १८७७ ।

५. वही, १३ अगस्त, १८७७ ।

६. वही, ४ सितम्बर, १८७७ ।

यही दिखाया है कि डाक्टर किस प्रकार दोनों हाथों से जनता को लूटता है।

(२) सामाजिक-धार्मिक आलाप

(क) बाबू राधाकृष्णदास जी कृत धर्मांलाप (१८८७) में तीन शृङ्खलित आलाप संगृहीत हैं। इनमें से पहिला है पंडित वेदान्ती या वैरागी, ब्राह्मण, शैव, शाक्त, कौल और वैष्णव में। ये आपस में भगड़ते हैं, एक दूसरे को बुरा कहते हैं। केवल सनातन धर्म दूर से खड़ा इनका मौखिक महाभारत देखता है। दूसरे में 'जाति संघर्ष' दिखाया गया है। मारवाड़ी, सावजी, बाबूसाहब, लालासाहब, पंचपिरिए, दयानन्दी, ब्राह्मो, थियोसोफिस्ट, न्यू-फैशनिए, नेटिव क्रिश्चियन और नास्तिक आपस में भगड़ते हैं। यहाँ भी सनातन धर्म दूर खड़ा पश्चात्ताप करता है कि क्यों व्यर्थ में भगड़ रहे हैं। तीसरे में साहस और आशा सनातन धर्म को चैतन्य करते हैं। अन्त में सनातन धर्म की जय जयकार कराई गई है।

(ख) शूद्र कौन है^१—एक क्षत्री और शूद्र का आलाप है। इसका विषय है कि शूद्र कौन है। शूद्र बताता है कि शूद्र कचहरी, राजदरबार, पुलिस, रेल, तार, बैंक सभी जगह दिखाई देगे। वे कौन हैं? दगाबाज, फ़जूल खर्च, बेईमान, शराबी क्षत्री इत्यादि।

(ग) रोवो ! रोवो ! रोते जावो या गोबर गणेश और गवज्जूलाल की वार्ता^२—इसमें ज्योतिषियों पर सुन्दर व्यंग्य किये गये हैं।

(घ) बीबी मेहतरानी और ब्राह्मणी की बातचीत^३—यह एक सुन्दर व्यंग्यात्मक यथार्थवादी 'आलाप' है। ऐसी चलती भाषा कम ही आलापों की है। मेहतरानी नए राज्य में सजधज के साथ आशिकों के बल पर दीन ब्राह्मणों का अपमान करती है।

(ङ) सबै जात गोपाल की^४—इसमें उन ब्राह्मणों की हँसी उड़ाई गई है जो रूपए के लोभ से जाति की व्यवस्था दे देते हैं कि कायस्थ क्षत्री हैं, चमार ब्राह्मण हैं, जैनी ब्राह्मण हैं, धोबी भी ब्राह्मण हैं इत्यादि। यह सुन्दर व्यंग्यात्मक 'आलाप' है।

(च) ज्ञानविवेकिनी सभा^५—गड़रियों को ब्राह्मणों द्वारा व्यवस्था दे

१. क्षत्रिय पत्रिका, माघ १९३२।

२. आनन्द कार्दबिनी, भाद्रपद १९३८।

३. वही, आश्विन १९३८।

४. हरिश्चन्द्र मैगजीन, नव० १८७३।

५. वही, जुलाई १८७७।

दी जाती है कि तुम क्षत्रिय हो। भूरि दक्षिणा की चोट कम नहीं होती। अन्त में स्त्री सहित गड़रिया गाता है—

धन धन बाग़्मना ले पोथिया पुरानी
जिन दियो छुतरी बनाइ जग जानी।

(छ) सेठ रामरत्न बहादुर और दयानन्द स्वामी का संवाद^१—मूर्ति-पूजा और सनातन धर्म को दृष्टि में रख कर दयानन्द जी की हँसी उड़ाई गई है।

(ज) ज्ञानचन्द्र और प्रेमचन्द्र^२—एक युवक ईसाई हो गया। उस पर दुख प्रकट किया गया है और कहा गया है कि उसने स्वामी दयानन्द के ग्रंथ नहीं पढ़े, नहीं तो वह ईसाई कदापि न होता।

(झ) जुआरी खुआरी^३—दिवाली के अवसर पर जुआरियों की क्या दशा होती है, इसमें व्यक्त किया गया है।

(३) साहित्यिक आलाप

प्रवत्स्यत्पतिका^४—यह बहुत ही सरस और सुन्दर आलाप है। पति विदा होने आता है। इस अवसर पर प्रवत्स्यत्पतिका की बड़ी ही सरस उक्तियाँ हैं। पति और पत्नी का 'आलाप' है। पत्नी रेल को कोसती है जो उसके पति को विदेश ले जायेगी। आँखों में आँसू आते हैं तो नायिका कहती है 'मेरी आँखें ! अभी तो रोने के बहुत दिन पड़े हैं पेट भरकर रो लेना। इस समय प्रान प्रीतम को निहार तो लो।' अन्त में एक विनय करती है 'मेरी आँखों को अपने साथ लेते जाइये। नहीं तो ये आप के देखे बिना नदियों बहाकर मुझे डुबो देगी। वास्तव में 'आलाप' द्वारा नायिका-भेद के प्रवत्स्यत्पतिका रूप को सरसता के साथ चित्रित किया गया है।

ऐसे सैकड़ों नहीं सहस्रो आलाप पत्रिकाओं के आँचल में बैठे हिन्दी खोजकों की ओर देख रहे हैं। शैली की दृष्टि से ये दो प्रकार के हैं (१) शुद्ध आलाप—इसमें दो, तीन या चार व्यक्तियों का विशेष विषय पर आलाप मात्र है। बीच में कोई नाटकीय गति पैदा नहीं की जाती। पात्रों का आना जाना, किसी को मारना पीटना, लुकना-छिपना, नहीं होता, जैसे शूद्र कौन है ? जुबिली जमघट, हिन्दी उर्दू, सेठ रामरत्न और दयानन्द स्वामी, धर्मांलाप।

१. कवि वचन सुधा, ६ जुलाई १८७७।

२. ब्राह्मण १-५, १५ जुलाई १८८३।

३. वही, १-६, १५ नवंबर, १८८३।

४. कवि वचन सुधा, १५ नवंबर १८७५।

ये शुद्ध आलाप हैं, केवल संवाद मात्र हैं । (२) नाटकीय आलाप—जिनमें संवाद के साथ साथ कुछ थोड़ी बहुत कथा-गति भी है जैसे बीबी मेहतरानी और ब्राह्मणी, डाक्टर डीका, ज्ञानविवेकिनी सभा, डिपार्टमेन्ट समूह और तख्तीफ । विजयानन्द दुबे कृत महामोह नाटक (१८८४) जगन्नाथ भारतीय कृत आर्यमत मार्तण्ड नाटक (१८६५) भी नाटकीय आलाप हैं क्योंकि इनमें वाद-विवाद ही भरा है ।

लक्षण ग्रन्थ

गणेशकवि कृत दशरूपक हिन्दी का पहिला नाट्य शास्त्र है जिसकी चर्चा संधिकाल में की जा चुकी है । १८८१ में भारतेन्दु जी का नाटक नामक लघु ग्रंथ लिखा गया । यह हिन्दी का दूसरा नाट्य शास्त्र है । ऐतिहासिक क्रम से वह भले ही दूसरा हो किन्तु यह हिन्दी का पहिला ही लक्षण ग्रन्थ है क्योंकि गणेश कवि कृत ग्रंथ साहित्य दर्पण और दशरूपक का अनुवाद अधिक है जिसके बीच बीच में भरतमुनि का भी उल्लेख हुआ है । इसमें अपनी मौलिकता नहीं है, और न स्पष्ट शास्त्रीय विवेचना है । गणेश कवि के इस दशरूपक द्वारा हम संस्कृत के नाट्य शास्त्र सम्बन्धी नियमों को जान सकते हैं किन्तु हिन्दी नाटको को दृष्टि में रखकर लिखा जानेवाला सबसे पहिला लक्षण ग्रंथ भारतेन्दु जी का नाटक ही माना जायेगा । इसमें पूर्वी और पश्चिमी नाटकों एवं नाट्यशास्त्रों की संक्षिप्त चर्चा है एवं हिन्दी नाटककारों के सामने समन्वित मार्ग रक्खा गया है । तत्कालीन हिन्दी नाटककारों ने भारतेन्दु जी की व्यवस्था को ही सहर्ष स्वीकार किया । भारतेन्दु जी के नाटक नामक लक्षण ग्रंथ में व्यक्त विचारों की चर्चा आगे स्थान स्थान पर हुई है ।

चतुर्थ खण्ड

तत्त्व-विवेचन

अध्याय १

प्रस्तावना

भारतेन्दुकालीन प्रायः सभी नाटकों में प्रस्तावना को स्थान मिला है। प्रस्तावना रहित नाटकों की संख्या अत्यंत अल्प है।^१ अतः प्रस्तावना इन नाटकों का एक आवश्यक तत्त्व सिद्ध होता है। प्रस्तावना के पाँच अंग मिलते हैं—(१) मंगलाचरण, (२) प्रस्ताव, (३) सुभाष, (४) परिचय और (५) अंत।

(१) मंगलाचरण

संस्कृत नाटकों का आरंभ नांदी पाठ से होता है। नांदी है क्या? आचार्य विश्वनाथ ने नांदी का लक्षण दिया है 'देवता, ब्राह्मण तथा राजादिकों की आशीर्वादयुक्त स्तुति इससे की जाती है अतः इसे नांदी कहने हैं। इसमें मंगल्य वस्तु, शंख, चक्रवाक, चन्द्र और कुमुदादिकों का वर्णन होना चाहिये। इसमें १२ या ८ पद होने चाहिये^२। साहित्यदर्पण-कार के इस मत का आधार भरतमुनि का निम्न श्लोक है—

आशीर्वचनसंयुक्ता नित्यं यस्मात्प्रयुज्यते

देवद्विजन्मदादीनां तस्मान्नान्दीति सज्जिता ॥५-२४^३

यह मांगलिक पाठ, पूर्व रंग का एक आवश्यक अंग था। संस्कृत नाटकों में पूर्वरंग संबंधी अन्य कार्य तो छूट गए, केवल नांदी कृत्य न छूट सका। नांदी के अन्तर्गत स्तुति, वंदना या आशीर्वाद युक्त छन्द थे जो पूर्वरंग के कृत्यों के अन्त में पढ़े जाते थे। अब प्रश्न उठता है कि इन नांदी छन्दों को कौन पढ़ता था? भरतमुनि का कथन है कि सूत्रधार ही मध्यम स्वर से इनको पढ़े^४।

१. माधवानल कामकंदला, उषाहरण, विद्याविलासिनी व सुखबंधनी, श्रीमती लाली कृत गोपीचन्द एवं लघु रूपक (भाण, प्रहसन इत्यादि)।

२. साहित्य-दर्पण (६-२४, २५) टीकाकार श्री शालिग्राम जी शास्त्री।

३. नाट्यशास्त्र, निर्णयसागर प्रकाशन।

४. सूत्रधारः पठेत्तत्र मध्यमं स्वरमाश्रितः

नान्दीं पदैर्द्वादशभिरष्टभिर्वाप्यलंकृताम् ॥ ५-१०७

(निर्णयसागर प्रकाशन)

किन्तु भास को छोड़कर^१ संस्कृत के प्रायः सभी नाटकों में सूत्रधार रंगमंच पर आकर नांदी पाठ को बंद करता है और कहता है 'अब इस प्रसंग की आवश्यकता नहीं है'^२। बस बस, अधिक विस्तार न करो^३। नांदी पाठ हो रहा था जिसे सूत्रधार ने आकर रोका है। एक ओर भरतमुनि का कथन है कि सूत्रधार नांदी पाठ करे, दूसरी ओर संस्कृत नाटकों में वह नान्दी पाठ को आकर रोकता है। यह कैसे सम्भव है? श्री विल्सन ने इसकी संगति इस प्रकार बैठाई कि सूत्रधार ब्राह्मण रूप से पर्दे के पीछे से नान्दी पाठ करता था और नांदी पाठ के अंत में पर्दे से बाहर अधिकारी रूप में आकर नांदी पाठ को रोकता था^४। डा० कीथ भी श्री विल्सन से सहमत हैं^५। किन्तु डा० कीथ का मत है कि नांदी पाठ और कोई भी कर सकता था। डा० कीथ नांदी नामक नट की सम्भावना का भी उल्लेख करते हैं^६।

संस्कृत की यह नांदी-परम्परा भारतेन्दुकालीन हिन्दी नाटकों में भी मिलती है। हाँ, नांदी के स्थान पर अधिकांश नाटकों में नाम 'मंगलाचरण' है। नांदी^७ और आशीर्वाद^८ नाम का प्रयोग कम हुआ है। मंगलाचरण या मंगलपाठ नाम देनेवाले नाटकों की संख्या कई गुनी है। अधिकांश हिन्दी नाटकों में स्पष्ट संकेत नहीं है कि इस मंगलाचरण को कौन पढ़ेगा। वरम मंगलाचरण होता है जिसके बाद सूत्रधार का प्रवेश होता है। कुछ नाटकों में 'नांदी' नामक नट आकर मंगलाचरण करता है^९! श्री शालिग्राम शास्त्री के नाटक—

१. भास के नाटकों में नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार रङ्गमञ्च पर आता है और आशीर्वाद देता है। भास के शब्द हैं 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' देखिये, प्रतिज्ञायौगंधरायण, स्वप्नवासवदत्तम् का आरंभ।

२. 'अलमति प्रसंगेन' (वेणीसद्वार, मुद्राराक्षस)।

३. 'अलमति विस्तरेण' अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, उत्तररामचरितम्, प्रबोधचंद्रोदय, नागानंद, रत्नावली।

४. द थियेटर अब द हिंदूज (फर्स्ट एडिशन) पृ० २१।

५. कीथ्स, संस्कृत ड्रामा (१६२४), पृ० ३४४।

६. वही, पृ० ३४३।

७. वैदिकी हिंसा, प्रेमघन कृत भारत सौभाग्य, पद्मावती, प्रतापसिंह, गंगोत्री, मयंक मंजरी, मिथिलेशकुमारी, वारांगना रहस्य, भारतीहरण, प्रचण्ड-गोरक्ष, दमयंती स्वयंवर।

८. चन्द्रावली नाटिका।

९. मोरध्वज, रामयशदर्पण नाटक, रामलीला (बालकांड, दामोदर शास्त्री कृत), शील सावित्री नाटक, अभिमन्यु नाटक, प्रद्युम्नविजय व्यायोग,

अभिमन्यु, मोरध्वज और पुरुविक्रम में यह नांदी पात्र एक भंगड़ ब्राह्मण है जिसकी वेशभूषा भी नाटक में दी गई है। सतीचरित्र नाटक में भी वह ब्राह्मण है किन्तु भंगड़ नहीं। कुछ नाटकों में सूत्रधार भी मंगलाचरण करता है।^१

मंगलाचरण प्रधानतया हिन्दी-छन्द—दोहा, छप्पय, हरिगीतिका, कविता इत्यादि ही में लिखा गया है। पद या गीतों में भी लिखा गया है। मंगलाचरण में हिन्दी-छन्द और गीतों का प्रयोग स्वाभाविक भी था। कुछ नाटककारों ने संस्कृत नाटको के अनुकरण पर संस्कृत में भी मंगलाचरण लिखा है। इनमें से कुछ ने संस्कृत श्लोको के साथ हिन्दी-छन्द भी दिए हैं^२, कुछ ने संस्कृत श्लोको का अर्थ भी दे दिया है^३। निष्कर्षतः कहना पड़ेगा कि अधिकांश हिन्दी नाटककारों ने मंगलाचरण अवश्य किया है, वह भी हिन्दी-छन्द और गीतों में। मंगलाचरण में शिव, कृष्ण, गणेश, राम, सीता, राधा और गुरु की स्तुति है। आशीर्वादात्मक मंगलाचरण जिनमें देव या राजा की जय मनाई गई है या प्रशंसा की गई है, कम हैं। भारतेन्दु जी के मंगलाचरण आशीर्वादात्मक हैं। सत्य हरिश्चन्द्र में कृष्ण और शिव के साथ राजा और कवि हरिश्चन्द्र की जयकार की गई है।^४ चन्द्रावली में अपने प्यारे कृष्ण की जय मनाई गई है।^५ भारतेन्दु जी के अतिरिक्त स्तुतिपरक मंगलाचरण ही अधिक मात्रा में है और आशीर्वादात्मक कम प्रयुक्त हैं।^६ कुछ नाटको में भारत एवं भारतीय वीर नर-नारी का गुणगान किया गया है।^७

(२) प्रस्ताव

संस्कृत नाटको में दो पात्र आकर वार्तालाप करते हैं। वे हैं सूत्रधार

द्रोपदी वल्लहरण, कपटी मुनि नाटक, मीराबाई, पुरुविक्रम, कमलमोहिनी-भैरवसिंह, विद्याविनोद, देशदशा, सती चरित्र।

१. बलदेव जी अग्रहरि कृत सुलोचना सती, मालती वसंत, विवाह विडंबन।

२. पुरुविक्रम नाटक, माधवानल कामकंदला, मोरध्वज, विवाह विडंबन।

३. भारतीहरण, प्रचण्ड गोरक्षण, अनर्घ नल-चरित्र।

४. सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अग्रहर सुखकंद।

जनहित कमलातजन जय शिव नृप कवि हरिचन्द्र।

५. जयति अलौकिक धन कोउ, लखि नाचत मन मोर।

६. सीताहरण, महाराणा प्रताप, प्रेम सुन्दर।

७. भारत दुर्दशा, नीलदेवी, सती चन्द्रावली, अमरसिंह राठौर।

और नटी,^१ सूत्रधार और पारिपार्श्वक^२ अथवा सूत्रधार और नट।^३ हिन्दी नाटककारों ने अपने नाटकों में सूत्रधार और नटी को प्रधानता दी है। कुछ नाटककारों ने सूत्रधार के स्थान पर नट को लाकर उसका नटी से संवाद कराया है।^४ संस्कृत की परंपरा के सूत्रधार और पारिपार्श्वक भी थोड़े से नाटकों में स्थान पाते हैं।^५ शिवशंकरलाल कृत रामयश दर्पण में सूत्रधार और उसका पुत्र 'प्राणवल्लभ' वार्तालाप कर रहे हैं। अन्य नाटकों की प्रस्तावना में भी प्रधानतया दो ही पात्र आकर संवाद करते हैं। हाँ, वे सूत्रधार और नटी नहीं हैं। दामोदर शास्त्री कृत बालखेल नाटक में वे 'बाल' और 'खेल' हैं, पगपखारन लीला की प्रस्तावना में प्रधान और उसके सहकारी बातचीत करते हैं और हिन्दी उर्दू नाटक की प्रस्तावना में दो नट ही दर्शन देते हैं। एक^६ या तीन^७ पात्र वाली प्रस्तावनाएँ इनीगिनी हैं। फलतः हिन्दी नाटकों में सूत्रधार प्रधानतया मङ्गलाचरण के बाद रंगमंच पर आता है। वह प्रेक्षकों को देख प्रस्ताव करता है कि आज कोई नाटक खेला जाय जो प्रेक्षकों का मनोरंजन करे और शिक्षाप्रद भी हो। तब वह अपनी प्राणवल्लभा नटी को पुकारता है।

(३) सुभाव

नटी मंच पर आती है। सूत्रधार का अभिनय-प्रस्ताव सुन कर अपना सुभाव उपस्थित करती है कि अमुक नाटक खेला जाय। कभी कभी वह कई नाटकों का सुभाव देती है किंतु सूत्रधार सहमत नहीं होता क्योंकि वे खेले जा चुके हैं।^८ अंत में नटी प्रस्तुत नाटक का सुभाव देती है। ऐसा बहुत ही कम हुआ है कि सुभाव सूत्रधार की ओर से आया हो।

(४) परिचय

सुभाव आने के बाद नाटक और नाटककार का परिचय दिया जाता

१. अभिज्ञान शाकुन्तल, दूतांगद, नागानंद, मुद्राराक्षस, प्रतिज्ञा यौगंधरायण, प्रबोध चन्द्रोदय, रत्नावली, मृच्छकटिक।

२. वेणीसंहार, चण्डकौशिक, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र।

३. प्रसन्नराघव, महावीरचरित, उत्तर रामचरित, मालतीमाधव।

४. मीराबाई।

५. प्रद्युम्नविजय व्यायोग, सरस्वती, प्रेमयोगिनी, चन्द्रावली।

६. भारतीहरण, पुरुषिक्रम, अभिमन्यु।

७. दमयंती स्वयंवर।

८. लावण्यवती सुदर्शन, मोरध्वज, पुरुष विक्रम, महाराणा प्रताप।

है। सूत्रधार या नटी द्वारा नाटक की बड़ाई भी की जाती है^१। नाटककार कभी कभी नाटकीय कथा को संक्षेप में कह देता है^२। नाटककार के परिचय में कभी नाटककार अपनी प्रशंसा करवाता है^३ और कभी अपनी पूरी वंशावली

१. (क) प्राणनाथ ! अभिमन्युवध उसका नाम है और लाला शालिग्राम वैश्य मुगादाबाद निवासी का निर्माण किया हुआ है। उसमें करुण रस और वीर रस ऐसा भलकाया है मानो साक्षात् दर्श रहा है, अक्षर अक्षर से करुण रस टपक रहा है (अभिमन्यु वध)।

(ख) सूत्र—ठीक है, यही हो। भला इससे अच्छा कौन नाटक होगा एक तो इन लोगो ने उसे भी अभी तक देखा नहीं है, दूसरे आख्यान भी करुणापूर्ण राजा हरिश्चन्द्र का है..... (सत्य हरिश्चन्द्र नाटक)।

(ग) नटी—हाँ नाथ, मैं भी उसका कहना भूल गई थी। वास्तव में सतीत्व का वह सर्वोत्तम नाटक है और सबके मन का रंजन भी करता है— (मनोरंजनी)।

(घ) नटी—प्राणवल्लभ ! इस नाटक में तो वियोग बहुत है, विरहानल से शरीर जल कर भस्म होने लगता है... (पुरुषिक्रम)।

२. बन्दोदीन दीक्षितकृत सीताहरण, सप्रेमिता स्वयंवर, कुंदकली।

३. (क) नटी—हा ! प्यारे हरिश्चन्द्र का संसार ने कुछ भी गुण-रूप न समझा। क्या हुआ कहेगे सब्र ही नैन नीर भरि भरि पाछे प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी रहि . . . (सत्य हरिश्चन्द्र)।

(ख) सूत्र०—और हम लोगो का परम बन्धु, पिता-मित्र-पुत्र सब भावनाओं से भावित, प्रेम की एकमात्र मूर्ति, सत्य का एक मात्र आश्रय, सौजन्य का एक मात्र पात्र, भारत का एक मात्र हित, हिन्दी का एक मात्र जनक, भाषा नाटको का एक मात्र जीवनदाता हरिश्चन्द्र ही दुखी हो... (प्रेम योगिनी)।

(ग) नटी—नटाचार्य ऐसे क्यों कहते हो ? अभी संवत् १९३७ में विद्यार्थी नामक संस्कृत मासिक पुस्तक के संपादक—‘श्री हरिश्चन्द्र नारायण बलि’ आदि महाराष्ट्री काव्यों के और ‘भाषादर्श’ नामक हिन्दी संस्कृत और उभयविध गद्यपद्यात्मक ग्रंथों के लेखक आपके मित्र दक्षिणात्य द्विजवर पंडित दामोदर शास्त्री सप्रे ने भी नाथद्वारे से ‘रामलीला’ या ‘नाटककार रामायण’ भेजा... है (रामलीला बालकाण्ड)।

(घ) नटी—मुझे याद आया, प्रभास मिलन आदि अनेक प्रसिद्ध नाटकों के निर्माता पं० बलदेवप्रसाद मिश्र (मीराबाई)... !

दे देता है^१। कुछ नाटककार बड़ी नम्रता प्रकट करते हैं।^२ परिचय के अंतर्गत उस काल में नाटको^३ की और भारत^४ की क्या अवस्था थी, इसकी भी चर्चा की गई है।

(५) अन्त

प्रस्तावना का अंत दो प्रकार से किया गया है—(१) साधारण ढंग से—इसमें सूत्रधार और नटी यह कह कर चले जाते हैं कि चलो अभिनय करें^५। अधिकतर हिंदी नाटको में प्रस्तावना का अंत इसी प्रकार से हुआ है। (२) शास्त्रीय ढंग से—इस रूप में आमुख के तीन भेदों—कथोद्घात, प्रयोगातिशय और प्रवृत्तक—में से कोई भेद अपना कर प्रस्तावनान्त किया गया है। धनञ्जय के अनुसार आमुख के ये ही तीन प्रकार हैं।^६

कथोद्घात

जब सूत्रधार के वाक्य या वाक्यार्थ को अपने से संबद्ध समझ कर उन वाक्यों या वाक्यार्थ को ही पकड़ कर पात्र प्रवेश करता है तो कथोद्घात नामक आमुख कहलाता है। उदाहरण—

(क) सत्य हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु जी कृत) नाटक में सूत्रधार कहता है—
जो गुन नृप हरिचन्द्र में, जगहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचंद्र में, लखहु प्रतच्छ सुजान॥

१. प्रद्युम्न व्यायोग, प्रद्युम्न विजय।

२. रुक्मणीहरण नाटक।

३. पुरु विक्रम, मयकमंजरी, अकबर गोरक्षा न्याय नाटक।

४. दमयंती स्वयंवर, महाराणा प्रताप, मनोरंजनी, प्रचण्डगोरक्ष नाटक।

५. (क) सूत्रधार—तब चलो हम लोग भी अपना स्वांग सजें।
(उद्धव नाटक)

(ख) सू०—शीघ्र चलो रूप परिवर्तन करे। (गंगोत्री)

(ग) सू०—वरेक्षणे, तो चलो हम लोग भी चल कर आवश्यकीय कार्य-साधन में तत्पर हो। (रुक्मणी परिणय)

(घ) सूत्रधार—चलो शीघ्रता करो। लोग उकता रहे हैं। (महाराणा प्रताप)

(ङ) सू०—चलो सज्जित हो आवैं। (शील सावित्री)

६. दशरूपक ३-६. १० व ११।

सूत्रधार के इन शब्दों का अर्थ ग्रहण कर इन्द्र कहता हुआ प्रवेश करता है—

यहाँ सत्य भय एक के, कौपित सब सुरलोक ।

यह दूजो हरिचंद को, करन इन्द्र उर सोक ॥

(ख) देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत भारतीहरण में नट अपने गीत में कल्पना और कलियुग का गुण गाता है—

कल्पना कलियुग की दुलही, सुनो हो प्यारी भारत माँहि रही
नेपथ्य से 'बालक भारत' सूत्रधार के शब्दार्थ ग्रहण कर कहता आता है—

‘कौन सा नराधम पापी पिशाच है जो कलियुग और कल्पना का नाम हमारे भरतमुनि के राज्य में ले रहा है ?’

(ग) गोसंकट नाटक (प० अम्बिकादत्त व्यास कृत) में सूत्रधार पढ़ता है—

हैं ही सब अति प्रीति, देखि धेनु संकट चरित ।

सूत्रधार के शब्दों को पकड़ कर नेपथ्य से 'ब्रह्मचारी' यह कहता प्रवेश करता है 'अरे कौन दुष्ट हम लोगो के जीते जी धेनुसंकट दिखलाया चाहता है ?'

(ध) इसी प्रकार के कथोद्घात आमुख वाले नाटक ये हैं—

प० देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत गोवध निषेध और रुक्मणी हरण,
अम्बिकादत्त व्यास कृत ललिता, प्रेमघन कृत भारत सोभाग्य और सुदर्शनाचार्य
कृत अनर्घनल चरित्र महानाटक ।

प्रयोगातिशय

जब सूत्रधार कहता है, लो वह आ रहा है और प्रथमांक में उसी पात्र का प्रवेश हो तो वहाँ प्रयोगातिशय नामक आमुख है । उदाहरण—

(क) नटी—नाथ ! यह राजकुमारी संयोगिता की रसीली वाणी है और निकटवर्ती होने से ऐसा मालूम पड़ता है कि वह अपनी सखियों के 'संग इस ओर आ रही है' ।

(संयोगिता स्वयंवर)

(ख) सूत्रधार—‘अरे यह क्या साक्षात् दुर्वासा की मूर्ति आर्य भागुरायण बड़े वेग में क्रोध से भरे इधर ही आ रहे हैं’ । (दमयंती स्वयंवर) ।

(ग) प्रयोगातिशय आमुख वाले अन्य नाटक ये हैं—चन्द्रावली नाटिका, मीराबाई, विवाहिता विलाप, अभिमन्युवध, रुक्मणी परिणय, प्रचंड गोरक्ष नाटक ।

प्रवृत्तक

काल (ऋतु वर्णन इत्यादि) की समानता को ले कर जब पात्र-प्रवेश

सूचित किया जावे तो वहाँ प्रवृत्तक नामक आमुख है ।^१ प्रवृत्तक के उदाहरण हिन्दी में नहीं के बराबर हैं ।

(क) राजा खड्गबहादुर मल्ल कृत भारत आरत में नटी गाती है—

आज चहुँदिसि ऋतुपति प्रवेस । मचि रह्यो दुन्द अति देस देस ।

एहि ऋतु दुराज फैल्यो दिगन्त । जिमि जुगल नारि मधि एक कंत ॥

इस गीत में भारत की तत्कालीन दुर्दशा का भी चित्रण है जिसका चित्रण प्रथमांक में है ।

(ख) भारतेन्दु जी कृत सती प्रताप प्रथम दृश्य में तृतीय अप्सरा अपने गीत द्वारा वन में लता-बेलियों के फूलने की चर्चा करती है । दूसरे दृश्य के आरंभ में सती सावित्री एवं उसकी सखियाँ वन में फूली-फूली फिरती दिखाई देती हैं ।

कुछ नाटकों में सूत्रधार एवं नटी को प्रस्तावना में न लाकर वैतालिक^२ योगी,^३ अप्सरा^४ या देवांगना^५ द्वारा राष्ट्र या आदर्शनायिका-नायक की जयजयकार कराई गई है अथवा भारत की दुर्दशा पर आँसू बहाए गए हैं । यह अनियमित प्रस्तावना है । इस काल में भरत वाक्य के रखने की ओर नाटककारों ने रुचि नहीं दिखाई है । बहुत कम नाटकों में भरत वाक्य प्राप्त होता है ।

१. हिन्दी दशरूपक (अनु० डा० गोविन्द त्रिगुणायत) ३-१०

२. अमरसिंह राठौर ।

३. भारत दुर्दशा

४. सती प्रताप

५. सती चन्द्रावली

अध्याय २

कथानक

हिन्दी नाटक संसार में भारतेन्दु-काल अपने सामंजस्यवादी दृष्टिकोण के लिए सदा स्मरणीय रहेगा। इन नाटककारों ने सर्वथा पूर्वीय नाट्यशास्त्रों की अवहेलना नहीं की और न पश्चिम का अनुकरण ही किया। वरन् उन्होंने अपना स्वतंत्र सामंजस्यवादी पथ बनाया। इस दिशा में वे भारतेन्दु जी द्वारा प्रदर्शित मार्ग को अपनाते रहे। भारतेन्दु जी ने स्पष्टता और साहस के साथ कहा कि हमें नाटक लिखने में परिवर्तित समय के साथ चलना चाहिए किन्तु इसके लिए आवश्यक नहीं है कि हम उपयोगी पुराने नियमों की सर्वथा उपेक्षा करें।^१ सब नाटककारों ने इस उपदेश के सामने सिर झुकाया और हिन्दी नाटकों के लिए दोनों के सम्मिश्रण से एक स्वतंत्र मार्ग बनाया।

भारतेन्दु जी ने अपने कथन के अनुसार पूर्वी नाट्यशास्त्र का विश्लेषण किया^२ और पश्चिमी नाट्यशास्त्र की भी सक्षिप्त चर्चा की।^३ हिन्दी (खड़ी बोली) का नाट्यशास्त्र सन्धी युग का यह सबसे पहिला ग्रंथ है। इसके बाद कई ऐसे ग्रंथ बने जिनमें नाट्यशास्त्र के नियमों का विश्लेषण किया गया।^४ विद्वानों ने अपने इन ग्रंथों में संस्कृत नाट्यशास्त्र के नियमों का विश्लेषण किया है। सभी ने लक्षण देकर उदाहरण भी संस्कृत के नाट्यशास्त्रों— दशरूपक एवं गणेश-संघर्ष से अनूदित करके रखे हैं। उदाहरण स्वरूप हम 'संधि प्रकरण' को ले लें। संधिया की व्याख्या करके उदाहरण संस्कृत नाटकों के वे ही हैं जो प्रायः दशरूपक एवं साहित्यदर्पण में प्राप्त होते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि नाट्यशास्त्र के नियमों को अपना कर संधि और संध्यंगा के अनुसार हिन्दी में नाटक नहीं लिखे गए। तभी तो संस्कृत नाटकों

१. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहिला भाग, प्र० सं०, पृ० ७१६।

२. वही, पृ० ७१६-७१६, ७२४-७४१।

३. वही, पृ० ७२०-७२४।

४. पं० बलदेवप्रसाद मिश्र कृत 'नाट्य प्रबंध', पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी कृत नाट्यशास्त्र, डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' कृत नाट्य निर्णय, डा० श्यामसुन्दर दास कृत रूपक रहस्य, बा० गुलाबराय कृत हिन्दी नाट्य विमर्श, बा० ब्रजराज दास कृत हिन्दी नाट्य साहित्य, पं० सीताराम चतुर्वेदी कृत 'अभि-
नव नाट्यशास्त्र, श्री राजेन्द्रप्रसाद गौड़ कृत हमारी नाट्य साधना।

से उदाहरण लेने पड़ते हैं। किन्तु ऐसी बात नहीं है कि संधियों के अनुसार हिन्दी में शुद्ध नाटक नहीं लिखे गए। ऐसे दो नाटक हिन्दी में हैं जिनमें संधियाँ ही नहीं संध्यंग भी मिलते हैं। ये दो नाटक हैं (१) गणेश कविकृत प्रद्युम्न विजय और (२) सुदर्शनाचार्य कृत अनर्घनल चरित्र। पहिला नाटक ब्रजभाषा शैली पर लिखा नाटक है। अतः हिन्दी के विद्वान ब्रजभाषा नाटको के साथ इसे भी नाटक संभवतः स्वीकार न करें किन्तु दूसरा आधुनिक शैली पर लिखा नाटक है। अतः इस नाटक पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

संधियाँ

संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार कथानक संधि-रहित नहीं हो सकता। भरतमुनि अपने नाट्यशास्त्र में कहते हैं कि कथानक नाटक का शरीर है और पंच संधियाँ शरीर के पाँच भाग हैं।^१ संध्यंगों की भी आवश्यकता उन्होंने उत्तम नाटक के लिए बताई है।^२ भरतमुनि का तो यहाँ तक कथन है कि संध्यंगों से रहित नाटक वैसा ही होगा जैसा कि अंगों के बिना मनुष्य होता है।^३ दशरूपक कार ने भी संध्यंगों पर बहुत बल दिया है और इनके प्रयोग के ६ लाभ दिखाए हैं।^४ इसलिए हिन्दी नाट्यशास्त्र पर लिखने वाले विद्वानों ने भी संधियों एवं संध्यंगों की चर्चा विस्तार से की है।

भारतेन्दु-काल के कुछ नाटकों में संधियों का ध्यान रक्खा गया है। हरिऔध जी कृत प्रद्युम्न विजय व्यायोग में नाट्यशास्त्रानुसार मुख, प्रतिमुख और निर्वहण संधियाँ हैं, जो कि एक व्यायोग में होनी ही चाहिये।^५ आरंभ से लेकर भीष्म परिचय तक (पृ० १८ तक) मुख संधि है। पृष्ठ ४१ तक प्रतिमुख संधि ही है। सारा युद्ध वर्णन इसी में है। पृष्ठ ४२ से अन्त तक निर्वहण संधि है। प० बालकृष्ण भट्ट ने दमयंती स्वयंवर में भी पंच संधियों का ध्यान रक्खा है। प्रस्तावना में ही सूत्रधार कहता है, “भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र में पूर्ण अभ्यासी अपने को अवश्यमेव मानते ही हैं।” यद्यपि नाटककार ने आधुनिक शैली से पाँच अंकों को गर्भाकों में विभाजित किया है, किन्तु पाँच अंकों में पंच संधियों का सन्निवेश किया है। अनर्घ नल चरित्र में संधियाँ ही नहीं संध्यंग भी प्राप्त होते हैं।

१. नाट्यशास्त्र (चौखंभा प्रकाशन) २१-१ ।

२. वही, २१-१०६ एवं ११८ ।

३. वही, २१-५५ ।

४. दशरूपक १-५५ ।

५. साहित्यदर्पण ६-२३१ ।

संधियाँ

संधियाँ अर्थप्रकृति और कार्य-अवस्थाओं के योग से बनती हैं। पाँच अर्थप्रकृतियाँ (बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य) जब पाँच कार्य-अवस्थाओं (आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियतासि और फलागम) से मेल करती हैं तो पंच संधियो (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श या अवमर्श और निर्वहण) का जन्म होता है ।^१

मुख संधि

बीज^२—अंक एक के आरंभ में मालिका का कथन 'बीज' है। यह कथन बीज रूप से समस्त कथा का संकेत कर देता है।

आरंभ^३—पहिले अंक में ही दसवें श्लोक और उसके बाद के गद्य-कथन में दमयन्ती उत्सुकता प्रकट कर रही है कि मैं कब उनका मुख देखूँगी। यहाँ आरम्भ कार्य-अवस्था है।

मुख संधि

पहिले दोनो अंको में मुख संधि है। मुख संधि के बारहों भेदों के उदाहरण देने से अनावश्यक विस्तार बढ़ेगा। अतः दो चार उदाहरण दिये जाते हैं—

विलोभन^४—

दमयन्ती—उस प्यारे के मुख की दासता के लिये ही मानो चन्द्रमा अहर्निश अतरिक्ष में घूमता है। कल्पवृक्ष भी अपने पत्र से उस प्यारे के हस्त की समता पाने के लिये ही मानो याचकों को अलभ्य पदार्थों का दान देता है। प्राणनाथ ! क्या रूठ कर चले गये ? प्यारे ! पुनरपि अपना मुखेंदु दरसाओगे ? धन्य हैं वे नयन जो आपकी माधुरी मूर्ति को निहारते हैं। धन्य हैं वह नगर जिसमें आप निवास करते हैं।
(अंक १)

१. दशरूपक १-२२, साहित्य दर्पण ६-७४।

२. जिसका रूपक के आरम्भ में स्वल्प सा कथन किया जाय परन्तु जो बाद में विस्तार ले कर वृक्ष रूप बन जाय। द० रू० १-१७।

३. बहुत से फल की प्राप्ति के लिए जहाँ बड़ी उत्सुकता दिखाई जाय। द० रू० १-२०।

४. गुणकथन को विलोभन कहते हैं, द० रू० १-२७।

समाधान^१—

दमयन्ती—‘सखि ! रात्रि को तुम्हारे जाने के अनंतर मैं सो गई थी तब एक प्रहर रात्रि शेष रहने पर मैंने स्वप्न में एक राजकुमार को देखा ।
(अंक १)

विधान^२

नल—यही आकृति मुझे रात में पीड़ित करती है, चित्र में लिखी हुई नेत्रों में ठडक करती है और मुझ उत्कंठित को निरंतर दुःख देती है इससे प्रतीत होता है कि दूर से ही यह मन के अनेक प्रकार के परिणाम करने में बड़ी चतुर है । (अंक ३)

प्रतिमुख संधि—विन्दु और प्रयत्न का संयोग—

विन्दु^३

तृतीयांक का विष्कम्भक राजा नल की कथा को दमयंती की कथा से जोड़ता है ! अतः विष्कम्भक का प्रथमांश, विन्दु है ।

प्रयत्न^४

विष्कम्भक के बाद दमयंती बड़ी व्यग्र है । राजा नल आयेगे या नहीं इसकी चिंता है । कभी दर्पण देखती है, कभी सखी से मन की चिंता प्रकट करती है ।

प्रतिमुख^५

विष्कम्भक के बाद बीज अलक्ष्य है, क्योंकि नल के आने का निश्चय नहीं । वासंती सूचना देती है कि मदन, नल को ले आया है । बीज लक्षित हुआ । अप्सराएँ देवताओं की ओर से दमयंती के पास आती हैं । बीज पुनः

१. बीज का आगमन । द० रु० १-२७ ।

२. सुख और दुःख दोनों की जहाँ योजना की जाय वहाँ विधान नामक अंग होता है । द० रु० १-२८ ।

३. जो प्रसंग कथा को टूटने से बचाता है अर्थात् पहिली कथा को दूसरी से जोड़ कर कथा को आगे बढ़ाता है, उसे विन्दु कहते हैं । दश रूपक १-१७ ।

४. जब फल की प्राप्ति दूर दिखलाई पड़े तो उसके अभाव में अन्य कोई कार्य शीघ्रता से किया जाय ताकि इच्छा पूर्ण हो सके तो वहाँ प्रयत्न है । द० रु० १-२० ।

५. बीज कभी दिखाई देता है कभी छिप जाता है । द० रु० ३-३० !

अलक्ष्य सा होता है। प्रतिमुख संधि तृतीयांक के आरंभ से चतुर्थ अंक में राजा नल के पास मदद द्वारा रनिवास से फल आने तक है।

संध्यंग

विलास^१—

दमयंती—कमल को यथा भ्रमरी देखती है, मेघ को यथा चातकी देखती है तथा मैं भी अपने नेत्रों से चंद्र जैसे मुख वाले अपने प्यारे को क्या कभी देखूंगी।

निरोध^२—तिलोत्तमा अग्निदेव की दूती बन कर दमयंती के पास आई तो दमयंती उसे देख मन में कहती है, 'नल महाराज के मुख देखने का मेरा कमल सदृश मनोरथ है वह अपनी कलिकावस्था में ही क्या देवलोगों की इस कृति से नष्ट होना चाहता है'। (अंक ३)

वज्र^३—मेनका वरुण की ओर से दूती बनकर दमयंती से कहती है—

मधु मां कटुता कमल सां हालाहल दरमात ।

काल कठिन यह इंदु सो आतप नाम दिखात ॥ अंक ३

और बाद में कहती है 'आप मानिए चाहे न मानिए मैं तो एक बार अपने उद्देश्य को सुनाऊंगी ही।' तत्पश्चात् कहती है, 'भगवान वरुण अपने मन को तुम्हारे इस मुख पंकज का मधुप बनाना चाहते हैं'। (अंक ३)

गर्भसंधि

इसमें विकल्प से पताका एवं प्राप्त्यशा का संयोग होता है। छिपे बीज को ढूँढा जाता है। प्रतिमुख संधि में बीज छिप गया था। अप्सराओं ने दमयंती के पास देवताओं का संदेश दिया। यही बीज का छिपना है। गर्भसंधि में छिपे बीज का अन्वेषण होता है। बीज छिप तो जाता है किन्तु उसकी भाँकी मिल जाती है। गर्भसंधि में संघर्ष चलता रहता है।

पताका—नहीं है।

१. रति—नायिका या नायक द्वारा सुख-प्राप्ति की इच्छा को 'विलास' अंग कहते हैं। द० रू० १-३२, सा० द० ६-८६।

२. इच्छित की प्राप्ति में जहाँ बाधा पड़ जाय—द० रू० १-३४, सा० द० ६-६२।

३. प्रत्यक्ष रूप से ही निष्ठुर वचनों का प्रयोग। द० रू० १-३५।

प्राप्त्याशा—

पंचमांक में राजा नल ने देवों का संदेशा दमयन्ती को दिया। दमयन्ती की आशा टूटने लगी। नल को भी आशा थी कि दमयन्ती किसी देवता को स्वीकार कर लेगी। नल बड़ी सच्चाई और निष्कपटता से दूतत्व करते रहे। दमयन्ती ने अन्त में सुन कर कह दिया—‘मैं स्वीकार नहीं करूँगी।’

गर्भ संधि इस नाटक में थोड़ी ही है। यह चौथे अंक से पाँचवें अंक के मध्य तक चलती है, जहाँ गर्भांक चल रहा है और नाटकीय दृश्य में एक सखी दमयन्ती बन कर सामने पाँच नल बैठे देखती है।

विमर्श संधि

इसमें प्रकरी और नियतासि का संयोग होता है। विमर्श संधि में किसी कारण से (क्रोध, शाप, लोभ या अन्य आपत्ति) इष्ट-प्राप्ति में बाधा आ पड़ती है। इस नाटक में विमर्श संधि का बड़ा विस्तार है। यह पंचम अंक (जहाँ गर्भांक में दमयन्ती बनी सखी पाँच नल देखती है) के मध्य से षष्ठे अंक की समाप्ति तक चलती है।

प्रकरी—प्रकरी गर्भांक को माना जा सकता है क्योंकि वास्तविक दमयन्ती नाटक देख रही है, किन्तु नाटककार इसके द्वारा ही दमयन्ती स्वयंवर की कथा कहता है, फलतः यह प्रकरी न रहेगी। सप्तम एवं अष्टमांक में द्वारपर कथा प्रकरी है।

नियतासि^१—एक स्त्री दमयन्ती से अष्टम अंक के अन्त में कहती है, कि तुम्हारा पति अवश्य मिलेगा, इसमें कोई संदेह नहीं, ‘यथा संयुक्तों का वियोग होता है तथा वियुक्तों का संयोग भी अवश्य होता है, यथा चक्रवे और चक्रवी का।’

निर्घहण

इसमें कार्य और फलागम का संयोग होता है।

कार्य^२—पर्णादि अयोध्या में लक्ष्मणों से राजा नल को पहचानता है। (अंक ६)

फलागम—नल दमयन्ती का मिलन। (अंक १०)

१. विघ्न धीरे-धीरे दूर हो जाता है और फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है। द० रू० १-२१।

२. प्रधान लक्ष्य जिसके लिए सब उपाय आरम्भ किये गए थे, कार्य है। सा० द० ६-७०।

संध्यंग

संधि^१—

नल—हे निर्दयराज नल त्यागापराध लज्जा से झुके हुए नेत्रों से वियोग

से कृश हुए देखने योग्य प्यारी के मुखकमल को तू कैसे देखेगा ।

निर्णय^२—केशिनी ने नल से पूछा कि आपके नेत्रों में बारम्बार जल क्यों आ जाता है, तब नल कहता है 'उदारचरित महाराजा नल की वार्ता ही हृदय-विदारिणी है । विपद् समुद्र में मग्न महाराज नल की वार्ता को सुन कर कौन है जिसका हृदय टुकड़े-टुकड़े नहीं होगा ।'

नाटक में लगभग अधिकांश संधियों के उदाहरण मिलते हैं । कुछ अंकों में तो संध्यंग नाट्यशास्त्र में वर्णित क्रम से रखे गए हैं ।

भारतेन्दु जी की चन्द्रावली नाटिका के चारों अंकों में चार संधियाँ हैं । यद्यपि भारतेन्दु जी ने अपने नाटक नामक निबंध में संधियों और संध्यंगों को आवश्यक नहीं माना है^३ । इतने पर भी चन्द्रावली में संधियाँ मिल जाती हैं । भारतेन्दु जी ने इस नाटक में संधियों का ध्यान रखा है, इसका अनुमान ३ कारणों से होता है (१) चन्द्रावली में शास्त्रीय सभी लक्षण मिलते हैं । अतः संधियों पर भी ध्यान नाटककार का था । (२) वह उपरूपक के भेद का उदाहरण दे रहा था और (३) नाटक नामक निबंध से नाटिका बहुत पूर्व बन चुकी थी । अतः चन्द्रावली में संधियाँ प्राप्त होती हैं ।

मुखसंधि

बीज—विष्कम्भक में नारद का चन्द्रावली के प्रेम के विषय में कथन करना—'कैसा विलक्षण प्रेम है, यद्यपि माता-पिता, भाई-बन्धु, सब निषेध करते हैं और उधर श्रीमती जी का भी भय है तथापि श्रीकृष्ण ने जल में दूध की भाँति मिल रही है ।'

आरंभ—सखी ललिता और चन्द्रावली के संवाद में चन्द्रावली भेद को छिपाना चाहती है और ललिता हठ करके पूछती है । चन्द्रावली कहती है—'मैं क्या करूँ, मैं कितना चाहती हूँ कि वह ध्यान भुला दूँ पर उस निष्ठुर की छवि भूलती ही नहीं ।' में उत्सुकता, फल-संकेत एवं कार्यारंभ मिलता है । वहीं 'आरम्भ' नामक कार्य-अवस्था आरम्भ होती है ।

मुख संधि—कई अंगों के साथ पहिले अंक में मुख सन्धि है ।

१. बीज का आगमन । द० रू० १-५१ ।

२. अपना अनुभव कथन 'निर्णय' कहलाता है । द० रू० १-५१ ।

३. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहिला भाग, प्र० सं०, पृ० ७२२ ।

प्रतिमुख

विन्दु^१—पहिले अंक में चन्द्रावली के प्रेम मात्र का पता चलता है। उसकी पुष्टि दूसरे अंकारंभ से होती है। चन्द्रावली पहिले अंक की कथा को आगे बढ़ाती है—वह विरहिणी के रूप में आकर एक वृक्ष के नीचे बैठ कहती है, 'वाह प्यारे वाह ! तुम और तुम्हारा प्रेम दोनों विलक्षण हैं.....।' वास्तविक प्रेम-कथा का प्रकाश यहीं से होता है।

प्रयत्न^२—चन्द्रावली नेत्र बन्द कर समागम का अनुभव करती है।

प्रतिमुख संधि—पूरे दूसरे अंक में प्रतिमुख संधि है। बीज लक्षित भी होता है और छिप भी जाता है। आँखों में आता है। निराशा होती है। सखी पत्र को नायक के पास ले जाती है। वह गिर पड़ता है और एक सहायक सखी उठाती है। परन्तु तुरन्त नेपथ्य में से कोई कहता है "हो तू सब करेगी।"

गर्भ संधि—

पताका अर्थ प्रकृति नहीं है। दशरूपक-कार आवश्यक मानता भी नहीं है^३। पताका प्रासंगिक कथा होती है जिसका नायक नाटक के नायक का सहायक होता है। तीसरे अंक में स्वयं नायिका एवं सखियाँ उपस्थित हैं। अतः आधिकारिक कथा ही मानी जाएगी।

प्राप्त्याशा—सखियाँ मिलकर चन्द्रावली के दुख दूर करने का उपाय सोचती हैं और नायक एवं श्रीमती जी को प्रसन्न करने के लिए कार्यो का बँटवारा करती हैं।

गर्भसन्धि—गर्भ सन्धि में बीज छिप जाता है। किन्तु आशा की किरण दिखलाई दे जाती है। इस अंक में घोर निराशा का वातावरण है। 'वह नजरबन्द है, भूजक भी नहीं देखने पातो।' बीज नष्ट हुआ-सा लगता है। चन्द्रावली के सब कथन निराशा भरे हैं 'प्यारे यह शरीर कहाँ और हम तुम कहाँ? फिर यह बातें दुर्लभ हो जाएँगी। रात दिन रोते ही बीतते हैं। कोई बात पूछने वाला नहीं।'.....गर्भसंधि में कुछ आशा बँधाती है।

नाटक में विमर्श सन्धि नहीं के बराबर है। विमर्श सन्धि में शाप, लोभ, क्रोध या अन्य ऐसे ही कारण से आपत्ति आती है। प्रकरी कथा होती है। ये दोनों बातें नहीं हैं। नियताति का सूक्ष्म सा आभास है।

१. विन्दुरच्छेदकारणम् । (द० रू० १-१७)

२. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः । द० रू०, १-२० ।

३. द० रू० १-३६ ।

निर्वहण

कार्य—कृष्ण जोगिन वेश में चन्द्रावली के पास आते जाते हैं ।

फलागम—प्राणप्यारी को हाथों पर सँभालते हैं । पूरे अंक में निर्वहण सन्धि है ।

सम्भव है शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार नाटिका लिखते समय पुष्ट कथानक में स्वयं सन्धियाँ आ फँसी हो । किन्तु हैं अवश्य । हाँ, भारतेन्दुजी ने नाटककारों को यही निर्देश दिया कि इनकी आवश्यकता नहीं है । नाटककारों ने भारतेन्दु जी के परामर्श को स्वीकार भी किया और सन्धियों पर ध्यान नहीं दिया । वैसे तो जहाँ भी कथानक में शृङ्खला और कसावट दिखलाई देगी वहाँ सन्धियाँ मिल जायँगी । भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने सन्धियों की चिन्ता नहीं की है । इसका प्रमाण है कि कथानक में विस्तार बहुत दिया है जो सन्धियों के ध्यान रखने से नहीं आ पाता है । नाट्यशास्त्र की आज्ञा है कि अनावश्यक दृश्य नाटक में न आवें । इन नाटककारों ने चार कारणों से दृश्य बढ़ाये हैं । वे कारण हैं—(१) उपदेश देने के लिए (२) यथार्थता लाने के लिए और (३) मनोरञ्जन के लिए एवं (४) तत्कालीन चित्रण के लिए ।

कथानक विभाजन—

भारतीय नाट्य शास्त्र में कथानक दो प्रकार का होता है । (१) आधिकारिक और प्रासंगिक । पुनः प्रासंगिक भी दो प्रकार का होता है (१) पताका और प्रकरी । एक उदाहरण ले लें—रणधीर प्रेममोहिनी में रणधीर प्रेममोहिनी की प्रेम-कथा आधिकारिक कथा है । रणधीर की विस्तृत कथा पताका है और सरोजिनी का नृत्य प्रकरी कथा है । सुखवासी लाल की कथा को पताका मान सकते हैं किन्तु उससे प्रधान कथा को बल नहीं मिलता । इस कथा का उद्देश्य है—मनोरंजन एवं तत्कालीन चित्रण । यह एक स्वतन्त्र कथा सी है । इसे उपकथा कह सकते हैं । भारतेन्दुकालीन नाटकों में कथानक का यह एक नया भेद दिखलाई पड़ता है । उपकथा मुख्य कथा से छोटी होती है जो कई दृश्यों में चलती है । इसका मुख्य कथा से थोड़ा सा संबंध जोड़ लिया जाता था जो बहुत तार्किक नहीं होता था । यह उपकथा मनोरंजन और उपदेश के लिए जोड़ी जाती थी । थियेटरिकल एवं थियेटरिकल नाटकों के प्रभाव वाले नाटकों में यह उपकथा विशेषतया दिखलाई देती है । श्रीमती लालीकृत गोपीचन्द्र में मच्छीन्द्रनाथ की प्रेमकथा, बलदेव जी अग्रहरि कृत सुलोचना नाटक में मस्ता की कथा एवं बा० राधाकृष्णदास जी कृत महाराणा प्रतापसिंह में मालती-गुलाब की प्रेमकथा ऐसी ही उपकथाएँ हैं ।

(१) अंक विभाजन—

संस्कृत नाट्यशास्त्रकारों ने मत दिया कि नाटक ५ से १० अंकों तक का हो सकता है।^१ भावप्रकाश-कार ने १० अंक वाले नाटक को परम नाटक कहा है।^२ संस्कृत में १० अंक या इससे ऊपर वाले नाटक की संज्ञा महानाटक पड़ गई, और १० अंक वाले बालरामायण इत्यादि को महानाटक कहा गया है^३। चौदह अंकों का हनुमन्नाटक तो महानाटक कहलाता ही है। किन्तु नाटककारों को पाँच अंकों में पंचसंधियों का विभाजन सुगम प्रतीत हुआ^४।

हमारे आलोच्य काल के नाटककारों ने पाँच अंक वाले नाटकों को सामान्यतया मान्यता दी है^५। पाँच से कम और अधिक अंक वाले नाटक भी लिखे गए परन्तु इनकी संख्या अनुपात में कम है। तीन, चार, छ, सात, दस अंकों के नाटक भी लिखे गये हैं। १० अंक वाले कुछ नाटकों को महानाटक कह सकते हैं जैसे अनर्घ नल चरित्र।

(२) गर्भांक विभाजन—

कुछ नाटकों ने संस्कृत नाट्य-प्रणाली पर अपने नाटकों को केवल अंकों में विभाजित किया है^६। किन्तु इस काल के नाटककारों की सामान्य प्रवृत्ति अंकों को भी कुछ भागों में बाँटने की है। इस अंक के विभागों का नाम अधिकांशतः 'गर्भांक' ही रक्खा गया है। यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से गर्भांक वह है जो अंक के बीच में आता है और जिसमें बीज और फल का भी स्पष्ट उल्लेख हो^७। इस रूप में यह प्रथम अंक जैसा रूप ले लेता है। इस शास्त्रीय लक्षण के अनुसार 'गर्भांक' का प्रयोग अनर्घ नल चरित्र में

१. सा० द० ६-८।

२. दशांक नाटकं परम्।

३. कीथ्स संस्कृत ड्रामा, २३२।

४. विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र, नागानन्द, चण्डकौशिक।

५. तप्तासवरण, गंगोत्री, शील सावित्री, सीताहरण, रुक्मणी हरण, बालखेल या ध्रुव चरित्र, मोरध्वज, नन्द विदा, सरस्वती, दमयंती स्वयंवर, भारतीहरण, मयंक मंजरी, द्रौपदीवल्ग्वहरण, पुरुविक्रम, अंजनासुन्दरी, संयोगिता स्वयंवर, सरस्वती इत्यादि।

६. तप्तासवरण, बाल खेल या ध्रुव चरित्र, विज्ञान नाटक, वैदिकी हिंसा, सत्यहरिश्चन्द्र, चन्द्रावली।

७. सा० द० ६-२०।

हुआ है^१। पं० अम्बिकादत्त व्यास कृत गोसंकट नाटक के तीसरे अंक में भी गोरक्षा महोत्सव 'गर्भांक' रूप में दिखलाया गया है। इन दोनों नाटकों को छोड़ कर शेष सभी नाटकों में गर्भांक का अर्थ है—दृश्य या जिसे थियेट्रीकल नाटकों में 'सीन' भी लिखा है और जो अंग्रेजी शब्द है। अंक का गर्भांक या दृश्यों में विभाजन पश्चिमी प्रभाव-वश ही हुआ है। कुछ नाटककारों ने गर्भांक के स्थान पर 'भौकी'^२, प्रवेश^३ या दृश्य^४ भी लिखा है। भारतेन्दु जी ने अपने नाटक नामक निबंध में 'गर्भांक' नाम की व्यवस्था दी^५ है और अपने नाटकों में भी गर्भांक^६ को स्थान दिया है। फिर क्यों न उस काल के नाटककार सामान्यतया इसको ग्रहण करते ?

गर्भांक के निर्माण करने का नियम भी निश्चित किया गया और नाटकों में उसका अनुगमन भी हुआ। भारतेन्दु जी ने गर्भांक निर्माण के लिए दो नियम दिए हैं। वे हैं (१) स्थान परिवर्तन करने पर नया गर्भांक दिखाया जाय अथवा (२) समय के अनुसार गर्भांक का विभाजन किया जाय^७। भारतेन्दु जी ने विद्यासुन्दर और प्रेमजोगिनी में प्रथम नियम को अपना कर गर्भांक बनाये हैं। फलतः इस काल के नाटकों में हमें स्थान के अनुसार गर्भांक निर्माण वाला नियम अधिकांशतः दिखलाई पड़ता है। पं० दामोदर शास्त्री इसी नियम का अनुगमन करते हुए कहते हैं जब स्थान परिवर्तन हो तब गर्भांक समाप्ति और कथा भाग परिवर्तन हो तब अंक समाप्ति हा^८। प्रेमघन जी ने भी इसी पक्ष में अपना मत दिया और कहा 'स्थान-परिवर्तन के कारण गर्भांक की आवश्यकता होती है अर्थात् स्थान के बदलने में पर्दा बदला जाता है और इसी परदे के बदलने को दूसरा गर्भांक मानते हैं'^९।

१. शैली (अध्याय ७) के अन्तर्गत 'प्राचीन भारतीय शैली' शीर्षक में अनर्घ नल चरित्र का विश्लेषण।

२. सुरभि संताप, विद्याविलास और सुखबंधनी नाटक, महारास (खड्गबहादुर मल्ल)

३. गोपीचंद (अण्णा जी इनामदार), मालती वसंत।

४. सीताहरण, युगल विहार नाटक, सुलोचना सती (अग्रहरि) एवं कई थियेट्रीकल नाटक।

५. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पहिला भाग, पृ० ७२०।

६. विद्यासुन्दर, प्रेमजोगिनी।

७. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ७२०।

८. रामलीला नाटक, अरण्यकांड, ४-१ पृ० ६४ की पाद टिप्पणी।

९. आनंद कादम्बिनी पत्रिका (भाद्रपद १६४२)।

(३) कथानक का कार्य विभाजन—

भारतेन्दु-काल में संधियों की योजना अधिकतर भले ही नहीं हुई किन्तु नाटकों में कार्य-विभाजन दिखलाई पड़ता है। यह कार्य-विभाजन पाँच भागों में हुआ है। संस्कृत में कार्य-अवस्थाएँ पाँच हैं जिनकी चर्चा पीछे हो चुकी है। किन्तु ये अवस्थाएँ सुखान्त नाटकों में ही लागू हो सकती हैं। इसी कार्य-अवस्था के कारण भवभूति को अपना नाटक उत्तररामचरितम् अन्त में सुखान्त करना पड़ा। नियताति और फलागम निश्चित रूप से सुख-प्राप्त की ओर संकेत करते हैं। 'फल' दुःखमय नहीं माना गया है। भारतेन्दु काल के बड़ी संख्या में नाटक ऐसे हैं जिनमें प्राप्त्याशा, नियताति और फलागम अवस्थाएँ लागू नहीं होतीं। दुःखान्त नाटक जिनकी संख्या एक दर्जन से बहुत अधिक है ऐसे ही नाटक हैं। प्रहसनो में भी सन्दिग्ध अवस्थाएँ उत्पन्न की गई हैं। अतः संस्कृत के नाम इस काल के सभी नाटकों पर पूर्ण रूप से ठीक नहीं बैठते, हाँ पाँच अवस्थाएँ अवश्य पाई जाती हैं। वास्तव में नाटककार पश्चिमी कार्य-विभाजन से अधिक प्रभावित हैं। अतः इन नाटकों में हम कार्य के ये पाँच विभाग पाते हैं—

(१) आरंभ

(२) प्रगति

(३) चरमसीमा

(४) निर्गति

(५) समाप्ति

कुछ दुःखान्त और सुखान्त नाटकों के विश्लेषण से यह विभाजन स्पष्ट हो जाएगा।

सुखान्त—

	आरंभ	प्रगति	चरमसीमा	निर्गति	समाप्ति
उषाहरण	अंक १	२	३	४-१, २	४-३
मोरध्वज	१	२, ३	४	५	५
शीलसावित्री	१	२	३	४	५
अंजना	१	२	३	४	५
सरस्वती	१	२	३	४	५
पुरुविक्रम	१	२	३	४	५
भारतीहरण	१	२-३	४	५	५
सत्यहरिश्चन्द्र	१	२	३	४	४
प्रह्लाद चरित्र	१	२	३	४	४

	आरंभ	प्रगति	चरमसीमा	निर्गति	समाप्ति
भारतोद्धारक	अंक १	२	३	४	४
गोवध निषेध	१	२	३	४	४

इससे सिद्ध हुआ कि 'चरमसीमा' पाँच एवं चार अंक वाले नाटकों में तीसरे अंक में आती है। किन्तु यही सीमा ६ अंकवालों में चौथे अंक में और ७ अंक वालों में पाँचवें अंक में दिखलाई देती है। जैसे—

	आरंभ	प्रगति	चरमसीमा	निर्गति	समाप्ति
बाल्यविवाह					

दूषक अंक १-२	३	४	५	६	
पुलिस नाटक	१	२-३	४	५	६
भारतदुर्दशा	१-२	३-४	५	६	६
मिथिलेश कुमारी	१	२-३-४	५	६	६
मदनमंजरी	१-२	३-४	५	६	७
मनोरंजनी	१-२	३	४-५	६	७
सत्यवती	१-२	३	४-५	६	७
प्रतापसिंह	१-२	३-४	५	६	७
विद्याविनोद	१	२-३-४	५	६	७

दुखान्त नाटक—

कमलमोहिनी भैरवसिंह, सीताहरण, दुःखिनी बाला रूपक में चरमसीमा के तुरन्त बाद समाप्ति आ जाती है और निर्गति नहीं है। पद्मावती, लावण्यवती, सुदर्शन, नीलदेवी, अभिमन्यु, कुन्दकली में निर्गति अवस्था है।

	आरंभ	प्रगति	चरमसीमा	निर्गति	समाप्ति
पद्मावती	अंक १	२	३	४-५	६
लावण्यवती-					
सुदर्शन	१	२-३	४	५-६	७
नीलदेवी	१-२	३-४	५	६, ७, ८, ९	१०
अभिमन्यु	१	२-३	४-५	६, ७, ८, ९	१०

अध्याय ३

पात्र

पात्र-योजना में इस काल के नाटककारों ने पूर्व और पश्चिम की ओर दृष्टि रख कर भी अपना स्वतंत्र मार्ग बनाया है। एक ओर वे परम्परागत संस्कृत नाट्यशास्त्र और नाटककारों का अनुगमन करते हैं तो दूसरी ओर चरित्र-चित्रण की पश्चिमी शैली भी अपनाते हैं और दोनों के बीच से वे अपना मार्ग बना लेते हैं।

नामकरण—

नवीन नामकरण के विषय में भरतमुनि का कथन है कि पात्रों के नाम गुण-कर्मानुसार रखे जायें^१। भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने भरतमुनि की इस व्यवस्था को सिर झुका कर स्वीकार किया है। उदाहरण—महा अन्धेर नगरी के राजा अनयसिंधु, मंत्री कुमति वर्मा, गुरु विश्वभट्ट और शिष्य अचेतन दास; बाल विधवा संताप नाटक के लोकपीटनदास, और कुपंथीराम पुरोहित; बाल्य-विवाह दूषक के रश्मि अली, अज्ञानचन्द्र और दुराचार सिंह; वृद्धावस्था विवाह नाटक के कुरूपचन्द्र, स्वार्थमल और अभागवती; सुरभि संताप नाटक के लोभीचन्द्र, लालचीप्रसाद और पापी प्रसाद; मनोरंजनी नाटक के सेठ मोतीराम और मनोरंजनी; मयंक मंजरी के वीरेन्द्र, अनुरागवल्लभ, और प्रेमवल्लभ ऐसे ही नाम हैं। स्त्रियों के नामकरण के सम्बन्ध में भी भरतमुनि ने कुछ निर्देश दिए हैं।^२ इनमें से एक निर्देश यह भी था कि सखी-दूतियों के नाम कुसुमों पर रखे जायें।^३ अनेक हिन्दी नाटककारों ने केवल सखियों के ही नहीं, नायिकाओं के नाम भी कुसुमों पर रखे। रति कुसुमायुध में नलिनी, माधुरी, मालती वसन्त में मालती, चंपा, मदनमंजरी में मंजरी और कुन्दकली में कुन्द, ऐसे ही नाम हैं। प्रबोध चन्द्रोदय वाली शैली पर पात्रों के प्रतीकात्मक नाम राजनैतिक नाटकों में विशेषता से मिलते हैं जैसे भारतेन्दु कृत भारत दुर्दशा के भारत-दुर्दैव, भारतभाग्य, अंधकार इत्यादि। प्रेमघन जी और व्यास जी कृत भारत-

१. नाट्यशास्त्र (चौखम्भा प्रकाशन) १६-३५।

२. नाट्यशास्त्र—१६-३२, ३३ और ३४ (चौखम्भा प्रकाशन)

३. १६-३३ का उत्तरार्द्ध (नाट्यशास्त्र, चौखम्भा प्रकाशन)।

सौभाग्य नाटकों में भारत दुर्दशा के ही पात्र हैं जिनकी संख्या बढ़ गई है और जिनका अंग्रेजी या उर्दू नाम दिया गया है। भारत दुर्दशा का भारत दुर्भाग्य प्रेमघन जी के भारत सौभाग्य नाटक में भारत दौर्भाग्य है तो अत्रिका-दत्त व्यास कृत भारत सौभाग्य में वह अपना नाम बद-नयकवाले-हिन्द रख लेता है। इस शैली के अन्य नाम ये हैं—राजभक्ति, एकता, फूट (व्यास कृत भारत सौभाग्य) ऐजुकेशन, फ्रीडम, स्वाधीनता, मर्यादा (प्रेमघन कृत भारत सौभाग्य)। भारत जननी, भारती हरण, भारतोद्धार, हिन्दी उर्दू नाटक, सत्योदय नाटकों में भी प्रतीकवादी नाम दिखलाई देते हैं। इन सबसे भिन्न हैं कुन्दकली नाटक के पात्रों का नामकरण। इसमें यद्यपि पात्रों के नाम गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार रखे गये हैं किन्तु वे पशु-पक्षी-कीट जगत से अपनाये गए हैं। इस नाटक के पात्र हैं मधुकर, काग, गुबरैल, कीर, हंस।

नायक—

संस्कृत नाट्यशास्त्र में वर्णित चार प्रकार के नायक इस काल के हिन्दी नाटकों में भी दिखाई देते हैं। (१) उदात्त—पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों में उदात्त नायकों के दर्शन होते हैं जैसे राम (रामलीला नाटक); हरिश्चन्द्र (सत्य हरिश्चन्द्र नाटक); महाराणा प्रताप (प्रताप सिंह नाटक), पुरु (पुरुविक्रम नाटक)। (२) ललित—व्रजजीवन सम्बन्धी कृष्ण-धारा के पौराणिक नाटकों के कृष्ण और प्रेमनाटकों के नायक ललित वर्ग के ही हैं। उदाहरण—चन्द्रावली, ललिता नाटिका, और महारास नाटकों के नायक कृष्ण ललित नायक हैं। प्रेम नाटकों के वसंत, कुसुमायुध, भेंवरसिंह, मदन ऐसे ही नायक हैं। (३) शांत—बुद्ध, गोपीचन्द्र, प्रह्लाद, मोरध्वज शांत नायक हैं। (४) कपटी मुनि नाटक का नायक चन्द्रसेन उद्धत नायक है। सामाजिक नाटकों में एक पाँचवाँ नायक भी मिलता है। वह रूढ़िग्रस्त मूर्ख नायक है। यह उद्धत नहीं है। यह विवाह पर अपव्यय करता है (विवाह विडंबन, सर्राफी नाटक), यह अपने अलग आयु के बाल-बालिकाओं के विवाह रचाता है (विवाह विडंबन)। संस्कृत नाटक परम्परा के अनुसार भारतेन्दुकालीन नाटकों का नायक प्रधानतः अभिजात वर्ग का ही है। वह राजा या राजकुमार है या समाज में सम्मान प्राप्त ऊँचे कुल का धनी व्यक्ति। पौराणिक, ऐतिहासिक और प्रेम नाटकों में राजा-रानियों का आसन जमा है तो सामाजिक और राजनैतिक नाटकों में कुलीन धनी-पुरुष नायक के रूप में सामने आते हैं। अभिजात वर्ग की ओर से दृष्टि हटा कर लिखे गए नाटक अपवाद स्वरूप ही उद्धृत करने पड़ेंगे। एक-एक के तीन-तीन का नायक एक आमीण दीन किसान है।

नायिका—

नायक के समान नायिकाएँ भी रानियाँ या धनी कुल की स्त्रियाँ ही हैं। नायिका की दूतियों के सम्बन्ध में आचार्यों का कथन है कि वे शिल्पिनी, लिंगिनी अर्थात् संन्यासिनी, सखी, पड़ौसिन, दासी, धायपुत्री होती हैं।^१ भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने सखी को ही दूती रूप में चित्रित किया है जो शिल्पिनी^२ और संन्यासिनी^३ बन कर नायिका का काम साधती हैं।

नायिका वर्णन—

हिन्दी का रीतिकाल नायिका वर्णन के लिए स्मरणीय है। रीतिकाल के अंतिम छोर पर भारतेन्दु जी एवं उनके सहयोगी खड़े थे। अतः इस काल के नाटकों में हमें नायिका वर्णन प्राप्त होता है। ऐसे कई नाटक हैं जो जान बूझ कर नायिका-वर्णन देते हैं। *माधवानल कामकंदला* में मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, वासकसज्जा, प्रोषितपतिका, प्रवत्स्यपतिका, सद्यःस्नाता आदि के दर्शन होते हैं। *मयंक मंजरी* में प्राचीन नायिका वर्णन के अनुसार मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, रति-सम्मोहा, वासकसज्जा, सामान्या, कुलटा, प्रोषितपतिका, मानिनी तो दिखाई देती ही हैं, नायिकाओं का नवीन रूप भी प्राप्त होता है। कुरसी पर बैठी नायिका का एक चित्र देखिए—

उज्ज्वल अखण्ड सात खण्ड के सजीले भौन

सुलभ सँवार साज मुख मॉग सीपै है।

सीसे भ्राड़ आईने फरस फवे जरीदार

परदे अवार त्यों वितानन लसी पै है।

सथ न सहेली लिये हाथन चमेली चंप

बेली सी छुबीली खिली मुखमा ससी पै है।

पैर लटकाय हाथ अदा से उठाय हाथ

करिकै सिगार बाल बैठी कुरसी पै है।

कुन्दकली नाटक में तो नाटककार काग द्वारा नायक को नायिका वर्णन की शिक्षा दिलाता है। काग कहता है 'यदि तुम नायिका-भेद लक्षण बहिक्रम दशा और अवस्था का बोध रखते तो ऐसी अनुमानहीन बातों के भ्रमजाल में पड़ कर काल-ज्ञान नहीं खोते, मित्र, कुन्दकली मुग्धा दशा में है और आशा है कि शीघ्र ही मध्यावस्था में प्रवेश कर प्रौढ़त्व धारण करेगी।

(कुन्दकली चतुर्थ अंक)

१. दशरूपक २-२६ ;

२. उषाहरण, कमलमोहिनी भँवरसिंह।

३. लावण्यवती सदृश कमलमोहिनी भँवरसिंह।

शरीरांग-वर्णन—

जब नायिका-चित्रण है तब स्वभावतः उसके अंगों का भी वर्णन होना ही चाहिए था। संस्कृत नाटकों में भी नायिका के शरीरांग का वर्णन हुआ है। कालिदास ने शकुन्तला का छोटा-सा शरीरांग वर्णन दिया है (अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक १) विक्रमोर्वशी में यह अधिक विस्तार से है (विक्रमोर्वशी अंक ४)। हनुमन्नाटक में राम, सीता के अंगों का वर्णन विस्तार से करते हैं। (हनुमन्नाटक, अंक २, श्लोक २४ से २७ तक एवं अंक ५ के श्लोक ३ व १०)। प्रसन्न राघव में भी राम, विस्तृत सीतांग-वर्णन से आनन्द प्राप्त करते हैं (अंक २)। मालती माधव में पहिले माधव स्वयं नायिका के शरीरांगों की चर्चा करते हैं (अंक १) और फिर लवंगिका वर्णन देती है (अंक ३)। ब्रजभाषा नाटकों में भी शरीरांग-वर्णन प्रचुरता पूर्वक हुआ है। भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने भी यह परम्परागत प्रणाली बड़ी रुचि से अपनाई है। कुछ नाटकों में तो नायिका के शरीरांगों के वर्णन ने नखशिख-वर्णन का रूप ले लिया है। रामलीला (अरण्यकांड) में सीता जी का सांगोपांग नखशिख लिखा गया है। पादटिप्पणी में लेखक बताता है कि यह नखशिख-वर्णन मेरा नहीं है और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की सम्मति से दिया गया है। इसका सीधा अर्थ है कि बिना नखशिख के नाटक का मूल्य घट रहा था अतः भारतेन्दु जी ने परामर्श दिया कि सीता का शरीरांग-वर्णन भी नाटक में रख दो। भारतेन्दु जी ने विद्यासुन्दर नाटक में नायिका विद्या का संक्षिप्त शरीरांग वर्णन दिया है (१-३ व ४)। भारतेन्दु जी के इस प्रयास को नाटककारों ने बड़े चाव से आगे बढ़ाया और नाटकों में हमे नायिका के शरीरांगों का सुन्दर चित्रण मिलता है।^१ शरीरांगों में से नेत्र कटाक्ष, केश और कुच को प्रधानता मिली है, इनमें भी कुच को राजतिलक दे दिया गया है। शरीरांग-वर्णन प्रधानतया पद्यों में हुआ है। गद्यात्मक वर्णनों की भी कमी नहीं है। गद्यात्मक वर्णन के दो चार उदाहरण दिये जाते हैं—

(क) माधव—उसके मुख से पूर्णमासी के चन्द्रमा की उपमा दी जाय तो उसको क्षयरोग है और उसमें कलंक भी है, परन्तु प्यारी का मुखारविन्द निष्कलंक है, नाक से तिल के फूल की उमा हूँ तो वह कुम्हला जाता है और

१. कुन्दकली, मयंकमंजरी, माधवानल कामकंदला, मिथिलेश कुमारी, संयोगिता स्वयंवर, प्रेमसुन्दर, महा अंधेर नगरी, महारास, रुक्मिणी परिणय, अरुणा जी इनामदार कृत गोपीचन्द्र, गुन्नौर की रानी, सिधु देश की राजकुमारियाँ।

निर्गन्ध है; चम्पे की कली की उपमा दी जाय तो साधु संत उस कली को ले कर प्रेम भाव से विष्णु जी को समर्पण कर के अन्त में अपनी नासिका से सूँघ कर डाल देते हैं—उस मनोरमा के भाल विशाल की बिन्दी को देख बुद्धि की बुद्धि जाती रही, शुक को शुक के रोग ने ग्रसित किया, मंगल में अमंगल दिखलाई देने लगा***। उस चचलात्ती के नयनों की उपमा काहे से दूँ। मीन दीन हो पानी में जा पड़े, मृगों ने और खंजनों ने बस्तो का वास छोड़ बन की राह ली***। भला उसकी वेणी की क्या उपमा दूँ? जो नागिन के समान उसकी पीठ पर लटक रही थी, उसको निहार हार मान सर्पिणी तो मारे डर के बाँवई में समा गई*****। उस मदन मोहिनी के मदन मिश्रित जो गोल कपोल हैं उनको गुलाब के फूल की उपमा दूँ तो भी ठीक नहीं*** ।’

(माधवानल कामकंदला १-६)

(ख) ‘इस जमुना जल में तुम्हारे सुन्दर मुख, कुंचित केश, और चचल दंगो की ऐसी छटा है मानो अनेक पूर्णिमा के चन्द्र अलग अलग जालों में कामदेव की दो मछलियों फँसा रहे हैं—तुम्हारे सुधुराले बालों, स्याम मुख, अरुण नैन और बंक भौह की शोभा ऐसी है मानो सेवार से आच्छादित एक कमल है जिसपर अरुणाम्बुज की दो पखुड़ियों बराबर धरी हैं और उनके ऊपर भ्रमरो की दो टेढ़ी अवली आ कर बैठी है ।’ (महारास ४-२) ।

(ग) पृथ्वीराज—अहा ये प्यारी का मुख है कि शरद् का चन्द्रमा है जो हमसे विरही जनो को सताने के लिए उदय होने के समय से पहिले ही उदय हो गया । नहीं चन्द्रमा में तो कलक है और उसमें इतना माधुर्य कहाँ है ? यह तो शोभा का समुद्र उमड़ रहा है । आहा ! इस शोभा-सागर में अधखुले कमल दल से लाज भरे लोचन और मंद मुस्कान की शोभा कैसी प्यारी लगती है । मधुप सी मदोन्मत्त अलकें दोनों ओर कैसी भूम रही हैं***’

(संयोगिता स्वयंवर २-१) ।

प्रतिनायक—

इस काल के नाटकों में प्रतिनायक को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है । उपदेश प्रधान दृष्टिकोण से लिखे नाटकों में यह आवश्यक भी है क्योंकि प्रतिनायक के निम्न चरित्र से ही नायक के उत्तम चरित्र पर प्रकाश पड़ता है । अंधकार द्वारा ही तो प्रकाश की उपादेयता जानी जाती है । यह प्रतिनायक उद्धत, दुष्ट और स्वार्थी चित्रित हुआ है । प्रतिनायक के दो भेद हैं (१) नाटकों में एक व्यक्ति प्रतिनायक रूप में सामने आता है जो कुछ सहायकों को साथ ले कर नायक के मार्ग में बाधा देता है । रावण (रामलीला नाटक), जयद्रथ (अभिमन्यु नाटक), अलाउद्दीन (पद्मावती), दुर्गोधन (द्रोपदी-

वस्त्र हरण), रुक्म (रुक्मिणी हरण), वसंत (मयंक मंजरी), और भारत दुर्दैव (भारत दुदशा) में प्रतिनायक एक व्यक्ति है जो उद्धत, दुष्ट और स्वार्थी है। यदि मुनि या देवता भी प्रतिनायक रूप में आया है तो वह भी सद्गुणों से वंचित दिखाया गया है। दमयंती स्वयंवर और अनर्घ नल चरित्र का कलिदेव ऐसा ही प्रतिनायक है। विश्वामित्र, मुनि थे। परिस्थिति-वश इन्द्र के उकसाने पर वे हरिश्चन्द्र के प्रतिनायक बन जाते हैं और निर्दयी, स्वार्थी और उद्धत रूप में सामने आते हैं। (२) कुछ नाटकों में प्रतिनायक एक व्यक्ति नहीं है वरन् वर्ग, समाज या जाति है। गोरक्षा संबंधी नाटकों में मुस्लिम समाज प्रतिनायक है जिसका प्रतिनिधित्व कुछ विशिष्ट-व्यक्ति करते हैं।

५७

संघर्ष—

संस्कृत नाटकों में भी बाधाएँ दिखाई गई हैं जिनसे बीज अलक्षित हो जाता था। आपत्ति भी आई है। किन्तु इससे वे संघर्ष सम्पन्न नाटक नहीं कहे जा सकते। पश्चिमी नाटकों में संघर्ष को बड़ा ऊँचा आसन दिया गया है। वहाँ संघर्ष नाटकों का आधार माना गया है^१। भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने भी संघर्ष को अपनाया है और नाटकों में उच्चासन पर बिठाया है। संघर्ष के दोनों रूप—बाह्य संघर्ष एवं अन्तर्संघर्ष—नाटकों में चित्रित हैं।

बाह्य संघर्ष—अधिकांश नाटककारों ने कथा और पात्र के निर्वाचन

१. (क) All drama ultimately arises out of conflict... In tragedy there is ever a clash between forces physical or mental or both; in comedy there is ever a conflict between personalities, between the sexes, or between an individual and society—Nicolli's Theory of Drama, 1931 edition, p. 92.

(ख) Drama arises when any person or persons in a play are consciously or unconsciously : up against some antagonistic person, circumstance, or fortune." writes

Henry Arthur Jones, in the Introduction to Brunetiere's Law of the Drama.

Nicolli's Theory of drama, page 29.

(ग) 'विरोध ही सब वस्तुओं को गति प्रदान करता है' हेगेल; समीक्षाशास्त्र, ले० पं० सीताराम चतुर्वेदी, पृ० ६५२।

मे संघर्ष को दृष्टि में रख कर ही निर्वाचन किया है। सभी प्रकार के नाटकों में यह तथ्य दिखलाई देता है। पौराणिक नाटकों में भी इनका ध्यान उन्हीं कथाओं की ओर गया जहाँ पात्र संघर्ष में रत है। यदि संघर्ष थोड़ा था तो उसे विस्तार दिया गया। नाटककारों के पौराणिक पात्र आदर्श के लिए संघर्ष-रत हैं। राजा हरिश्चन्द्र आरम्भ से अन्त तक संघर्ष में लगे हुए हैं। यह संघर्ष बिलकुल अन्त में जा कर ही शान्त होता है^१। प्रह्लाद,^२ मोरध्वज,^३ राजा नल,^४ अभिमन्यु^५ सब ऐसे ही पात्र हैं जो संघर्ष में ही पनपते हैं। पुरुष ही नहीं, पौराणिक स्त्रियाँ भी संघर्ष से युक्त हैं^६।

राम-जीवन से सम्बद्ध नाटक तो संघर्ष-सम्पन्न हैं ही, कृष्ण-जीवन-संबंधी नाटकों में भी संघर्ष पनपाया गया है^७। ऐतिहासिक नाटक तो संघर्ष रहित हैं ही नहीं। इतिहास से उन्हीं पात्रों को चुना है जो संघर्ष में डूबे हुए हैं, विशेष कर मुसलमानों के विरोध में। राजनैतिक एवं सामाजिक नाटकों की आधार-शिला ही संघर्ष है। इन नाटकों में व्यक्ति, समाज, राज्यशक्ति या दुर्गुण के विरुद्ध संघर्ष दिखाया गया है। प्रेमनाटकों में भी ऐसे नाटक नहीं के बराबर हैं जिनमें संघर्षमय कथानक न हो। एक दर्जन से अधिक दुःखान्त नाटकों का निर्माण इसका पुष्ट प्रमाण है कि भारतेन्दुकालीन नाटक-कार संघर्ष पर दृष्टि गड़ाए थे।

अन्तःसंघर्ष—केवल बाह्य संघर्ष शरीर के समान अत्यन्त आवश्यक अवश्य है किन्तु अन्तःसंघर्ष, हृदय घन कर स्फूर्ति, स्पन्दन और उत्तमता देता है। भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने अन्तःसंघर्ष का भी स्थान दिया है। प्रायः

१. भारतेन्दु जी, चुन्नीलाल एव रामभजन मिश्र कृत हरिश्चन्द्र नाटक।

२. मोहनलाल विष्णुलाल पड्या, श्रीनिवासदास, जगन्नाथशरण द्वारा लिखित प्रह्लाद नाटक एवं रामभजन मिश्र का नृसिंहावतार नाटक।

३. शालिग्राम कृत 'मोरध्वज'।

४. सुदर्शनाचार्य कृत अनर्घ नल चरित्र।

५. शालिग्राम वैश्य कृत अभिमन्यु नाटक।

६. अंजना सुन्दरी, सती सावित्री (भारतेन्दु जी, कन्हैयालाल, और देवराज कृत सावित्री नाटकों की नायिका), द्रौपदी (लक्ष्मोप्रसाद कृत द्रौपदी नाटक और राय प्रभुदयाल कृत द्रौपदी वस्त्र हरण की नायिका), सीता (सीता हरण नाटक, देवकीनन्दन त्रिपाठी और बन्दोदीन दीक्षित कृत)।

७. रुक्मणी हरण, रुक्मणी स्वयंवर, कसबध, कल्याण।

८. महारास, श्यामानुराग नाटिका, कृष्णानुराग नाटक।

सभी प्रमुख नाटकों में अन्तःसंघर्ष पात्रों के जीवन में घुला-मिला है। दुःखान्त नाटकों में यह अधिक स्थान घेरे है। कुछ उदाहरण देखिये—

(क) सीता ने लक्ष्मण को दुर्वचन कहे। लक्ष्मण सीता को अकेली छोड़ राम की ओर चल दिये किन्तु उनके मन में बड़ा संघर्ष उठा। मैं माता जानकी को अकेली छोड़ रहा हूँ। यह उचित नहीं है। “यदि मिथिलेश नदिनी की आज्ञा नहीं मानता तो न जाने स्त्री-स्वभाव वशंगत वह क्या आक्रांत करती। भला उनकी आज्ञानुसार श्री रामचन्द्र के पास जाता हूँ परन्तु उधर रामाज्ञा-भंग और पीछे जननी एकाकिनी होने से अनेक रीति की भीति चित्त को खींचती है” (रामलीला, अरण्य कांड ४-२)। लक्ष्मण गए ही थे कि रावण ने भिन्न रु वेश में आ कर अलख जगाई। उसने बेंधी भीख लेनी अस्वीकृत कर दी। सीता बड़ी दुविधा में पड़ गई कि अब क्या करूँ? क्या रेखा लॉथ बाहर चली जाऊँ? यह तो अनुचित होगा। तब क्या भिन्न रु को निराश लौटा दूँ (अरण्य कांड ४-३)। सुन्दर काण्ड में रावणपुरी में सीता को न पा कर हनुमान जी के मन में द्वन्द्व उठा कि क्या करना चाहिये (१-३)। उत्तरकांड में भी कई स्थानों पर हार्दिक द्वन्द्व की भौंकियाँ मिलती हैं (२-१, २-४)।

(ख) अभिमन्यु नाटक में स्थान स्थान पर मानसिक संघर्ष दर्शन देना है। अभिमन्यु प्रियतमा से विदा हो रणस्थल की ओर जाता है तो मन भूलने लगा। कभी वह प्राणेश्वरी के चन्द्रमुख का ध्यान करने लगा तो कभी रण-स्थली के रणसिंघे का (२-१)। अभिमन्यु के मरणोपरान्त महाराज युधिष्ठिर के हृदय में आधी उठ खड़ी हुई कि युद्ध जारी रखा जाय या नहीं (८-२)।

(ग) पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी कृष्ण रुक्मणी हरण नाटक अन्तःसंघर्षों से भरा पड़ा है। रुक्मणी, रुक्मी, सत्यशील, मातंग—सबके जीवन में परिस्थिति-वश अन्तःसंघर्ष हृदय को झकझोरता है। ये उदाहरण पौराणिक नाटकों से उद्धृत हैं। पौराणिक नाटकों के पात्र अलौकिक होते हैं। यदि कहीं अलौकिक नहीं भी हैं, तो वे असाधारण तो अवश्य ही हैं। जब इन पौराणिक नाटकों में भी अन्तःसंघर्ष पर्याप्त मात्रा में भरा पड़ा है तब अन्य नाटकों के विषय में तो सहज ही अनुमान किया जा सकता है जहाँ पात्र प्रधानतया मानव हैं। बात ऐसी ही है। मयंकमंजरी जैसे ऐयारी से भरे नाटक में भी मानसिक संघर्ष की भौंकियाँ चित्रित हैं। प्रतिनायक वसंत, नायिका के पिता से विवाह-प्रस्ताव सुन कर असमजस में पड़ जाता है। उसका हृदय उधेड़-बुन करने लगता है (अंक २)। दुर्जनबंधु नायक को विष देने जाता है तो हृदय में सप्राम मचता है (अंक ३)। अन्य अनेक नाटकों में मानसिक संघर्ष के

चित्रण मिलेगे^१ ।

मनोविज्ञान—

नाटककार कथा के साथ पात्रों पर बहुत ध्यान देता है । पात्रों की सजीवता और स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिक चित्रण पर निर्भर करती हैं । यदि नाटककार अपने पात्रों की सृष्टि मनोविज्ञान की आधारशिला पर कर सका है तो उसका चरित्र-चित्रण सफल है । पश्चिम में मनोवैज्ञानिक आलोचना को बड़ा महत्त्व दिया जाता है किन्तु पूर्व में मनोविज्ञान को ध्यान में नहीं रखा गया है, ऐसी बात नहीं है । संस्कृत के नाटकों में भी पात्र, मनोविज्ञान की भूमि पर खड़े हैं । ब्रजभाषा नाटकों में भी पात्रों के चरित्रों में मनोविज्ञान भरा है । हम प्रथम खंड में करुणाभरण की राधा और सत्यभामा की चर्चा कर चुके हैं । उदय के राम करुणाकर के राम का विलाप मनोवैज्ञानिक है । भारतेन्दुकालीन अधिकांश नाटककारों ने मनोविज्ञान की मिट्टी से पात्रों को घड़ा है । यह आधुनिक हिन्दी नाटक का शैशव काल था और ऐयारी तिलस्मी उपन्यासों के बीज बिखरने आरम्भ हो गए थे । इतने पर भी नाटकों में पात्रों को सजीवता और स्वाभाविकता पर बड़ा ध्यान दिया गया है । हमारे शब्दों में कहेंगे कि नाटककारों ने मनोविज्ञान का आश्रय ले कर पात्रों का निर्माण किया है । यदि कोई पात्र परिस्थिति विशेष में वैसा ही करता है और कहता है जैसा कि अन्य मनुष्यों को करना या कहना चाहिये तो हम कहते हैं कि पात्र मनोवैज्ञानिक है । यदि कोई पात्र ऐसा नहीं करता तो नाटककार को कारण देना होगा, नहीं तो पात्र अमनोवैज्ञानिक बन जायगा । यदि शत्रु के ललकारने पर वीर पुरुष का हृदय तिलमिला कर हाथ न उठा बैठे तो पात्र अमनोवैज्ञानिक है यदि उसने बुद्धत्व प्राप्त नहीं कर लिया है । यदि अशोध और अकेले पुत्र पर सकट देख माँ आड़े न आई और न इसका कारण ही दिया गया है तो माँ का चरित्र-चित्रण अमनोवैज्ञानिक है ।

(क) मनोवैज्ञानिक भौक्तियों के सुन्दर सुन्दर चित्र नाटकों से प्राप्त होते हैं । यदि युवा पत्नी को अशोध पति प्राप्त हो जाय तो सुहागरात की रात में उस मदमाती के मन की क्या गति होगी, इसे कोई भुक्तभोगी या कल्पना-

१. कुल्ल उदाहरण—कुंदकली १-३ । गंगोत्री-१-१, ३-२ । प्रेमसुन्दर ४-४ । माधवानल कामकंदला २-५, २-७ । संयोगता स्वयंवर १-२, ५-२ । सिंधु देश की राजकुमारियाँ १-१ । लवजी का स्वप्न पृ० २७ । सती चन्द्रावली दृश्य ४ । वारांगना रहस्य—१-२ । चौपट चपेट तृतीयंक । भारतीद्वार १-२ । रणधीर प्रेममोहिनी—१-१, ३-४, ४-४ ।

शील नारि-नर सहज ही समझ सकता है। उछलते मन के साथ सजी दुल्हन शयन कक्ष में आई। 'चटकीला दीप जल रहा है और स्वच्छ सय्या बिछी है।' छोटा पति नाँद से नयन लगाए है। उन्मादिनी पत्नी बैठी बिसूर रही है 'हाय जो जो विहार मैं अपनी नवोद्गा प्यारी सखियों के मुँह से सुन कर मग्न थी वह प्रथम समागम का सुखानुभव तो विधना ने हमारे भाग्य में नहीं लिखा था। फिर कैसे कोई आग्रहयुक्त मुझे सय्या पर बिठाये? और कौन मृनाल भुज की माल इस हतभागिनी के कंठ में पहिना अपने मृदु भाषण से हृदय शीतल करे।'।

लेखक बड़े सुन्दर रूप में स्त्री हृदय को पन्नों पर रख देता है। वह विधाता को, भाग्य को, माँ बाप को कोसती है। वह बड़ी दुखी है, उन्मादिनी है, उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं 'हाय! अब किसकी आशा किए बैठी हूँ कि वह आकर अंक भरेगा? और मेरे कृत्रिम मान खंडनार्थ कर द्वैत कुच कपोल स्पर्श कर आलिगन करेगा।' लेखक दम्पति जीवन की रहस्यमयी ग्रन्थि का अवगुण्ठन यहाँ उघाड़ देता है। 'भला मुझमें इस कामाग्नि में रहते हुए कै दिन धर्म निर्विघ्न रहेगा।

आई इतै भ्रमरी रस हेत चितै तहाँ कँची कली दुख पाई।

पाई पराग न गव तनिक रही हिय में अति ही विलपाई।

खाई वृथा ही जु कटक नोक भो शोक मनो विरहागि सताई।

ताई दगरहिं हाथ दई जु पै बालपिया सँग हौं लागि आई।

भूलमार बाल पति के पलंग पर जाती है। किन्तु..... आगे और भी सुन्दर मनोभाव नाटककार इसी प्रकार व्यक्त करता है।

(बाल्यविवाह दूषक, देवदत्त मिश्रकृत, अंक ३)

(ख) मनोराज्य का यह रहस्य है कि सौन्दर्य आँखों को खींचता है। युवा स्त्री नहीं, प्रौढ़ा और वृद्धा भी पुरुष की मनोहरता से अभिभूत होती हैं। मनोहरता पारखी गोसाईं तुलसीदास जी की पारगामिनी लेखनी में भी कहला लेती है 'पुरुष मनोहर निरखत नारी।' इस स्त्री मनोविज्ञान का सुन्दर उदाहरण विद्यासुन्दर में मिलता है। हीरा मालिन अत्यन्त सुन्दर राजकुमार सुन्दर को देख कहती है 'हाय हाय! ऐसा सुन्दर रूप तो न कभी आँखों देखा न कानों सुना। इसकी दोनों हाथ से बलैया लेने को जी चाहता है.....' हाय हाय इसके माँ बाप का कलेजा पत्थर का है कि ऐसे सुकुमार सुन्दर पुरुष को घर से निकाल दिया' (विद्यासुन्दर १-२)।

(ग) स्त्री सुन्दर वस्त्राभूषण प्रिय और हठी होती है, इसका श्रेष्ठ उदाहरण रामलीला अरण्यकांड में है। सीता ने सुन्दर रंग-विरगा मृग देखा। उसने राम से हठ की कि इसकी खाल ला दो। राम ने कहा—क्या करोगी ?

सीता बोली—अपनी कंचुकी बनाऊँगी। जब किसी वस्तु या व्यक्ति पर मन रम जाता है तो व्यक्ति उसे प्राप्त करने पर उतारू हो जाता है। बाधा पड़ने पर और हठ करता है। यदि वह बालक या स्त्री के समान भावुक है तो और हठ करता है। यही हाल सीता का हुआ (४-१)।

(घ) मनुष्य अपने दोष और अन्य के उपकार को जल्दी ही भूल जाता है। रणधीर प्रेममोहिनी का सुखवासी लाल ऐसा ही पात्र है। मानव मन की दुर्बलता है कि मनुष्य अपने को सदा बड़ा योग्य मानता है। यदि कोई त्रुटि हो जाती है तो वह दोष दूसरे के ही सिर मँढ़ता है। विद्यार्थी अनुत्तीर्ण होने पर असफलता के पछे सदा शिक्षक का हाथ देखता है, अपनी निरुद्यमता नहीं। नौकरी से हटाया कर्मचारी भी स्वामी का दोष ही देखता है। सुखवासी लाल को रणधीर ने नौकरी से हटा दिया। वह स्वार्थी, धूर्त और वेश्यागामी था। सुखवासीलाल मारवाड़ी बनिये से कहता है 'रणधीर सिंह आदमी की कदर क्या जाने ! कोहिस्तान की सरसब्जी दूर से यक-सा नजर आती है लेकिन कोई उससे क़रीब जा कर देखे तो उसका नशेबो फगज मालूम हो।' इनके दिमाग में जवानी की बू समा रही है। इनका मित्राज निहायत शक्की है। ये सबको बड़ा बेवफ़ा समझते हैं।

(रणधीर प्रेममोहिनी ४-४)

ऐसे शतशः उदाहरण नाटकों से लिखे जा सकते हैं।

सब सामान्य पात्र—

इस काल के हिन्दी नाटकों की पात्र-योजना की मौलिकता है इनके कुछ सर्वसामान्य पात्र। नाटककारों ने कुछ ऐसे पात्रों का निर्माण किया है जिनके विषय में लगभग सभी नाटककारों का एक सा ही दृष्टिकोण है। हम यहाँ ऐसे तीन पात्रों की चर्चा करेंगे। ये तीन पात्र हैं—ब्राह्मण, यवन और क्षत्रिय।

ब्राह्मण पात्र—एक ऐसा भी पात्र है जिसपर सभी नाटककारों ने व्यंग्य बाण छोड़े हैं और ताने कसे हैं, हँसी उड़ाई है और निन्दा की है। यह पात्र सब ओर से अपमान, उपहास, निन्दा, व्यंग्य सहता मस्त चाल से आगे बढ़ता जाता है ! यह पात्र ब्राह्मण है। नायकों में इस ब्राह्मण पात्र के तीन प्रमुख रूप प्राप्त होते हैं। ये रूप हैं—(१) विदूषक रूप, (२) ज्योतिषी रूप और (३) पंडा रूप।

विदूषक रूप—ब्राह्मण पात्र का विदूषक रूप बहुत प्राचीन है। संस्कृत नाटकों से भी यह रूप प्राप्त होता है। इस रूप में ब्राह्मण पात्र का एक ही काम है कि वह स्वयं खासों काढ़े और दर्शकों से कढ़वाए, उन्हें हँसाए और उनके द्वारा अट्टहास का शब्द उपजवाए। मदन मंजरी, रामलीला नाटक,

(दामोदर शास्त्री कृत), लावण्यवती सुदर्शन, शीलसावित्री, गोपीचन्द (श्रीमती लाली कृत), कमलमोहिनी भँवरसिंह—इनमें और ऐसे सभी नाटकों में यह ब्राह्मण पात्र केवल हँसाने के ही लिए जन्म धारता है। इसके पास हास्योत्पादन के दो साधन हैं—(१) यह सदा का पेटू है। जब देखो यह भोजन का पचड़ा ले बैठ जाता है। (२) यह भंगड़ है और इसकी परम प्रेयसी का शुभ नाम 'विजया' या भोंग है। ब्राह्मण होते हुए भी यह पुस्तकों को त्याग सकता है किन्तु सिलबट्टे को नहीं। कहीं इसका नाम विदूषक है तो कहीं 'चौबेजी'। नाम भले ही बदल जाय परन्तु काम नहीं बदलता। कहीं कहीं यह पात्र अलग से न आ कर नाटकीय पात्रों में वुल्ल-मिलने का प्रयास करता है किन्तु दर्शकों की पैनी आँखें इसे खोज लेती हैं क्योंकि यह अपना पेट नहीं छिपा पाता है। यह विश्वामित्र के शिष्य रूप में 'स्वार्थी और नञ्चा' नाम धर कर अपने को छिपाता है किन्तु जैसे ही यह गाता है 'यह पेट हमारा खाली' या 'सौ मन पेड़ा सौ मन बर्फी सौ मन सीरा पूरी जान! सौ मन लड्डू नित्य सबेरे होवें तब करता जलपान', दर्शक तुरन्त अंगुनी संकेत करता है—वह रहा विदूषक।^१ इस ब्राह्मण पात्र द्वारा ब्राह्मणों की पेटू प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है और परोक्ष रूप से सिद्ध किया गया है कि वे न्योता खाने के लिए सदा घोड़ा कसे रहते हैं। दूसरे शब्दों में ब्राह्मणों की हँसी उड़ाई गई है और उनका उपहास किया गया है।

ज्योतिषी रूप—ब्राह्मण पात्र का दूसरा रूप है ज्योतिषी का। अपने इस रूप में यह पात्र अंगुलियों पर मीन मेप गिनता है, प्रश्नकर्ता के अधियाले भाग्य की छिपी रेखाओं को पढ़ता है और जन्मपत्री जोड़ कर बालक बालिकाओं के भाग्य को सदा के लिए जोड़ देता है। इसके जोड़े हुए जन्मपत्री रूपी सीमेंट को कोई तोड़ नहीं सकता। तत्कालीन नाटकों में ब्राह्मण पात्र के इस रूप को सबसे अधिक फन्तियाँ और दुलत्तियाँ सहनी पड़ी हैं। चरित्रचित्रण की दानों शैलियों—परोक्ष और प्रत्यक्ष—द्वारा इसपर बौछारे हुई हैं। जब यह सामने न था तब पात्रों ने इसको कोसा है, शाप दिया है और इसका मरण चाहा है। *विवाहिता विलाप* नाटक में चम्पा कहती है 'तो किसको कोसे सखी! वेद का या पुराण को या उस पंडित को जिसने ब्याह की बातचीत मनधीर से कराई थी (भाँकी १ पृ० ६)। यहाँ कोसने भर की धमकी दी गई है, वास्तविक गालियाँ नहीं। अन्यत्र चम्पा कहती

१. रणधीर प्रेममोहिनी, गो-संकट नाटक।

२. रामभजन मिश्र, नज़ीर बेग और महताबराय कायस्थ कृत *हरिश्चन्द्र* नाटक।

है 'क्या कहूँ सखी ! हमारा रोम रोम उस ब्राह्मण को शाय देता है जिसने जन्मपत्री को जोड़ कर विवाह कराया था ।' और वे पंडित लोग कहाँ गये जिन्होंने व्याह का साह रक्खा था । भगवान् उन लोगो का सर्वनाश करे (भौकी १, पृ० ८) । दुःखिनी वाला रूपक की सरला भी चम्पा के समान इस पात्र को शाय देती हुई कहती है 'हमारा रोम रोम ब्राह्मणो को श्राप देता है'.....वे पंडित लाग कहाँ गये जिन्होंने जन्मपत्रो देखी थी । भगवान् उन लोगो का सर्वनाश करे ।.....अब बतलाइए ब्राह्मण लोग क्या कहते हैं । उससे तो बहुत अच्छी बनती थी, वह क्यों मर गया ।' सरला इसको अत्याचारी और मूर्ख की पदवियों से विभूषित करती है और आह्वान करती है कि ये अन्यायी ब्राह्मण आ कर मुझसे शास्त्रार्थ कर लें । आगे भगवान् से माँगती है 'भगवान् इनका बुरा करे' (दुःखिनी वाला रूपक, दृश्य ५) । अग्रहरि कृत सुलोचना सती में इस ब्राह्मण पात्र को 'पोप' की पदवी प्रदान की गई है ।

परोक्ष में सभी की निन्दा हो सकती है । किन्तु इस ब्राह्मण पात्र को मुँह पर भी लांछना उठानी पड़ी है । लोकपीठन दास बोलें 'पाधे जी ! तुम तो कही थी कि बहुत सुन्दर पत्री जुड़ गई है और लड़के के बड़े सुन्दर ग्रह पड़े हैं और तुम्हारी लड़की बड़े सुख में रहेगी और फिर यह कैसे हुआ' (बाल विधवा संताप नाटक, प्रवेश २) । जन्मपत्री रूपी गाड़ियों को हड़ता से जोड़ने वाला यह कुशल स्थापक कब निरुत्तर होने वाला था । वह तुरन्त बोला 'सेठ जी ! हमने कहा था अभी भद्रा है और बृहस्पति चन्द्रमा कुछ पीछे हैं इनकी पूजा हो कर तो यह प्रवेश हो, परन्तु सेठानी जी ललक में पड़ के भट गोदी में ले गईं । हमने दक्षिणा भी नहीं माँगा' (देशदशा नाटक) । पाधे जी का भाव है कि दक्षिणा न देने से ही यह अनर्थ हुआ है । यदि सेठानी जी पाधे जी से पूछतीं और वे बृहस्पति-चन्द्रमा पर मुद्राएँ चढ़ाते, अपनी दक्षिणा ले लेते और तब बहू का यह-प्रवेश होता तो यह अनर्थ न हो पाता । इससे नाटककार यह प्रमाणित करता है कि यह पात्र बातें बनाना खूब जानता है । इसका दूसरा उदाहरण है कि कुपंथीराम पुरोहित के रूप में यह ब्राह्मण-पात्र बालविधवा के पिता को समझाता है कि पुत्री के भाग्य में ही विधवा होना बदा था । कर्मरेख कब किससे मिटी है ? माँ-बाप तो जन्म के साथ ही होते हैं, 'कर्म के नहीं' (बाल विधवा संताप नाटक पृ० ३१) । इस पात्र के प्रत्यक्ष चरित्रचित्रण का अन्य उदाहरण यह भी है । विवाह विडंबन नाटक में सामंता नाई और पंडित जी वर खोजने गए । एक स्थान पर लड़के की एक आँख की ताँ कमी थी परन्तु दक्षिणा को नहीं । सामंता बोला—'पंडित जी लड़की मंगली है, और लड़का मंगली है नहीं ।'

चिन्तामणि पंडित तुरन्त बोल उठे 'न सही लड़का मंगली, मंगली होने में कितनी देर लगे है। लड़की की जन्मपत्री लिये चलिए आगे मैने जानी (विवाह विडम्बन अंक १)। पंडित जी ने लड़की की जन्मपत्री के अनुसार लड़के को भी मंगली सिद्ध कर दिया। कैसे? लड़के की नवीन जन्मपत्री रच कर। जन्मपत्री द्वारा ये ब्राह्मण-देवता केवल विवाह ही नहीं रचाते वरन् जन्मपत्री से ये वर्ष भर का हानि-लाभ, सुखदुःख भी बताते हैं और भावी के काले पदों में छिपा भविष्य भी पढ़ लेते हैं। पुलिस नाटक के नायक धनदास को इस पात्र ने बताया कि यह वर्ष तेरी आय का है, लक्ष्मी छुपर फाड़कर टूट पड़ेगी। किन्तु हुआ विपरीत कार्य। बेचारे धनदास के घर में चोरी हो गई और पहिले की सचिit लक्ष्मी भी चली गई। धनदास, माथा टोकने और इस पात्र के कथन पर टीका-टिप्पणी करने लगा (पुलिस नाटक ३-४)। जब यह ब्राह्मण पात्र विवाह सम्पन्न कराता है तो नाटककारों ने इसका स्वार्थी रूप विशदता से चित्रित किया है। वैवाहिक क्रिया सम्पन्न कराते समय इसके लम्बे-लम्बे हाथ दर्शनीय हो जाते हैं। कुछ ऊलजलूल मंत्र पढ़ता जाता है और दक्षिणा चढ़ाता जाता है। उस समय पूजन-प्रणाली से अधिक टका पर इसकी दृष्टि उसी प्रकार टिकी रहती है जिस प्रकार किसी स्वार्थी वकील की आँखें सामने रखी दस्तावेज से अधिक वादी या प्रतिवादी की जेब पर टिकी रहती है। प० काशीनाथ जी पूजन कर रहे हैं—'इन्द्रोदेवता अग्नि देवता बृहस्पति देवता यहाँ हमारी दुहरी दक्षिणा चाहिये। गणेश के पूजन फिर करो, एक टका हाथ में लेउ, आंगं गणपते नमः षोडशमात्रकाभ्यां नमः, यहाँ पूजन को एक टका और चाहिये—(विवाह विडम्बन अंक १)।

इसी पात्र का दूसरा नाम चिन्तामणि या काशीनाथ से बदल कर विद्यासागर हो गया तो वह भी काशीनाथ की तरह अपना लोटा पैसों से भरता जाता है 'लला जी आचमन कीजिये—ओग गणपति ग्वग्वा महे' कलश गणेश को प्रोहित जी और आगे हटाड देउ—ऊं षोडशमात्रकाभ्यां नमः—पाँच टका और लाओ—नवग्रहतु को पूजन कीजिये'—सवा रुपया वाचा पढ़ाई। हमारी दक्षिणा दो। (विवाह विडम्बन अंक ३)

पंडा रूप—ब्राह्मण पात्र का तीसरा रूप है पंडा का, जो गंगाजी या जमुना जी के घाट या स्टेशन पर बैठा यात्रियों की पोटली और जेबों को ताकता रहता है। इस रूप की भी नाटककारों ने अच्छी खबर ली है। भारतेन्दु जी ने प्रेमयोगिनी नामक नाटक में गंगापुत्र और भडेरिया नाम से इसे ही स्मरण किया है। (प्रेमयोगिनी, गर्भांक २)

भारतीहरण में पंडा जी कलियुग के मित्र हैं। इनके द्वारा मित्र कलियुग की वृद्धि होती है। ये ही मित्रों को स्वर्ग में भेजते हैं। नहीं तो वे नरक में

ही पड़े रह जायें। इनको ज़ाली बैठे धन भी बहुत मिल जाता है किन्तु ये लोग बालकाभिगमन, वेश्याप्रसंग एवं आपस में मारपीट कर के सब धन नष्ट कर डालते हैं (भारती हरण ४-१)। यह ब्राह्मण पात्र कारी में बैठ कर नवागंतुक यात्रियों को अनेक प्रकार के भोंसे दे कर उनका धन और उनकी पत्नी को तो लूटता ही है, काशी के दलालों की नाई 'सांध्य भापा' भी बोलता है जिसका अर्थ पंडे ही समझते हैं। इसका पूरा भंडा-फोड़ काशी दर्शन नाटक में हुआ है जो भारतेन्दु जी के प्रेमयोगिनी का बृहद् संस्करण ही है। इसके प्रधान पात्र दा पंडे ही हैं। यही ब्राह्मण पात्र कहीं 'लालची' पंडा के रूप में गोदान में पाई गाय वधिक को बेच डालता है (भारत डिमडिमा नाटक, अंक ४) तो कहीं 'स्वार्थी' पंडा बन कर क़साई के हवाले करता है ताकि प्राप्त धन से वेश्या को रिक्ता सके। अकबर इस 'स्वार्थी' पंडा को भी दंड देता है और इसकी माँ को भी जिसने इस पंडा को पैदा किया (अकबर गोरक्षा न्याय नाटक)। रुक्मणी हरण के 'सत्यशील' जैसा ब्राह्मण पात्र इस काल के नाटकों में बहुत स्वांजने पर कहीं दुबका मिलेगा। आदर्श नायक के रूप में तो किसी नाटककार ने इसे स्वीकार नहीं किया है।

यवन पात्र—नाटकों में ब्राह्मण उपहास और व्यंग्य का पात्र है तो यवन, वृणा और तुच्छ दृष्टि का। यह पात्र सभी दुर्गुणों का पुजीभूत आगार है। नाटककारों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ढंग से इसके प्रति हार्दिक वृणा और शत्रुता प्रकट की है। नाटकीय पात्र इसपर निन्दा, अपयश, नीचता, दुष्टता और मलीनता की गठरी लाद देते हैं। वीर वामा नाटक का वीरसिंह कहता है 'इन वज्रहृदयी कृतधनी यवनों के मन में तनिक दया का संचार नहीं है। ईश्वर ही इन राजसों से बचाये (वीरवामा दृश्य २)। सत्यवती नाटक की लक्ष्मी इनसे वृणा प्रकट करती कहती है 'इन दुर्बुद्धि यवनों का दुराचरण और कुकर्म देखना योग्य नहीं' (सत्यवती ५-२)। वीरवल तो अकबर के सामने इस यवन पात्र की निन्दा करता हुआ कहता है 'मुसलमानों के अन्याय तो बहुत असह्य हैं। मुसलमान लोग ग़ैर मुल्क से आकर हमपर हुकूमत ही नहीं वरन् तरह तरह के अन्याय करते हैं और हम लोगों को तुच्छता की दृष्टि से देखते हैं। इन थोड़े से म्लेच्छों की गुलामी में इनके अनेक प्रकार के अन्याय सह कर इस थोड़े से जीवन भार को गंधे की भाँति घसीटते रहे हैं (न्याय सभा नाटक १-३)। नागरी विलाप का लेखक इस पात्र को हिन्दुओं का परम शत्रु सिद्ध करता है (दृश्य ४)। भारतभाग्य इन्हें बर्बर और अत्याचारी बताता है (भारत दुर्दशा, अंक ६)। नीलदेवी अपने पति को समझाती है 'इन दुष्टों से सदा सावधान ही रहना चाहिए (नीलदेवी, दृश्य ३)। नीलदेवी का पागल बना राजपुत्र अपना शब्दकोष खोलता है 'तुरक-तुरक-तुरक—दुष्ट

चांडाल गोभक्षी जन-दुष्ट ग्लेच्छ—हुँ—मार मार मार—वेधय-वेधय—नाशय नाशय—फाँसय फाँसय—त्रासय—त्रासय—स्वाहा—फू—सब जवन स्वाहा—मूका जूता लात लाठी सोटा ईंट पत्थर पानी सब से मार—’ फिर आगे अपने साथी को बताता है कि प्रसन्नता यह है कि महाराज ने सींकचे में बंद होते हुए भी दुष्ट अमीर के मुँह पर थूक दिया (नीलदेवी दृश्य ८)। राजपूत इन दुष्ट चांडाल यवनों के रुधिर से पितरों का तर्पण करने को प्रस्तुत हैं (नीलदेवी दृश्य ९)। सोमदेव तो कहते हैं ‘कि इन दुष्टों से पाप किया जायेगा तो वह पुण्य ही माना जायेगा (नीलदेवी दृश्य ९)। ऐसे कठोर शब्द इस पात्र के लिए क्यों प्रयुक्त हुए? इस पात्र ने हिन्दू, हिन्दुस्तान, हिंदू धर्म, हिन्दू ललना, हिन्दू-पूजा गाय—सभी पर अकथनीय अत्याचार ढाए थे। भारत दुर्दशा का भारतभाग्य कहता है ‘मन्दिर भल्लनि तोरि गिराये’ (भारत दुर्दशा, छुटा अंक)। राजपूत बताता है कि हमारी स्वाधीनता लीने वाला यही पात्र है। इसने महाराज सूर्यदेव को बाध्य किया कि मुसलमान बन। न बनने पर मार डाला (नीलदेवी दृश्य ८)। भारतमाता कहती है ‘मेरे शरीर का अब रक्त भी शेष नहीं। यवन सब चूम ले गये’ (भारत जननी नाटक)। गोसंकट नाटक का सूत्रधार इस पात्र की भयंकर विभीषिकाओं का वर्णन करता है ‘देवों, कन्नौज आदि देश किस दुर्दशा से लूटे गये। देवमंदिर और मूर्तियाँ ताड़ी गई। कुलवती स्त्रियों का सतीत्व बलात्कार नष्ट किया गया। बिना अपराध एतद्देशीय निवासियों के मस्तक काट कर गढ़ों के कगारों में लटकाये गये’ (प्रस्तावना)। यह सब किसने किया? इसी यवन पात्र ने। भारतीहरण नाटक की नायिका भारती इसी पात्र की ओर संकेत कर के कहती है ‘यवन लोग कुल स्त्रियों पर बड़ा दुराचार फैलाये हैं, ऐसा कि जिसके यहाँ सुन्दरी नारी सुनते हैं उसके यहाँ से डोला माँगते हैं, कुछ दिन रख के तिरस्कार कर देते हैं’ (५-१)। वीरसिंह इस पात्र पर प्रकाश डालते कहते हैं—

नाश किया भारत को बहुविधि, बहुविधि ताहि सतायो
अगम अनंत ग्रन्थ बहु नाशे धनकहिं धूरि मिलायो
नाशे अगनित सुभगधाम निष्कंटक तिनहि लूट्यो
बलकरि धर्म भ्रष्ट तेहि कीन्हो ऐसी कीन्ह दिठाई
पतित सतीत्व कीन्ह बहु अवला मुख सों नहिं कहि जाई
व्यसनाश्रित इन्द्रिय लोलुप हो चहुँ दिश ऊद उठाई
दुसह दुःख दीन्हें लोगन को सब विधि पतित कराई।

(वीरवामा, दृश्य ८)

पद्मावती का रत्नसेन बताता है ‘जिन्होंने हमारे धर्म का नाश किया, जिन्होंने हमारे मान का नाश किया, जो हमारी जन्मभूमि के विरोधी हैं, जो

कुलस्त्रियों का सतीत्व भंग करते हैं, जो नारियों पर अत्याचार करते हैं, जो हम लोगों की पूज्यपादा गो की हिंसा करते'' (६-३)

जिन तोरी मूरति बहुत हिन्दुन करत अधर्म
नासत हैं गइयन कौं करत सदैव कुकर्म
कुल नारिन को करत जो महा पतिव्रत भग
बल प्रकाश करि दुष्ट गण करत कुमारी संग ।'

(पञ्चावती, ६-३)

भारत भाग्य दुःख प्रकट करता है कि इस पात्र ने 'मंदिर महलनि तोरि गिराये' (भारत दुर्दशा, अंक ६) ।

भारत सौभाग्य का 'विषयभोग' पात्र अपने मित्रों के काले कारनामों की प्रशंसा करता है 'मेरे ही लिये बादशाह लोग गाँव के गाँव जला डालते, लोगों के घरों से औरते छीन मँगाते थे, और शहर के शहर लूट पाट कर नेस्तनाबूद करते थे' (भारत-सौभाग्य, अम्बिकादत्त व्यास कृत, दृश्य ३) । इसी नाटक का भारत सौभाग्य भी अपने सहायकों के गुण बखानता है 'हमारे एक महमूद और पैदा होता तो मैं फिर मोल्लों पर ताव देता । आहा महमूद ने कैसे आनन्द किये । हाय रे अन्तिम वीर औरंगजेब—

को हिन्दून् के खोजि खोजि कै मंदिर फौरै
को पुनि तिनही ठौर ठौर में मसजिद जोरै ।
फारि फारि के वेद कौन मग में बिछुवावै
हिन्दु कुल जुवतिन का को पुनि छीनि मँगावै ।
कौन बात की बात प्रजा को कतल करावै
लूट पाट के धूम हाय अब कौन मचावै ।
कहाँ अलाउद्दीन आज चितौर सघारक
फर्रुखसियरहु कहाँ राजसी मूरति धारक ।
कहाँ खिलजी को वंश कहाँ तैमूर सुहावन
अन्तिम औरंगजेब कहाँ भारत बिनसावन ।

(भारत सौभाग्य, अम्बिकादत्त व्यास कृत, ४-५) ।

इस पात्र का स्वामी 'सत्यानाश फौजदार' बताता है कि 'हलाकू चंगेजो तैमूर, हमारे अदना अदना सूर । दूगानी अहमद नादिरसाह । फौज के मेरे तुच्छ मिपाह' ॥

(भारत दुर्दशा, अंक २)

और इन्होंने सत्यानाश फौजदार की आज्ञानुसार भारत का भरपूर नाश किया ही था ।

यवन पात्र के रूप—इस यवन पात्र का निर्माण चार रूपों में हुआ है (१) बादशाह या नवाब (२) अधिकारी—(वजीर, सेनापति, कोतवाल

(३) क्राजी मौलवी धनी-यवन (४) सैनिक ।

(१) बादशाह रूप—यवन पात्र ने इस रूप में क्या क्या किया इसकी चर्चा पीछे हो चुकी है । बादशाह रूप में इसने हिन्दू, हिन्दू मन्दिर और हिन्दू ललना पर प्रलयकरी आपत्तियाँ गिराईं । अलाउद्दीन की आज्ञा क्या थी ? 'हज़ूर बादशाह सलामत का हुक्म है विरोधी धर्म वाले को खानदान सहित नष्ट करने का' (पञ्चावती १-२) । प्रत्यक्ष रूप में भी यह अत्याचार करता दिखाया गया है । सती चन्द्रावली में औरंगजेब बड़ा खुश है कि एक हिन्दू खूबसूरत लड़की को शाहजादा अशरफ पकड़ लाया है और मुसलमान बना कर शादी कर लेगा । प्रतिष्ठित हिन्दू नागरिकों की प्रार्थना पर वह बड़े गर्व और हर्ष से कहता है 'क्या हर्ज है ? अगर एक काफिर की लड़की दीन इसलाम कबूल कर ले । उसकी नजात होगी'—(सती चन्द्रावली दृश्य ३) हिन्दुओं के गुल गपाड़ा और हड़ताल करने पर वह मंत्री से कहता है कि—ढेंढोरा पिटवा दो कि कल्लेग्राम होगा । मारो काटो । चन्द्रावली को फौरन मुसलमान बनाओ (दृश्य ८) । अकबर अपनी विवास और लम्पट प्रवृत्ति की पूर्ति हेतु मीना बाजार लगाता था । दूतियों द्वारा कुलीन और सुन्दर हिन्दू रमणियों को फुसलवा कर या पकड़वा कर मँगाता था । रानी उसे धिक्कार देती कहती है 'हाय ! जिन राजपूत वीरों की सहायता से आज तुझे यह प्रताप प्राप्त हुआ है, रे कुलागार, उन्हीं की बहू-बेटियों पर हाथ डालते तुझे लज्जा नहीं आती । धिक्कार है तुझको' (महाराणा प्रताप, २-३) ।

(२) अधिकारी रूप—बज़र, सेनापति रूप में यह बादशाह जैसा ही प्रभुत्वपूर्ण, शक्तिशाली और अत्याचारी है । सिन्धु देश की राजकुमारियों नाटक में खलीफा का सेनापति 'मुहम्मद बिन कासिम', गुन्नौर की रानी का विजयी खॉ और नीलदेवी का अमीर अब्दुरशरीफ खॉ इसी के रूप हैं जो हिन्दू राजाओं को मार कर राज्य और प्रजा को ही नहीं खाते, उन राजाओं की रानियों और पुत्रियों को भी अपनी बनाना चाहते हैं । वीरवामा में बज़ोर हशमतखॉ और सेना नायक कमालखॉ अपने चरित्र पर अपने कथनों द्वारा प्रकाश डालते हैं । हशमतखॉ कहता है 'हॉ भाई ! देखो दीन इसलाम का कोल है—

हरदम इन काफ़िरो से रहो वार ख़बरदार
हरगिज़ न कभी इनका करो भूल के इतवार
जी जान जा बला से हो बदनामी जहाँ में
पर लेने दो आराम टुक हरगिज़ इन्हें न वार
हैं जानी दुश्मन दीन के यह काफ़िरे बदजात
वह काफ़िरे सुतलक हमेश, इन्हे फिटकार

बरबादी इनकी वाजिब है दुश्मन ये ख़तरनाक
इस कौल से हरगिज़ न कभी चूकना जिनहार ।'

(वीरवामा दृश्य २)

और कमालशौ का कथन है—इन बेईमान बुतपरस्तों के बुतों की हमने जूतों से खबर ली, इनके सिरों का हजारों मन लोहू तलवारों को मिलाया, इनके मुँह में थूका, तिलक चाटा, जनेऊ तोड़ा, सिर पर जूतों का ताज पहनाया । इनके धर्म शास्त्र की किताबों को आवदस्त का कागज़ और हम्माम का ईंधन समझा, हजारों को जबरदस्ती मुसलमान बनाया और सैकड़ों तरह की मनमानी सख्तियों के साथ इनसे पेश आए'***और दूसरों को उपदेश देता है—

इन काफ़िरो को यारों हरदम सताते रहिये
टुक चैन इन्हे लेन देना है नहीं लाजिम
हर वक्त इनकी बादी जाबजा पचाते रहिये
बढ़ कर न है जहाँ मैं इससे कोई सवाब
जूतों का इनके सिर पै सदा धर बनाते रहिये ।

(वीरवामा दृश्य ४)

प्रचण्ड गोरक्षा नाटक और अकबर गोरक्षा न्याय नाटक का कोतवाल हिन्दुओं को पकड़ता है क्योंकि यह पुरण कार्य है ।

(३) काज़ी, मौलवी, धनी-यवनरूप—काज़ी मौलवी एवं धनी मुसलमान के रूप में भी यह पात्र हिन्दुओं को अत्यन्त कष्ट देता है । काज़ी मौलवियों की धर्मान्धता तो प्रसिद्ध है । नीलदेवी का काज़ी अत्यन्त प्रसन्नता से गाकर कहता है—

काफ़िर पै मुसलमों को फ़तहयात्र बनाया ।
की मेह बड़ी तूने य बात मेरे खुदाया ।
ख़ाली किया इक आन में दौरों को सनम से
शमशीर दिखाके, बुतग़ाने गिरा करके हरम तूने बनाया
इस हिन्द से सब दूर हुई कुफ़्र की जुल्मत, की तूने रहमत
नक्कारण ईमों को हरएक सिम्त बजाया ।
गिर कर न उठे काफ़िरे बदकार ज़मीं से, ऐसे हुए शारत

(दृश्य ६)

कल्ल हक़ीक़तराय का काज़ी भी ऐसा ही है । गोसंकट नाटक (पं० अम्बिकादत्त व्यास कृत) के कल्लू मियाँ और अकबर गोरक्षा न्याय नाटक के रमज़ान मियाँ गऊ की कुरबानी हिन्दुओं के हृदयों पर आघात करने ही के लिए करते हैं । रामलीला विजय के धनी मुसलमान धर्म के नाम पर हिन्दुओं को सताना चाहते हैं ।

सैनिक रूप—सेनापति और नवाबों के अत्याचार बड़े हैं तो मुसलमान सैनिकों के छोटे^१ पर इस पात्र का रूप दोनों दशाओं में समान है। मुस्लिम सैनिक भी दीन गाय, हिन्दू लालों और ललनाओं का लाल लोहू बहाने को, और हिन्दू पत्नियों एवं कुमारियों की प्रतिष्ठा रौंदने को स्वर्ग का सीधा द्वार समझता है। **अकबर गोरक्षा न्याय नाटक** का एक यवन सैनिक आनन्दातिरेक में गाता है और प्रत्यक्ष रूप से अपने चरित्र का उद्घाटन करता है—

इस कौमे काफ़िरान पै सितम करते हैं हम ।

मुतलक न इनके हाल पै रेहम करते हैं हम ।

काफ़िर हैं बेईमान हैं इसलाम के उदू ।

इसी से हिन्दुओं का सर क़लम करते हैं हम ।

सताते हैं रुलाते हैं पाते हैं गर कहीं ।

गुस्से से इनके बच्चों को वेदम करते हैं हम । (१-७)

भारत डिमडिमा नाटक का जुल्ममियों नामक सैनिक कहता है—
‘अजी मियों इनको समझाने को फ़क्त तलवार ही काफ़ी है—क़सम है कल्लू, नखी की, इनको सताना ही सबाब है (अंक ६) । **अकबर गोरक्षा न्याय नाटक** का यवन सिपाही कहता है ‘हुक़म है पाक दीन इस्लाम के रोबरू नापाक दीन हनूद का कुछ भी लिहाज न किया जावे, बल्के जहाँ तक हो सके उसे नेस्त नाबूद करने की कोशिश की जावे (१-७) । **नीलदेवी** का दूसरा सरदार इच्छा प्रकट करता है कि ‘कुपफ़ार सब दाख़िले दोज़ग़्र होंगे’ (छूटा दृश्य) । **योवन योगिनी** के मुस्लिम सैनिक मारकाट करते इस यवन पात्र के चरित्र की पुष्टि करते हैं । ये मुस्लिम सैनिक बड़े उत्साह पर हैं, और गाकर एक दूसरे से कहते हैं—

सातवाँ—करो ये खड़े हैं इन्हीं की तबाही

आठवाँ—करो हाथ पोंवों से खाली इनाही

नवाँ—जहाँ जिसको पावो वहाँ मार काटो

दसवाँ—ज़रा भी न छोड़ो व लूटो व डाटो

पहिला—काटो बच्चे बाल, आल औलाद नासो । (अंक ६)

यह है ‘यवन पात्र’ इस काल के नाटककारों का, जिसपर यहाँ प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों शैलियों से प्रकाश डाला गया है । इस काल के नाटकों में इस यवन पात्र का अच्छा और सहानुभूति-भरा चित्र लगभग नहीं के बराबर अंकित हुआ है । दो तीन उदाहरण अपवाद रूप ही हैं जैसे कि **भारत डिमडिमा**

१. वीरसिंह—छोटा मुसलमान छोटा अन्यायी है बड़ा मुसलमान बड़ा अन्यायी । (न्याय सभा नाटक, ले० रतनचन्द, २-१) ।

नाटक का मेल अली जो गाय मारने का विरोधी है या महाराणा प्रताप का मुसलमान साधारण नागरिक जो 'हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई' के सिद्धान्त में विश्वास करता है। (महाराणा प्रताप नाटक, ४-२)। एक बात ध्यान देने योग्य है कि यवन पात्र बादशाह, वजीर, सेनापति, कोतवाल, सैनिक, धनी मुसलमान, क्राजी, मुल्ला बन कर तो हिन्दुओं को सताता है किन्तु साधारण नागरिक के रूप में कहीं-कहीं।

क्षत्रिय पात्र—नाटकों में तीसरा सर्व सामान्य रूप है 'क्षत्रिय' पात्र का जो प्रशंसात्मक और वन्दनीय है। जहाँ यवन भक्त और निन्दनीय है वहाँ ही यह पात्र है रक्षक और वन्दनीय^१। भारतीय समाज, शास्त्र और साहित्य में क्षत्रिय का मान सर्वदा से रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध जो भगवान माने जाते हैं, क्षत्रिय ही थे। पौराणिक प्रसिद्ध वीर और आदर्श पुरुष क्षत्रिय ही थे जैसे हरिश्चन्द्र, मोरध्वज, युधिष्ठिर, जीमूतवाहन, भगीरथ, दिलीप। इनकी पत्नियों ने भी स्थायी कीर्ति प्राप्त कर ली है। सावित्री, सीता, दमयन्ती के नाम से हिन्दू पात्र पुर्णकित हो सिर झुका लेता है। ऐतिहासिक काल के वीरों में भी क्षत्रिय और क्षत्राणी को मान मिला। इसका कारण भी था। क्षत्रिय, राजा रूप में पूज्य रहा। उसने देश, धर्म और जाति की रक्षा में तन-मन-धन दिया। भारतीय मनोवृत्ति रही है कि भारतीय सदा से किसी रक्षक की ओर देखता रहा है, चाहे वह भगवान हो, चाहे राजा और चाहे नेता। हमारा आलोच्य काल भी सकट-संपन्न था। हिन्दुओं की दशा शाचनीय थी जिसका भारतेन्दु जी ने भारत दुर्दशा में और अन्य नाटककारों ने अपने अपने नाटकों में चित्रण किया है। वास्तव में यह एक निराशा का युग था^२ तभी तो भारत का भाग्य कटार मार कर मर जाता है और भारत सोया पड़ा रहता है। (भारत दुर्दशा नाटक)। सभी सामाजिक और राजनैतिक नाटकों में निराशा का स्वर झंकृत है। फलतः रक्षक की खोज हुई। क्षत्रिय की ओर ध्यान गया। क्षत्रिय रूप में राजा और जमींदार थे। उनको सोते पाया। नाटककारों ने नाटकों में क्षत्रिय पात्र का प्राचीन भव्य रूप दिखा कर उसे

१. (क) सैनिक—ईश्वर ने संसार में क्षत्रियों के बराबर सब्बा, दृढ़-प्रतिज्ञ और धार्मिक किसी को नहीं बनाया और यवनों के ऐसा नीच और विश्वासघाती। (पद्मावती २-३)।

(ख) स्त्री—राजपूत बालकों ने क्या कभी छल का नाम सुना होगा। इसकी शिक्षा तो मुसलमानों में ही होती है। (पद्मावती ४-२)।

२. हम भारतेन्दु युग को राष्ट्रीय निराशावाद का युग कह सकते हैं। (आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद, डा० शंभुनाथ पाण्डेय, पृ० ४५)।

उत्साहित करना चाहा। क्षत्रिय के लक्षण बताये और नाटकों में आदर्श क्षत्रिय पात्र निर्मित किया। सभी का दृष्टिकोण इस विषय में समान है। उन्होंने इस क्षत्रिय वीर की प्रशंसा की, गुणानुवाद गाया और तत्कालीन क्षत्रियों को उत्साहित किया। वास्तव में क्षत्रिय पात्र अपने पुराने रूप में अंकित हैं, तत्कालीन रूप में नहीं।

इस क्षत्रिय पात्र की प्रशंसा किसने नहीं की। पौराणिक रूप में इसकी कीर्ति पताका आकाश में फहराई। अभिमन्यु, मोरध्वज, हरिश्चन्द्र, कृष्ण, राम—अपने सभी पौराणिक रूपों में यह पात्र चमका। इसने नाटकों में आदर्श की शिक्षा दी, सहन-शक्ति की सीमा दिखाई और हिन्दुओं को उत्साहित किया। ऐतिहासिक काल के क्षत्रिय की ख्याति में भी, नाटककारों ने चार चाँद लगाये। प्रताप क्षत्रिय हैं। उनकी प्रशंसा उनका शत्रु अकबर भी करता है। 'बाह रे प्रतापसिंह। मैंने भी बहुत-सी तवारीख देखी हैं मगर इसकी मिसाल मुझे कोई न मिली। शाबाश, राजव का बहादुर और राजव का जफाकश है (महाराणा प्रतापसिंह, ६-१)। अमरसिंह राठौर भी ऐसा ही क्षत्रिय है। वह वीरता और साहस की प्रतिमूर्ति है। पिता ने शाहजहाँ की आज्ञा से देश निकाला दे दिया है तो उस वीर को चिन्ता क्या है? वह खड्ग निकाल कर कहता है 'मे तो इसका राज्य करता हूँ। (अमरसिंह राठौर दृश्य २)। मुसलमान एलची ने भी शाहजहाँ के पास इसकी प्रशंसा लिख कर भेजी (दृश्य ३)। पृथ्वीराज भी ऐसा ही क्षत्रिय है। सयोगिता स्वयंवर में वह वीर और साहसी रूप में आया है। युद्ध का बाजा सुन उसकी भुजाएँ फड़कने लगती हैं (१-३)। उसका शत्रु मुहम्मद गोरी भी कहता है 'पृथ्वीराज बड़ा बहादुर और दिलेर है' (यौवन योगिनी ८-१)। मृत्यु भी इस क्षत्रिय पात्र से भय खाती है, यह मृत्यु से नहीं डरता। पृथ्वीराज कहता है 'मृत्यु से हमको डराते हो। हम मरने से ज़रा भी नहीं डरते' (सयोगिता स्वयंवर, ५-१)। हम्मीर के रूप में वह अपने प्राण को रखता है, प्राण को चिन्ता नहीं करता। पुरु रूप में वह सिकन्दर के दूत को उत्तर देता है—'चाहे सूर्य निस्तेज हो जाए, अग्नि चंद्रमा के सदृश शीतल हो जाय, परन्तु क्षत्रिय वंश का तेज किसी प्रकार मर नहीं हो सकता' (पुरु विक्रम नाटक अंक २)। पुरु का शत्रु सिकन्दर भी कहता है 'शाबाश, पुराज शाबाश'। शत्रु से अधिक उत्तम साक्षी किसकी हो सकती है। जब क्षत्रिय पात्र का शत्रु भी इसकी प्रशंसा करता है तब अन्य पात्र तो करेगे ही। पद्मावती नाटक में बालक व उसकी माँ क्षत्रिय के विषय में कहते हैं—

देखहिगे को अहै जगत में लरि क्षत्रिन जीते

कौन बहादुर जग में इन सम को जानै रण रीते। (पद्मावती ४-३)

क्षत्राणियों भी इसी प्रकार प्रशंसित हुई हैं ।

हाँ, तत्कालीन क्षत्रियों की बुराई भी हुई है^१ । प्राचीन काल के तक्षशील^२ और जयचन्द^३ जैसे देश शत्रु और कंस^४ जैसे प्रजापीडक की निन्दा भी की गई है । किन्तु इन्हें क्षत्रिय दूषण बता कर क्षत्रिय के लक्षण दिये हैं और क्षत्रिय की सर्वत्र प्रशंसा ही हुई है । एक बात द्रष्टव्य है, क्षत्राणी की निन्दा कहीं नहीं हुई, न तत्कालीन रूप में, न प्राचीन रूप में ।

चरित्रचित्रण प्रणाली

नाटकों में सब कुछ संवाद ही है । संवादों द्वारा ही चरित्र-चित्रण किया जाता है । इन्हीं संवादों के प्रतिकूल या अनुकूल कोई पात्र कार्य करता दिखाया जाता है । पात्रों का चरित्र-चित्रण दो प्रणालियों से किया जाता है (१) परोक्ष प्रणाली (२) प्रत्यक्ष प्रणाली ।

परोक्ष प्रणाली—अनुपस्थित पात्र के विषय में जब कुछ कहा जाता है, निन्दा या प्रशंसा की जाती है तो वहाँ चरित्र-चित्रण की परोक्ष प्रणाली अपनाई गई है । इसे 'अन्य पुरुष' प्रणाली भी कहते हैं । अनुपस्थित पात्र की प्रशंसा या निन्दा भी दो प्रकार की होती है, (१) वास्तविक या (२) अवास्तविक ।

प्रशंसा—प्रेम, श्रद्धा या सहानुभूतिवश किसी अनुपस्थित पात्र की प्रशंसा की जाती है । अनुपस्थित पात्र इस प्रशंसा का अधिकारी है । उसमें वे गुण हैं जिनके लिए उसकी अनुपस्थिति में भी प्रशंसा हो रही है । पौराणिक नाटकों में आदर्श नायकों की अनुपस्थिति में भी पात्रों द्वारा प्रशंसा हुई है । यह उनकी वास्तविक प्रशंसा है, जो श्रद्धावश की गई है । प्रेम नाटकों में नायक, नायिका के रूप-गुण की प्रशंसा करता है । अनर्घ-नल-चरित्र में राजा नल अपने उद्यान में बैठा दमयंती की रूप-प्रशंसा करता है । यह वास्तविक प्रशंसा है और प्रेमवश की गई है । सामाजिक नाटकों में यही प्रशंसा सहानुभूति के कारण प्रकट हुई है । इसके विपरीत भ्रांति या मोह वश अनुपस्थित पात्र की प्रशंसा की जाती है, जो वास्तविक नहीं होती है । यौवन योगिनी नाटक में प्रतिनायक शंकराचार्य, दुष्ट और देशद्रोही है । वह बौद्ध साधु के वेश में रहता है । पृथ्वीराज के सामने वह अपना वास्तविक

१. विषयविषमौषधम्, अंधेर नगरी, महा अंधेर नगरी ।

२. पुरुविक्रमनाटक ।

३. भारत दुर्दशा नाटक ।

४. कंस वध ।

रूप प्रकट नहीं करता है। पृथ्वीराज उसकी अनुपस्थिति में भ्रान्तिवश प्रशंसा करता हुआ कहता है 'बुत परस्ती उसको पसन्द नहीं। वह मखलू की खाहिशात से बिलकुल पाक, ऐसा लायक फायक बादशाही के काबिल है।' पुरुविक्रम नाटक में अस्वालिका के नेत्रों पर मोह पर्दा डाल देता है और वह देशद्रोही सिकंदर की प्रेमिका बन कर उसकी अनुपस्थिति में भी प्रशंसा करती है (पुरुविक्रम १-२)। कभी-कभी कवि की प्रशंसा भी वास्तविकता से दूर रहती है। भारतीहरण में वाल्मीकि भरत की प्रशंसा करते हैं जिसके भरत अधिकारी नहीं हैं।

निन्दा—द्वेष या शत्रुता-वश शत्रु, शत्रु की कभी वास्तविक निन्दा करता है, कभी अवास्तविक। शील सावित्री नाटक में द्रुमसेन अपने शत्रु राजा यमराज की निन्दा करते हैं जो परपीड़क और अत्याचारी है (दृश्य ४)। यमराज की यह वास्तविक निन्दा है। द्वेषवश 'उत्तम', पिता के सामने भाई ध्रुव की निन्दा करता है (ध्रुव चरित्र, दामोदर शास्त्री कृत, अंक १)। यहाँ निन्दा वास्तविक नहीं है। उत्तम अपने भाई को अपना प्रतिस्पर्द्धी या शत्रु समझने लगा था। रणधीर प्रेममोहिनी का सुखवासी लाल अपने सदाशय स्वामी रणधीर की निन्दा करता है जब कि रणधीर अनुपस्थित था (४-४)। सुखवासी लाल स्वामी से द्वेष करने लगा था। कभी-कभी द्वेष न होते हुए भी परिस्थिति-वश पात्र अनुपस्थित पात्र की निन्दा करता है। 'विश्वामित्र' साधारण स्थिति में राजा हरिश्चन्द्र की प्रशंसा ही करते किन्तु परिस्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई कि वे हरिश्चन्द्र की निन्दा करने लगे (सत्यहरिश्चन्द्र अंक १)। सामने वाले पात्र की प्रसन्नता के लिए भी अनुपस्थित पात्र की निन्दा की जाती है। रुक्मणी हरण नाटक में रुक्म को प्रसन्न करने के लिए उसका मित्र गयंदक कृष्ण-बलराम की निन्दा करता है (४-१)।

प्रत्यक्ष प्रणाली—प्रत्यक्ष प्रणाली की दो शैलियाँ हैं, (१) मध्यम पुरुष शैली और (२) उत्तम पुरुष शैली। मध्यम पुरुष शैली—जब कोई पात्र सामने वाले पात्र की प्रशंसा या निन्दा करता है तो वहाँ मध्यम पुरुष शैली है। यह प्रशंसा या निन्दा भी दो प्रकार की होती है, वास्तविक या अवास्तविक।

प्रशंसा—स्वार्थ, श्रद्धा, प्रेम वश अथवा प्रेरणा देने के लिए सामने वाले पात्र की प्रशंसा की जाती है। इन्द्र ने राजा नल की मुँह पर प्रशंसा की। राजा नल में प्रशंसनीय गुण अवश्य थे किन्तु यहाँ इन्द्र स्वार्थ-वश प्रशंसा कर रहा है। इन्द्र का स्वार्थ था कि राजा नल मेरा दूत बन कर विवाह-प्रस्ताव दमयंती के पास ले जाएँ (दमयंती स्वयंवर अंक ३)। सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में राजा हरिश्चन्द्र की जब परीक्षा पूर्ण हो गई तो देवताओं ने आकर हरिश्चन्द्र की वास्तविक प्रशंसा की (सत्य हरिश्चन्द्र नाटक अंक ५)।

ताम्रध्वज और अर्जुन युद्ध में लड़े। दोनों वीर थे। दोनों को एक दूसरे के प्रति श्रद्धा जगी, स्नेह उत्पन्न हुआ और एक दूसरे की प्रशंसा करने लगे (मोरध्वज ३-१)।

जैसे स्वार्थवश वास्तविक प्रशंसा की जाती है, वैसे ही स्वार्थवश सामने वाले पुरुष की अवास्तविक प्रशंसा भी की जाती है। प्रशंसक जानता है कि मैं झूठो प्रशंसा कर रहा हूँ। इसी को “चापलूमी” कहते हैं। रामलीला नाटक में स्थान-स्थान पर पात्रों ने रावण की प्रशंसा के पुल बाँधे हैं और राम को उसके सामने नगण्य बनाया है। कभी-कभी सामने वाले पात्र को बनाने के ही लिए उसकी प्रशंसा की जाती है। यह प्रशंसा भी वास्तविक नहीं होती और इसके पीछे निन्दा का पुट रहता है। सभा में पुरोहित ने कृष्ण-बलराम की प्रशंसा की तो रुक्म द्वेष से भुन कर पुरोहित से कहता है “आप लोग तो ऐसा ही कहेंगे क्योंकि विश्वामित्र को तृती से ब्राह्मण आपही के पुरुखा लोगों ने बनाया है—ब्रह्मा का और ब्राह्मणों का मुख क्या दूसरा है (रुक्मणी हरण, १-२)। यह व्याजस्तुति है।

निन्दा—सामने वाले पात्र की दुष्टता या मूर्खता के लिए कोई साहसी पात्र उसकी निन्दा करता है। नीलदेवी, पति को धोखे से पकड़ने वाले दुष्ट अमीर को ‘चांडाल, पापी’ कहती है (नीलदेवी दृश्य १०)। देवल देवी प्रतिष्ठा के ग्राहक खलीफा की निन्दा करती है (सिन्धु देश की राजकुमारियों)। माधव, राजसभा में राजा और सभासदों की निन्दा करता है क्योंकि वे मूर्ख थे और नृत्य कला के पारखी न थे (माधवानल काम-कंदला १-३)।

उत्तम पुरुष शैली—पात्र जब अपनी प्रशंसा या निन्दा करता है तो यहाँ उत्तम पुरुष शैली में चरित्र-चित्रण किया जा रहा है।

प्रशंसा—यदि पात्र साहसी और व्रती है तो दूसरे से उकसाए जाने पर वह अपनी प्रशंसा करता है, अपने वास्तविक गुण बखानने लगता है। हरिश्चन्द्र विश्वामित्र से कहते हैं—

चन्द्र टरै सूरज टरै टरै जगत् व्यौहार

पै दृढ़ श्री हरिश्चन्द्र को, टरै न सत्य विचार।

(सत्य हरिश्चन्द्र अंक १)

असद् पात्र या प्रतिनायक द्वेष और अहंकार वश अपनी डींगें हाँकने लगता है। कृष्ण-बलराम की प्रशंसा से क्रुद्ध हो कर रुक्मी अपने बल, अपनी भुजा, और अपने वाण की प्रशंसा के ढेर लगाने लगा (रुक्मणीहरण ४-१)। धूर्त, पाखंडी और स्वार्थी पात्र भी दूसरा को प्रभावित करने के लिए अपनी झूठी बड़ाई बखानते हैं। पाखंडी साधु कहता है—

मारुँ फूँक उड़े जग सारा ! है कितना यह बड़ा पसारा
पवन उड़ाऊँ रूख गिराऊँ । (मनोरंजनी ३-१)

पेटू ब्राह्मण 'स्वार्थी' ने दूसरों के सामने अपने पेट की प्रशंसा की कि मैं मनो मिठाई खा जाता हूँ । (हरिश्चन्द्र, रामभजन मिश्र कृत, ३-१) ।

निन्दा—कोई भी पुरुष न अपनी निन्दा करना चाहता है और न सुनना । तब भी परिस्थिति वश उसे अपनी निन्दा करनी पड़ती ही है । दुःख या पश्चात्ताप वश पात्र अपनी निन्दा करने लगता है जो वास्तविक होती है । अकबर की छाती पर जब रानी ने कटार जमा दी तो अकबर को पश्चात्ताप हुआ और वह अपनी निन्दा करने लगा । बाद में भी वह एकान्त में अपने कुकृत्यों को स्मरण कर अपनी निन्दा करता है (महाराणा प्रतापसिंह २-३, २-४) । रणधीर प्रेममोहिनी में नायिका का पिता, पुत्री की मृत्यु के बाद पश्चात्ताप-दग्ध हो अपनी निन्दा करता है (रणधीर प्रेम मोहिनी ५-१) । सात्विक पुरुष नम्रता या भक्तिवश अपनी अवास्तविक निन्दा करता है । इस निन्दा से वह अपने आपको ऊपर उठा लेता है । भामाशाह, महाराणा प्रताप के सामने अपनी निन्दा करता है (महाराणा प्रतापसिंह ७-६) । राम भी रामलीला नाटक में ऋषियों के सामने अपनी निन्दा करते हैं कि हम हैं ही क्या । यह उनको नम्रता ही थी ।

अध्याय ४

संवाद

संस्कृत के नाट्य-शास्त्रों में संवाद की उपेक्षा नहीं है, जैसा कि समझा जाता है। दशरूपक-कार ने रूपकों का विवेचन 'वस्तु नेता और रस' के दृष्टिकोण से किया। फलतः संस्कृत में वस्तु, पात्र और रस को विशेष महत्त्व मिला और संस्कृत नाटकों का विवेचन इन तीन आधारों को लेकर किया जाने लगा। साहित्यदर्पण-कार ने भी दशरूपक के दृष्टिकोण को ही अपनाया। ये नाट्यशास्त्री संवाद की ओर से उदासीन थे, ऐसी बात नहीं है। संवाद शैली ही तो रूपक थी, तब कैसे उपेक्षा करते। इसका प्रमाण भरतमुनि का नाट्यशास्त्र है। भरतमुनि ने पारस्परिक संवाद की ओर बहुत ध्यान दिया और उत्तम, मध्यम एवं नीच पात्र आपस में किस प्रकार संभाषण करें, इसके नियम १६वें अध्याय में दिए हैं।^१ उन्होंने व्यवस्था दी कि ऋषि, मुनि, शिक्षक, विद्वान्, ब्राह्मण, राजा, कलाकार, शिष्य, साधु, प्रेमी, पति, उच्च व्यक्ति, निम्न व्यक्ति इत्यादिको को किस प्रकार संवोधन किया जाय।^२ पुनः चौबीसवें अध्याय में नियम बनाए कि उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष इत्यादि कालानुसार कैसे कथन करेंगे।^३ अतः स्पष्ट है कि भरतमुनि का ध्यान संवाद की ओर बहुत था।

संवाद विभाजन

संस्कृत नाट्यशास्त्र का विभाजन—

नाट्यशास्त्र के अनुसार संवाद ४ प्रकार के हैं—आकाशवचन, जनांतिक, अपवारित, और आत्मगत^४। दशरूपक-कार ने इन भेदों को दूम्बरे रूप में रखा है—आकाशभाषित, सर्व श्राव्य, अश्राव्य या स्वगत एवं नियत

१. नाट्यशास्त्र (चौखंभा) १६-२ ।

२. नाट्यशास्त्र (चौखंभा) १६वें अध्याय के श्लोक ३ से लेकर २६ तक ।

३. नाट्यशास्त्र (चौखंभा) २४वें अध्याय के श्लोक ५५ से ६८ तक ।

४. नाट्यशास्त्र (चौखंभा प्रकाशन) अ० २६ के श्लोक ७६ से ८७ तक ।

श्राव्य । नियत श्राव्य के भी दो भेद किए हैं—जनांतिक और अपवारित । (दशरूपक १-६३ से ६५ तक) दशरूपक-कार ने इन्हें वस्तु का नाट्य धर्म कहा है । साहित्यदर्पण-कार ने अधिक स्पष्टता पूर्वक रखा है और इन्हें 'नाट्योक्ति' कहा है जिसे सरल शब्दों में संवाद ही कहेंगे । (सा० दर्पण अध्याय ६ में १३७ से १४० तक) ।

भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने संवाद के केवल तीन प्राचीन भेदों को अपनाया है । वे तीन भेद हैं (१) सर्वश्राव्य (२) अश्राव्य और (३) आकाशभाषित । इन्होंने नियत श्राव्य एवं उसके दोनो भेदों का प्रयोग नहीं किया है ।

(१) सर्वश्राव्य—जब 'कथन' सब के सुनने योग्य हो वहाँ संवाद 'सर्वश्राव्य' है । सर्वश्राव्य कथन के लिए नाटककार कोई रंग संकेत प्रायः नहीं देता है । हों स्वगत कथन के बाद सर्वश्राव्य संवाद के लिए 'प्रकट' या 'प्रकाश' रंग संकेत देता है । जहाँ पात्र बोल रहा है और कोई रंग संकेत नहीं कि यह मन में या 'आप ही आप' है वहाँ सर्वश्राव्य कथन है ।

(२) अश्राव्य—भारतेन्दुकालीन नाटकों में 'अश्राव्य' प्रयोग मिलता है । यह दो रूपों में प्राप्त होता है—(१) स्वगत कथन और (२) एकान्त भाषण । एकान्त भाषण भी स्वगत कथन ही है ।

स्वगत कथन—जब पात्र दूसरे पात्रों के रंगमंच पर उपस्थित रहते हुए भी कोई हृदय की गोपनीय बात प्रकट करता है जिसे सामने के अन्य पात्र न सुन सकें, वह स्वगत कथन है । स्वगत कथन के लिए नाटककार रंग संकेत देता है । इस काल के नाटकों में स्वगत कथन के लिए ये रंग संकेत मिलते हैं—'स्वतः' 'स्वयं' 'मन में' 'आपही आप' । जब नाटककार ब्रैकेटों में इनमें से कोई शब्द लिख देता है तब इसके बाद का कथन 'स्वगत कथन' है । पात्र दर्शकों की ओर, ऊपर की ओर या नीचे की ओर मुख करके कुछ कहता है । दर्शक समझ लेगा कि यह अंश पात्र का 'स्वगत' कथन है । पात्र इस अंश को धीरे-धीरे धीमे स्वर में बोलेगा भी ।

स्वगत कथन प्रणाली पर आपत्तियाँ उठाई गई हैं । कुछ इसे नितान्त अस्वाभाविक बताते हैं । आपत्ति करने वालों का कथन है कि दूर बैठा दर्शक जब कथन को सुन लेता है तब क्या पास खड़ा पात्र न सुनेगा ? अतः पश्चिम में और कुछ नाटककारों ने भारत में भी 'एक विश्वासी पात्र' की खोज कर डाली है । इस प्रकार अस्वाभाविकता को दूर किया है । किन्तु क्या स्वयं यह विश्वासी पात्र वास्तविक या स्वाभाविक हो जाता है ? जीवन में अनेक अवसर आते हैं जब हम हृदयगत भाव को परमविश्वासी पर भी प्रकट नहीं करना चाहते । ऐसी दशा में विश्वासी पात्र की योजना क्या

अस्वाभाविक नहीं हो जाती ? अनेक अवसरों पर मनुष्य बात करते-करते कुछ सोचने लगता है । यह जीवन में प्रतिदिन देखा जाता है । उसे स्मरण हो आता है कि सामने खड़े पात्र के पिता, पुत्र या स्त्री के साथ मैंने घातक अथवा जघन्य व्यवहार किया था । वह भूल जाता है कि मेरे सामने बैठा पात्र कुछ पढ़ रहा है, अथवा वह कुछ मॉग रहा है । अपने इस गुप्त भाव या विचार को वह किसी पर प्रकट नहीं करता । ऐसी अवस्था में किसी विश्वासी पात्र की योजना क्या स्वाभाविक है ? साहित्य के काव्य इत्यादि अन्य अंगों के समान नाटककार भी दर्शक की कल्पना को जाग्रत रखता है । यदि वह ऐसा न करे तो उसे दर्शक का सक्रिय सहयोग न मिलेगा । जो दर्शक नाटक देखने जाता है वह कुछ संभावनाएँ अपने साथ ले जाता है । वह जानता है कि मैं वास्तविक पात्रों—ऐतिहासिक वीरों—राम दुष्यंत को नहीं देखूंगा वरन् उनकी अनुकृति देखूंगा । नाटककार का काम यही है कि वह दर्शक के 'भ्रम' को पुष्ट कर दे । अनुकृति है क्या ? अनुकरण कभी वास्तविकता पैदा कर ही नहीं सकता । एक श्वेतांगी भारतीय है । वह पेंट-टाई हैट एवं कॉटे लुरी के अनुकरण से वास्तविक अंग्रेज नहीं बन जाता । हाँ, अनुकरण से अंग्रेज सा लगता है । दूसरे शब्दों में अंग्रेज होने का पूर्ण भ्रम दे देता है । नाटक में यही भ्रम पैदा किया जाता है । दर्शक एक मुस्लिम नट को भी राम की वेशभूषा में देख, राम समझ लेता है । तभी आनन्द लेता है । वह भूल जाता है कि मेरे सामने वास्तविक राम नहीं, एक मुस्लिम अभिनेता है । जो दर्शक इतनी कल्पना कर सकता है तो क्या वह यह कल्पना नहीं कर सकता कि मैं इस समय पात्र के भाव या विचार सुन रहा हूँ ? एक पात्र अन्य पात्र के पास से थोड़ा हट कर मुख दर्शक की ओर घुमा कर, कुछ नीचा कर के कहता है—'नहीं', इसकी बातों में प्रकट है 'कि यह मेरा मित्र नहीं बन सकता ।' तब क्या दर्शक यह कल्पना न कर लेगा कि इस समय पात्र अपना आन्तरिक भाव प्रकट कर रहा है । यह ठीक है कि इसमें कुछ अवास्तविकता भासती है किन्तु आज तक 'स्वगत' के स्थान को पूरा करने वाली और कोई नाटकीय शैली मन के भावों को चित्रित करने वाली नहीं खोजी जा सकी है । चित्रपट इत्यादि का प्रबन्ध सुगम नहीं है जिससे नाटक में सहायता ली जा सके । संसार के सभी महान नाटककारों की अनेक सुन्दर उक्तियाँ और कविताएँ इसी स्वगत की देन हैं । इस काल के नाटकों में यही स्वगत प्रणाली प्रचुरता से मिलती है ।

एकान्त भाषण इसका दूसरा रूप है जो अधिक अस्वाभाविक नहीं लगता । चन्द्रावली नाटिका के सुन्दर गीत और कविताएँ एकान्त भाषण द्वारा ही प्राप्त होते हैं । सत्य हरिश्चन्द्र का सुन्दर श्मशान वर्णन एकान्त

भाषण के ही रूप में मिलता है। ये हैं स्वगत कथन ही।

लम्बे स्वगत कथन—इस काल के नाटककारों की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है कि लम्बे स्वगत कथन भी अवश्य लिखे जायें। अधिकांश नाटककार कहीं न कहीं स्वगत कथनों का विस्तार करते ही हैं। निम्न तालिका से इसका अनुमान हो सकता है। इनमें कविता, उपदेश, भाषण, दार्शनिक विचार भरे पड़े हैं।

दीर्घ स्वगत कथन और एकान्त भाषण—

नाटक	दृश्य	पात्र	पंक्तियाँ
विद्यासुन्दर	१-२	सुन्दर	२८
विवाहिता विलाप नाटक	भाँकी २	मोहनी	४४
मनोरंजनी	अंक ७	मनोरजनी	४५
रणधीर प्रेममोहिनी	१-५	सुखवासीलाल	५०
प्रेमसुन्दर	१-१	बल्लभ	५०
चौपट चपेट	अंक ३	दुर्जन बन्धु	५२
मयंक मजरी	अंक ३	दुर्जन बन्धु	५२
यौवन योगिनी	१-२	शकराचार्य	५६
विवाहिता विलाप नाटक	भाँकी ४	मोहनी	५८
चौपट चपेट	अंक २	बैजू बावला	६७
ध्रुव तपस्या नाटक	२-१	सुनीति	६७
नागरी विलाप	दृश्य ३	नागरी	७३
वारांगना रहस्य	२-१	खुशद	८४
„	१-१	लूकालाल	६०
माधवानल कामकंदला	१-५	माधव	११५
विवाहिता विलाप नाटक	भाँकी ४	चंगा	१२६
सत्यवती नाटक	७२	राजा	४ पृष्ठ

दीर्घ कथन प्रणाली—

इस काल में दीर्घ कथन की प्रणाली दिखाई देती है। ये दीर्घ कथन रंगमंच की व्यवस्था के ही कारण लिखे जाते थे। उस काल में आजकल की नाई ध्वनिविस्तारक यंत्र न थे। सामने बैठी अधिक जनता तक अधिक स्पष्टता से पहुँचने के लिए विस्तृत कथन लिखे जाते थे जो पात्र द्वारा जोर से बोले जाते थे। इन दीर्घ कथनों में उपदेश, राजनीतिक व्यंग्य, सामाजिक कुरीति, रसमय पंक्तियाँ और विशेष विचार होते थे जिन्हें नाटककार जनता तक पहुँचाना आवश्यक समझता था। वह सोचता था कि यदि कथन छोटे-छोटे

हुए तो आपस में संवाद करते समय पात्र अभिनय की ओर अधिक ध्यान रखेगा, और वह स्पष्टता और निश्चिन्तता से नाटककार के विचार, उपदेश या भाव को सम्यक् रूप से दर्शकों तक न पहुँचा सकेगा। यह बात ठीक भी है। जब दो पात्र संवाद करते हैं तो उनका बहुत कुछ ध्यान अभिनय और तत्कालीन परिस्थिति निर्माण करने पर होता है। कहीं वह स्वर को गिराता है, कहीं उठाता है। हाथ, आँख, मुख और पैर के परिचालन पर भी ध्यान रखता है। इसके विपरीत यदि वह दीर्घकथन में लगता है तो अपेक्षाकृत अभिनय की ओर से अधिक निश्चिन्त रहता है। वह स्वर को भी बार-बार नहीं बदलता। कहीं नीचा कर लेता है। साथ ही उसे इस बात की ओर ध्यान करने की भी आवश्यकता नहीं रहती कि सामने वाला पात्र क्या कह रहा है। भारतेन्दुकाल और उसके पूर्व ब्रजभाषा नाटकों में ये दीर्घ कथन ऊँचे स्वर से पढ़े जाते थे। इससे एक लाभ और था। यदि कहीं एकाध वाक्य दर्शक न भी सुनते तब भी अधिक हानि नहीं होती थी। पात्र जब विस्तार से बोलता था तो दर्शक भाव को पकड़े ही रहते थे। इसी कारण ध्वनिविस्तारक यंत्रों के आविष्कार से पूर्व नाटकों में दीर्घ कथन मिलते हैं। स्वगत कथन तो और भी दीर्घ रखे जाते थे क्योंकि इनमें ही तो नाटककार खुल कर अपनी बुद्धि, हृदय और कल्पना को भरता था। कथनों और स्वगत कथनों को दीर्घ बनाने की प्रवृत्ति यूनानी^१, अंग्रेजी

१. Sophocles' Dramas—

Creon—55 lines in *Antigone*,

p. 6, 7, 8 (J. M. Dent & Sons London)

Electra—60 lines in *Electra*, p. 90,91,92 " "

Hyllus—71 " in *Trachiniac*, p. 195,196,197 "

Messenger—87 lines in *Oedipus*

Coloneus, 305-7 "

Euripides' Dramas—

Ulysses 61 lines in *Cyclops*

Vol. I, p. 11-13 (Everyman's Library)

The Ghost of Polydore 68 lines in

The Trojan Dames 22-23 "

Hecuba 77 lines in The Trojan

Dames 45-46 "

ibid. lines 78 on p. 89-91 "

(शेक्सपियर)^१, एवं संस्कृत नाटको^२ में भी दिखाई पड़ती है । इस काल में भी दीर्घकथन प्रणाली मिलती है—

मोरध्वज नाटक में	ताम्रध्वज का कथन	अंक ४	पंक्तियों ६१
सत्यवती ”	सत्यवती का कथन	६-४	” ४८
”	ऋषि का कथन	६-४	” ५६
” ”	सत्यवती का पुत्र को		
	उपदेश	१-२	” ६८
सावित्री ”	सावित्री का कथन	अंक ६	” ४१
माधवानल कामकंदला	बारहमासा	२-८	पृष्ठ ६
मदनमंजरी नाटक में	मदन का कथन	अंक ४	कवित्त ६
सावित्री ”	काहल्य का कथन	अंक ४	पंक्तियों ३५
न्यायसभा ”	शेरसिंह का कथन	३-४	” ८८
नागरी विलाप ”	सभापति का कथन	दृश्य ५	” १०२
अभिमन्यु ”	अभिमन्यु का कथन	४-२	” ४५
” ”	अर्जुन का कथन	५-२	” ८०

Continued from previous page —

Messenger 107 lines in

Electra 28-31 (Everyman's Library)

Mercury 105 lines in Ion p. 164-166 ”

१. Launce—48 lines in “The two Gentlemen of Verona” IV-IV-47

Collens' Complete Works.

King—60 lines in “King Henry the Fifth”

IV-1-574.

Aege—65 lines in “The Comedy of Errors”,
1-1-115, 116.

Berowne—78 lines in “Love's Labour lost”,
IV-111-184.

जूलियस सीजर में ब्रूटस एवं एन्टोनियस के अनेक कथन २० पंक्ति से अधिक के हैं ।

२. विक्रमोर्वशी के चौथे अंक में विक्रम का स्वगत कथन कई पृष्ठों का है । उत्तररामचरितम् में शंबूक-नाम के संवाद के बाद राम का कथन कई पृष्ठों का है (अंक २) । मालतीमाधव में माधव के कथन विस्तृत हैं (अंक १) ।

अभिमन्यु नाटक में	सुभद्रा का कथन	१०-४	पंक्तियाँ ६२
मोरध्वज ”	कुमुदवती का कथन	अंक ५	” ६८
गंगोत्री ”	गंगोत्री का कथन	५-३	” ६२
माधवानल कामकंदला	कंदला का कथन	४-६	” ७६
मदन मंजरी नाटक में	मदन का कथन	अंक ४	पृष्ठ ५
मदन मंजरी ”	मंजरी का कथन	अंक ४	” ४
रुक्मणी परिणय ”	रुक्मणी का कथन	अंक ३	पंक्तियाँ ४७

इन उदाहरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि भाषण, विरह-निवेदन, शोक, और उत्तेजना के अवसर पर कथन दीर्घ बन गए हैं, जो स्वाभाविक भी है। कुछ नाटककारों ने छोटे कथनों को भी प्रश्रय दिया है।^१ परन्तु ऐसे नाटककारों की संख्या कम ही है जिनकी प्रवृत्ति पूरे नाटक में लघु-कथन देने की रही हो।

आकाशभाषित—

नाट्यशास्त्र का आकाशभाषित भी भारतेन्दु काल के नाटकों में प्राप्त होता है। आकाशभाषित में एक ही पात्र ऊपर मुख करके संवाद रूप में कथन करता है। वह बीच-बीच में इस प्रकार बोलता है—‘क्या कहा ? ऐसा क्यों नहीं हुआ ?’ फिर उसका उत्तर भी देता है। भारतेन्दु जी के नाटक *विषय विषमौषधम्* और *भारत-आरत*^२ (भाग १) में यही आकाशभाषित का प्रयोग है। *मिथिलेश कुमारी* नाटक में माधव का कथन आकाशभाषित है।

माधव—(जाता है ऊपर देख कर) ऐं क्या कहा ? कि मैं राजकन्या का रत्न हूँ और आज्ञा बिना मैं जाने न दूँगा। तो मैं भी यहाँ का पुजारी हूँ। मुझे जाने से कौन रोक सकता है। क्या कहता है कि वहाँ जाने का क्या प्रयोजन है ? अरे तू देखता नहीं कि ये सुमन गुरु ने राजकन्या को दे देने को मुझे भेजा है। (अंक १)

ये तीनों प्रकार शास्त्रीय हैं जो हमारे आलोच्य काल के नाटकों में पाए जाते हैं।

दर्शक श्राव्य—

उक्त शास्त्रीय प्रकारों से भिन्न एक अन्य प्रकार का संवाद भी नाटकों में मिलता है। यह है दर्शक-श्राव्य। प्रश्न पैदा हो सकता है कि नाटक में जो कुछ भी कहा जाता है वह सभी, दर्शक-श्राव्य है। फिर यह नवीन भेद

१. देवकीनन्दन त्रिपाठी के नाटक एवं मिथिलेश कुमारी, मालती वसंत, प्रेमबेलनाटक, सतीचन्द्रावली (अंतिम को छोड़ कर), दामोदर शास्त्री का रामलीला नाटक।

२. रसिक पंच, अप्रैल, जून, जुलाई १८८५ में प्रकाशित—अपूर्ण।

कैसा ? बात उचित है कि नाटक में सब कुछ दर्शकों के ही लिए है । नाटककार दर्शकों को ध्यान में रख कर ही तो नाटक की रचना करता है । किन्तु यह भी सत्य ही है कि नाटककार के सामने दर्शक नहीं हैं । दर्शक तो नटों के सामने हैं । सूत्रधार और नट अवश्य प्रस्तावना में दर्शकों की बातें करते हैं किन्तु सूत्रधार के जाने के बाद कोई पात्र दर्शकों से बात नहीं करता । समस्त नाटक में दर्शकों की उपस्थिति परोक्ष रूप से ही रहती है, प्रत्यक्ष रूप से नहीं । वे नाटक में सर्वत्र हैं परन्तु ईश्वर की नाई छिपे हुए । यदि कोई नाटककार अपने नाटक में यह लिख दे कि अमुक पात्र दर्शकों से कहता है तो यह बड़ा अस्वाभाविक एवं अनुचित लगता है । 'दर्शक-श्राव्य' में पात्र दर्शकों को संबोधित कर कुछ इस प्रकार कहने लगता है कि वह केवल दर्शकों को ही सुनाने के लिए है और रगमंच के पात्र उसे नहीं सुन रहे हैं, यद्यपि वे वहाँ खड़े हैं । तत्कालीन कुछ नाटककारों ने इसे अपनाया है किन्तु यह प्रणाली लोकप्रिय नहीं बनी । श्री बलदेव जी अग्रहरि कृत सती सुलोचना नाटक में सती सुलोचना सती होने के समय कहती है 'सभासदगण के चरणों पर मैं अपना शीश धरती हूँ जो अनुचित कह गई हूँ सो क्षमा हो आश करती हूँ—।' यह कथन कैसा अस्वाभाविक लगता है ! सुलोचना सती होते समय क्या दर्शकों को साथ लेती गई थी ? जय नारसिंह की नाटक में जब गहरू पर मार पड़ी तो वह दर्शकों से हाथ जोड़ कर कहता है 'साहेबो, अब एक विन्ती करूँ कि मैं तो यह काम छोड़े, पै, जब तुम पंच नीति का विमुआस छोड़ो।' लल्ला बाबू प्रहसन में रामदयाल सेठ अपने घर के अन्दर पत्नी की आज्ञा से बन्दर का नाच बच्चे को दिखाता है और दर्शकों से कहता है 'साहिबाने मजलिस ! ऐसी बीबी आपने न देखी होगी'—(चौथा परदा) । प्रतीत होता है कि रामदयाल सेठ दर्शकों को अपने घर में बुला कर ले गया था । मृत्यु सभा प्रहसन (अंक ४) के अन्त में भी दर्शकों को संबोधित किया गया है ।

पश्चिम में तो 'संवाद' को वस्तु एवं पात्र से भिन्न तत्त्व मान कर गंभीरता से पर्यालोचना हुई । अरस्तू की इमोटेशन (अनुकृति) की परिभाषा को लेकर तर्क वितर्क किया गया कि संवाद वास्तविक ही होने चाहिए और वे जीवन से लिये जाने चाहिए । युरूप में टामरोबर्टसन, इब्सन, चैखोब जैसे प्रसिद्ध कलाकार एवं विद्वानों ने संवादों में वास्तविकता होनी चाहिए, यह उद्घोष किया । दूसरी ओर शेक्सपियर ने संवादों में जीवन की अनुरूपता भरते हुए भी, साहित्यिकता के द्वारा संवादों को सजाया, और वास्तविकता को गौण स्थान दिया । संस्कृत नाटकों के संवाद साहित्यिक हैं । इस प्रकार एक दृष्टि में वास्तविकता को प्रधानता दी गई है तो दूसरी में साहित्यिकता को ।

भारतेन्दुकालीन नाटकों में संवाद की ओर अत्यधिक ध्यान दिया गया

है। अतः भारतेन्दुकालीन नाटकों में यह स्वतंत्र तत्त्व है जिसका विवेचन आवश्यक हो जाता है। उनके संवादों में संस्कृत की साहित्यिकता है तो पश्चिम की वास्तविकता भी है। अतः संवाद दो प्रकार के मिलते हैं—वास्तविक और साहित्यिक।

वास्तविक संवाद—

वास्तविक संवादों में यथार्थवादी नाटककार जीवन का यथार्थ चित्र खींचने के पक्षपाती होते हैं। इनका मत है कि जीवन में जैसे संवाद सुनाई पड़ते हैं, वैसे ही नाटकों में आने चाहिए क्योंकि, नाटक, जीवन की ही तो अनुकृति या इमीटेशन है। भारतेन्दुकालीन नाटककारों का ध्यान संवादों के इस गुण की ओर अवश्य रहा है, तभी तो प्रायः सभी नाटककारों ने नौकरों से अवधी, भोजपुरी, कन्नौजी इत्यादि स्थानीय बोलियों में संवाद करवाया है, क्योंकि नौकरों में सब जगह 'भइयो' की संख्या अधिक है जो प्रधानतः प्रतापगढ़, गोरखपुर, आजमगढ़, बलिया इत्यादि जिलों के निकटवर्ती गाँवों के होते थे और अब भी हैं। सभी नाटककारों ने स्त्रियों के संवादों को पुरुषों के संवादों से भिन्न बनाया है। नाटकों में स्त्रियाँ व्यंग्य एवं मुहावरों के बिना नहीं बोलतीं। लड़ाई में स्त्रियाँ 'निपूती, चुड़ैल, रौंड, खसमाखानी' इत्यादि गालियों का प्रयोग करती हैं। नाटककारों का सुसलमान सदा आदाब-अर्ज करता है। यह सब वास्तविकता लाने के ही लिये किया गया है। कुछ उदाहरणों से इस मत की पुष्टि हो जायेगी :—

(क) गाय सड़क पर बैठी है। कुछ अनपढ़ सुसलमान उसे उठाना चाहते हैं परन्तु वह नहीं उठती। लेखक उनका संवाद अपने शब्दों में रखता है। संवाद सुनते और पढ़ते ऐसा प्रतीत होता है कि हम वास्तविक संवाद सुन रहे हैं—

(१) अबे उठ, टनेमरानी, यहाँ पर बैठने से तेरा कौन-सा खसम है जो बचा लेगा।

(२) अजी भ्यों दो ढोसे लगावो आप ही नाचते-नाचते भगेगी।

(३) अजी, इस छिनाल को कुछ चारा लाकर खिलाओ तो देखो कैसे दौड़ती है (बकरूदीन घास ला के पुचकारता है)।

(१) अजी कैसी हरामजादी गाय है चारा दिखलाने से भी नहीं उठती।

(प्रचण्ड गोरक्ष नाटक, अंक १)

(ख) दो लण्ड साधु बिना गाली के बात नहीं करते हैं—

कबीर गुरु—क्यों बे गुरु ज्ञान की लण्डी सत्त साहब को ऐसे बचन कहता है।

नाथ—चल बे जुलहटे, तू क्या जाने गोरक्षनाथ चारों युग के योगी

ये और कबीर कल पैदा हुए थे ।

(आर्यमत मार्तण्ड नाटक १-२)

(ग) दो अनपढ़ और 'त्रियाचरित्र' वाली स्त्रियों का संवाद देखिए—

स्यामा—बीबी ! की बात । ऐस जमाने में कोई भोला भी होय है ।

सब जाने हैं कि जवानी दीवानी कहावै है, जब हमी को चैन नहीं है तो बैरबानी की कौन ? पर जब तक एक बात परदे में रहे अच्छा ही है न ?

चंपा—(आक्षेप से) बाहरे परदे वाली !

स्यामा—नहीं तो क्या तेरी तरह मन्दिर-मन्दिर का चन्नामर्त लेती फिरू हूँ ?

चंपा—नहीं तू तो पुजारिन बनी घरी में बैठो रहै है न ! हि हि !

(कलि-कौतुक रूपक, दृश्य १)

(घ) बारात में जाने पर छोटे-छोटे मनुष्यों के मस्तिष्क, आस्मान पर चढ़ जाते हैं । वे किस प्रकार बोलते हैं इसका सुन्दर उदाहरण है जब नाई सामन्ता बारातियों को 'बरौठी' की तैयारी करने के लिये कहने गया—

सामन्ता—राजा साहब, बरौनियाँ मेजो और बारौठी की तैयारी करो, बाजे वारेनु से कह देउ तैयार होय ।

१ बराती—अभी डेरा भयो न दुरस्ता भयो, बारौठी के लिये बुलाने आय गये, मेखें तक आयी हो नहीं हैं अभी बहुत से बराती घोड़ा पकड़े खड़े हैं दाने घास का फजीता जुदा पड़ रहा है ।

२ बराती—अरे कहीं दीया दीवट है, अंधेरे में कपड़ों को ठीक न काटू चीज को ठीक, बरातें तो बहुत करी हीं पर ऐसी अंधाधुंध कहीं नहीं देखी ।

३ बराती—लड़का वाले रस्ता चले आये हैं प्यास के मारे चिल्ला रहे हैं और घड़ा फड़ा नहीं है तो कुआ ही बताय दो कहाँ है, कैसी बे-इन्तजामी है, किसी बात की सल नहीं ।

४ बराती—कहाँ है लाला, दो घण्टे हमें खड़े-खड़े हो गये न मेख आवें न दिया आवे न बैठने के लिये जगह न चीज रखने के लिये जगह, हमने ऐसी बरात छोड़ी या लिये हमें लाये हैं, ऐसे नालायक से पाला पड़ा है बारात तो और जगह भी हम गये हैं पर ऐसा अंधेर कहीं नहीं देखा गया ।

(तोताराम वकील कृत विवाह विडंबन, दृश्य ३ पृ० १११)

इस काल के प्रायः सभी सामाजिक नाटक, प्रहसन, थियेटीकल एवं

राजनैतिक नाटकों में संवादों की वास्तविक शैली के पूर्ण दर्शन होते हैं, अन्य प्रकार के नाटकों के संवादों में भी वास्तविकता को स्थान मिला है, उदाहरण स्वरूप देखिए—पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत रुक्मणीहरण नाटक (४-३), पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र कृत सरस्वती नाटक, श्रीनिवासदास कृत तप्ता संवरण, और रणधीर प्रेममोहिनी, महाराजदीन दीक्षित कृत प्रह्लाद चरित्र नाटक, अग्रहरी कृत सुलोचना सती ।

साहित्यिक संवाद

साहित्यिक संवाद तीन प्रकार के मिलते हैं—(१) अलंकृत संवाद (२) भावात्मक संवाद और (३) लाक्षणिक संवाद ।

अलंकृत संवाद—नाटककार अलंकारों के प्रयोग से संवाद को सजाता है । उदाहरण—

मालती—(लजाकर) महाराज आपका कल्याण हो ।

वसंत—प्यारी, मेरे कल्याण में अब क्या सन्देह है । एक खंजन के कमलस्थ देखने से अमित लाभ होता है मैंने तो एक कमल पर दो खजन निहारे ।

मालती—महाराज मेरा बड़ा भाग्य है जो आपके दर्शन हुवे आपके आने से यहाँ अरुणोदय की शोभा हुई है ।

वसंत—प्यारी ! तुम्हारे मुखारविन्द को देख कर मेरा मन ऐसा उमगता है जैसे पूर्ण चन्द्र को देख कर समुद्र ! जो उचित समझो सो करो ।

मालती—मैं भी अपने मन की माला आपके गले में पहिना चुकी हूँ ।

(मालती वसंत २-१)

भावात्मक संवाद—पात्र भावावेश में आकर जब बोलता है तो उसका संवाद भावात्मक बन जाता है । जैसे—

पृथ्वीराज—(प्रीति से, संयोगिता की ओर देख कर) मेरे नयनों के तारे, मेरे हिये के हार, मेरे शरीर का चंदन, मेरी प्राणाधार, इस समय इस लोकाचार से क्या प्रयोजन है ? जैसे परस्पर के मिलाप में मोतियों के सार भी हृदय को भार मालूम होते हैं इस तरह ये लोकाचार इस समय मेरे व्याकुल हृदय पर कठिन प्रहार है, प्यारी रक्षा करो, अब तक तो तुम्हारे नयनों की वाण-वर्षा से छिन्न-कवच हो मैंने अपने पायल हृदय को सम्हाला । पर अब नहीं सम्हाला जाता ।

(संयोगिता स्वयंवर २-२)

नाटकों में वियोग और मृत्यु के अवसरों पर करुण संवाद इसी

भावात्मक शैली पर लिखे गए हैं।

लाक्षणिक संवाद—जहाँ नाटककार संवाद को लक्षणा-व्यंजना के आधार पर सांकेतिक बना देता है वहाँ लाक्षणिक संवाद मिलता है। जैसे—

(क) मायावती—तो अब क्या करूँ ?

अस्वालिका—पिंजरा खोल के बैठी रहो।

माया—तब।

अस्वालिका—जब पक्षी आवेगा तब धर दूँगी।

माया—तब।

अस्वालिका—मैं पास बैठ कर खिलाऊँगी।

(यौवन योगिनी ३-१)

यहाँ अस्वालिका सखी को प्रीतम की प्रतीक्षा करती देख कह रही है कि प्रतीक्षा करती रहो, प्रीतम आएगा तो मैं पकड़ कर तुम्हारा सदा के लिए बना दूँगी।

(ख) नायक नायिका इसी शैली पर बात करते हैं—

रणधीर—अच्छे मनुष्य भी पराए धन से सदा बचते हैं।

प्रेममोहिनी—परन्तु चकोर चन्द्रमा को सूर्य समझ कर दूर भागे तो दोष किसका ?

रणधीर—चकोर का।

(रणधीर प्रेममोहिनी ३-४)

गद्य-पद्य-मिश्रित संवाद—

आज केवल गद्यात्मक संवाद लिखे जाते हैं। भारतेन्दुकालीन नाटकों में गद्यात्मक संवाद भी प्राप्त होते हैं। कुछ नाटककार तो केवल गद्यात्मक संवादों का ही प्रयोग करते हैं जैसे गंगोत्री, गोसंकट नाटक, सावित्री नाटक (बा० देवराज कृत), एक एक के तीन तीन, वेश्या प्रहसन, न्यायसभा नाटक। पूर्व भारतेन्दुकाल के व्रजभाषा नाटकों में केवल पद्यात्मक संवाद लिखे गए थे। भारतेन्दु काल में पद्यात्मक संवाद दो रूप में मिलते हैं, हिन्दी-उर्दू छन्दों में एवं गीतों में। हिन्दी छन्दों (सवैया, कवित्त इत्यादि) में संवाद अनेक नाटकों में हैं। ऐसे प्रसंग भी हैं कहाँ कथन भी पद्यात्मक है और उसका उत्तर भी पद्यात्मक। उदाहरण—मयंक मंजरी (अंक १), ध्रुवतपस्या नाटक (३-१, ३-४), प्रह्लाद चरितामृत (४-४), प्रेममंजरी (दृश्य २), रतिकुसुमायुध (दृश्य २), सीता स्वयंवर (२-१), सीताहरण (१-२), नंद बिदा (१-३)। दूसरे प्रकार के पद्यात्मक संवाद वे हैं जहाँ गीतों में ही कथोपकथन है। सांगीत नाटकों में तो आरम्भ से अन्त तक गीत ही गीत है। कुछ अन्य नाटकों में भी यह प्रवृत्ति मिलती है जैसे हिन्दी-उर्दू नाटक (१-२), संयोगिता स्वयंवर (१४-१)। थियेटीकल नाटकों में भी

गीतात्मक संवाद मिलेंगे।

मिश्रित संवाद—गद्य और पद्य को मिला कर संवाद तो सर्वत्र ही मिलते हैं।

संवाद-उपयोगिता—

नाटक में रंग-संकेतों को छोड़ कर सब कुछ संवाद ही हैं। नाटककार भी जो कुछ कहता है इन्हीं दोनों के माध्यम से कहता है। रंग-संकेतों का सम्बन्ध अभिनय से है और संवाद का सम्बन्ध शेष नाटक से। अतः नाटक में उपयोगिता की दृष्टि से संवाद छै प्रकार का हो सकता है—

(१) **वस्तु-जनक संवाद**—जिस संवाद से कथावस्तु अग्रसर हो वह वस्तु-जनक संवाद है। प्रत्येक नाटक में संवाद यह कार्य करता है। एक उदाहरण लें—विश्वामित्र राजा हरिश्चन्द्र से राज्यदान लेकर बोले—‘स्वस्ति, अब इस महादान की दक्षिणा कहां है?’

हरिश्चन्द्र—महाराज जो आज्ञा हो वह दक्षिणा अभी आती है।

विश्वामित्र—भला दश सहस्र स्वर्णमुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी।

हरिश्चन्द्र—जो आज्ञा। (सत्य हरिश्चन्द्र नाटक, अंक १)

बस इसी संवाद से आगे कथा बढ़ती है। राजा स्वर्णमुद्रा देने पर विवश किया जाता है।

(२) **पात्र-सूचक संवाद**—संवाद द्वारा पात्रों पर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रकार से प्रकाश पड़ता है। अतः ऐसे संवाद, पात्र-सूचक संवाद होते हैं। पिछले अध्याय में ‘पात्र’ पर प्रकाश डालते समय इसकी चर्चा हो चुकी है।

(३) **रसपरक संवाद**—जब संवाद द्वारा रस की निर्भरिणी प्रवाहित की जाती है तब वहाँ संवाद रसपरक होता है। भारतेन्दुकालीन नाटकों में संवादों द्वारा रसोत्पादन की ओर ध्यान रहा है। इसकी चर्चा ‘उद्देश्य’ तत्त्व वाले अध्याय में की जाएगी।

(४) **दृश्य-सूचक संवाद**—जब पात्र कथन द्वारा किसी प्रासाद, ऋतु, समय, वन, सरिता इत्यादि का वर्णन करे अथवा अन्य दृश्य-योजना की सूचना दे तो वहाँ संवाद दृश्य-सूचक है।

(५) **विचार-प्रकाशक-संवाद**—नाटककार पात्रों के माध्यम से भाव एवं विचार देता है। ये संवाद विचार-प्रकाशक हैं।

(६) **देश-काल-ज्ञापक-संवाद**—नाटककार संवादों में तत्कालीन स्थिति भरता है तब संवाद, देश-काल-ज्ञापक कहलाता है। दृश्यसूचक, विचार-प्रकाशक, और देशकाल-ज्ञापक संवादों की चर्चा आगे ‘देशकाल’ शीर्षक के अन्तर्गत की जायेगी। वहाँ इन संवादों पर स्वतः प्रकाश पड़ जाएगा।

अध्याय ५

भाषा

नाट्यशास्त्र के आदिकाल से भाषा पर बड़ा बल दिया गया है। भरत-मुनि ने नाट्यशास्त्र के कई अध्याय भाषा के ही लिए दिए हैं। व्याकरण^१, छन्द-गीत,^२ अलंकार,^३ भाषा का प्रयोग एवं उसके प्रकार^४ की चर्चा नाट्यशास्त्र में विस्तार से हुई है। दशरूपक-कार ने द्वितीय प्रकाश (६४, ६५, ६६) और साहित्यदर्पण-कार ने छठे परिच्छेद में 'भाषा विभाग' और अलंकारों (१५८ से २१० तक) का वर्णन किया है जो भाषा के ही अन्तर्गत है। तब भी भरतमुनि ने भाषा पर बहुत बल दिया है। वे भाषा को नाटक का अनिवार्य अंग मानते हैं। बात भी ठीक है। संवाद ही नाटक के प्राण हैं। वे संवाद किस माध्यम से प्रकट किये जाते हैं? भाषा ही के माध्यम से। तो भाषा उन संवादों का शरीर सिद्ध हुई। दशरूपक-कार भाषा के सम्बन्ध में विस्तार न दे यही कहकर संतोष करता है 'ऐसा कौन व्यक्ति है जो पूर्णरूप से इसका विचार कर सके। भरत और शिव को छोड़ और कौन इसका वर्णन कर सकता है। (दशरूपक २-७२)। पश्चिम में भी नाट्यशास्त्र के आदि आचार्य अरस्तू ने नाटक के ६ तत्त्वों में भाषा को भी स्थान दिया है!

भाषा विभाग—

विश्लेषण की सुविधा के लिए हम भाषा के निम्न रूपों पर विचार करेंगे—

- (१) शब्द
- (२) व्याकरण
- (३) भाषा शृंगार
- (४) भाषा का प्रयोग

शब्द—भारतेन्दुकालीन नाटकों के शब्द प्रयोग की कुछ विशेषताएँ अपनी हैं।

१. नाट्यशास्त्र (चौखम्भा प्रकाशन) अ० १५—१ से ५० तक।

२. वही, अ० १६, २८ एवं ३२।

३. वही अ० १७।

४. वही, अ० १८।

(१) उच्चारण के अनुसार संयुक्ताक्षर—नाटकों में यह प्रवृत्ति प्रायः सामान्य दिखलाई देती है कि वे उच्चारण के अनुसार अक्षरों को मिला कर शब्द निर्माण करते हैं। आज वह प्रवृत्ति कम होती जा रही है। हम प्रायः हिन्दी में बोलते हैं 'मैं जानता हूँ' पर लिखते हैं 'मैं जानता हूँ।' इसी प्रकार बोलने से ध्वनि निकलती है 'मैं जा सकता हूँ' परन्तु हम लिखते हैं 'मैं जा सकता हूँ।' भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने इस बोलने और लिखने के अन्तर को दूर किया है और उच्चारण के अनुसार शब्द को रखा है। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। सक्ता,^१ जिस्को, जिस्का, जिस्से, जिस्पर,^२ उस्का, उस्से, उस्पर, उस्ने, उस्मे,^३ इस्का, इस्से, इस्तरह, इस्पर, इस्में,^४

१. प्रेमसुन्दर १-२। हिन्दी उर्दू नाटक १-२-८। न्याय सभा नाटक १-१-५, १-२-६। भारतोद्धार नाटक २-१-३२। विवाहिता विलाप भोंकी ४, पृष्ठ २८। रुक्मणी परिचय अंक २ का पृष्ठ २७। सत्यवती १-२-६, ३-३-८८। ग्राम पाठशाला पृष्ठ २१। गंगोत्री २-१। संयोगिता स्वयंवर १-१-१२, १-२-१६, १-३-२४, २-१-३७, ३-२-६३।

२. हिन्दी उर्दू नाटक १-२-८। होली दर्पण नाटक पृष्ठ ६, पृष्ठ १२। सत्योदय १-१। भारती हरण १-१८। अकबर गो रक्षा न्याय नाटक २-४-६२ व ७६। रणधीर प्रेम मोहिनी ३-४-६४, ६६ व ७७। मोरध्वज नाटक १-१-३०। न्यायसभा नाटक १-१-३। रुक्मणी परिणय दृश्य ४ का पृष्ठ ४२। सत्यवती ३-३-८८। गंगोत्री २-१। मदनमंजरी ५-६१। भारती-हरण १-१-११।

३. हिन्दी उर्दू नाटक १-१-४। तप्ता संवरण १-४। दययंती स्वयंवर १-१-३। भारतीहरण ४-२। मयंक मंजरी अंक २। न्यायसभा नाटक १-१-४। विवाहिता विलाप नाटक ४-३२। रुक्मणी परिणय ३-२८, ३४ व ४१। कमल मोहिनी भँवर सिंह १-१-३, १-२-४, १-२-५। वारांगना रहस्य २-१। संयोगिता स्वयंवर १-१-१०, १-२-२६, १-२-२०, १-३-२४, १-३-२५, २-१-४७, २-२-५१।

४. बाल्यविवाह दूषक (१-१० व ११)। तप्तासंवरण १-५। सत्योदय (प्रस्तावना), खड्गबहादुर मल कृत भारत आरत १-२-८। प्रेमघन कृत भारत सौभाग्य १-१२ (भूमिका)। दमयन्ती स्वयंवर १-१-५। भारती हरण ४-३-४६। रणधीर प्रेममोहिनी ३-४-६४। मोरध्वज नाटक ४-१-७८। न्यायसभा नाटक १-४-१६ व २२। मदन मंजरी १-१६, २-२२, ३-४१। खड्गबहादुर मल्ल कृत महारास ४-१-६०। रति कुसुमायुध दृश्य ४। जय नारसिंह की १-२ व ३, २-२०। वारांगना रहस्य २-१।

किस्से, किस्को, किस्पर; ^१ विन्ती; ^२ उल्टा, ^३ सुन्ना, ^४ जान्ता ^५ ।

(२) अन्य भाषा शब्द—इस काल के नाटककारों ने अन्य भाषाओं से शब्द दिल खोल कर ग्रहण किए हैं। हाँ, हिन्दी का रूप विकृत नहीं होने दिया है।

उर्दू-फारसी के शब्द सबसे अधिक आए हैं। मराठी, पंजाबी, राजस्थानी और बँगला शब्दों को भी खपाया है—

शिक्षा (दंड अर्थ में) मनोरंजनी ६-१ ।

उपवेशन (बैठक, बैठना अर्थ में) रामलीला युद्धकांड एवं भ्रवतपस्या
(मंसाराम) १-२ ।

शासन (दंड अर्थ में) रामलीला उत्तरकांड—अनेक स्थानों पर ।

साहित्य (सामग्री अर्थ में) रामलीला उत्तर काण्ड अनेक स्थानों
पर एवं मयंक मंजरी ३-११० ।

गबरू, भैन इत्यादि ।

(३) शब्द जिनका अर्थ आज बदल गया है—

बलात्कार (बलात् अर्थ में) रामलीला आरण्यकांड ४-२-१०४

किष्किधा २-१-१८ । लावण्यवती सुदर्शन २-२-३७ ।

सिद्ध करना (तैयार करना)

‘राम लक्ष्मण को सिद्ध करता हूँ’ रामलीला बा० कांड १-३-१४

सेना को सिद्ध कर के आया हूँ ” ”

स्थगित (स्तंभित अर्थ में) प्रेमवाटिका १-२३

(४) वर्तनी—

ईक्षा, इक्षा—विश्वामित्र नाटक १-२, १-३

प्रोहित—विश्वामित्र २-२, २-४ । बाल्यविवाह नाटक ६५ ।

खड्गबहादुर कृत महारास ६-१-६५ ।

तुमारी—वीरवामा ६-३३, महाअंधेर नगरी ६-३६,

रुक्मणी परिणय—५-५२

संयोगिता स्वयंवर १-२-२८, १-३-२३, २-२-४७ ।

१. होली दर्पण नाटक २-१२ । विवाहिता विलाप ४-३५ ।

२. प्रेम सुन्दर ४-३ । उषा हरण ३-२ ।

३. वृद्धावस्था विवाह नाटक दृश्य ४ ।

४. भारती हरण ५-१-६० । बालविधवा संताप नाटक पृ० ३६-

४० । वारांगना रहस्य १-२ । संयोगिता स्वयंवर १-३, २-१-३५ ।

५. बालविधवा संताप नाटक प० ३१ व ३२ ।

निर्फल—अभिमन्यु १-१-१६ ।

धीर्य —सीता स्वयंवर १-४, २-१; रुक्मणी परिणय २-१ ।

स्यावास—संयोगिता स्वयंवर ३-१-५८, वीरवामा ६-२१

मनोरथ—सीता स्वयंवर २-१, विश्वामित्र २-४ ।

अट्टहास्य—चौपट चपेट ५-२३

ज्यवनार—विद्याविलासी सुखबंधनी ।

व्याकरण—हिन्दी का आरंभिक काल था । अतः व्याकरण दोष तो प्रायः सर्वत्र मिलते हैं । इन दोषों में तीन दोष प्रधान हैं । (१) लिंग दोष (२) भाववाचक संज्ञा दोष एवं (३) विभक्ति दोष ।

लिंग दोष

आधीरात की समय—महारास २-१-२४

तेरे कटि—मालती बसंत १-२

वृक्ष के ओर—मालती बसंत १-२

चातक का प्यास— विवाहिता विलाप ३-२३

कबूतर की गला— ” ” ३-२४

मेरी मन्दभाग्य—भारतीहरण ४-१-४१

हमारा अम्मा—सावित्री २-६

वीरों की सिंहनाद—संयोगिता स्वयंवर ३-१-५६

मनुष्य की प्रारब्ध— ” ” ५-२-६२

भैंस लिया—देशदशा ३-१-१६

नेत्र की बाण—प्रेम स्वरूप २-१०

गाली दिया—विद्यासुन्दर १-४-६

भाववाचक संज्ञा दोष—भाववाचक संज्ञाओं में भी 'ता' लगाकर संज्ञा बनाई जाती है जैसे 'माधुर्यता', सौन्दर्यता, शोभता, करतव्यता, परिचयता, कुभाग्यता, वियोगता, संयोगता, रूपाधिक्यता, धैर्यता, विवेकता, विरागता, न्यायता, सत्यता, इत्यादि ।

विभक्ति दोष

जानकी को रोदन—सीताहरण १-५-५०

अपने कृत्यों का स्मरता है—रामलीला किष्किंधा २-४-३१

राम को रावण से युद्ध करना—सीताहरण १-५-५०

हंसके, सोचके, देखके—भारतीहरण

वाक्य—छोटे और दीर्घ—दोनों प्रकार के वाक्यों को लिखने की प्रवृत्ति थी किन्तु प्रधानतः सरल और छोटे वाक्य लिखे गए हैं । हरिऔध जी व प्रेमघन जी दीर्घ वाक्य अधिकांशतः लिखते हैं ।

अश्लीलत्व—भाषा में अश्लीलत्व दोष भी पाया जाता है। चूतड़, चूतिया शब्द का प्रयोग कई नाटककारों ने किया है, (अकबर गोरक्षा न्याय नाटक १-८, बैल छैः टके को २-२, वेश्या विलास २-१, कलिकौतुक रूपक दृश्य ३, माधवानल कामकंदला ६-१)।

अन्य ग्रीड़ाजनक वाक्य—

‘वीर्य पतित हो जाता है’—माधवानल कामकंदला १-६

लल्ली लहंगा पर हग रही है—विवाह बिडम्बन, पृ० ७६

पाखाना लगा है—भारतोद्धारक २-१

मूत्र और दारु में भीग रही थी—सत्यवती ३-३

जैसे रेआह खारिज हाने से पेट की दर्द अच्छी होती है—अग्रहरि

कृत सुलोचना ३-१।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि आरंभिक युग होने से भाषा में दोष भी है और निर्वलता भी है। कुछ अहिदी लेखकों की भाषा भ्रष्ट है। दामोदर शास्त्री, भवदेव, मंसाराम, रामगोपाल, शरत्कुमार मुखर्जी ऐसे ही अहिन्दी भाषी लेखक हैं। किन्तु इनका प्रयत्न और साहस सराहनीय है कि अहिदी होते हुए भी हिंदी नाटक भंडार भरने का स्तुत्य प्रयास किया। हिंदी-भाषी लेखकों की भाषा में भी कुछ दोष मिलते हैं। कहीं पूरबीपन अधिक है^१ तो कहीं भाषा संस्कृत से बांझिल और नीरस हो गई है^२। इतने पर भी नाटककारों ने भरसक प्रयास किया है कि भाषा सुन्दर और प्रवाहमय बने। गद्य का आरम्भ काल होते हुए भी नाटककारों ने भाषा को सँवारने का सब प्रकार से पूर्ण प्रयास किया है।

भाषा शृंगार—

नाटककारों ने भाषा को सजाने की ओर बहुत ध्यान दिया है। कई साधनों से भाषा देवी का शृंगार हुआ है।

अलंकार द्वारा शृंगार—

अनुप्रास—रीतिकाल अपने अनुप्रासमय कवित्त-सवैयों के लिए प्रसिद्ध है। भारतेन्दुकाल, रीतिकाल के अंतिम छोर पर ही तो खड़ा है। फलतः हमें गद्य तथा पद्य दोनों में अनुप्रास प्रयोग का प्रयास मिलता है। पद्य में तो यह स्वाभाविक ही था। किन्तु गद्य में अनुप्रास लाने का प्रयास ही कुछ विशेषता लिए है। अनुप्रास प्रयोग की दो शैलियाँ दिखाई देती हैं (१) साधारण अक्षर साम्य और (२) तुकान्त गद्य।

१. पं० प्रतापनारायण मिश्र कृत कलिकौतुक रूपक।

२. हरिऔध जी के नाटक।

साधारण अक्षर साम्य—रीतिकालीन कविता में अक्षर साम्य द्वारा अनुप्रास की छटा बहुतायत से दीख पड़ती है। नाटकों में भी यह अनुप्रास मिलता है। उदाहरण—

(क) भूतपति—अब आपकी आरोग्यता से बढ़ी हुई प्रसादी मुझको मिले जो मैं उमंग से भंग का अभंग रंग ले कर अंग में मस्त हो आनन्द की तरंग में बहता हुआ मित्रों के संग जा मिलूँ।

(गोपीचन्द, श्रीमतीलाली १-१)

देखिये काम कसाई ने इधर बसंत की अवाई की सहाई पाई और हमारे ऊपर ऐसी चढ़ाई की। (महा अघेर नगरी १-१४।)

इस सुकुमारी की कटि की लचक, भूला की मचक, चोटी की फटकार, कंकण की झनकार मेरे मन को हरण किये लेती हैं।

(तप्तासवरण १ अंक)

तुकान्त गद्य—वैसे तो रीतिकालीन कविता में भी चरणांत तुक मिलती है। सेनापति और देव ने इस ओर विशेष ध्यान दिया था। थियेट्रिकल नाटकों में उर्दू के माध्यम से कुछ ऐसी ही तुक प्रणाली गद्य में चलाई गई। यह तुकान्त गद्य कहलाता है। वाक्यांत में तुक मिलाने का प्रयास रहता है। वाक्य भी छोटे छोटे रहते हैं। भारतेन्दुकालीन अनेक नाटकों में यह थियेट्रिकल तुकान्त गद्य दिखलाई पड़ता है। यह तुकान्त गद्य एक पात्र के कथन में भी मिलता है और कई पात्रों के संवादों में भी। उदाहरण—

पात्र के कथन में—

(क) कोई कोई मनुष्य ईश्वर का ध्यान लगाये औरों को ज्ञान सिखाते हैं, कोई अपना मन बुरी बातों की ओर लगाये व्यर्थ समय बिताते हैं, कोई जोगी जती कोई ग्रहस्थ हैं कोई गणिका के उपस्त ही में मस्त हैं, किसी के यहाँ पुत्रोत्सव की बधाई है किसी के यहाँ परम प्यारे दुलारे मनुष्यों के मर जाने से रोना-गाई है।

(प्रेमसुन्दर १-१)

(ख) देखिये उसकी प्रारब्ध कहाँ टक्कर खाती है सत्य है अधिकारें सबकी दुखदाई होती है।

(शील सावित्री—२-१)

(ग) क्यों प्यारी आज क्या है जो भोर ही भोर आईना देख रही हो और अपना मुँह ओसुओं से धो रही हो।

(विवाहिता विलाप भूँकी ४-४२)

संवाद रूप में—

मयंक मंजरी—तो क्या तुम समझते हो कि यह प्रान निगोड़ा है ? या

नलिनी ने भी कभी नेह तोड़ा है ?

कामिनी—वाह ! क्या खासा यह गठजोड़ा है लो अब क्या कुछ काम रहा थोड़ा है । (मयंक मंजरी अंक २)

(ख) सेठ—सोता था

मुछ्न्दर—हम तुम्हारे लिए रोता था ।

चट्टू—और मैं अपने होश खोता था ।

गगनन्द—और मैं भी अपनी भंग धोता था ।

(होली दर्पण दृश्य ३)

उपमा—

उपमा अलंकार का प्रयोग तो सर्वत्र मिलेगा । नाटककारों ने अपने काल के नवीन उपमानों का भी प्रयोग किया है । इनमें से बहुत से नवीन वैज्ञानिक आविष्कार हैं जिनको उपमान बनाया है । यह उन नाटककारों की सजगता का उदाहरण है—

(क) संयोगिता—पलभा की सुई का रुख भी कभी उत्तर से फिरते देखा है ?

करनाटकी—वह रुख चुम्बक के कारण सहज ही फिर सका है ।

(संयोगिता स्वयंवर १-१-३४)

(ख) जिस प्रकार पृथ्व्याकर्षण से भूतल नहीं छोड़ सकते उसी प्रकार उस सुन्दरी के मिलने की आशा से हमारा प्राण यह शरीर नहीं छोड़ता । (यौवन योगिनी २-१)

(ग) पितेदार मनुष्य के लिये कोई जरा सी बात हो जाती हो वो उसको खुर्दबीन की भाँति अपने मन ही मन में सोच सोचकर पहाड़ के बराबर बना लेता है ।

(रणधीर प्रेममोहिनी ३-२-५७)

(घ) महाराज ऋतुराज की प्रथम दृष्टि इन वृद्धों के पुराने पत्तों ही पर पड़ी और उन्हें ऐसा निकाल बाहर किया जैसे कि सरकारी कर्मचारी पचपन वर्ष पश्चात् पदच्युत किये जाते हैं ।

(मिथिलेश कुमारी अंक १)

यमक—

(क) यह आराम भी कैसा आरामदायक है ।

(मिथिलेश कुमारी अंक १)

(ख) हरे हरे ! यह हरे हरे पत्नी कौन हैं जो हरे खेतों में क्रन्दन कर रहे हैं । (लावण्यवती सुदर्शन नाटक पृष्ठ ४६)

(ग) राजा—हमारी विद्या की विद्या केवल दोषकारिणी हो गई ।

मंत्री—कांचीपुर के राजा गुणसिंह का पुत्र सुन्दर, युवराज अत्यंत सुन्दर अनेक शास्त्रों में शिक्षित और बड़ा कवि है ।

(विद्यासुन्दर १-१)

(घ) काल व्यतीत होने पर काम का रस काल पीता है ।

(शीलसावित्री १-१-१०)

(डा०) सौ०—आजकल फूट कहाँ है । ए० कुछ कुछ मत वालों में है ।

शि०—मत वालों में तो नहीं मतवालों में होगी ।

(भारत सौभाग्य, अम्बिकादत्त व्यास कृत १-७)

(च) कल तक कल कैसे पड़ेगी ।

(तप्तासंवरण १)

(छ) पति ही से पति है या तन की पति पति राखनहार ।

(अभिमन्यु १०-५)

(ज) यह पहुँची मुझ पहुँची पहुँचाई के प्रीतम के निकट से फेर लाई ।

आरसी हृदय में बार बार आरसी मार मार मेरा मुख निहारती हैं ।

(लावण्यवती सुदर्शन ८-६)

सांग रूपक—

रूपकालंकार तो पग पग पर पड़ा है । सांग रूपक भी नाटककारों ने अपनाया है । रणधीर प्रेममोहिनी का एक सुन्दर और संक्षिप्त सांग रूपक देखिए—

प्रेम की वर्षा से अनुराग की 'नदी' पल-पल में बढ़ती है । तरह-तरह के मनोर्थ भँवर और मिलाप की तरंगें 'लहर' के समान उठ रही हैं, कुल मर्जाद के 'वृक्ष' बिना परिश्रम बह गये, धीरज की नाव हाथ नहीं आती, इंद्रियाँ 'परदेशी' की भोंत दूर हुई जाती हैं । उस शोभा 'समुद्र' से मिले बिना इस (नदी) के शान्त होने का कोई उपाय नहीं दिखाई देता ।

(रणधीर प्रेममोहिनी, पृष्ठ ८६)

प्रेमघन जी ने वारांगनारहस्य (१-१) में वर्षा और वेश्या का सुन्दर सांग-रूपक लिखा है ।

उत्प्रेक्षा—

वृक्षों पर फूले फूल दृष्टि आते हैं मानों मन के मोल लेने को सुगन्ध रूपी दलाल चले आते हैं । (लावण्यवती सुदर्शन पृ० ४६) अपने कार्य को छोड़ चारों ओर कैसे ताक रहे हैं मानो बहुत दिवस की खोई वस्तु फिर मिला चाहती है ।

(शील सावित्री २-१-४८)

अपहृति—

प्रेममोहिनी—ना प्राणप्यारे ! अभी सूर्योदय का समय नहीं हुआ । आपके तेज से दीपक की जोत मंद पड़ गई और पुष्पों की शीतलता से मोती ठंडे हो गए । पत्नी नहीं चहचहाते । रात्रि के कारण मीठे-मीठे स्वरों से कोयल बोलती है । कमल के पत्तों पर ओस की बूँद नहीं ढलकती, मेरे कपोलों पर आँसू बह आये हैं ।

(रणधीर प्रेममोहिनी ३-५-१५०)

इसी प्रकार से अन्य अलंकारों द्वारा भाषा का शृङ्गार हुआ है ।

प्रवाह—केवल अलंकरण ही शोभा नहीं देता, भाषा की सुन्दरता प्रवहमान होने से बहुत बढ़ती है । जो नाटककार अपनी भाषा को मुहावरों और लोकोक्तियों से सजा कर सरल वाक्यों में रखता है, वह भाषा का शृंगार ही करता है । इस काल के अधिकांश नाटककारों ने भाषा को मुहावरों और लोकोक्तियों से प्रवहमान बनाया है । मुहावरो की सूची तो बड़ी विस्तृत है जो यहाँ देनी अवांछनीय है । यहाँ केवल कुछ विशिष्ट लोकोक्तियाँ और मुहावरे दिये जाते हैं—

आंगुरी रगरत ब्रित्यो (भारत सौभाग्य); आग को आग नहीं जला सकती (रणधीर प्रेममोहिनी), खेत पर चलने से किसनई मालूम होती है (देशदशा), गरिया रही है (भारत सौभाग्य, व्यास कृत), दहीजरऊ के नाती (व्यासजी कृत सौभाग्य), देशी घोड़ी मरहटी लगाम (विश्या नाटक), दशहरा का नीलकंठ (रणधीर प्रेममोहिनी), बातों को कान पकड़ निकालना (देशदशा), मिहरिया से बंके रहना (देश दशा), रुपये के कूकर (देशदशा), रुपये के मोनार बनाना (देशदशा), रोना चाहते थे आँख खोद पाए (देशदशा) ।

सूक्तियों के प्रयोग से भी भाषा का सौन्दर्य बढ़ता है । भाषा प्रवहमान और पुष्ट होती है क्योंकि सूक्तियाँ अनुभव के आधार पर परिपक्व बुद्धि वाले ही गढ़ सकते हैं । पुरानी सूक्तियाँ भी इसी प्रकार निर्मित हुई थीं । इस काल के नाटकों में सूक्तियों का सुन्दर कोष भरा है । कुछ सूक्तियाँ ये हैं—

‘कायर अश्रु-जल से, वीर बाहु-बल से और वाक्सूर वाक्छत्र से अपना मनःसंतोष करते हैं (संयोगिता स्वयंवर ३-२) । गुण की प्राप्ति के समान रूप की प्रीति मन में नहीं होती, केवल आँखों में रहती है (रणधीर प्रेममोहिनी १-१-५) । प्रीत करनी तो सहज है पर निवाहना कठिन है; पुराना उतार नया पहिनना, यह तो पुरुषों का काम है (विद्या सुन्दर ३-४-१० एवं २-२-२७) । “बात में ब्राह्मण, धर्म में वैरागी, रोजगार में सूद और दिक्कती

में गप सबसे अच्छी” और “जो जानबूझ कर सोता है उसे कौन जगा सकेगा” (भारत दुर्दशा)। बनावटी बात में कभी भोल पड़े बिना नहीं रहता; जैसे वृक्षों के फलने से बसंत ऋतु जानी जाती है वैसे ही मनुष्य की बुद्धि से उसका होनहार भी मालूम हो जाता है; बड़े आदमियों के दोष देखने में सदा प्राण का भय रहता है। (रणधीर प्रेममोहिनी)।

भाषा प्रयोग—

पात्रानुसार भाषा—नाटकों में पात्र की भाषा के विषय में मतभेद है। संस्कृत नाट्यशास्त्र एवं संस्कृत के नाटक इस पक्ष में हैं कि पात्रों को दृष्टि में रख कर भाषा में परिवर्तन करना चाहिए। ब्रजभाषा नाटकों में केवल आनन्द रघुनन्दन में भाषा-विभिन्नता है, औरों में नहीं। भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने भाषा-प्रयोग के सम्बन्ध में आनन्द रघुनन्दन और संस्कृत नाटकों एवं नाट्यशास्त्रों की व्यवस्था ही अंगीकृत की। भारतेन्दुकालीन नाटकों में पात्रों की भाषा उनके देश, प्रान्त और जाति के अनुसार परिवर्तित हुई है।

इसके दो रूप मिलते हैं (१) पात्र अपने प्रान्त या जाति की भाषा बोलता है। यदि वह बंगाली है तो बंगला बोलेगा, अंग्रेज है तो अंग्रेजी और मुसलमान है तो उर्दू फारसी या अरबी। श्रीमती लाली कृत गोपीचन्द में तमिल, गुजराती, बंगला, महाराष्ट्री, अंग्रेजी और उर्दू के गीत गवाए गए हैं। रणधीर प्रेममोहिनी में मारवाड़ी, उर्दू, ब्रज, फारसी और उर्दू का प्रयोग हुआ है। नाटक का वणिक पात्र नाथूराम सदा मारवाड़ी बोलता है और मुंशी सुखवासीलाल सदा क्लिष्ट उर्दू। प्रेम सुन्दर नाटक में भी पात्रानुसार भाषा का प्रयोग करवाया गया है और मारवाड़ी, उर्दू और भोजपुरी को स्थान मिला है। भारतेन्दु जी ने प्रेम जोगिनी और पाखंड विडंबन में यही शैली अपनाई है और पात्र से उसके प्रान्त, जाति या वर्ग की भाषा को बुलवाया है। सती चरित्र और ग्रामपाठशाला का भी यही हाल है।

एक प्रश्न स्वभावतः पैदा होता है। क्या यह उचित है? यदि लखनऊ में ‘राष्ट्र सङ्घ’ के विषय से सम्बद्ध कोई नाटक अभिनीत किया जाय और नाटक में राष्ट्रसंघ के सदस्य पात्र रूप में अपने-अपने देश की भाषाएँ बोलें तो कौन दर्शक उस नाटक को समझेगा और रस लेगा? जैसा हम पीछे कह चुके हैं कि दर्शक, नाटक देखते समय अपनी कल्पना से भी काम लेता है। मान लिया जाय कि शालिग्राम कृत पुरु विक्रम नाटक खेला जा रहा है। उसमें जब सिकन्दर आकर कोई कथन हिन्दी में करता है तो दर्शक उसकी वेशभूषा, प्रसंग एवं वातावरण से समझ लेता है कि यह सिकन्दर बोल रहा है। वह मन में यह भी सोच लेता है कि ऐतिहासिक रूप से

सिकन्दर यूनानी भाषा में बोला होगा। यहाँ सिकन्दर के हिन्दी बोलने से दर्शक के आनन्द-ग्रहण में कोई कमी नहीं आती। फिर यह प्रश्न हिन्दी में लिखे पौराणिक नाटकों के लिए भी उठेगा। राम, हरिश्चन्द्र, कृष्ण, रावण, कस, दुष्यंत, शिव, इत्यादि भी तो हिन्दी नहीं बोलते थे। उनसे हिन्दी क्यों बुलवाई जाती है। जिस प्रकार दुष्यन्त को हिन्दी में बोलते देख कर हमारे रसास्वादन में कमी नहीं आती उसी प्रकार महमूद गज़नवी को भी हिन्दी बोलते सुन कर आनन्द पा सकते हैं।

इस भाषा-प्रयोग का एक दूसरा उदाहरण भी नाटकों में मिलता है। वह यह है कि पात्र से उसकी मातृ या प्रान्तीय भाषा नहीं बुलवाई जाती वरन् हिन्दी में कुछ ऐसे शब्द मिला दिये जाते हैं कि पात्र का कथन उनके प्रान्त या जाति के अनुरूप दीख पड़े। ये दोनों प्रयोग स्वाभाविकता लाने के लिए ही भाषा में रखे गए हैं। किन्तु पहिले प्रयोग से दूसरा प्रयोग उत्तम है। यह तो ठीक ही है कि यदि पात्र की भाषा में कुछ थोड़ा-सा परिवर्तन करा दिया जाय तो उससे कथन अधिक स्वाभाविक हो जाता है जैसे बंगाली से बँगला न बुलवाकर कुछ बँगला उच्चारण या शब्द सहित हिन्दी बुलवाई जाय और वह कहे 'समापति साहब जो बोला सो बहुत ठीक है। इसका पेशतर कि भारत दुर्दैव हम लोगों का शिर पर आ पड़े उसके परिहार का शोचना अत्यन्त आवश्यक है किन्तु प्रश्न ऐसी है जे हम लोग उसका दमन करने शाकता है कि हमारा बीजोर्ज्वल के बाहर का बात है' (भारत दुर्दशा नाटक अंक ५)। इसी प्रकार अंग्रेज से अंग्रेजी न बुलवा कर अंग्रेजी उच्चारण एवं दो चार प्रचलित सरल अंग्रेजी शब्दों के साथ हिन्दी ही बुलवाई जाय और वह यह कहे 'हम टुम से बहुत खुश है, तुम्हारा हक अलबट्टा मारा जाटा है तुमारी हालट हम पर जाहिर है।' (नागरी विलाप)। यदि वह नाराज हुआ है तो कहेगा 'टुम नेटिव लोग वकट का कडर नहीं जानटा'। (देवाक्षर चरित्र दृश्य १)।

प्रसन्नता की बात है कि भारतेन्दुकालीन अधिकांश नाटककारों ने दूसरी शैली को ही अपनाया है। हाँ, इसमें एक अपवाद है कि मुसलमान पात्र सदा क्लिष्ट उर्दू ही बोलता है। भारत आरत (खड्गबहादुर मल्ल), नीलदेवी, अभिमन्यु, अन्धेर नगरी, चन्द्रावली, दुःखिनी बाला रूपक, मदनमंजरी, भारतोद्धार इत्यादि अनेक ऐसे ही नाटक हैं।

स्वाभाविकता पैदा करने के लिए ही नाटककारों ने भाषा में एक और परिवर्तन किया है जो स्वाभाविक एवं वाञ्छनीय है। योग्यता और प्रवृत्ति के अनुसार भी पात्रों की भाषा में परिवर्तन किया है। नौकर और स्वामी, ग्रामीण और नागरिक की भाषा को एक नहीं रक्खा है क्योंकि दोनों की

लौकिक पात्रता में अन्तर है। पुरुष और स्त्री के कथन उनकी प्रवृत्ति के अनुसार भिन्न हो ही जाते हैं। स्त्रियों की प्रवृत्ति है कि वे मुहावरों का अधिक प्रयोग करती हैं, व्यंग्यात्मक बोलती हैं और गालियाँ भी प्रायः टपका ही देती हैं। स्त्रियों की इस प्रवृत्ति के अनुसार उनकी भाषा में भी परिवर्तन किया है। इसका विवेचन 'संवाद' प्रकरण में 'वास्तविक संवाद' शीर्षक में हो चुका है। उदाहरण भी वहाँ दिये गए हैं। वे भाषा सम्बन्धी उदाहरण भी हैं।

भाषा के सम्बन्ध में यही कहना होगा कि इन नाटककारों का यही ध्यान रहा है कि भाषा को पात्र के अनुसार बना कर उसमें स्वाभाविकता लाई जाय।

अध्याय ६

शैली

प्रयोगवादी युग—

शैली की दृष्टि से यदि हम इस युग को प्रयोगवादी युग कहें तो अत्युक्ति न होगी। इस युग के नाटककारों ने सभी प्रचलित शैलियों को अपना कर नाटक लिखे। पूर्वी, पश्चिमी, केवल गद्य, केवल पद्य, गद्य-पद्य-मिश्रित—सभी प्रकार की शैलियों पर नाटक लिखे गये। हाँ, इन नाटककारों की विशेषता है कि इन शैलियों को अपना कर भी अपना स्वतन्त्र मार्ग बनाने की चेष्टा कर रहे हैं।

प्राचीन भारतीय शैली—

संस्कृत नाट्यशास्त्र में रूपक के १० भेद और उपरूपक के १८ भेद किये हैं। संस्कृत नाटककारों ने इन भेदों के अनुसार नाटक भी लिखे हैं। भारतेन्दुकाल के कुछ नाटककारों ने भी इन भिन्न-भिन्न भेदों को अपना कर रूपक भेद लिखे। संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार शुद्ध रूप में लिखे रूपक भेद ये हैं—

(१) नाटक—संस्कृत नाट्यशास्त्र के नियमों का अक्षरशः पालन करने वाला नाटक श्री सुदर्शनाचार्य कृत अनर्घनल चरित्र है। संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक के निम्नलिखित लक्षण हैं—

(क) कथानक—नाटक की कथा ख्यात अर्थात् पुराण प्रसिद्ध होती है।^१ इसमें पाँच संधियाँ होती हैं।^२ दशरूपक-कार कहता है कि संध्यंग भी होने चाहिए।^३ आधिकारिक कथा तो होती ही है, पताका और प्रकरी भी यथासंभव रक्खी जायें।^४ अंक ५ से १० तक हो सकते हैं। अंक में अधिक पात्रों की भीड़ न हो। ३ या ४ मुख्य पात्र प्रवेश करें और चले जायें।

१. साहित्यदर्पण ६-७।

२. वही, ६-७।

३. दशरूपक ३-२६।

४. वही, ३-२७।

अर्थोपक्षेपों एवं पताका स्थानकों की योजना हो।^१ वर्जित दृश्यों का प्रयोग न हो।

विश्लेषण—यदि *अनर्घनल चरित्र* का विश्लेषण करें तो नाटक के सभी नियमों पर खरा उतरता है। राजा नल की कथा पुराण-प्रसिद्ध है। इसमें पाँचों संधियाँ और सध्यंग हैं, इसका विश्लेषण अध्याय दो में कथानक शीर्षक के अन्तर्गत हो चुका है। पताका नहीं है। प्रकरी तो हैं हीं। यह दस अंक का महानाटक है। अंकों में पात्रों की भीड़ नहीं होती है। जहाँ भीड़ होने की आशंका है वहाँ भी नाटककार पात्रों को रंगमंच पर नहीं खड़ा करता। चौथे अंक में राजा नल के पास राजा भीम अमात्य-सहित आते हैं। उनके जाने के बाद ही चारों देवता आते हैं। ये चारों देवता भी एक साथ नहीं आते, एक-एक कर आते हैं। केवल छठे अंक में कुछ भीड़ है। वह भीड़ भी मुख्य पात्रों की नहीं है। यहाँ अभिनय हो रहा है। अभिनय में अलग से कुछ पात्र हैं। यह नाटक भी गुप्त रीति से हो रहा है अतः भीड़-भाड़ का स्थान भी नहीं है। नाटक में एक सखी प्रतिहारी बन कर एक-एक राजा के विषय में बताती जाती है और दमयंती उन्हें छोड़ती जाती है। यह दृश्य सूचनात्मक अधिक है। अर्थोपक्षेपों में से नाटककार ने नेपथ्य के अतिरिक्त विष्कम्भक का प्रयोग बहुतायत से किया है। प्रत्येक अंक के आरम्भ में विष्कम्भक है। पताका स्थानक भी स्थान-स्थान पर प्रयुक्त हैं। उदाहरण—प्रथम अंक में नल शकुंतला का स्मरण कर रहे हैं। वे सोच रहे हैं कि सौभाग्य से सब कुछ संभव है। तभी दो सखियाँ आ कर कहती हैं 'जय जय'। इसी प्रकार छठे अंक में नल और पुष्कर की दून-क्रीड़ा आरम्भ हुई है। दौव लग चुका है। नल पुष्कर को कुछ कहने की इच्छा से संबोधित करते हैं 'पुष्कर'। तभी कुंठिनवासी आ कर कहता है 'महाराज की जय हो।' अर्थ हुआ—पुष्कर महाराज की जय हो। यहाँ भी पताका स्थानक है। वर्जित दृश्यों का प्रयोग कहीं नहीं हुआ है। और तो और स्वयंवर दृश्य को भी अंक में प्रधान रूप से स्थान नहीं दिया गया है क्योंकि विवाह, स्वयंवर भी वर्जित दृश्य हैं।^२ अतः नाटककार ने अंक में न दिखा कर गर्भांक में दिखाया है। संस्कृत के नाटक, *बाल रामायण* में भी सीता स्वयंवर 'गर्भांक' में दृश्य रूप से दिखाया गया है। इसी का अनुकरण नाटककार ने *अनर्घनल चरित्र* में किया है। गर्भांक का यहाँ अर्थ दृश्य या सीन नहीं है। गर्भांक यहाँ शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार लिखा गया है। गर्भांक वह है जो अंक के बीच में आए, जिसमें

१. दशरूपक, ३-३७।

२. साहित्य दर्पण ६-१-६, नाट्य शास्त्र २०-२० (चौखम्बा)

रंग द्वार (नांदी इत्यादि) और आमुख इत्यादि भी हो, इसमें बीज एवं फल का भी स्पष्ट संकेत हो ।^१ वास्तव में यह अंक के बीच में दूसरा अंक आ जाता है । इसी लक्षण के अनुसार यहाँ गर्भांक प्रयुक्त है ।

(ख) नायक—‘पुराणादि वंश में उत्पन्न, धीरोदात्त, प्रतापी, गुणवान् कोई राजर्षि अथवा दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष नाटक का नायक होता है । धीरोदात्त में धीर ललित इत्यादि नायकों का भी समावेश है ।^२ विदूषक, दूत, दूती, नायिका इत्यादि भी होते हैं ।

विश्लेषण—उच्चराजकुलावतंस, प्रतापी, गुणवान् राजा नल नायक है । वह धीरोदात्त के लक्षणों से युक्त है । वह प्रतापी, अत्यन्त गम्भीर, क्षमावान्, विनीत, स्थिरता से सम्पन्न, और दृढ़व्रती है ।^३ आरम्भ में एक प्रेमी के रूप में आता है । किन्तु धीरे धीरे धीरोदात्त बन जाता है । प्रति-नायक, नायिका, विदूषक, सखी इत्यादि भी हैं ।

(ग) रस—नाटक में शृंगार अथवा वीर रस अंगी या प्रधान होता है और अन्य रस उसके सहायक । निर्वहण संधि में अद्भुत रस का प्रयोग कर दिया जाय तो अच्छा है ।^४

विश्लेषण—नाटक का प्रधान रस शृंगार है । सहायक रूप में हास्य, रौद्र, भय, अद्भुत आदि प्रयुक्त हुए हैं । निर्वहण संधि में अद्भुतता है, क्योंकि गंधर्वजन आकाश से मंगल गान करते हैं, इन्द्र इत्यादि देवता आकर आशीर्वाद देते हैं एवं अप्सराएँ नृत्य करती हैं ।

प्रस्तावना—आरम्भ में १२ चरणों का नांदी पाठ है । इस नांदी से भावी कथा का भी संकेत मिलता है । नाटककार तीसरे श्लोक में कहता है कि वृक्ष वसंत में श्री-सहित होते हैं, पुनः ब्रह्म में श्री-हीन, वे वसंत आने पर पुनः श्री-सहित हो जाते हैं । इससे भावी कथा का आभास होता है । प्ररोचना सक्षिप्त है । कथोद्घातक नामक आमुख अंग है क्योंकि सूत्रधार के शब्दों को दुहराते हुए पात्र-प्रवेश होता है । यह सब नाट्यशास्त्र के लक्षणों के अनुसार है । अन्य अक्षेप—अलंकार, वृत्ति, रंग-संकेत इत्यादि भी प्राप्त होते हैं । निष्कर्षतः यह नाटक शुद्ध शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार लिखा गया है ।

(२) भाण—भारतेन्दुकाल में दो भाण लिखे गए । एक है भारतेन्दु

१. सा० द० ६-२० ।

२. वही, ६-६ (टीकाकार शालिग्राम शास्त्री, प्र० सं० प० २३६) ।

३. दशरूपक २-४, ५ ।

४. साहित्य दर्पण ६-१०, दशरूपक ३-३३/३४ ।

जी कृत विषस्य विषमौषधम् और दूसरा है भारत आरत ।^१ भारतेन्दु जी का भाण शास्त्रीय लक्षणों से सम्पन्न है ।

लक्षण—आचार्य विश्वनाथ ने भाण के निम्नलिखित लक्षण दिए हैं—(१) नाना अवस्थाओं से युक्त धूर्त चरित्र इसमें वर्णित होता है । (२) एक अंक होता है (३) एक ही पात्र होता है । यह पात्र निपुण और पंडित विट होता है (४) यह विट अपने अनुभव या दूसरों के अनुभवों के आधार पर चरित्र-कथन करता है (५) कथन करने की शैली आकाश-भाषित होती है (६) शौर्य-सौभाग्य द्वारा वीर-शृङ्गार की सूचना दी जाती है (७) कथा ख्यात नहीं होती, उत्पाद्य होती है (८) वृत्ति यथासंभव भारती ही होती है (९) मुख और निर्वहण संधियाँ होती हैं (१०) दसों लास्यांग पाये जाते हैं ।^२ भारतेन्दु जी ने भी संधियों को छोड़ कर शेष लक्षण माने हैं । दो लक्षणों को प्रकारान्तर से रक्खा है—लास्यांगों के स्थान पर वे कहते हैं ‘हँसना, गाना, क्रोध करना एवं संगीत’ होते हैं । ‘भारती वृत्ति’ के स्थान पर उन्होंने ‘उत्तम भाषा’ कहा है ।

विश्लेषण—भारतेन्दु जी के भाण में उक्त लक्षण हैं (१) राजा मल्हार राव के लम्पट और धूर्त चरित्र की पोल खोली गई है । ‘आया के आया जाया की गड़बड़ी बताई ।’ ‘सौभाग्यवती का विवाह’ करने पर व्यंग्य किया । यह भी बताया कि महाराज के मारे बड़े घरानों की स्त्रियाँ तक भयभीत रहती थीं । महाराज ने धोखे से विष दिलाने का प्रयास किया था, इसकी भी चर्चा है । (२) एक ही अंक है (३) भण्डाचार्य महाराज का सहायक था । वह बात बनाने में बड़ा निपुण है । पंडित तो है ही । जन्म से भी पंडित है और पांडित्य भी रखता है । राजा मल्हार राव की वंशावली अंग्रेजों का पूर्व इतिहास, मुहम्मद शाह, वाजिदअली शाह एवं अपूर्व कृष्ण के जीवन संबंधी उल्लेखों से उसका पांडित्य टपकता है । वह कवि भी है । (४) वह स्वयं की अनुभूत बातों को कह रहा है । साथ ही दूसरों की कथित बातों की भी चर्चा कर देता है । (५) कथन शैली आकाश-भाषित है (६) मल्हार राव के पूर्व पुरुषो का शौर्य बताता है । ‘इनका पुरखा दमा जी गायकवाड़ कैसा प्रतापी था जिसके बल से पेशवा रघुनाथ राव निःशंक रहता था ।’ मल्हार राव की विलासिता का वर्णन है ही । साथ ही में शैली व्यंग्यात्मक एवं विनोदात्मक है । (७) तत्कालीन छोटी सी घटनाओं को लेकर नाटककार ने पूरा वृत्त खड़ा किया है । अतः कथा उत्पाद्य ही मानी जाएगी । (८) भारतेन्दु जी के लक्षण वाली भाषा ‘शुद्ध हिन्दी है’ जिसे भारती वृत्ति ही कहा जा सकता है (९) मुख

१. रसिक पंच, अप्रैल, जून, जुलाई १८५५ । लेखक का नाम नहीं है ।

२. साहित्य दर्पण, ६-२२७ से २३० तक ।

और निर्वहण संधियाँ हैं ।

मुखसंधि—

बीज—‘पर नारी पैनी छुरी’... वाला कथन

आरंभ—‘हैं चला गया, कौन गति हुई, इतना तो हमने भी सुना था कि कुछ दिन हुए एक खवीसन आई थी’... इन दोनों के संयोग से मुख-संधि बनती है ।

निर्वहण संधि—

कार्य—भण्डाचार्य अंग्रेजी सरकार की कार्यशीलता की प्रशंसा करता है । वह कहता है ‘यह तो जब पहिले कमीशन आया था तभी हम समझे थे ।’

फलागम—खानदेश का एक राजकुमार गद्दी पर बैठा भी दिया गया । धन्य है सरकार ।

अंतिम अंश में निर्वहण संधि है । (१०) बीच बीच में कविता गीत हैं ।

(३) **नाटिका—**भारतेन्दु जी की चन्द्रावली शास्त्रीय दृष्टि से उत्तम नाटिका है ।

लक्षण—शास्त्रीय दृष्टि से नाटिका के निम्नलिखित लक्षण हैं—

(१) नाटिका की कथा कल्पित होती है । (२) चार अंक होते हैं । (३) अल्प-विमर्श या विमर्श-रहित संधियाँ अर्थात् मुख, प्रतिमुख, गर्भ, और निर्वहण संधियाँ होती हैं । (४) नायक धीर ललित होता है । (५) अधिकांश पात्र स्त्रियाँ होती हैं । (६) अतःपुर से सम्बद्ध गाने वाली या नृपवंशजा नव अनुगम से भरी कन्या नायिका होती है । (७) प्रधान महिषी का भय नायक को नायिका के मिलने से रोकता है । नायक प्रधान महिषी से शंकित रहता है । (८) प्रधान महिषी क्रोध और मान करती है । (९) उसी के वश में नायक-नायिका का मिलन होता है । दूसरे शब्दों में प्रधान महिषी की आज्ञा से ही नायक-नायिका का मिलन होता है । (१०) कैशिकी वृत्ति अगो सहित चारों अंकों में व्याप्त होती है ।^१ भारतेन्दुजी ने संधियों और वृत्तियों का उल्लेख नहीं किया है । शेष लक्षणों को माना ही है ।^२

विश्लेषण—चन्द्रावली में ये सब लक्षण प्राप्त होते हैं—

(१) कथा कवि-कल्पित ही है ।

(२) चार अंक हैं

(३) चारों अंकों में चार संधियाँ हैं जैसा कि दूसरे अध्याय में

१. सा० द० ६-२६६ से २७२ तक ।

२. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पहिला भाग० ७१८ ।

कथानक के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है ।

- (४) कृष्ण जी गायक एवं प्रेमी हैं । वे धीरललित नायक हैं ।
- (५) कृष्ण जी को छोड़कर शेष सब पात्र स्त्रियाँ ही हैं ।
- (६) नायिका चन्द्रावली अंतःपुर से सम्बद्ध हैं, वह सुन्दर गायिका हैं और नव अनुराग सम्पन्न हैं ।
- (७) प्रधान महिषी श्रीगंधा जी स्वामिनी हैं । उनसे नायक शंकित है और भयभीत भी । नारद कहते हैं 'उधर श्रीमती जी का भय है ।' माधवी भी यही बात कहती है 'सखी, वेऊ का करें । प्रिया जी के डर सो कुछ नहीं कर सकें ।'
- (८) वे क्रुद्ध हैं । माधवी बताती है 'प्यारी जू के मनाइवे को मेरो जिम्मा । यही काम सबसे कठिन है ।'
- (९) प्रधान महिषी प्रिया जी की आज्ञा से नायक नायिका का मिलन होता है । विशाखा, प्रिया जी की आज्ञा लेकर आती है और कहती है 'स्वामिनी ने आज्ञा दई है कि प्यारे सो कहि दै चन्द्रावली की कुंज में सुखेन पधारो' ।
- (१०) कैशिकी वृत्ति अपने चारों अंगों सहित नाटिका में व्याप्त है ।

कैशिकी वृत्ति—

कैशिकी वृत्ति के चार अंग हैं—

(क) **नर्म**—चतुरता पूर्ण क्रीड़ा-विलास का नाम ही 'नर्म' है । यह अंग हास्य, शृंगार और भय सहित होता है^१ । उदाहरण—

चन्द्रावली—'बाह सखी ! क्यों न हो, तेरी क्या बात है । अब तू ही तो एक पहेली बूझने वाली मे बची है । चल बहुत भूठ न बोल ।'

और ललिता कहती है 'धन्य तू, तू दडवत् करने के योग्य है । कृपा करके अपना बायों चरण तो निकाल मैं भी पूजा करूँ ।' यह नर्म का हास्य अंग है ।

प्रथम अंक नर्म अंग से पूर्ण है । अंक के आरम्भ में चन्द्रावली और ललिता का कथन चतुरता और विदग्धता से भरा है । चन्द्रावली के अनेक कथन 'नैना वह छवि नाहिन भूले, मन मोहन तैं बिछुरी जब सों', आरसी वाली घटना इत्यादि में नर्म का शृंगार अंग है ।

भय अंग

चन्द्रावली—(कुछ सकपकानी सी हो कर) नहीं सखी तू क्यों भूठी

है, झूठी तो मैं हूँ। और जो तू ही बात न पूछेगी तो कौन पूछेगा। नहीं सखी ऐसी बात मुँह से मत निकाल। एक तो मैं आप ही मर रही हूँ, तेरी बात सुनने से तो और भी अधमरी हो जाऊँगी.....”।

इत्यादि कथनों में भय अंग है।

(ख) नर्म स्फूर्ज—आरम्भ में सुखकर और अन्त में भयदायक नवीन प्रेम एवं समागम का वर्णन नर्म स्फूर्ज होता है^१। दूसरे अंक में यही बात है। चन्द्रावली मानसिक रूप से समागम का आनन्द लेती है। आँख बन्द कर वह सखी से कहती है—‘हो हो अरी क्यों चिल्लाती है। चोर भाग जायगो!’

चन्द्रावली—फेर बके जाय है, अरी मैंने अपनी आँखिन में मूँदि राख्यो है।

अंक में स्थान-स्थान पर प्रेम-चर्चा है। प्रेम लीन हो चन्द्रावली सुख पाती है किन्तु अन्त में भय है। उसके पत्र का भेद न खुल जाय यह डर है।

(ग) नर्म स्फोट—जहाँ थोड़े थोड़े भावों का प्रकाश करके शृंगार की सूचना दी जाती है वहाँ नर्मस्फोट अंग होता है। तीसरे अंक में यही स्थिति है। सखियों को भूलते देख चन्द्रावली माधवी से प्रेम-चर्चा करती है, रोने लगती है। चन्द्रावली के स्वगत कथनों में रति भाव का प्रकाश होता है। वर्षा के बहाने भी प्रेम का प्रकाश हुआ है।

(घ) नर्म गर्भ—जब किसी प्रयोजन से नायक प्रच्छन्न रूप से कोई व्यवहार करता है तो ‘नर्म गर्भ’ अंग सामने आता है। चतुर्थ अंक में कृष्ण योगिन के वेश में आते हैं। आगे शृंगार रस स्पष्ट है कि क्या हुआ।

इस प्रकार कौशिकी वृत्ति के चारों अंग, चारों अंको में प्राप्त होते हैं।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि पूर्वी नाट्यशास्त्र का अनुगमन भी नाटक-कारों ने शुद्ध रूप में किया है और पूर्वी शैली के अनुसार नाटक लिखे हैं।

पश्चिमी शैली—

शुद्ध पश्चिमी शैली के नाटकों की संख्या अपेक्षाकृत अल्प है। तीन ऐक्य—स्थान स्थल और कार्य—को दृष्टि में रख कर कोई नाटक नहीं लिखा गया। मालती वसंत नाटक में तीनों दृश्यों का स्थान एक ही है जो नन्दन वन है। तीनों दृश्य हैं। लगभग चौबीस घण्टे में नाटक की घटनाएँ समाप्त हो जाती हैं। कार्य ऐक्य भी है हो। नाटक सवर्ष प्रधान एवं दुःखान्त है। अतः पश्चिमी शैली का है।

नीलदेवी भी पश्चिमी शैली पर लिखा नाटक है। यह गीतों से भरा है, अतः गीति रूपक है। इसमें आरम्भ में (कोरस) सामूहिक गान है। नाटक केवल दृश्यों में विभाजित है। आरम्भ से अन्त तक संघर्ष से भरा है। नायक का मरण होता है और नायिका सती होती है। अतः दुःखान्त ही है। अतः यह पश्चिमी शैली पर लिखा दुःखान्त गीति रूपक है।

थियेट्रीकल नाटक पश्चिमी शैली की विकृत अनुकृति थे। हिन्दी में दुःखान्त नाटकों का प्रणयन पश्चिमी शैली के ही अनुकरण पर हुआ और अनेक दुःखान्त नाटक बने। प्रेम नाटक,^१ ऐतिहासिक नाटक,^२ राजनैतिक,^३ सामाजिक^४, और पौराणिक^५ नाटकों में भी दुःखान्त नाटकों के दर्शन होते हैं। भारतीय नाट्यशास्त्र नायक के वध को दृश्य रूप में दिखलाने की आज्ञा नहीं देता है। इन नाटकों में नायक का वध दिखलाया गया है। युद्ध, चिता, शव, मृत्यु जैसे वर्जित दृश्य भी चित्रित किये गए हैं। यह भी पश्चिमी शैली का ही प्रभाव है। बहुत से नाटकों में आलिगन-चुम्बन, विवाह क्रियाएँ एवं भोजन के दृश्य रखे गए हैं। यह पश्चिमी शैली का अनुकरण है। हिन्दी में सामाजिक एवं राजनैतिक नाटकों का आरम्भ भी पश्चिमी शैली का प्रभाव ही कहा जाएगा। नाटकों में कौतूहल प्रदर्शन भी पश्चिमी प्रभाव है। प्रेमियों की सैर, बाल्यविवाह नाटक, देशदशा नाटक, कलिकौतुक रूपक जैसे यथार्थवादी नाटक भी पश्चिम के अनुकरण पर हैं जिनमें अन्त स्पष्ट नहीं है, न कोई आदर्श है।

लघुरूपक और एकांकी—

भारतेन्दु काल में नाटकों के लिए रूपक शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। (१) प्राचीन परम्परागत दृष्टि से नाटक को रूपक कहा है जैसे महारानी पद्मावती और महाराज को मुखवृष्ट पर रूपक कहा गया है। मयंक मंजरी में नटी प्रस्तावना में इस नाटक को रूपक कहती है। (२) रूपक या अन्योक्ति शैली पर लिखे गए नाटकों को रूपक नाम दिया गया जैसे

१. रणधीर प्रेममोहिनी, लावण्यवती सुदर्शन, कमलमोहिनी भँवरसिंह, गंगोत्री।

२. नीलदेवी, सिंधुदेश की राजकुमारियों, गुन्नौर की रानी, महारानी पद्मावती, अमरसिंह राठौर, सती चन्द्रावली।

३. भारत दुर्दशा।

४. दुःखिनी बाला रूपक।

५. अभिमन्यु, सीताहरण।

सरस्वती, भारतीहरण, भारत सौभाग्य (प्रेमघन और व्यास कृत) ।
(३) छोटे नाटकों को रूपक कहा गया है जैसे प्रेमवाटिका, परम मनोहर तीन ऐतिहासिक रूपक, विवाहिता विलाप, दुःखिनी वाला रूपक, कलि कौतिक रूपक, नीलदेवी । हम इन्हीं छोटे नाटकों की चर्चा करेंगे जिन्हें हमने लघु रूपक और एकांकी नाम दिया है ।

हिन्दी में एकांकी के आरम्भ के विषय में पर्याप्त मतभेद प्रकट हुआ है । कुछ विद्वान् भारतेन्दु काल से हिन्दी एकांकी का आरम्भ मानते हैं और भारतेन्दु जी को हिन्दी का प्रथम एकांकीकार स्वीकृत करते हैं ।^१ इसके विपरीत विद्वानों का दूसरा दल भारतेन्दु जी को एवं भारतेन्दु युग को यह श्रेय देने का विरोध करता है । ये महानुभाव एकांकी को शुद्ध पश्चिम की देन मानते हैं ।^२ इस दल का मत है कि पश्चिम में सब से पहिले १६०३ ई० में लन्दन के वेस्ट एण्ड थियेटर ने 'बन्दर का पंजा' नामक पट-उत्थानक (कर्टेन रेजर) खेला^३ । जब १६०३ ई० के बाद ही इंग्लैंड में एकांकी का उदय हुआ तो भारतेन्दुकाल में एकांकी कहाँ से आ गया । अतः कुछ विद्वान् प्रसाद जी के 'एक घूँट' को हिन्दी का प्रथम एकांकी मानते हैं तो कुछ और आगे घसीट कर एकांकी का आरम्भ डा० रामकुमार वर्मा से स्वीकार करते हैं ।

भारतेन्दुकालीन एकांकी नाटकों को एकांकी न मानने वाले आलोचक तीन कारण देते हैं—(१) एकांकी शुद्ध पश्चिम की देन है जो वहाँ १६०३ ई० के बाद आरम्भ हुआ । (२) भारतेन्दुकालीन एकांकी संस्कृत रूपक उप-रूपकों के भेद मात्र हैं और (३) उनमें एकांकियों के लक्षण नहीं मिलते । साहित्य में विकास क्रम लगा रहता है, हाँ मोड़ अवश्य आते हैं । भारतेन्दु-कालीन नाटक ब्रजभाषा से जुड़े हैं जिनमें मोड़ नया आया । हिन्दी का आलोचना साहित्य भी भारतेन्दुकाल से ग्रथित है, जिसमें मोड़ आए हैं और रूप बदला है । इसी प्रकार नाटक के क्षेत्र में हुआ है । लघु रूपक या एकांकी

१. डा० सत्येन्द्र कृत हिन्दी एकांकी, प्रो० महेन्द्र कृत हिन्दी एकांकी और एकांकीकार, डा० प्रेमनारायण शुक्ल कृत भारतेन्दु की नाट्यकला ।

२. डा० एस० पी० खत्री कृत नाटक की परख, पृष्ठ २५३, प्रो० प्रकाशचन्द्र कृत 'छः एकांकी' की भूमिका पृ० ४, पं० उदयशंकर भट्ट कृत जीवन और संघर्ष की भूमिका पृ० १२, श्री शिवनाथ कृत हिन्दी नाटकों का विकास प्र० सं० पृ० ८६ । श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ कृत हमारी नाट्य-साधना, प्र० सं०, पृ० १३६ ।

३. हिन्दी एकांकी (सम्पादक श्री बच्चन सिंह जी) की भूमिका पृ० 'ख' ।

का आरंभ तो भारतेन्दु काल में अवश्य हो गया था। हाँ उनका और अधिक पश्चिमीकरण, प्रसाद जी एवं डा० रामकुमार वर्मा से माना जा सकता है। यदि ऊपर दिये तर्कों पर विचार करें तो यह प्रबन्ध उसका उत्तर है। पीछे हम दिखा चुके हैं कि भारतेन्दुकाल ने पश्चिम का बहुत प्रभाव ग्रहण किया है। इसी प्रभाव-वश उन्होंने लघु रूपक लिखे जिनमें से कुछ को एकांकी कहा जा सकता है। भले ही पश्चिम में १६०३ के बाद एकांकी आया हो किन्तु भारत में उनका उदय भारतेन्दुकाल में हो गया था। प्रमाण—

(१) भारतेन्दुकाल के एकांकियों को संस्कृत नाट्यशास्त्र का रूपक-उप-रूपक मात्र कह दिया जाता है। इसी अध्याय में आगे हमने भारत दुर्दशा की चर्चा विस्तार से की है और सिद्ध किया है कि यह नाट्यरासक नहीं है। अंधेर नगरी भी नाट्यशास्त्र की परिभाषा का ग्रहण नहीं है। इसके विपरीत नीलदेवी पर यदि ध्यान दे तो वह शुद्ध पश्चिमी शैली का नाटक है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक नाटककार हैं जिन्होंने छोटे-छोटे नाटक लिखे हैं। वे नाटक प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र को दृष्टि में रखकर नहीं लिखे गए हैं। उदाहरण के लिए बाबू राधाकृष्ण दास कृत दुःखिनी बाला रूपक १४ पृष्ठ या ६ दृश्यों का एक लघु रूपक है जिसका अन्त दुःखान्त है। सती चन्द्रावली भी २७ पृष्ठों या ७ दृश्यों का दुःखान्त लघु रूपक है। विवाहिता विलाप में तीन हाँ भौंकियाँ हैं और आदर्शवादी धारा का विरोधी नाटक है। बालविधवा संताप नाटक तीन दृश्यों का नाटक है, जो प्राचीन नाट्यशास्त्र की किमी कोटि में नहीं आता। दो दृश्यों का नाटक एक एक के तीन तीन भला प्राचीन नाट्यशास्त्र को पास भी कब फटकने देगा जबकि वह कृष्णक समस्या और दुःख-पूर्ण अंत सँभाले है। तब यह कह देना कि भारतेन्दु काल में प्राचीन रूपक-उपरूपकों के भेदों की दृष्टि में रखकर ये लघुरूपक लिखे गए, सत्य नहीं है। वरन् यह कहना सत्य के अधिक निकट है कि अनेक लघु रूपकों और एकांकियों में नाटककारों की दृष्टि पश्चिम की ओर रही है।

आलोचकों ने एक और तुला उग्रस्थित की जिससे भारतेन्दु काल के ये नाटक एकांकी न माने जा सकें। आलोचकों ने १५ दृश्यों वाले अमरसिंह राठौर को भी एकांकी कहा और दूसरी ओर एक दृश्य वाले ग्राम पाठशाला एवं निकृष्ट नौकरी को भी।^१ जिसमें कथानक शृंखलित नहीं और वर्णन-विस्तार भी है, ऐसे कलि कौतुक रूपक को भी एकांकी बताया तो साथ ही धर्मालाप को भी जो केवल धर्म के ऊपर शास्त्रार्थ कहा जा सकता है^२।

१. प्रो० महेन्द्र कृत एकांकी और एकांकीकार, पृ० ४६ एवं ४७।

२. डा० सत्येन्द्र कृत हिन्दी एकांकी, पृ० २० व २१।

प्राचीन नाट्य शास्त्र का बहुतांश में अनुकरण करने वाले दमयन्ती स्वयंवर को भी एकांकी कहा और शुद्ध संस्कृत के अनुवाद धनंजय विजय को भी^१। तब भला कैसे भारतेन्दुकालीन एकांकियों के विषय में कोई निश्चित धारणा बन सकती है।

भारतेन्दुकाल में छोटे नाटक बहुतायत से लिखे गए। इनमें से अधिकांश लघुरूपक हैं। एकांकी भी हैं, पर बहुत थोड़े। लघुरूपक वे सब नाटक हैं जो छोटे हैं, और युग की माँग पर लिखे गए। भारतेन्दु जी के भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी, नीलदेवी लघु रूपक हैं। अन्य लघु रूपकों में— ६ दृश्यों वाला सीताहरण, ४ दृश्यों वाला पं० अश्विकादत्त व्यास कृत भारत सौभाग्य, सती चन्द्रावली, नागरी विलाप, विद्याविनोद इत्यादि का नाम लिया जा सकता है। सामाजिक और राजनैतिक छोटे नाटक लघु रूपक ही हैं। प्रहसन भी लघुरूपक हैं।

एकांकी

भारतेन्दुकाल में कुछ एकांकी भी लिखे गए हैं। एकांकी से हमारा अभिप्राय है ऐसे लघु रूपक जो पश्चिमी एकांकिया की शैली के अनुरूप माने जा सकते हैं। वैसे ता एकांकी के लक्षण विद्वानों ने अपनी दृष्टि के अनुसार बताए हैं। परसोवल वाइल्ड^२ ऐक्य और संक्षेप ही एकांकी में देखना चाहते हैं तो टाल्मोट, संघर्ष^३ और विनोद के आधार पर एकांकी को कसना चाहते हैं। यदि सभी विद्वानों के दिये लक्षण एकत्र किए जायें तो एक बड़ी सूची प्रस्तुत हो जाती है। कुछ लक्षण प्रमुख हैं जिनके आधार पर एकांकियों को सामान्यतया कसा जाता है। इन्हीं के आधार पर हम भारतेन्दुकालीन एकांकियों की परीक्षा करेंगे।

(१) स्थान, समय, और कार्य के ऐक्य के विषय में मतभेद है। कुछ तीनों ऐक्य को एकांकी में देखना चाहते हैं। कुछ कहते हैं कि तीनों ऐक्य की आवश्यकता नहीं, एक या दो भी हो सकते हैं। सामान्य मत है कि कार्य ऐक्य अवश्य होना चाहिए।

(२) कथा का एक लक्ष्य हो जिसकी ओर कथा द्रुत गति से दौड़े।

१. प्रो० महेन्द्र कृत एकांकी और एकांकीकार, पृ० ४८।

२. (क) एकांकी कला, ले० रामयतनसिंह, प्र० सं० पृ० ६५ (ख) हिन्दी एकांकी और एकांकीकार, ले० रामचरण महेन्द्र, पृ० ८५।

३. समीक्षा शास्त्र, ले० सीताराम चतुर्वेदी, प्र० सं० पृ० ६०८।

(३) एक ही कथा का रहना अच्छा है। अनावश्यक प्रसंग न रहें। संचेप की ओर ध्यान रहे।

(४) कथा तुरन्त आरम्भ हो जाय और विकास के बाद चरमसीमा पर अन्त हो जाय।

(५) संघर्ष प्रधान एकांकी उत्तम है।

(६) पात्र अधिक न हों। तीन चार पात्र हों जिनके चरित्रों की ओर ध्यान दिया जाय।

इस आधार पर यदि कुछ लघु रूपकों की परीक्षा करें तो वे खरे एकांकी उतरते हैं। ये एकांकी भी दो प्रकार के हैं (१) उक्त लक्षणों वाले शुद्ध पश्चिमी शैली के एकांकी और (२) प्रस्तावना के साथ लिखे एकांकी।

शुद्ध एकांकी—पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत एक एक के तीन तीन (१८७६) एक प्रस्तावना रहित एकांकी है। कथा का आरम्भ तुरन्त हो जाता है। किसान साहूकार से और ऋण लेने आता है। साहूकार पिछला दिया रुपया एव गेहूँ को चक्रवृद्धि व्याज सहित जोड़ कर रक्का लिखा लेता है। इसी अंक के दूसरे दृश्य में कुछ सहायक समझाते हैं कि देने से मुकर जाओ। धर्मभीरु किसान नहीं मानता। दूसरे अंक में नालिश हुई और सब घरबार नीलाम हो गया। चरमसीमा पर नाटक का अन्त है। साहूकार और दरिद्र कृपक का संघर्ष है। कथा एक है, एक लक्ष्य की ओर गतिमान है।

किन्तु भारतेन्दु काल के वास्तविक एकांकी हैं काशीनाथ खत्री के दो लघु रूपक सिंधु देश की राजकुमारियों और गुन्नौर की रानी (१८८४)। इनमें भी गुन्नौर की रानी पश्चिमी शैली का सुन्दर एकांकी है। इसमें एक ही कथा है जो लक्ष्य की ओर गतिमान है। लक्ष्य है—खाँ, गुन्नौर की रानी को पाना चाहता है। नाटक आरम्भ से अन्त तक संघर्षमय है, वह तुरन्त आरम्भ हो जाता है। इसमें केवल छोटे छोटे दो अंक (या दृश्य) हैं। प्रथम में अमीर गुन्नौर की रानी पर संदेशा भेजता है कि मेरी बन जाओ। यह आरम्भ है।

विकास—रानी पोशाक भेजती है। खाँ पोशाक पहिन रनवास में जाता है।

अन्त—मर जाता है और रानी नदी में कूद पड़ती है। नाटक दुखान्त है। कार्य-ऐक्य तो है ही, स्थान और समय-ऐक्य भी माने जा सकते हैं। दोनों दृश्यों में से पहिला गढ़ के बाहर का है, दूसरा गढ़ के अन्दर का। दोनों दृश्यों में दो दिन का समय लगा है। चरित्र चित्रण हुआ है। कहानी में संचेप की प्रवृत्ति है। सबसे बड़ी बात है कि रंग-संकेत आधुनिक रंग

संकेतों के समान विस्तृत हैं।^१ इस प्रकार हिन्दी का सबसे पहिला एकांकी है **गुन्नौर की रानी** जो १८८४ में लिखा गया।

खत्री जी का दूसरा लघु रूपक **सिंधु देश की राजकुमारियाँ** भी एकांकी है। इसमें एक ही कथा है जो लक्ष्य की ओर गतिमान है। आरम्भ तुरन्त होता है, मुहम्मद बिनकासिम ने सिंध को विजय कर लिया है और राजा की दोनों सुन्दर कुमारियों की सुन्दरता पर आसक्त है। यही आरम्भ है।

विकास—राजकुमारियाँ खलीफा के पास बगदाद पहुँचाई जाती हैं। वे खलीफा से झूठ ही कह देती हैं कि हम तो मुहम्मद बिनकासिम की जूठी पत्तल बन गई हैं। खलीफा कासिम की खाल खींचने का हुक्म देता है।

अंत—कासिम की खाल देख देवलदेवी खलीफा को भेद बता देती है, बुरा भला कहती है और सहर्ष फाँसी की ओर जाती है। पात्र चार-पाँच हैं। कार्य-ऐक्य है। हाँ, स्थान एवं समय-ऐक्य नहीं। संघर्ष स्पष्ट है। रंग-संकेत विस्तृत हैं^२। कथा में संक्षेप की प्रवृत्ति है। पात्रों का चरित्र-चित्रण है।

इस प्रकार खत्री जी के ये दोनों लघु रूपक पश्चिमी शैली के एकांकी हैं और काशीनाथ खत्री हिन्दी के प्रथम एकांकीकार हैं।

खत्री जी ने हिन्दी को दो एकांकी और दिये हैं। वे हैं—**ग्राम पाठशाला** और **निकृष्ट नौकरी** (१८८३)। किन्तु ये दोनों पहिले एकांकियों जैसा कलापूर्ण नहीं हैं। दोनों में सूत्रधार वाली प्रस्तावना है। कार्य ऐक्य दोनों में है। **निकृष्ट नौकरी** में संक्षेप प्रवृत्ति **ग्राम पाठशाला** से कम है। दोनों में संघर्ष है। **ग्राम पाठशाला** में शिक्षक अपनी परिस्थितियों से लड़ता है तो **निकृष्ट नौकरी** में भरोसदास अपनी परिस्थितियों से। रंग संकेत विस्तृत आधुनिक शैली के हैं। पात्र चार-पाँच ही हैं। दोनों में नायक के जीवन की एक-एक झलकी चित्रित है। इस प्रकार ये दोनों भी एकांकी कहे जा सकते हैं।

जब १९०३ में इंग्लैंड में एकांकियों का जन्म हुआ तो भारत में पश्चिमी तत्त्वों से पूर्ण एकांकी कहाँ से आ गए, यह प्रश्न स्वभावतः उठता है। निश्चय ही ये पश्चिमी एकांकियों के अनुकरण पर नहीं बने हैं। किन्तु हैं पश्चिमी एकांकी के अनुरूप। इनका निर्माण हिन्दी में स्वतन्त्र रूप से हुआ है और सहसा अपने आप हो गया है। बात यह है कि नाटककारों ने पश्चिमी शैली पर बहुत छोटे नाटक (लघु रूपक) लिखने चाहे। पश्चिमी शैली अपनाने से इनमें संघर्ष, और नायक या नायिका का वध आया। लघु रूपक लिखने की ओर ध्यान था तो संक्षेप आ गया और कथा में बड़ी गति आ गई।

१. आगे अभिनय प्रकरण (अ० ६) में 'रंग संकेत' देखिए।

२. आगे अभिनय प्रकरण (अ० ६) के 'रंगसंकेत' देखिए।

नायक या नायिका पर तो ध्यान केन्द्रित था ही। दीर्घ रंग-संकेत उस काल के नाटकों में अपनाए ही जा रहे थे। भारतेन्दु जी का नीलदेवी नामक गीतिरूपक सामने था। खत्री जी ने उसी शैली पर केवल गद्य में उससे बहुत छोटे नाटक लिखे और इस प्रकार इन एकांकियों का जन्म हो गया। ये एकांकी पश्चिमी एकांकी के अनुकरण पर नहीं लिखे गए हैं। अतः हिन्दी एकांकियों की परम्परा भारतेन्दुकाल से ही आरम्भ मानी जाएगी। जिसमें पहिला मोड़ प्रसाद से आया और दूसरा डा० रामकुमार वर्मा से।

समन्वित शैली—

किन्तु इस काल के नाटककार अधिकांशतः पूर्व या पश्चिम के प्रवाह में नहीं बहे। उन्होंने भारतेन्दु जी के मार्ग-प्रदर्शन एवं नाटक निबंध को स्वीकार किया एवं अपना मार्ग दोनों शैलियों के मिश्रण से बनाया। दुःस्वान्त नाटकों में भी सूत्रधार-नटी वाली प्रस्तावना भारतीय परम्परा की है। रस को भी सामने रखा है और भूमिका या प्रस्तावना में कहा है कि करुण रस का चित्रण होगा। इस काल का अधिकांश नाटक-साहित्य इसी समन्वित शैली का है। इसका सुन्दर उदाहरण भारत दुर्दशा नाटक है।

हिन्दी के अधिकांश आलोचकों ने भारत दुर्दशा को शास्त्रीय 'नाट्य-रासक' मानकर आलोचना की है^१। सभी ने नाट्य रासक के लक्षणों की कसौटी पर कसने के बाद इसमें शास्त्रीय लक्षणों की कमी बतलाई। इतने पर भी शास्त्रीय नाट्यरासक ही माना है। इसका कारण है कि नाटक के मुखपृष्ठ पर इसे 'नाट्यरासक या लास्य रूपक' कहा गया है। लास्य रूपक पर ध्यान न देकर इसे सबने 'नाट्यरासक' ही घोषित किया। किन्तु प्रश्न है, क्या यह नाट्यरासक है? यदि शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर कसें तो भारत दुर्दशा नाट्यरासक नहीं ठहरता है।

नाट्यरासक के लक्षण ये हैं—

(२) एक अंक (२) उदात्त नायक (३) पीठमर्द उपनायक (४) हास्य रस प्रधान (५) शृंगार सहायक (६) नायिका वासकसज्जा (७) मुख एवं निर्वहण संधियाँ अथवा प्रतिमुख को छोड़ कर शेष चारों संधियाँ (८) दसों

१. (क) वाष्णोय कृत आधुनिक हिन्दी साहित्य, द्वि० सं० पृ० २३२।

(ख) डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल कृत भारतेन्दु का नाट्य साहित्य प्र० सं०, पृ० २८५।

(ग) प्रो० रामप्रकाश अग्रवाल द्वारा संपादित 'भारत दुर्दशा' नाटक पृ० ५२।

(घ) डा० सत्यव्रत द्वारा संपादित भारत-दुर्दशा नाटक पृ० ४२।

लास्यांग (६) अनेक ताललय की योजना^१ ।

यदि इन लक्षणों के अनुसार नाटक को परखा जाय तो अंतिम को छोड़ कर और कौन सा लक्षण उसमें मिलता है? भारतेन्दु जी ने भी लगभग ये ही लक्षण नाट्यरासक के माने हैं। वे नाट्यरासक के लक्षण मानते हैं (१) एक अंक (२) नायक उदात्त (३) नायिका वासकसज्जा (४) पीठ मर्द उपनायक (५) अनेक प्रकार के गान नृत्य। भारतेन्दु जी के इन पाँच लक्षणों में से नाटक में केवल अन्तिम लक्षण है। शेष को भी देखा जाय—(१) एक अंक के स्थान पर नाटक में ६ अंक हैं। यदि भारतेन्दु जी अंक के स्थान पर नीलदेवी के समान दृश्य ही लिख देते तो कहने को स्थान तो रह जाता कि एक अंक के ६ दृश्य हैं किन्तु भारतेन्दु जी ने जानबूझ कर 'अंक' नाम दे दिया है। (२) नायक कौन है? निश्चय ही भारत है यद्यपि वह केवल दूसरे दृश्य में ही क्रियाशील रूप में आता है। शेष में भारत कहीं नहीं है। छूठे में सोया पड़ा है। इस दृष्टि से भारत, नाटकीय कथा में सहायक नहीं है और नाटक का नायक होने के योग्य नहीं। किन्तु और कोई पात्र भारतेन्दु जी की दृष्टि में न था जिसके लिए वे नाटक को लिख रहे थे। आधिकारिक कथा का सुफल या कुफल भोगने वाला भारत ही है। अतः उसे नायक कह सकते हैं। भारतेन्दु जी स्वयं लक्षण देते हैं कि नायक 'उदात्त' हो। क्या भारत 'उदात्त' नायक है? महाराज रामचन्द्र और युधिष्ठिर के समान यह उदात्त नायको सा है? वह तो पीड़ित और दुःखित है जिसे अपने बल का भरोसा नहीं है। राजराजेश्वरी की ओर देखता रहता है। दुखी मन को शस्त्रों से नहीं पुस्तकों से बहलाना चाहता है। भारत दुर्देव का शब्द सुन कौपता है और मूर्च्छित हो जाता है। यही भारत छूठे अंक में सोया पड़ा है। सोया ही नहीं, मकर गोंठे पड़ा है और जान बूझ कर सोता है^२। अतः उदात्तता कहाँ है। हाँ, हमारी और भारतेन्दु जी की श्रद्धा और विश्वास के कारण भारत में उदात्तता मानी जा सकती है। वास्तव में भारतेन्दु जी का उद्देश्य भी न था कि वे भारत को उदात्त रूप में दिखलावें क्योंकि वे भारत दुर्दशा को शास्त्रीय नाट्यरासक के रूप में नहीं लिख रहे थे। भारत दुःखी और पीड़ित नायक है। (३) जब नाटक में नायिका ही नहीं है तब वासक-सज्जा नायिका का प्रश्न ही नहीं उठता। (४) उपनायक पीठमर्द होना चाहिये। उपनायक केवल भारत-भाग्य ही माना जा सकता है। अन्य कोई

१. सा० द० ६-२७७ से २७६ तक।

२. भारत भाग्य—सच है जो जान बूझ कर सोता है उसे कौन जगा सकेगा।

पात्र नहीं जो भारत के साथ दिखाई पड़ता हो। हमने पीछे भारत दुर्दशा के ऊपर लिखते हुए^१ भारत भाग्य को नायक का प्रधान सहायक कहा है जो पीठमर्द कहा जा सकता है। यह 'नाट्यरासक' शब्द को दृष्टि में रख कर ही कहना पड़ता है। नहीं तो स्वयं आत्महत्या करने वाला, नायक को क्या सहायता दे सकता है, न उसने कुछ सहायता दी ही है।

तब यह नाट्यरासक कैसे कहा जाय? थोड़ा ध्यानपूर्वक देखने से स्थिति स्पष्ट हो जाती है। न यह नाट्यरासक है और न भारतेन्दु जी ने इसे नाट्यरासक माना ही है। भारतेन्दु जी ने अपने नाटक निबन्ध में रूक-उपरूपक के भेद दे कर उदाहरण में अपने नाटक दिए हैं यदि वे शास्त्रीय लक्षणों से युक्त हैं। उन्होंने भाण के उदाहरण में विषस्यविषमौषधम्, नाटिका के उदाहरण में चंद्रावली और व्यायोग के उदाहरण में धनंजय विजय दिये हैं। किन्तु नाट्यरासक के लक्षण दे कर भारत दुर्दशा का नाम नहीं लिया है। यदि वे इसे शास्त्रीय दृष्टि से उपरूपक का भेद 'नाट्यरासक' मानते तो भारत दुर्दशा का नाम वहाँ अवश्य ही लिख देते।

अब प्रश्न है कि भारतेन्दु जी ने नाटक के मुखपृष्ठ पर 'नाट्यरासक' क्यों लिखा था? वास्तव में वहाँ अकेला नाट्यरासक शब्द नहीं है। इसके साथ लिखा है 'या लास्य रूपक'। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे नाट्यरासक शब्द को प्राचीन शास्त्रीय दृष्टि से प्रयोग में नहीं ला रहे थे। भारत दुर्दशा को नवीन नाट्यरासक कह रहे थे जो लास्य रूपक शब्द से अधिक स्पष्ट है। उनका अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि भारत दुर्दशा 'लास्य रूपक' है जिसे प्राचीन नाम 'नाट्यरासक' दे सकते हैं अथवा जो नाट्यरासक कहा जा सकता है। लास्य रूपक क्या है? लास्य का अर्थ है—नृत्य। मधुर नृत्य को लास्य कहा जाता है^२। भारतेन्दु जी ने भी लास्य का अर्थ 'नाचना' किया है।^३ अतः लास्य रूपक से उनका अभिप्राय है जो नाटक नृत्य प्रधान हो और गीतमय हो। गीतिरूपक और लास्यरूपक में अन्तर यह है कि प्रथम में गीतों की प्रधानता होगी और दूसरे में नृत्य की। यह बात भारतेन्दु जी के दो नाटकों के उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगी। नीलदेवी एक गीतिरूपक है। इसमें गीतों की प्रधानता है, नृत्य की नहीं। नाटककार पात्रों के प्रवेश करते समय यह नहीं कहता है कि अमुक पात्र अमुक नृत्य करता आता है। जहाँ नृत्य का अवसर भी था, वहाँ भी नृत्य नहीं कराया गया है। पहिले दृश्य

१. तृतीय खण्ड अध्याय ४ में राजनैतिक नाटक (इतिहास भाग)।

२. दशरूपक १-१०।

३. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पहिला भाग, पृ० ७१६।

में अप्सराएँ गाती हैं, नाचती नहीं। दूसरे दृश्य में 'शरीफ' अपने साथी मुस्लिम सैनिकों की ओर देखकर गाता है, नाच कर नहीं गाता है। नाटक-कार का संकेत है 'उठकर सबकी तरफ देखकर' गाता है। एक अवसर और बहुत उपयुक्त आया था कि नाटककार दो पात्रों का नृत्य दे देता। चौथे दृश्य में भठियारी और चपरगटू इन्द्रसभा शैली पर अपना परिचय देते हैं—

पिकदानो चपरगटू है बस नाम हमारा ।

यहाँ भी नृत्य का कोई संकेत नहीं है। और तो और, जब महारानी, गायिका बनकर अमीर के दरबार में गई, तो वे नाचीं नहीं। वे अमीर को मोहित कर वश में करने ही के उद्देश्य से गई थीं। गायिका रूप में नाच भी सकती थीं। परन्तु नाटककार गाने के रंग-संकेत देता है, नाचने के नहीं। केवल शराब के नशे में अमीर नाचने लगता है। इससे स्पष्ट है कि नीलदेवी गीतिरूपक में गीतों की प्रधानता है।

उधर भारत दुर्दशा में गीत तो हैं ही, साथ ही नृत्य की ओर बहुत ध्यान दिया गया है। पात्र नृत्य करते करते प्रवेश करते हैं। भारत 'शिल्पिल' अंग प्रवेश करता है। निर्लज्जता 'दुपट्टा गिराती खानगियो के वेश में' आती है। वह गाती नहीं। भारत दुर्दैव नाच नाच कर गाता है। नृत्य बहुत करता है। सत्यानाश फौजदार भी नृत्यमुद्रा के साथ प्रवेश करता है। आलस्य 'जभाई लेता हुआ धीरे धीरे' आता है और 'बुड़बुड़ाता हुआ जाता है।' अंधकार 'स्वलित नृत्य करता' है। इससे लास्यरूपक का भेद गीति-रूपक से स्पष्टतया सिद्ध हो जाता है।

एक और भी प्रबल प्रमाण है कि भारतेन्दु जी भारत दुर्दशा को प्राचीन शास्त्रीय शैली का नाट्यरासक नहीं मानते, वरन् नवीन शैली का 'लास्यरूपक' स्वीकार करते हैं। उन्होंने भारत दुर्दशा को अपने नाटक निबन्ध में प्राचीन शास्त्रीय शैली के रूपक और उपरूपकों में न रखकर नवीन पश्चिमी शैली के भेदों के अन्तर्गत रखा है।^१ अतः स्पष्ट है कि भारतेन्दु जी भारत दुर्दशा को शास्त्रीय दृष्टि का नाटक न मान कर नवीन प्रकार का नाटक मानते हैं। और प्राचीन नाट्यशास्त्र के 'नाट्यरासक' को नवीन शैली के अनुसार बना लेते हैं जिसमें एक-दो लक्षण पुराने हैं और शेष सब नए।

प्रहसन

प्रहसन, भारतेन्दु काल की विशेष देन है। इस काल में बहुत से प्रहसन लिखे गए हैं। इनका नाम तो प्रहसन है किन्तु ये भारतीय नाट्यशास्त्रों

में बताए 'प्रहसन' नहीं हैं। भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने प्रहसन लिखने में भारतीय नाट्यशास्त्र का अनुगमन नहीं किया है। उन्होंने स्वतन्त्र पर समन्वित मार्ग पकड़ा है। भारतेन्दु जी ने स्वयं प्रहसन की परिभाषा देते समय भारतीय नाट्यशास्त्र को बहुत भुला दिया है। संधि, वीथ्यंग और लास्यांगों को तो वे मान्यता देने ही क्यों लगे थे, अंक, विषय एवं पात्रों के सम्बन्ध में भी नवीन दृष्टिकोण दिया है। उन्होंने भारतीय नाट्यशास्त्र की अंक सीमा को तोड़ दिया, पात्रों में वृद्धि की और विषय की दृष्टि से उन्हें नवीन मार्ग दिखलाया। उस काल में बने दो प्रहसनों—जैसा काम वैसा परिणाम और जयनारसिंह की—को उन्होंने नवीन नाटकों में रक्खा है।^१ दूसरी ओर प्राचीन व्यवस्था के अनुसार रस और पात्रों के नियमों के प्रति आस्था भी प्रकट की है।^२ भारतेन्दुकालीन प्रहसन-लेखकों ने भारतेन्दु जी द्वारा प्रदर्शित समन्वित मार्ग को अपनाया। फलतः इस काल के प्रहसन केवल हास्योत्पत्ति के ही लिए नहीं लिखे गए थे वरन् इनके निर्माण के पीछे कुछ उद्देश्य भी निहित था। इन प्रहसनों के द्वारा राजनैतिक दुरवस्थाओं पर प्रहार किया गया है, सामाजिक कुरीतियों की नम्रता प्रदर्शित की गई है और पारिवारिक विषमताओं के व्यंग्यात्मक चित्र खींचे गए हैं।

राजनैतिक प्रहसन—अंधेर नगरी, अति अंधेर नगरी और महा अंधेर नगरी में देश की न्याय-व्यवस्था पर चुटीला व्यंग्य है। मृत्युसभा में नाटककार राज-कर्मचारियों पर व्यंग्य कसता है कि वे नशेबाज हैं अर्थात् मदोन्मत्त हैं। बैल छै टके को और ठगी की चपेट में तत्कालीन ठगी की व्यवस्था की खबर ली है। देसी कुत्ता बिलायती बोल में अपनी भाषा से घृणा करने वालों की अच्छी खबर ली गई है। मुच्छन्दर सभा में एक ओर तो इन्द्रसभा शैली की हँसी उड़ाई गई है तो साथ ही दूसरी ओर राजनैतिक दुरवस्थाओं का चित्र खींचा गया है।

सामाजिक प्रहसन—सामाजिक प्रहसनों की संख्या अधिक है। इनके द्वारा भाड़-फूँक करने वाले ओम्हा^३, गोसाईं और संन्यासियों^४ के हथकंडों को सामने रखा गया है। बालविवाह^५,

१. भारतेन्दु ग्रंथावली पहिला भाग, पृ० ७२०।

२. वही, पृ० ७१८।

३. जयनारसिंह की।

४. तनमनधन गोसाईं जी के अर्पण, आनन्दोद्भव, सब के गुरु गोवर्द्धनदास।

५. कलियुगी विवाह।

मदिरामांस, वेश्यागमन^१ और जुआ खेलने^२ की बुराईयाँ बताई गईं। पर-स्त्री पर कुदृष्टि डालने वालों को दंड दिलाया गया।^३

पारिवारिक प्रहसन—पत्नी के वश में पड़े पति की कैसी दुर्दशा होती है इसी का हास्यात्मक चित्र 'लल्ला बाबू' प्रहसन में खींचा गया है। **शिक्षादान या जैसा काम वैसा परिणाम** एक पारिवारिक मनोवैज्ञानिक प्रहसन है। इसमें बताया गया है कि पुरुष हो या स्त्री दोनों को उपेक्षा से चोट बराबर ही लगती है। कलिकौतुक रूपक में त्रिया-चरित्र दिखाया गया है।

अंक सीमा—भागवत् कह कर दशरूपक-कार और साहित्य-दर्पण-कार प्रहसन की सीमा एक अंक निर्धारित करते हैं। किन्तु इस काल में एक अंक वाले प्रहसन नहीं के बराबर हैं। दो अंक वाले प्रहसन कई हैं।^४ इनमें भी अंक पुनः दृश्यों में विभाजित हैं। चार, पाँच, और छः अंकों वाले प्रहसन बहुत लिखे गए^५।

पात्र—भारतीय नाट्यशास्त्र ने नायकों में 'राजा' का नाम नहीं लिया है। भारतेन्दु जी ने हास्य के माध्यम में राजा को भी सम्मिलित कर दिया है।^६ उनके **अंधेर नगरी** का नायक राजा ही है जिसकी न्याय-व्यवस्था का हास्यात्मक चित्र खींचा गया है। वैदिकी हिंसा, अति अंधेर नगरी, महा अंधेर नगरी में भी इसी प्रकार राजा, हास्य का माध्यम बनाया गया है। अन्य पात्र जिनके व्यंग्यात्मक चित्र उतारे गए हैं—ओम्ना, ज्योतिषी, गोसाईं, पुरोहित, सन्यासी, मदिरा-मांससेवी और वेश्यागामी हैं।

रस—प्रहसन में हास्यरस प्रधान होता है। प्रहसन वही माना जाएगा जिसमें आरम्भ से अंत तक हास्य या व्यंग्य की प्रधानता हो^७। हास्य की उत्पत्ति इन प्रहसनो में चार प्रकार से की गई है (१) शब्द से (२) वेश-भूषा से (३) क्रिया से और (४) परिस्थिति से।

शब्द हास्य—शब्द हास्य के अच्छे और बुरे दोनों उदाहरण मिलते

१. कलिकौतुक रूपक, रत्नावंधन, वेश्याविलास, आनन्दोद्भव।

२. सैकड़े में दस दस, दिवारी के ज्वारी।

३. चौपट चपेट।

४. जयनारसिंह की, बूढ़े मुँह मुहासे, वेश्या विलास, बैल छै टके को।

५. क्रमशः वैदिकी हिंसा, शिक्षादान और अंधेर नगरी।

६. भारतेन्दु ग्रंथावली, पहिला भाग, पृ० ७१८।

७. इसीलिए एक-एक के तीन-तीन, भारत आरत (खड्गबहादुर मल्ल), वेश्या नाटक, प्रहसन नहीं हैं जिनको हिंदी के नाटक-इतिहासों में प्रहसन मान लिया गया है।

हैं। जब पात्र गाली देकर या अश्लील शब्द के प्रयोग से हास्योत्पादन का प्रयास करता है तो यह अच्छा हास्य नहीं कहा जाता। यह भौंड़पन ही है। *वेश्याविलास* में वेश्या बलिराम को गाली देती है। बैल छै टके को प्रहसन में वेश्या 'चूतिया, हिजड़ा, वरचोद' शब्दों का प्रयोग करती है। शब्द हास्य का सुन्दर उदाहरण *शिक्षादान* में है जब नायिका अपनी बूढ़ी नाइन को मनुष्य बना कर प्रेम संभाषण पढ़ाती है। *अन्धेर नगरी* में शब्द हास्य के कई सुन्दर उदाहरण हैं। 'पान खाओ' इत्यादि शब्दों के द्वारा हास्य उत्पन्न कराया गया है। *आनन्दोद्भव* में सिपाही आशिक से कहता है कि वेश्या से सन्यासी जी को 'एक मुख पर दिलाना।' सन्यासी ने १० में एक बोसा मोंगा था, सिपाही का अर्थ है 'जूता'। शब्द हास्य का दूसरा रूप ऊटपटांग उच्चारण या एक ही शब्द को बार-बार कहने (तकिया कलाम) में दिखलाई देता है। *महा अंधेर नगरी* में मंत्र पढ़ा जाता है 'कोटश्चते बूटश्चते चूटश्चते घड़ीश्चते छड़ीश्चते' (दृश्य ६)। *मृत्युसभा* में ज्वर हकला कर बोलता है और दमा बीच-बीच में खोंसता जाता है। *लल्ला बाबू* में लल्ला बीच-बीच में 'शूअर' कहता है।

वेश हास्य—*लल्ला बाबू* में वेश हास्य का सुन्दर उदाहरण है। लाला जी, पत्नी महोदया की आज्ञा से बच्चे की हठ पूरी करने के लिए बंदर बनते हैं। वे बंदर का मुखौटा लगाते हैं, सटक की नली पीछे धोती में खोंसते हैं और कमर में रस्सी बँधवाते हैं। बूढ़े मुँह मुहासे में बूढ़ा खुसट सेठ, मौला की बीबी से मिलने के लिए जवानों जैसा वेश बनाता है, अंतर लगाता है।

क्रिया हास्य—एक व्यक्ति जब हास्योत्पादक क्रिया करता है तो वह क्रिया हास्य है। *लल्ला बाबू* में सेठ जी बंदर की भाँति उछल-कूद करते हैं। *आनन्दोद्भव* में सन्यासी वेश्या से बोसा मोंगता है। बूढ़े मुँह मुहासे में बूढ़े लाला गाँव में बैठे युवती नंदो को आँखें फाड़-फाड़ कर देखते हैं।

परिस्थिति हास्य—परिस्थिति हास्य बहुत अच्छा होता है। क्रिया हास्य से इसमें अन्तर यह है कि क्रिया हास्य में एक व्यक्ति कुछ क्रिया करके हँसाता है। परिस्थिति हास्य में कई पात्रों का सहयोग होता है और ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाती है कि दर्शक हँसते हैं। चौपट चपेट में इसका सुन्दर उदाहरण है जब नायिका कई 'आशिकजारों' को बुला कर उनकी मरम्मत करती है। *शिक्षादान* भी परिस्थिति-जन्य हास्य का उत्तम उदाहरण है। *अन्धेर नगरी* में भी गुरु और शिष्य मिल कर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करते हैं कि राजा-मंत्री सब फँस जाते हैं। बूढ़े मुँह मुहासे में भी बूढ़े रसिक को शिक्षा देने की व्यवस्था की जाती है।

गद्य-पद्य-मिश्रित नाटक

संस्कृत नाटक गद्य और पद्य से भरे हैं। भारतेन्दु काल में पहिली बार केवल गद्यात्मक नाटक लिखे गए। ऐसे नाटक हैं जिनमें केवल गद्य ही गद्य है जैसे सिंधु देश की राजकुमारियाँ, गुन्नौर की रानी, लवजी का स्वप्न, एक एक के तीन तीन, सती चरित्र नाटक, गोसंकट नाटक, गंगोत्री। केवल पद्यात्मक नाटक इस काल में प्रचार नहीं पा सके। पा भी कैसे सकते थे? भारतेन्दु जी तो ब्रजभाषा के नाटकों को पद्यात्मक होने से नाटक ही न मानते थे। हाँ, गद्य-पद्य-मय मिश्रित नाटकों का अधिक प्रचलन रहा।

संस्कृत में भी नाटक क्षेत्र में पद्य का विशेष स्थान रहा था। पूर्व-भारतेन्दु काल में तो नाटक केवल पद्यात्मक थे। इस परम्परा के साथ जुड़े होने पर भला पद्य से पीछा कैसे छूट सकता था। इसीलिये हम इस काल के नाटकों में पद्य को प्रमुख स्थान पाता हुआ देखते हैं। भारतवर्ष में भारतेन्दु काल तक कभी किसी ने पद्य-प्रयोग पर अगुली नहीं उठाई। इसके विपरीत अधिकांश नाटककार पद्यों के प्रयोग को नाटक में आवश्यक समझते थे। जो नाटककार स्वयं कवि न थे वे दूसरों की कविता को अपने नाटकों में स्थान दे रहे थे। रामलीला नाटक और मदन मंजरी इसके उदाहरण हैं।

प्रधानता, मिश्रित नाटकों की ही है जिनमें गद्य-पद्य और गीत धुले मिले हैं।

गीत योजना—

‘नाटकों में संगीत की व्यवस्था सभी देशों में कथोपकथन के बीच में होती है’^१। अरस्तू ने नाटक के छै तत्त्वों में से इतिवृत्त और संगीत को सबसे अधिक प्रमुखता दी है^२। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में गीत और संगीत का विस्तार से विवेचन किया है^३। अन्य भाषाओं से हिन्दी की अपनी अलग विशेषता है। इसमें ‘तुकान्त’ छन्द योजना द्वारा कविता भंडार भरा गया है। तुकान्त कविता का प्रयोग हिन्दी की अपनी विशेषता है। तुकान्त या अन्त्यानु-प्रास से छन्दों में गेयता अधिक आ जाती है। फलतः हिन्दी के मुख्य छन्द—

१. पं० सद्गुरुशरण अवस्थी (मँझली रानी नाटक की भूमिका पृ० १२)।

२. अभिनव नाट्यशास्त्र (पं० सीताराम चतुर्वेदी) प्र० सं० पृ० ४७८।

३. नाट्यशास्त्र (चौखंभा प्रकाशन) अध्याय २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३ जिनमें से गीत-योजना के अध्याय हैं २८, २९, ३०, ३१, ३२।

दोहा, सोरठा, चौपई, चौपाई, गीतिका, हरिगीतिका, कुंडलिया, छप्पय, रोला, बरवै, उल्लाला, वीर जैसे छन्द गाये जाते हैं। कवित्त और सवैये में भी स्वर-लहरी की व्यवस्था से गीतात्मकता पाई गई है। अतः हिन्दी के छन्द और गीतो के बीच में बहुत बड़ी खाई नहीं है। वे अत्यन्त निकट हैं। हिन्दी के तत्कालीन अधिकांश गीतों में भी एक छन्द योजना है।

नाटकीय हिन्दी गीतों में प्रथम पंक्ति या प्रथम चरण को छोड़ कर शेष चरणों की मात्राएँ समान हैं। अन्त में तुक एवं गुरु लघु की निश्चित व्यवस्था है। उदाहरण—

चंद्रावली से—

(१) 'सखी ये नैना बहुत बुरे' में १५ मात्राएँ हैं। शेष ५ चरणों में से प्रत्येक में २६ मात्राएँ हैं, अन्त में लग (१५) है।

(२) 'नैना वह छवि नाहिन भूले' वाले पद के प्रथम चरण में १६ मात्राएँ हैं। शेष में से प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ हैं। अन्त में २ गुरु (५५) हैं।

(३) 'तू काहे चितवति चकित मृगी सी' वाले पद के प्रथम चरण में १७ मात्राएँ हैं और शेष प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ हैं। अन्त में ल ग ग (१५५) है।

(४) 'आओ मेरे झूठन के सिरताज' के पहले पद में १६ मात्राएँ हैं। शेष प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ हैं। अन्त में ग ल (५१) है।

अभिमन्यु नाटक से—

बसन्त राजा आवै (७-६) वाले गीत में ६ चरण हैं। प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ हैं। अन्त में 'ग ग' (५५) है।

वारांगना रहस्य से—

झलक दिखाय हाय लीनो मन (१-२) वाले पद के पाँच चरणों में से प्रत्येक में ३२ (१६-१६) मात्राएँ हैं। अन्त में 'ल ल' (११) है।

पुरुविक्रम नाटक से—

'सब मिल भारत को यश गावो' (१-१) वाले पद के प्रथम चरण में १६ मात्राएँ हैं, और शेष २० चरणों में से प्रत्येक में २८ मात्राएँ हैं। चरणान्त में ग ग (५५) है।

अंजना सुंदरी से—

(१) तू तो बहुत रही बाबुल के (गोरी) चल तोरे पिया ने बुलाई (२-१) इस पंक्ति में १६ + १६ मात्राएँ हैं। शेष सब चरणों में से प्रत्येक में २८ मात्राएँ हैं। अन्त में 'ग ग' (५५) है।

(२) कर ले शृंगार चतुर अलबेली (२-१) वाले पद के प्रत्येक चरण में ३५ मात्राएँ हैं। अन्त में 'ग ग' (५५) है।

महाराणा प्रतापसिंह से—

क्यों तू भरि गुमान इतरात (३-१) में १५ मात्राएँ हैं। शेष प्रत्येक चरण में २७ मात्राएँ हैं। अन्त में 'ग ल' (५१) है।

इन गीतों की योजना निम्न उपयोग के लिये की गई है—

(१) मनोरंजन^१ (२) बधाई-मंगल गान^२ (३) ऋतु एवं काल वर्णन^३ (४) सुख दुख का भाव प्रकाशन^४। (५) उपदेश^५ (६) विचार एवं वर्णन।^६

औपन्यासिक शैली के नाटक

हम पीछे पूर्व भारतेन्दुकाल में दिखा आए हैं कि ब्रजभाषा नाटकों में कवि रंगमंच पर आकर स्वयं कथा कह देता है और वर्णन कर देता है। यह वर्णनात्मक, काव्यात्मक या औपन्यासिक शैली है। भारतेन्दुकाल में भी यह औपन्यासिक शैली अपनाई गई और नाटक लिखे गए। ये चार प्रकार के नाटक हैं—(१) ब्रजभाषा नाटकों की नाई नाटककार स्वयं कथा कहता है और वर्णन देता है। उदाहरण—

(क) सर्राफी नाटक में नाटककार बारात का स्वयं वर्णन देता है एवं कथा भी कहता है।

१. भारत डिमडिमा नाटक के अंक २ में 'मै सुगलों का सरदार'। हरिश्चन्द्र नाटक (कृत) रामभजन स्वतंत्र के ३-१ में 'सौ मन पेड़ा सौ मन बर्फी—।'

२. उषाहरण १-१, ४-३। मोरध्वज अंक ५।

३. अभिमन्यु ७-६-१२३, ७-७-१२५, ६-३-१५६। उषाहरण १-३। संयोगिता स्वयंवर २-१-४। वारागना रहस्य १-१। सत्यहरिश्चन्द्र में १ले अंक का नेपथ्य गान।

४. अभिमन्यु १०-८-१६०, १०-५-१८१, मोरध्वज अंक ५ में कुसुमावती का विलाप। लावण्यवती सुदर्शन १-२-१४, १-२-१५, २-४-८१, ६-१-१४४। विवाहिता विलाप ३-२०, ४-२१, ५-२३, ५-४२, ४७-४६। चन्द्रावली अंक २, ३, ४। संयोगिता स्वयंवर प्रस्तावना २, २-२।

५. अभिमन्यु ७-५-१२०, प्रह्लाद चरित्र ३-२।

६. मोरध्वज अंक २। सं० स्व० ३-२-६५, ३-२-६८, ४-१-७२, ४-१-७६। ला० सु० ४-३-११७-१८।

(ख) विश्वामित्र नाटक में कई दृश्य ऐसे हैं जिनमें संवाद है ही नहीं, नाटककार स्वयं वर्णन दे देता है जैसे दूसरे भाग के दूसरे अंक का पाँचवाँ दृश्य और भाग तीन के दूसरे अंक का दूसरा दृश्य ।

(ग) रामलीला विजय नाटक डायरी रूप में लिखा औपन्यासिक शैली का नाटक है । लेखक स्वयं प्रतिदिन की घटी घटनाओं को क्रमशः कहता जाता है ।

(घ) गंगोत्री नाटक के अन्त में भी नाटककार स्वयं कथा देने लगता है । जैसे 'गंगोत्री ने समस्त आभूषणों को एक-एक पहन हाथ से दर्पण उठाया, फिर कुछ सोच कर रख दिया' इत्यादि । कथा कहता कहता नाटककार घटनाओं की आलोचना भी करता जाता है कि 'हाय ! किस कामना ने इस भोली भाली मूरत को बेसुधि मार डाला है । हाय किसके स्नेह ने आज दिन उसके कोमल हृदय में विष का काम दिया है । (गंगोत्री ५-१७) ।

(२) औपन्यासिक शैली का दूसरा रूप वह है जहाँ नाटककार रंग सकेतो द्वारा कथा को कहता है । वह रंग-सकेतों को 'ब्रैक्टों' में रखता है और आधुनिक नाटकों की भाँति वर्णन ही विस्तार से नहीं देता वरन् कथा भी कहता है ।^१ यह रूप उतना नहीं अखरता जितना कि पहिला रूप । हाँ, जब नाटककार बीच-बीच में अपनी सम्मति भी देने लगता है तो वह उपन्यासकार बन जाता है । उदाहरण—माधवानल कामकंदला में नाटककार ब्रैक्टों में रंग-सकेतो के बहाने युद्ध-वर्णन देता है (६-१) । कथा कहते-कहते वह सम्मति भी देता है (यह बात सुनते ही कामकंदला हकी बकी सी हो धरणी पर पछाड़ खाय हाय के करते ही मर गई, सच्ची प्रीति इसी का नाम है) ।

(३) औपन्यासिक शैली का तीसरा रूप उन नाटकों में मिलता है जहाँ नाटककार स्वयं तो मंच पर नहीं आता और न लम्बे रंग सकेतो में कथा कहता है परन्तु नाटक के दृश्य शीघ्रता से बदलता है । संवाद तो बराबर होता है किन्तु दृश्य एक-एक पृष्ठ पर कई-कई हो जाते हैं । नाटककार क्रम-पूर्वक घटनाओं को संवाद रूप में रखता जाता है, छोटी बड़ी सभी घटनाएँ संवाद शैली से प्रकट करता है । एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाएगा । विद्याविनायकी सुखवैधनी की छठी भाँकी में विवाह का दृश्य दिया गया है—

ज्ञानशंकर—नन्दकुमार जी बारात आ गई चलिये दरवाजे पर द्वार-पूजा करनी है ।

नन्दकुमार—सेवा जी को अब कह दीजिये कि खाने का इन्तिजाम कर रखें ताकि समधियों की बिल्फौर बिठा दिया जाय

लग्न जल्दी का है ताकि फरागत जल्दी हो जाय ।

सेवा जी—अब आप बाहर जायें मैंने सब इन्तिजाम कर रक्खा है ।

नन्दकुमार—ज्ञानशंकर जी समधियों को, बरातियों को खाने को कहिये ताकि जल्दी फरागत हो जाय ।

ज्ञानशंकर—नन्दकुमार जी आप जाइये लग्न का बन्दोबस्त कीजिये मैं सबों को खाने पर बैठाता हूँ ।

‘खाने से फरागत की ।’

सेवा जी—ज्ञानशंकर जी खाने से तो सब को फरागत हो गई अब आप हुक्के पान का बन्दोबस्त कीजिये मैं आरायश रखवाने जाता हूँ ताकि रात को लुट न जाय ।

गुरु धर्मरूप—ज्ञानशंकर जी नन्दकुमार जी को जल्द भेज दीजिये लग्न का वक्त आ गया है अब देर नहीं है ।

ज्ञानशंकर—नन्दकुमार जी आप लग्न पर जायें आपकी पुकार है ।

‘लग्न से फरागत हुई ।’

नन्दकुमार जी—धर्मरूप जी अब तो लग्न से भी फरागत हो गई रात अब बहुत थोड़ी रह गई मैं बहुत थक गया हूँ अगर आप आज्ञा दे तो चाहता हूँ कि थोड़ी देर जरा दम ले लूँ—महाराज सुबह से इस वक्त तक काम करते-करते होश अब बाका नहीं है । सच कहते हैं कि लड़की की शादी करना एक मुहिम को सर करना है ।

गुरु धर्मरूप—अच्छा महाराज आप जरा सो रहें अब सुबह को आपकी वेगू के वक्त जरूरत होगी ।

(४) चौथे प्रकार की शैली में सूत्रधार, नट और विदूषक में से एक या दो सदा रंगमंच पर रहते हैं । सूत्रधार पात्र परिचय देता है, अपनी सम्मति देता है और आवश्यकता पड़ने पर विदूषक से मंच पर की सामग्री हटवा देता है । यह रासलीला और रामलीला शैली है । भवदेव कृत सती सुलोचना और अण्णा जी इनामदार कृत गोपीचन्द ऐसे ही नाटक हैं । गोपीचन्द में सूत्रधार के स्थान पर ‘साकी’ है ।

अध्याय ७

देशकाल

देशकाल से अभिप्राय है देश और काल का चित्रण जिसके अन्तर्गत देश और काल सम्बन्धी विचार भी सम्मिलित हैं। देश के अन्तर्गत पर्वत, नगर, वन, स्थान इत्यादि का चित्रण होता है। इसी प्रकार काल के अन्तर्गत दो प्रकार का चित्रण किया जाता है—

(१) काल संबंधी स्थायी प्रभाव डालने वाला चित्रण जैसे प्रातः, सायं, ऋतु का और

(२) काल संबंधी भूत, वर्तमान और भविष्य का चित्रण।

काल सम्बन्धी विचार भी इसी में सम्मिलित हैं। संस्कृत नाटको में प्रकृति, नगर, वन का चित्रण तो बहुत मिलता है किन्तु तत्कालीन चित्रण कम मिलते हैं। संस्कृत नाटककार ने अपने समय का चित्रण अधिक नहीं दिया है। मृच्छकटिक में अवश्य तत्कालीन चित्रण प्रचुरता से हैं। नहीं तो संस्कृत नाटककार अपने समाज, जाति, वर्ग, देश, प्रान्त इत्यादि के प्रति अधिक ध्यान नहीं देता था। संस्कृत की अपेक्षा पश्चिमी नाटकों में देशकाल चित्रण को अधिक स्थान मिला है।

हमारे आलोच्य काल के नाटकों की एक यह भी बड़ी भारी विशेषता है कि इनमें इनके लेखक अपने युग के प्रति बड़े सजग दिखाई पड़ते हैं। इन नाटकों में देशकाल संबंधी अमूल्य और विस्तृत कोष है जिसमें विविधता, प्रचुरता, प्रौढ़ता और गंभीरता है। वास्तव में भारतेन्दुकालीन नाटकों की एक विशेष देन यह भी है कि ये देशकाल संबंधी अतुल संपत्ति दान करते हैं। इन नाटकों के आधार पर तत्कालीन चित्रों से भरी स्थूलकाय पुस्तक बन सकती है, इतनी सामग्री है यहाँ।

यह काल ही ऐसा था कि नाटककारों का ध्यान बरबस समाज, राष्ट्र, जाति, धर्म और भाषा की ओर गया। यह नवजागरण का युग था। पुरानी शृंखलाएँ एक ओर दृढ़ता से बाँधने को कमर कस रही थीं तो दूसरी ओर उन शृंखलाओं को तोड़ने की कुलबुलाहट उत्पन्न हो गई थी। देश में नव विचार अंकुरित हो रहे थे। देश की राज-नैतिक दशा में कभी गर्मी आ जाती थी कभी ठंडक। दुर्भिक्ष, महामारी, टैक्स, धार्मिक उत्थान, नवशिक्षा, एवं नव सम्प्रदाय, सभी अपना अपना बल दिखा रहे थे। फलतः समाज और राष्ट्र की ओर यदि इन नाटककारों

का ध्यान न जाता और वे देशकाल संबंधी इतने प्रचुर और विविध चित्र न देते तो उनका इतना महत्त्व और मूल्य भी न रहता ।

प्रकृति चित्रण

आधुनिक काल को छोड़कर हिन्दी काव्य ने प्रकृति की ओर से आँखें मूँद ली थीं, भले ही तुलसी, सेनापति जैसे चार-पाँच कवियों ने उसकी ओर दो चार बार आँख भरकर देखा हो । रीतिकालीन कवियों ने तो प्रकृति के पुष्प-पौधे स्त्री के अंगों में ही छिपे देखे । और तो और भारतेन्दु-कालीन कविता में भी प्रकृति अपना यौवन न भौंक पाई । भारतेन्दु जी स्वयं प्रकृति के वास्तविक दर्शन न कर सके थे । उनकी दृष्टि नागरिक थी जिसके सामने ग्राम्या प्रकृति अपना वास्तविक सौन्दर्य न ठहरा सकी । भारतेन्दु जी के सहयोगी कवि भी उनके पूरे शिष्य थे । फलतः कविता के क्षेत्र में प्रकृति अपना कोमल कुसुम सा पैर न टिका सकी । कुछ ने प्रकृति को देखा भी तो पहाड़ पर पत्थर फोड़ते, एकान्त में ऊँघते या उजड़े ग्राम में छिपे पाया । छायावादी कवियों से पूर्व कविता में प्रकृति का सम्यक् सौन्दर्य नहीं निखर पाया है ।

किन्तु नाटक जगत में दशा कुछ इसके विपरीत है । संस्कृत की परम्परा को ब्रजभाषा नाटकों ने निवाहा और प्रकृति-चित्रण की ओर पर्याप्त ध्यान दिया । उसी परम्परा में भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने प्रकृति चित्रण को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया और प्रकृति को अनेक रूपों में चित्रित किया है ।

(१) प्रकृति का आलंबन रूप में चित्रण

इसके अन्तर्गत चार प्रकार का चित्रण है (१) तालिका चित्रण (२) यथातथ्य (३) संश्लिष्ट और (४) अलंकृत ।

तालिका चित्रण—तालिका चित्रण में वस्तुओं की सूची मात्र दे दी जाती है । उदाहरण—

(क) ऋतु चित्रण—

राधा—देख सखी यहाँ कैसे-कैसे सुन्दर वृक्ष कदली कदम्ब कचनार कुंद केवड़ा चम्पा चम्बेली गुलाब गुलतुरा पुष्पों के भार से डार-डार हो वसन्त ऋतु को लज्जित कर रहे हैं । आहा सुन्दर सरोवर के निकट नाना प्रकार के पक्षी मोर चकोर हंस चात्रिक पिक पपीहा कोयल इत्यादि अपने-अपने मधुर वाणी के भँकार से कुंज का शृंगार कर रहे हैं (प्रेम वेल नाटक, अंक १) ।

(ख) स्थान चित्रण—वन वर्णन—

चल देखिये विपिन में कैसी बहार छाई ।
 बेला गुलाब तुरी कहीं मालती नवाई ।
 जाही जुही चमेली, कहीं सेवती बिछाई ।
 हरियाली चहुँदिस पै कैसी घनी लखाई । (नंद बिदा १-२)

यथातथ्य चित्रण—

इस रूप में प्रकृति का सामने दीखता चित्र अंकित किया जाता है । लेखक या कवि एक-एक पदार्थ को देखता है और उनका वर्णन कर देता है । इसे फोटू चित्र भी कह सकते हैं । नाटककार प्रकृति का साधारण चित्र खींचता है । जैसे फोटू में चार मनुष्य कुर्सियों पर बैठे हैं, वे तालिका नहीं कहला सकते । इसी प्रकार का यह प्रकृति चित्रण होता है । लेखक एक-एक पुष्प को पिको कर माला बना देता है । तालिका चित्रण में लेखक एक ही प्रकार की अनेक वस्तुओं के नाम की गणना करता है । यथातथ्य में वह गणना करने नहीं बैठता, एक प्रकार की एक वस्तु को दूसरी से सटा देता है । उदाहरण—

समय^१ वर्णन—प्रातःकाल का गद्यात्मक वर्णन—

राजा—प्रभात का समय भी धन्य है । मंद वायु जो ठंडक लिये मुख पर आ लहराने लगती है, सुग्व से नेत्र कैसे संपुट हुये जाते हैं । चक्रवाक आनन्द में फूले-फूले फिर रहे हैं । सुमन-सुगन्धि से ब्रह्माण्ड बस रहा है । निर्मल आकाश देखो कैसा शोभायमान दीख रहा है । (गंगोत्री १-१)

वर्षा वर्णन—

गरजत घन चमकत चपला बँदन परत फुहार
 ठौर-ठौर मिलि मोर नचत हैं भींगर रहे भिगार
 भौंति-भौंति के पक्षी बोलत शीतल चलत बयार
 (लावण्यवती सुदर्शन ४-३)

यथा-तथ्य वर्णन के अन्य उदाहरण—(ऋतु सम्बन्धी)

मदन मंजरी नाटक के पाँचवें और प्रथम अंक में गद्य और पद्यात्मक वर्षा-वर्णन, मालती वसंत नाटक (१-२) और राम लीला (किष्किधाकांड ३-२) में गद्यात्मक वर्षा-वर्णन ।

१. समय सूचक अन्य प्राकृतिक वर्णन—मनोरंजनी नाटक में गद्यात्मक संध्या वर्णन (अंक २, पृ० २४), कल्पवृक्ष में चौदनी रात का पद्यात्मक वर्णन (४-२), महारास (ख० ब० म०) में चौदनी का गद्यात्मक वर्णन, प्रस्तावना में ।

अन्य वर्णन—शीलसावित्री नाटक (३-१), सीता हरण (२-३, १-१) और बाल्य खेल या ध्रुव चरित्र (अंक ४) में वन का गद्यात्मक वर्णन है। मिथिलेश कुमारी (अंक १) सत्योदय (दृश्य ७) में वाटिका का यथातथ्य गद्यात्मक वर्णन है। रामलीला (अरण्यकांड) में गोदावरी वर्णन भी इसी शैली का है।

संश्लिष्ट चित्रण—यथातथ्य वर्णन में एक-एक वस्तु का पास-पास चित्र खींचते हैं, संश्लिष्ट वर्णन में वस्तुओं का सामूहिक मिला जुला चित्र होता है। यथातथ्य फोटू है तो संश्लिष्ट चित्रण, चित्रकार का चित्र है जो उसकी कलापूर्ण अंगुलियों के स्पर्श से बोलने-सा लगता है। इस चित्रण द्वारा नाटककार का गंभीर और सूक्ष्म निरीक्षण दिखाई देता है। उदाहरण—

वसंत वर्णन—

रंभा—वसंत ऋतु के फूल चारों ओर फूल रहे हैं। देखो वह आम के पेड़ मौर के बोझ से झुक रहे हैं। तड़ागों में कमल अपनी शोभा को भोंक रहे हैं और प्रत्येक क्यारी में जो छोटे-छोटे पौदे नए और कोमल पत्तों से लदे हुए हैं उनमें भी कलियाँ फूट रही हैं। (द्रौपदी वस्त्र हरण ३-१)

समय वर्णन के अन्तर्गत तो संश्लिष्ट चित्रण की योजना बहुत हुई है। प्रातःकाल का ऐसा एक चित्र उदाहरण स्वरूप यहाँ दिया जाता है।

वल्लभ—पत्नी जो अपने-अपने बसेरे में बैठे शान्त हो तनिक शब्द होने से भयभीत हो जाते थे और गाढ़ी निद्रावश उनकी आहट भी किसी को न जान पड़ती थी सो अपने मधुर स्वरों से मनुष्यों का जी हुलसाते हुए एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उड़-उड़ के जाते हुए दिखाई पड़ने लगे।

(प्रेम सुन्दर १-१)

स्थान वर्णन के एक संश्लिष्ट चित्रण का भी उदाहरण दिया जाता है।

वल्लभ—वाटिका के वृक्षों पर मालती और नव मल्लिका की लता का फैलना और फूलना कैसा सुन्दर दृष्टि पड़ता है, सुगंधों के झुण्ड के झुण्ड उड़-उड़ कर डालियों पर बैठते हैं और पत्तियों का रंग-सा होने के कारण छिप जाते हैं।

(प्रेम सुन्दर १-३)

अलंकृत चित्रण—आलम्बन वर्णन का चौथा रूप है जब नाटककार एक वस्तु का वर्णन कर उसे पकड़ कर बैठ जाता है और उसी एक वस्तु को अलंकारों से दबा देता है या सजा देता है। भारतेन्दु जी के नाटक चन्द्रावली

में यमुना वर्णन इसी प्रकार का वर्णन है। नाटककार यमुना के एक रूप को लेता है और उसे उत्प्रेक्षा, संदेह इत्यादि अलंकारों से दबा देता है। जब नाटककार एक-एक रूप को एक-एक अलंकार से पुष्ट करता है तो वह भी अलंकृत चित्रण है। कभी वह सांग रूपक का सहारा लेता है तो कभी उपमा, रूपक, श्लेष का। उदाहरण—

नल—इस सरोवर की गहराई से अनुमान होता है कि रत्नाकर,
मानो मथे जाने की भय से अपने रत्नों को चुराकर इसी में
आ छिप रहा है—इसके जल की स्वच्छता से अनुमान होता
है मानो हिमालय का संपूर्ण हिम द्रव होकर इसी में आ रहा
है अथवा चन्द्रमा की चाँदनी जल-भाव को प्राप्त हो गई है
इसका जल ऐसा निर्मल है जैसा मुनियों का मन निर्मल
रहता है..... (दमयंती स्वयंवर १-२)

इस शैली के अन्य उदाहरण—मदन मञ्जरी (अंक १, पृ० १६)
में पद्यात्मक वर्षा वर्णन; वारांगना रहस्य (१-१) में वेश्या और संध्या
का गद्यात्मक सांग रूपक, अभिमन्यु नाटक (७-६) और चौपट चपेट
(अंक ३) में वसन्त और राजा का सांग रूपक, विद्यासुन्दर (१-२) का
उद्यान वर्णन।

(२) प्रकृति का उद्दीपनात्मक चित्रण—

नाटककारों का मन उद्दीपनात्मक वर्णन में बहुत रमा है। फलतः
इस प्रकार के चित्रण बड़े मनहर हैं और विविधता से भरे हैं। प्रायः सभी
नाटकों में जहाँ भी प्रकृति-वर्णन को स्थान मिला है, वहाँ इस प्रकार का
प्रकृति-चित्रण थोड़ा-बहुत प्राप्त हो जाता है।

ऋतु वर्णन—वर्षा और वसन्त के उद्दीपनात्मक चित्रों की
अधिकता है।

वर्षा वर्णन—

चंपा—देखो तो प्यारी। मोर भी कैसे कुहँकु रहे हैं कि कलेजा उमगा
आता है और काम के उमंग से जी तलमला रहा है। प्यारी !
ऐसे बादलों को देख कर कौन लाज की चादर रख सकती है।
पत्नी लोग भी अपने-अपने पर समेटे हुए पत्तों की आड़ में बैठे
हुए सुख कर रहे हैं नदियों के करारे धमाधम टूट कर गिर रहे
हैं परदेशी भी ऐसा समय देख कर अपने-अपने घर आते हैं।

(विवाहिता विलाप, भाँकी ४)

गद्यात्मक उद्दीपन चित्रण के अन्य उदाहरण—

चन्द्रावली (अंक ३), लावण्यवती सुदर्शन (४-३), रति कुसुमायुध

(दृश्य ४), प्रेम सुन्दर (४-१), संयोगता स्वयंवर (१-१) में वर्षा के उद्दीपनात्मक चित्र देखे जा सकते हैं। गंगोत्री (४-३) और मदन मंजरी (अंक १) में वसन्त का उद्दीपनात्मक वर्णन है।

पद्यात्मक सुन्दर उद्दीपन वर्णन का आगार है, चंद्रावली नाटिका। मयंक मंजरी (अंक १) में भी सुन्दर और सरस पद्यात्मक उद्दीपन-चित्र हैं। विवाहिता विलाप (भाँकी ४) और माधवानल कामकंदला (२-८) में तो पूरा बारहमासा उद्दीपन शैली का दिया गया है। संयोगिता स्वयंवर की प्रस्तावना और अंक १-१ का वर्षा-वर्णन एवं कुंदकली (अंक १०) का वसन्त-वर्णन भी उद्दीपनात्मक है।

ऋतु वर्णन के अतिरिक्त काल और स्थान का वर्णन भी उद्दीपनात्मक रूप में किया गया है। उदाहरण—राजा नच उद्यान को देखते हुए कह रहे हैं। 'मित्र इस सशोक का नाम अशोक किसने रक्खा है। यह अपने लाल पत्तों से जलते अगारों के समान काम के बाण हम पर छोड़ रहा है (हवा में उड़ते फूलों की पराग देख) बाण चलाते-चलाते जब कदर्प देव का हाथ पसीज उठता है तब इन्हीं फूलों की धूलियों को मल कर अपने हाथ का पसीना सुखाते हैं। कामदेव की प्रिय सखी यह कोकिला हमें दुखी देख कैसे मधुर स्वर से गान कर रही है' (दमयन्ती स्वयंवर १-२)

काल सम्बन्धी उद्दीपनात्मक चित्रण के उदाहरण भी कई नाटकों में मिलते हैं। लावण्यवती सुदर्शन (४-२) चौदनी रात का उद्दीपनात्मक वर्णन है तो ललिता नाटिका (अंक २) में उदय होते चन्द्रमा की लालिमा विरहिणी को जलाती है। इसी शैली के काल सम्बन्धी अन्य उदाहरण—उषाहरण (१-३), माधवानल कामकंदला (१-६), रुक्मणी परिणय (अंक ३) और शील सावित्री (५-१) में प्राप्त होते हैं।

देशचित्रण—

भारतेन्दुकालीन 'राष्ट्र' का चित्र—

भारतेन्दुकाल के नाटककारों में राष्ट्रीयता की भावना प्रायः सभी में मिलती है। राजनैतिक नाटकों में ही नहीं, ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक और थियेट्रीकल नाटकों में भी देश-प्रेम की भावना व्यक्त मिलती है। बलदेव जी अग्रहरि कृत पौराणिक नाटक सुलोचना सती में भोट कहता है 'तुम्हारे ही जैसे कर्त्तव्य-शून्य हों में हों मिलाने वाले ही ने तो स्वतन्त्र भारत को दास बना दिया' (१-३)। इसी नाटक की योगिनी गाती है 'कहीं हाथ भारत न यह बेनिशा हो।' रुक्मणीहरण नाटक का श्रीदाम, कृष्ण से कहता है 'जब हमारे भारतवर्ष में विद्या विनय विवेक से रहित केवल कुल के नाम से पूजे जावेंगे तभी इस पुण्य क्षेत्र जंबू द्वीप की स्वाधीनता नष्ट हो जायगी' (३-२)।

प्रेम-नाटक *मयंक मंजरी* का नरेन्द्रसिंह उपदेश देता है एक देश में जहाँ तक संभव हो आपस में घनिष्टता रखनी चाहिये' (अंक ५)। दूसरे प्रेम-नाटक *गंगोत्री* का सूत्रधार भारतवर्ष की वर्तमान दशा पर दुःख प्रकट करता है। सामाजिक नाटक *वेश्या प्रहसन* का रगीला कहता है 'देखो तो धनियों की कैसी उलटी बुद्धि है। ऐसे ही मन यदि देश की भलाई से लगाये तो भारतवर्ष थोड़े ही काल में सुधर जावे।' *यौवन योगिनी* में पृथ्वीराज कहता है 'स्वाधीनता भारत का स्थिर स्थायी धन है' (२-१)। ऐतिहासिक विषय तो वे ही चुने गए हैं जिनसे देश-प्रेम की भावना व्यक्त हो सके। प्रताप, पुरु, हम्मीर, देश-प्रेमी नायक थे जिनके जीवन को ले कर नाटक लिखे गए। अन्य ऐतिहासिक नाटकों में भी देश-प्रेम की भावना स्थान-स्थान पर भरी गई है।

राष्ट्रभावना के दो रूप दिखलाई देते हैं, प्राचीन भारत की प्रशंसा की गई है और तत्कालीन भारत की अवस्था दिखलाई गई है।

प्राचीन भारत—जिन नाटककारों ने भी देश-प्रेम पर लेखनी दौड़ाई है उन्होंने प्राचीन भारत का गुण अवश्य गाया है। यह कार्य भारतेन्दु जी कृत *भारत दुर्दशा* और *नीलदेवी* से आरम्भ हुआ और अन्य सभी नाटकों में विस्तार पाता रहा। सभी देश प्रेम सम्बन्धी राजनैतिक, सामाजिक, और ऐतिहासिक नाटकों में प्राचीन काल के वीर और आदर्श स्त्री-पुरुषों की विरुदावली बखानी गई है।

तत्कालीन भारत—

अंग्रेज प्रशंसा—भारतेन्दु जी पर कभी-कभी यह भी दोषारोपण कर दिया जाता है कि उन्होंने अंग्रेजों की बड़ी प्रशंसा की है। यदि वे देशभक्त थे तो फिर अंग्रेजों की प्रशंसा क्यों की? इसका उत्तर हम पीछे *भारत दुर्दशा*^१ *विषय विषमौषधम्*^२ और *अंधेर नगरी* की चर्चा करते हुए कुछ दे चुके हैं। भारतेन्दु जी ने ही नहीं अन्य नाटककारों ने भी अंग्रेज प्रशंसा के ऊँचे भवन खड़े किये हैं। यह अंग्रेज प्रशंसा तीन क्षेत्रों में की गई है, (१) महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा (२) लार्ड रिपन एवं अन्य सदाशय अंग्रेजों की प्रशंसा और (३) अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा।

विक्टोरिया गुणगान—भारतेन्दु जी के अतिरिक्त पं० अम्बिकादत्त व्यास और प्रेमघन जी अपने *भारत सौभाग्य* नाटकों में स्थान-स्थान पर महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा करते हैं। पं० जगतनारायण अपने *भारत*

१. खंड तीन, इतिहास भाग, प्रकरण राजनैतिक नाटक।

२. पिछले अध्याय में शैली प्रकरण।

डिमडिमा नाटक में महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा इसलिए करते हैं कि उनके राज्य में शेर बकरी एक घाट पानी पीते हैं। गंगोत्री नाटक में नायिका गंगोत्री, अत्याचारी राजा को जगद्विख्यात राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया का भय दिखाती है जिसके राज्य में चींटी भी संताप नहीं पाती (५-२)।

सदाशय अंग्रेज प्रशंसा—गोसंकट (प्रस्तावना), सत्योदय (दृश्य ८) और भारत सौभाग्य (अंक ४) में लार्ड रिपन की प्रशंसा की गई है। नागरी विलाप (अंक ३) में सर अलफर्ड लायल के लिए प्रशंसात्मक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। देवाक्षर चरित्र और गंगोत्री में जिलाधीशों की सहानुभूति का गुण गाया गया है।

अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा—प्रचण्ड गोरक्ष नाटक में अंग्रेजी राज्य युधिष्ठिर के राज्य से भी बढ़ कर बताया गया है (१-२)। सत्यवती नाटक में 'सुप्रबन्धा' अंग्रेजों की प्रशंसा करती है क्योंकि वे बुद्धिमान, विवेकवान और शूरवीर होने के साथ ही 'न्यायनीति के वेत्ता भी हैं' (५-२)। नागरी विलाप में नागरी प्रार्थना करती है कि 'इंग्लैंडीय पुरुष सदैव हमारे रक्षक और पालक नियुक्त रहें' (दृश्य ४)। भारत आरत का लेखक विद्यार्थी बन कर कहता है 'हमारी इच्छा स्वप्न में भी नहीं है कि कभी किसी अन्य राजा की प्रजा बने' (भारत आरत, खड्गबहादुर मल्लकृत, दृश्य ५)। प्रेमघन जी भारत सौभाग्य में आशीर्वाद देते हैं कि 'बहुत दिन कायम रहे तेरा तख्त अरु ताज' (२-४)।

भारतेन्दु जी ने भी भारत जननी और भारत दुर्दशा में अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा की है। भारत जननी कहती हैं 'अंगरेजन को राज ईस इत थिर करि थायै' (भारत जननी)। भारत दुर्दशा में भी भारत भाग्य कहता है "अंग्रेज का राज पाकर भी न जगे तो कब जागेंगे" (अंक ६)। कुछ नाटक तो अंग्रेजी राज्य की विशेषताओं को प्रकट करने को ही लिखे गए जैसे प्रेमघन कृत भारत सौभाग्य, देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत भारती हरण और नन्देमल कृत सत्योदय।

प्रशंसा का कारण—हम पीछे भारतेन्दु जी के नाटकों के सम्बन्ध में लिखते हुए स्पष्ट कर चुके हैं कि अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा का कारण अंग्रेजी राज्य से पहिले का अत्याचारी यवन शासन था। राष्ट्रीयता का अर्थ भी थोड़ा बहुत परिवर्तित होता रहता है। १९१६ से १९४७ तक राष्ट्रीयता का अर्थ था कि हिन्दू मुसलमान मिल कर अंग्रेजी राज्य का विरोध करें क्योंकि अंग्रेज विदेशी थे और भारतीय शासन को हड़पने वाले थे। अंग्रेज आक्रान्ता और अत्याचारी माने जाते थे। मुस्लिम-काल में यवनों का विरोध राष्ट्रीयता का प्रतीक था क्योंकि यवन शासक आक्रान्ता और अत्याचारी थे। इसीलिये

महाराणा प्रताप और शिवाजी की राष्ट्रीय वीरों में गणना है। यवन राज्य में हिन्दुओं को अनेक कष्ट सहने पड़े। नाटककारों ने हृदयद्रावक शब्दों में यवनो का अत्याचार चित्रित किया है जिसका कुछ परिचय पात्र-प्रकरण (यवन पात्र अध्याय ३) में दिया जा चुका है। यवनों ने हिन्दू मन्दिरों की मूर्तियाँ तोड़ीं, धन की लूट की, ग्रन्थों को जलाया, धार्मिक कर लगाया, हिन्दू सुन्दरियों को कुदृष्टि से ताका, हिन्दुओं की राज्यशक्ति छीन ली और नर-संहार किए। उधर महाराणी के घोषणा पत्र ने विश्वास दिलाया कि हम धर्म में हस्तक्षेप न करेंगे। अंग्रेजों ने संस्कृत ग्रन्थों का आदर किया (भारतीहरण), हिन्दू स्त्रियों के डोले नहीं मोंगें, न उनकी प्रतिष्ठा लूटी।^१ न मन्दिरों को भ्रष्ट किया और न धार्मिक कर लगाया। उधर मुसलमान भारतेन्दु काल के अंग्रेजी राज्य में भी हिन्दुओं को कष्ट दे रहे थे।^२ इनकी अधिकताओं और निर्दयताओं को नाटककारों ने नाटकों में रंगा। *रामलीला* विजय में हिन्दू मुस्लिम भगड़े ही का चित्रण है। गोरक्षा नाटकों में भी मुसलमानों की, गाय एवं हिन्दुओं पर हुई नृशंसताओं का ही उल्लेख है। ऐसे मुस्लिम व्यवहार और प्राचीन यवन शासकों, सेनापतियों और बड़े मुसलमानों के अत्याचारों ने ही अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा कराई।

इसका दूसरा पहलू भी है। अंग्रेजी राज्य में प्राप्त सुख सुविधाओं ने भी उनके मुख से प्रशंसात्मक वाक्य उगलवाए। *भारत आरत* (खड्ग बहादुर मल्ल कृत) का विद्यार्थी उस काल के भारतीयों का भाव प्रकट कर कहता है 'हम ऐसे कृतघ्नी नहीं हैं कि पाठशाला, डाक, सड़क, म्युनिसिपैलिटी और अस्पताल आदि के द्वारा जो सरकार ने सुख दिये हैं वह भूले जायें (दृश्य ५)। पं० अम्बिकादत्त व्यास अंग्रेजी राज्य की देन बताते हैं—

१. कवि वचनसुधा १८ जून १८७७ एवं 'बादशाह दर्पण' नामक लेख। (भारतेन्दु ग्रंथावली भाग ३ पृ० ३१६)।

२. (क) शबे कत्ल आगरे के हिन्दुओं पर हकीकत खुल गई रोजे जजा की। (ब्राह्मण १५ दिसम्बर १८८३, पृ० ४५ आगरे के उपद्रव पर)।

(ख) मुसलमानों की जियादती और राजकर्मचारियों की कठोरता से दिक्र हो कर सब हिन्दू लोग सलेम (मदरास) से निकले जाते हैं। (ब्राह्मण १५ जून १८८३)।

(ग) कानपुर में एक मुसलमान को हिन्दू सर्राफ ने भीख न दी और डाटा तो मुसलमान लड़ने आ गए। (ब्राह्मण १५ नवम्बर १८८७)।

(घ) दिल्ली में बकरीद के अवसर पर नादिरशाही मचा दी। (ब्राह्मण दिसम्बर १८८३)।

चली रेल हू ठेल कै ठानि आँधी
 सबै ठौर मैं तार मैं तार बाँधी ।
 लखो ये किती सोहती पाठशाला
 कहूँ बाल और सीखती केती बाला ।
 नदी पै किती सेतु सीधी बनी हैं ।
 (व्यास जी कृत भारत सौभाग्य दृश्य १)

प्रेमघन जी ने भी भारतीय कांग्रेस के सदस्यों द्वारा अंग्रेजी राज्य में प्राप्त, सुख-सुविधाओं की गणना कराई है (५-३) । यही नहीं रामलीला (बालकांड) में भी नाटककार अंग्रेजी राज्य के गुणानुवाद गा लेता है । भारतेन्दु जी भी प्रशंसा करते कहते हैं—‘अंगरेज राज सुख साज सबै सब भारी’ (भारत दुर्दशा अंक २) । इन्हीं कारणों से नाटककारों ने अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा की ।

निंदा—

यदि ये नाटककार केवल प्रशंसा करके ही रह जाते तो आज इतना मान न पाते और चापलूस कहलाते । किन्तु इन्होंने अंग्रेजी राज्य के दोषों को भी नाटकों में उसी सच्चाई से दिखलाया है जिस सच्चाई से प्रशंसा की है ।

निंदा के क्षेत्र—

आर्थिक शोषण—भारतेन्दु जी ने स्थान-स्थान पर इस आर्थिक शोषण की चर्चा की है । भारतीयों पर नए-नए कर लग रहे थे, इसका भारतेन्दु जी को हार्दिक दुख था ।^१ कर के अतिरिक्त ‘चदे’ ‘तुहफे’ और ‘घूस’ प्रजा का धन चूसते थे । अदालत भी शोषण का एक केन्द्र स्थान था । रायबहादुर खानबहादुर सर नाइट इत्यादि की उपाधियाँ दे देकर अंग्रेजों ने धन लूटा ।^२ इनका व्यापार तो आर्थिक शोषण का ही नहीं, राजनैतिक शक्ति हड़पने का भी साधन था ।^३ ऐसे अनेक साधनों से अंग्रेज भारत का धन ले जाकर इंग्लैंड में ढेर लगा रहे थे ।^४ इसका परिणाम है कि भारतीयों में

१. सब के ऊपर टिकस की आफत आई । (भा० दुर्दशा)

२. सत्यानाश फौजदार का कथन, भा० दु० अंक ३, भा० ग्रन्थावली प० भा० पृ० ४७६ ।

३. धन्य है ईश्वर । सन् १५६६ में जो लोग सौदागरी करने आये थे वे आज स्वतंत्र राजाओं को यों दूध की मक्खी बना देते हैं । (विषय-विषमौषधम्) ।

४. विलायत पूरे इसका काम । (अन्धेर नगरी अंक २)

दरिद्रता आ गई है^१। धन तो देखने के लिए भी भारत में नहीं रहा। उस धन को कब्रों तक में आराम से नहीं रहने दिया गया है। वहाँ से भी उठा कर इंग्लैंड पहुँचाया गया।^२ भारतेन्दु जी इस आर्थिक शोषण से अत्यन्त ही दुःखी थे और इसे भारत का अपमान भी समझते थे।^३ नायक मोतीराम भी मनोरंजनी में भारतीय प्रजा पर लगे अनेक करों पर दुःख प्रकट करता हुआ कहता है कि इन करों ने 'लवण खाना कठिन कर दिया है।' (मनोरंजनी अंक १)।

दोषपूर्ण राज्य प्रबन्ध—भारतेन्दु जी एवं अन्य नाटककारों ने अग्रेज एवं राज्य कर्मचारियों की बड़ी निन्दा की है। उनकी निन्दा के क्षेत्र, विशेष कर इन कर्मचारियों की घूस प्रवृत्ति, पुलिस की अधिकताओं और दोषमय न्याय प्रणाली थे।

घूस—नाटककार स्पष्ट शब्दों में रखते हैं कि घूस का सुख सुरसा की नाई खुल गया है। कौन-सा विभाग था जहाँ इसके पारगामी पैर न पहुँच गए थे। शिक्षा-विभाग के डिपुटी इन्स्पेक्टर का अर्दली, दीन अध्यापक से घूस लेता था (ग्राम पाठशाला)। डाक विभाग में बाबू और उसका अफसर दोनों इस सरिता में हाथ धोते थे। मनिआर्डर बाटने में बाबू और डाकिया दोनों अपनी अंगुलियाँ चिकनाते हैं (देशदशा ३-१) तो उनका अफसर इन्स्पेक्टर मनिआर्डर की गोलमाली पर कहता है 'खैर तुमने बड़ा भारी जुर्म किया' 'खैर खाने की फिक्र करो मुहर आज देना बाकी काम ठीक रखो, (देशदशा ३-२)। कचहरी तो 'कच' (बाल) 'हरी' (हरण करने वाली) ठहरी। असहाय दीन रोती वृद्धा को भी चपरासी नहीं छोड़ता और केवल 'सवाल पेश करने के लिए भी' अपनी 'मामूली' माँगता है। वह चाँदी का गोल टुकड़ा देने में असमर्थ है और आशीर्वाद देती है। इसका फल मिलता है कि धक्का देकर चपरासी उसे बाहर निकाल देता है (देशदशा २-२)। रेल का टिकट बाबू टिकट देने में अधिक लेकर टिकट काटता है (देशदशा ४-१)। बन्दोबस्त में भी घूस ने पैर फैला रखे थे (देवाक्षर चरित्र ३-३)।

पुलिस—पुलिस के लिए क्या कहा जाय? नाटककारों की इस विभाग पर विशेष दृष्टि गई है। घूस और पुलिस की अधिकताओं की पोल खोली है। लादू सेठ की बाल-विधवा, गर्भवती पुत्रवधू को गहरी रकम लेकर

१. इसका धन बल सभी घटाया। वही।

२. धन की सेना ऐसी भागी कि कब्रों में भी न बची, समुद्र के पार ही शरण मिली। (भा० दु० अंक ३)

३. पै धन विदेश चलि जात, यह अति ख़्तारी। (भारत दुर्दशा १)।

पुलिस वाले छोड़ देते हैं (देशदशा ६-२) । चोरियों का कारण भी पुलिस ही है, नाटककारों का यही कहना है । चोर पुलिस से मिले होते हैं, तभी चोरियाँ होती हैं । अनुभवी चोर जबरखाँ दूसरे चोर को समझाता कहता है 'चोरी के माल में से कुछ माल देने का करार कर दिया होता बस फिर उन्हें तुमसे मतलब ही क्या था' (प्रेम सुन्दर २-२) । पुलिस के हथकंडों का भव्य भंडाफोड़ पुलिस नाटक में किया गया है । प्रसिद्ध चोर आलसी राम अपनी स्वीकारोक्ति दे रहा है 'थानेदार ने आते ही मुझे बुलाया था और कहा कि हम लोगों को समझते रहो और देखटके अपना काम करो' (पुलिस नाटक अंक १) । पुलिस दारोगा उसी को कष्ट देते हैं जिसके यहाँ चोरी होती है (पुलिस नाटक) । दारोगा जी एक बदमाश से नाम कहलवा कर एक बजाज को पकड़ लेते हैं क्योंकि बजाज ने थानेदार के मूल्य पर कपड़ा नहीं बेचा था (देशदशा १-१) ।

न्याय—न्याय प्रणाली का रहस्योद्घाटन अनेक नाटकों में किया गया है । अंधेर नगरी, महा अंधेर नगरी, और अति अंधेर नगरी में व्यंग्य के बल पर राजकीय न्याय की निंदा की गई है । न्याय नाटक, मनोरंजनी (अंक १), देशदशा और रामलीला विजय में भी न्याय की दोषमय प्रणाली के चित्र दिये गए हैं ।

अंग्रेजी शिक्षा—अंग्रेजी शिक्षा की प्रशंसा और निन्दा—दोनों ही की गई हैं । अंग्रेजी शिक्षा जनता में साहस और बल दे रही थी । देशदशा में पुलिस का मुंशी और सिपाही अंग्रेजी पढ़े लिखों को कोसते हैं कि ये पुलिस से भय नहीं खाते हैं (देशदशा १-१) । दुःखिनी बाला रूपक में बलदेव दास, अंग्रेजी शिक्षा के लाभों पर व्याख्यान देता है (दृश्य ३) । पं० अत्रिका-दत्त व्यास कहते हैं कि अंग्रेजी शिक्षा से देश को ज्ञान दृष्टि मिली, जानकारी बढ़ी और नाटकों का प्रचार हुआ (भारत सौभाग्य दृश्य १) ।

अंग्रेजी शिक्षा की निन्दा भी की गई । अंग्रेजी शिक्षा, मद्य-मांस के प्रचार का प्रधान कारण थी (क्या इसी को सम्भवता कहते हैं) अंग्रेजों पढ़े-लिखे लोग नास्तिक बन रहे थे । उनका विश्वास गंगा-स्नान, माँ-बाप, गऊ-ब्राह्मण और ईश्वर पर से उठ रहा था (दुःखिनी बाला रूपक दृश्य ३) । इसको भले-खुले विद्या नाम दे कर इसकी निन्दा की गई (विद्या विलासी मुख चयनी) ।

सामन्तवाद

इस युग को कुछ सामन्तवादी दृष्टिकोण का युग मानते हैं । क्यों ? इसके कई कारण हैं । (१) पौराणिक नाटकों के नायक केवल महान् व्यक्ति ही बनाए गए हैं । (२) प्रेम नाटकों में प्रेम के अधिकारी केवल राजकुमार और

राजकुमारियाँ हैं। (३) सामाजिक नाटकों में गऊ रक्षा एवं अन्य सामाजिक सुधारों की धुरी समाज के विशिष्ट धनी व्यक्ति ही हैं। (४) ऐतिहासिक नाटकों के नायक भी राजा एवं उच्चकुलीन महापुरुष हैं जिन्हें देश-प्रेम का अधिकार है। (५) नाटककारों में भी अधिकांशतः राजा,^१ धनी,^२ उच्च मध्यम वर्गीय पुरुष^३ एवं सरकारी राज्यकर्मचारी ही थे^४। (६) नाटकों में भी सामंतवादी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है—

(क) ध्रुवचरित्र नाटक में प्रह्लाद केवल राजाओं के ही लिए प्रार्थना करता है। (अंक ५)।

(ख) सीता स्वयंवर नाटक में राजा के लक्षणों में से यह भी एक लक्षण माना गया है कि वह ऊँच और नीच का ज्ञाता हो। (सीता स्वयंवर ४-२)।

(ग) राजा सूरतपति अपने पुत्र एवं पुत्री के मरण पर कहता है 'चाहे इस नगर पर ओले गिरें, चाहे टींडी दल टूट पड़े। हमको इन बातों से क्या काम है। (रणधीर प्रेममोहिनी ५-१)।

(घ) मदनमोहन उदास है क्योंकि वह विरही है। अतः वह नगर में घोषणा करा देता है कि कोई नगरवासी उत्सव न मनाएगा।

(मदनमंजरी २)

प्रगतिशीलता

किन्तु साथ ही इन नाटककारों की प्रशंसा भी करनी पड़ेगी। वे वातावरण के कारण सामन्तवादी थे परन्तु उनके विचारों में प्रगतिशीलता भरी थी। नाटकों में प्रगतिशील ही नहीं, कहीं कहीं तो क्रान्तिकारी विचार मिलते हैं। राजा अपनी लडकी को समझाता है—

“राजा कुछ ईश्वर नहीं, देवता नहीं। वो सब प्रजा की तरफ से एक अधिकारी मात्र है उसको प्रजा की रक्षा और भलाई के लिए प्रजा से धरती की उपज का छुटा हिस्सा मिलता है। उसको देश की

१. राजा खड्गवहादुर मल्ल, अमानसिंह गोठिया, महाराज भिनगाधिप अनुज राजेन्द्र बहादुर सिंह इत्यादि।

२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाकृष्ण दास, मोतीलाल जौहरी इत्यादि।

३. काशीनाथ खत्री, प्रेमधन जी, श्रीनिवासदास, खिलावनलाल, किशोरीलाल गोस्वामी, राधाचरण गोस्वामी, शालिग्राम वैश्य।

४. पं० बालमुकुन्द पांडेय अहलमद फौजदारी। कन्हैयालाल हेड-क्लर्क। जगन्नाथप्रसाद शर्मा हेड क्लर्क। मुंशी छगनलाल कासलीवाल। कैलाशनाथ वाजपेयी क्लर्क बन्दोबस्त।

रक्षा और प्रजा की भलाई के लिए सब तरह का अधिकार है परन्तु उसको प्रजा पर किसी तरह की अनीति करना अथवा प्रजा के रुपये को अपने ऐश आराम के काम में खर्च करना उचित नहीं ।” (रणधीर प्रेम मोहिनी ४-३) ।

राजा ने यह अपनी पुत्री को पढ़ाया । वह पुत्री पिता से बढ़ कर है और कहती है—

“मेरी राय में तो बाप-दादों के नाम से बढ़ाई पाने वालों के बदले अपनी मेहनत और बुद्धि से इज्जत पैदा करने वाले हजार दर्जे अच्छे हैं ।” (रणधीर प्रेम मोहिनी ५-२) ।

इन दोनों से बढ़कर है रणधीर जो राजा सूरतपति से कहता है—

“जैसे आपके ऊँचे ऊँचे महलों पर सूर्य की धूप पड़ती है तैसे ही हमारे गरीब भोपड़ी में भी सूर्य भगवान प्रकाश करते हैं । जैसे आपके कलशदार महलों पर घनघोर घटा जल बरसाती है तैसे ही हमारे गरीब भोपड़ी को भी अपार दया से सूखा नहीं रखती । हमारा आपका सब संसारी हाल एक सा है और हम तुमको ये झूठा झगड़ा छोड़कर एकदिन अवश्य यहाँ से जाना पड़ेगा । परन्तु आपके मुकुट में अभिमान का तुरा और लगा है, ये आप ही की बढ़ाई है ।” (रणधीर प्रेम मोहिनी ३-३-८१) ।

रणधीर के ये विचार आज भी प्रगतिशील माने जायेंगे किन्तु भारतेन्दु काल की दृष्टि से तो ये नितान्त क्रान्तिकर हैं । उस काल में ऐसा सोचना भी कठिन था । इसी प्रकार अंग्रेज अफसरों के विरुद्ध गरीब क्लर्क या चपरासी का निम्नलिखित कथन उस काल की दृष्टि से प्रगतिशील ही कहा जायगा । भरोसदास कहता है—

“रिकमनडी साहब चौबीस बरस के नौकर हैं ५०० महीना पाते हैं कि दिन भर बैठे चुरट पिया करते हैं या फर्स पर बैठे टहला करते हैं कहीं फ़लाई किलर साहब इनको पेन्शन देकर इनकी असामी तकफीफ कर देते तो यह दस बीस दुखिये सहज में बच जाते और रिकमनडी साहब को भी बैठे गुड सरविस पेन्शन के २५० मिलते पर कहै कौन वह भी गोरे रंग के हैं भला रिकमनडी साहब क्यों ५०० से २५० पसन्द करेंगे ? वह भी तो उन्हें पेन्शन ही है दिन भर एक दो दफे दस्तखत कर दिया बस नौकरी हो गई ।”

(ग्राम पाठशाला पृ० २८)

स्त्री का अधिकार भी पुरुष के ही समान है, पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी ने यह राम के सामने सीता के मुख से कहला कर अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है ।

राम कहते हैं कि “स्त्रियों का सम्मान तो संसार कर रहा है” तो सीता कहती हैं ‘सम्मान हम उसे कहती हैं कि अपने समान स्त्री को भी जाने, और सदा सर्वदा अपने संग रखें, और यह न हो कि आप सब वस्तु का अधिकारी बन बैठें, स्त्रियों को रंग के पिंजड़े की चिड़िया बनाय ले’ ।

(सीताहरण, देवकीनन्दन त्रिपाठी)

१८५७ का विद्रोह—

इस प्रकरण से यह तो सिद्ध हो ही गया है कि भारतेन्दुकालीन नाटक-कार राजनीति के जागरूक प्रहरी थे । किन्तु आश्चर्य है नाटककारों की इस विशाल सेना ने १८५७ के विद्रोह के प्रति बड़ी उपेक्षा बरती है । इनमें से अनेक नाटककार १८५७ में स्वयं उपस्थित थे । भारतेन्दु जी स्वयं १८५७ में ७ वर्ष के थे । श्री शालिग्राम वैश्य ने शृंगार से भरा सांगीत नाटक ‘इश्क चमन १८५४ ई० में लिखा । निश्चय ही ये १८५४ में कुमार या युवा रहे होंगे । १८५७ के बाद कई नाटक उन्होंने हिन्दी माँ के चरणों में चढ़ाए^१ । किन्तु कहीं भूले-भटके एक शब्द भी इस प्रचण्ड भारतीय आँधी के विषय में नहीं कहा । भारतेन्दु जी के सहयोगी अधिकांशतः उनसे अवस्था में बड़े थे । इन सहयोगियों ने भी इस विद्रोह के प्रति उपेक्षा ही बरती है ।

केवल दो नाटकों में इसकी चर्चा मिली है । वे दो नाटक हैं— (१) प्रेमघन जी का भारत सौभाग्य और (२) पं० अम्बिकादत्त व्यास का भारत सौभाग्य । दोनों ने इसे गदर कहा है और इसे भारत का परम दुर्भाग्य माना है । पं० अम्बिकादत्त व्यास कृत भारत सौभाग्य का पात्र भारत सौभाग्य कहता है ‘मैंने दैव संयोग किसी किसी उद्योग से एक बेर गदर करवा दी’ (दृश्य १, पृष्ठ ५) । प्रेमघन जी ने अपने नाटक में इस अग्निमय घटना का विस्तार से चित्रण किया है । वे भी इसे भारत का दुर्भाग्य-पूर्ण इतिहास मानते हैं एवं इसको सैनिक विद्रोह का नाम देते हैं । उनके कथनानुसार हिन्दू मुसलमानों ने समझा कि ये अंग्रेज सुअर-गाय की चर्बी का मिला बन्दूक का टोटा हमारे दाँतों से कटवाकर हमें विधर्मी करना चाहते हैं । अतः उन्होंने विद्रोह किया (३-२) । इन सैनिकों ने निरीह अंग्रेज स्त्री और बच्चों के मारने में नृशंसता एवं निर्दयता का कार्य किया (३-२) । अंग्रेजों ने प्रतिहिंसा की भावना से इससे भी अधिक नृशंसता और पशुत्व दिखलाया । देहली का मुसलमान, अंग्रेजों के इस संहार को नादिरशाही क़त्लेआम से बढ़कर बताता है (३-४) । नाटककार अंग्रेजों की सहायता करने वालों की

१. मोरध्वज, लावण्यवती सुदर्शन, अभिमन्यु, पुरुविक्रम, अर्जुन मद मर्दन, त्रिसमिल परिवार का स्वांग ।

निन्दा भी करता है (३-४) । नाटककार का यह भी मत है कि इस मारकाट का नाम, लूट मार करने वालों ने स्वातन्त्र्य युद्ध भी रख दिया था । कुछ देशभक्तों ने भी इस सुयोग से लाभ उठाना चाहा (३-३) ।

इन दो नाटकों के अतिरिक्त अन्य नाटकों में इसकी चर्चा नहीं मिलती । प्रश्न यह है, कि १८५७ के इतने निकट होते हुए भी इन नाटककारों ने इसके प्रति चुप्पी क्यों साधी ? इसके कई कारण प्रतीत होते हैं (१) उस काल के नाटककार इसे भारतीय स्वतन्त्रता का संग्राम नहीं समझते थे । प्राचीन, दूर होने पर अधिक गौरवमय हो जाता है । वे लोग १८५७ के अधिक निकट थे । उनमें से अनेक ने इस विद्रोह का स्वाद भी चखा था । उनकी समझ में यह सैनिक विद्रोह था^१ स्वातन्त्र्य संग्राम नहीं जो धार्मिक विश्वास के कारण आरम्भ हुआ था जैसा कि प्रेमघन जी ने अपने नाटक में स्पष्ट किया है । (२) यह 'दैवात्' आरम्भ हुआ । फिर इसमें अंधाधुंध लूटमार हुई । उससे प्रजा को बड़ा कष्ट हुआ । मारकाट, लूटमार और हत्या का बाजार गर्म हुआ (भारत सौभाग्य २-४ एवं ३-३) । अंग्रेजों के तत्कालीन अत्याचारों पर महारानी की घोषणा एवं उनके उदार शासन ने नशे का काम किया । फलतः नाटककार चुप रहे । फिर अंग्रेजों के अत्याचारों के साथ भारतीयों के अत्याचारों को भी वे अवश्य ही दिखाते । अतः उन्होंने चुप रहना ही उचित समझा । एक कारण यह भी है कि देश-प्रेम का उतना उत्कट रूप १९०० तक प्रकट नहीं हुआ था कि भारतीयों का अंग्रेज विरोधी रूप नाटकों में स्पष्ट हो जाता । अंग्रेजी दंड का भय भी एक प्रमुख कारण था ।

कृषक समस्या—

उस काल में कृषक समस्या को लेने वाले अकेले नाटककार हैं पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी । उन्होंने अपने नाटक एक एक के तीन तीन में कृषकों की दुर्दशा पर प्रकाश डाला है । दुर्दशा के कई कारणों में से 'ऋण' एक

१. नाटक में तो नहीं किन्तु लेख में बा० राधाकृष्णदास जी भी इसे सैनिक विद्रोह ही कहते हैं 'सन् १८५७ ई० में कई कारणों से यहाँ की राजकीय सेना ने राजविप्लव मचा दिया था' राधाकृष्ण ग्रन्थावली, लेखभाग पृ० १०६ ।

भारतेन्दु जी भी राजकुमार के भारत में शुभागमन के अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते एक पंक्ति में इसे 'सिपाही द्रोह' ही मानते हैं 'कठिन सिपाही द्रोह अग्नि जा बल जल नासी' (हरिश्चन्द्र चंद्रिका मई, जून, जुलाई अगस्त, सितम्बर १८७५ पृ० १२०) । इन महानों की एक ही पत्रिका निकली थी ।

प्रमुख कारण था। इसी को नाटक में अपनाया गया है। इसमें एक सूदखोर वैश्य थोड़े से रुपये और बीज रूप में गेहूँ दे कर चक्रवृद्धि और अनाप-शनाप व्याज लगा कर कृषक का सब कुछ नीलाम करा लेता है। कर्मचारी भी इसी धनी की सहायता करते हैं। वास्तव में नाटककार अपने समय से बहुत आगे बढ़ गया है। जिस कृषक समस्या को हिन्दी में आगे प्रेमचन्द जी ने उठाया उसको ४०-५० वर्ष पूर्व पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी ने पकड़ लिया था।

हिन्दी समस्या—

राजनैतिक नाटकों का इतिहास देते समय पीछे हिन्दी सम्बन्धी नाटकों का परिचय दिया गया है^१। इन नाटकों से निम्न निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—

- (१) नाटककार हिन्दी प्रेमी थे और हिन्दी के प्रचार के लिए सतत प्रयासशील रहते थे।
- (२) नाटककारों ने उर्दू की बुराई की है। कस्ती और कस्बी जैसे उदाहरणों से उर्दू की उच्चारण-भ्रष्टता पुष्ट की। उर्दू को गालियाँ भी दी गईं 'उर्दू छिनारि कै बोलैया सब सारे तुरकै आहिन' (कलिकौतुक रूपक दृश्य २)। उसे 'गोजर की टंगरी' भी बताया गया (नागरीविलाप दृश्य ५)।
- (३) हिन्दी की वैज्ञानिकता एवं शुद्धता की पेट भर कर प्रशंसा की गई (नागरी विलाप, देवाक्षर चरित्र)।

नाटकों द्वारा देश संबंधी अन्य स्थितियों और घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ता है जैसे हड़ताल,^२ कांग्रेस,^३ ठगी,^४ अप्राकृतिक मैथुन या इगलाम-^५ बाजी।

हिन्दू समाज—

हिन्दुत्व—

नाटककार सब से पहिले हिन्दू थे। अतः हिन्दू समाज, हिन्दू धर्म, हिन्दू भाषा, हिन्दू राष्ट्र, हिन्दू ऐक्य, हिन्दू शास्त्र, हिन्दू उत्थान—ऐसे ही चित्र सदा उनके नेत्रों के सामने घूमते थे। सभी नाटककारों ने अपने नाटकों में हिन्दू और आर्य शब्द के प्रयोग से स्पष्ट कह दिया है कि हमारा दृष्टिकोण क्या है ?

१. तृतीय खंड, अध्याय ४।

२. प्रचण्ड गोरक्ष नाटक।

३. प्रेमघन जी कृत भारत सौभाग्य।

४. बैल छै टके को, ठगी की चपेट।

५. कलिकौतुक रूपक, लावण्यवती सुदर्शन नाटक।

भास्तेन्दु जी को दुःख है कि अंगरेजी अमलदारों में भी हिन्दू नहीं सुधरे हैं (भारत दुर्दशा अंक २)। सत्यानाश फौजदार की पूरी तयारी हिन्दुओं पर आक्रमण के ही लिए की गई है। भारत दुर्दैव अपने वीरों को हिन्दुस्तान की ओर भेजता है। क्यों? वह आज्ञा देता है “हिन्दुओं से समझो तो” (भारत दुर्दशा अंक ४)। भारत दुर्दशा और नीलदेवी में जिन प्राचीन स्त्री-पुरुषों की प्रशंसा की गई है वे सब हिन्दुओं के आदर्श स्त्री-पुरुष हैं। नीलदेवी नाटक में तो नाटककार उस हिन्दू को ही धिक्कारता है जो मुसलमान से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखता है (दृश्य ६)। अंधेर नगरी में जो चूरन भी चिकना है, वह हिन्दू चूरन है (अंक २)।

अन्य नाटककारों ने भी इसी दृष्टि को ग्रहण किया है। बा० राधाकृष्ण दास जी के नाटकीय पात्र गर्व से कहते हैं कि ‘हम हिन्दू हैं’ (महाराणा प्रताप ३-२)। नाटककार की वीरांगनाएँ ‘आर्यधर्म की ध्वजा’ फहराती हैं (पदमावती ६-४)। पुरुष क्यों पीछे रहेगा, वह भी कहता है, ‘आर्य धर्म की जयध्वनि सो सब गगन कपाऊँ’ (महाराणा प्रतापसिंह में गुलाब का कथन, ६-३)। चौपट चपेट का गुनफाम हिन्दू स्त्रियों की प्रशंसा करता है (अंक २) और दाढ़ी मुँडा कर एव चुटिया खा कर ही हिन्दू स्त्री के पास पहुँच पाता है। भास्तेन्दु जी के अनुकरण पर प० विजयानन्द जी भी महा अंधेर नगरी में ऐसा चना चिकवाते हैं जो हिन्दुओं के लिए हितकर है और जो मुसलमानों को दूर भगा सकता है। सती चन्द्रावली सिर ऊँचा कर अत्याचारी प्रतिनायक से कहती है ‘मुझे नहीं जानते मैं कौन हूँ? मैं एक हिन्दू लड़की हूँ’ (सती चन्द्रावली दृश्य २), और प्राण खोते समय मालिन से कहती है ‘इतना काम मेरा करियो कि मेरे पीछे कोई मुसलमान मेरी मट्टी न छुए। हिन्दू जो चमार भी मेरी मट्टी पटक देगा तो मेरी गति हो जायेगी’ (दृश्य ४)।

इस हिन्दू भावना के प्रतिफल दो हुए—(१) यवन विरोधी दृष्टिकोण एवं (२) हिन्दू समाज के गुण-दोषों की जाँच। पात्र प्रकरण में हम ‘यवन’ पात्र के अन्तर्गत यवन-विरोधी दृष्टिकोण की चर्चा कर चुके हैं। हिन्दू समाज की अनेक कुरीतियों की नाटककारों ने चर्चा की। जन्मपत्री मिलाने वालों की निन्दा की गई^१। बालविवाह एवं विवाह संबंधी अपव्यय की हानियाँ बताई गई^२।

१. बाल विधवा संताप नाटक, बालविवाह दूषक, वृद्धावस्था विवाह नाटक, विवाह विडम्बन नाटक, दुःखिनी बाला रूपक, रुक्मणी हरण, मिथिलेश कुमारी।

२. सराफो नाटक, विवाह विडम्बन, देशदशा नाटक।

विवाह के माध्यम, नाई ब्राह्मणों की स्वार्थपरता के चित्र खींचे गए। उन्होंने निष्कर्ष निकाल कर बताया कि विवाह का आधार प्रेम होना चाहिए, न कि ये नाई ब्राह्मण। माता-पिता की आज्ञा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है परस्पर का प्रेम^१। नाटककारों ने हिन्दू स्त्रियों के अंधविश्वास के भी दोष दिखाए। ये स्त्रियाँ ओम्ना-दरसनियों पर विश्वास कर हानियाँ उठाती हैं^२। हिन्दू समाज के साधु, गोसाईं, साधु नहीं हैं बरन् स्वादु हैं जो हिन्दुओं के धन के साथ धनवालियों का भी स्वाद लेते हैं^३। मन्दिरों के पुजारियों का भी दुराचरण खोला गया^४। हिन्दू लोग मांसमदिरा का व्यवहार करने लगे हैं और वेश्यागामी बन गए हैं, इसकी निन्दा की गई^५।

नाटककारों ने हिन्दुओं के संगठित होने का विगुल बताया है। उन्होंने कहा—हिन्दुओ! तुम्हारी फूट ने ही देश का सर्वनाश किया है। भारतेन्दु जी ने बारबार इस 'फूट' का रोना रोया है (भारत दुर्दशा अंक १ व २, अघेर नगरी, अंक २, नीलदेवी दृश्य ८ व ९), न्याय सभा नाटक तो लिखा ही हिन्दू ऐक्य पर गया है। अकबर अपने हृदय की बात कह देता है कि यदि हिन्दू संगठित हो जायें तो मैं उनकी बात मानूँगा। यहाँ अकबर, अंग्रेजी राज्य है। गोरक्षा सबधी सभी नाटकों, रामलीला विजय, और ऐतिहासिक नाटकों में हिन्दू ऐक्य पर सर्वत्र बल दिया गया है।

हिन्दू समाज सम्बन्धी अन्य चित्र एवं विचार भी मिलते हैं। संध्यावंदन^६,

१. रतिकुसुमायुध नाटक (दृश्य ३), मयंक मंजरी (अंक २), देशदशा ५-२, एवं विद्या सुन्दर।

२. भारत दुर्दशा में रोग का कथन (अंक ४), जय नारसिंह की, देशदशा अंक ७।

३. कलिकौतुक रूपक, मनोरंजनी, तनमनधन गोसाईं जी के अर्पण, देशदशा।

४. कलिकौतुक रूपक, भारतीहरण (५-३)।

५. वेश्या विलास, वारांगना रहस्य, रणधीर प्रेममोहिनी, वैदिकी हिंसा, आनन्दोद्भव, भारत आरत (खड्ग बहादुर मल्ल कृत), भारत दुर्दशा, सत्योदय।

६. सीता स्वयंवर २-१-५६। रणधीर प्रेममोहिनी २-२, ३-५। बन्दोदीन दीक्षितकृत सीताहरण १-१। मयंक मंजरी अंक ३। देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत सीताहरण १-२। रति कुसुमायुध १-१। शील सावित्री नाटक ३-१। विद्याविनोद १-२। सत्यवती ६-२। सावित्री दृश्य ८। प्रेम वाटिका दृश्य ७। विद्यासुन्दर २-२। मिथिलेशकुमारी अंक १।

प्रारब्ध^१, ईश्वर^२ और शकुन^३ पर विश्वास—ऐसे असंख्य तत्कालीन विचार एवं उद्गार इन नाटकों में भरे पड़े हैं।

देशकाल दोष

आलोच्यकाल के नाटक देशकाल सम्बन्धी विविध चित्र देते हैं तो दूसरी ओर देशकाल दोषों से भी भरे हैं। श्री अग्रहरि कृत सुलोचना सती नाटक में ताजियों के पूजने वाले उपस्थित हैं (४-१), तबलीग और शुद्धि का जोर है, (२-१) और पद्मावती के पतिव्रत धर्म की बड़ाई हुई है (३-२)। दामोदर शास्त्री कृत रामलीला के बाल कांड में राजसो के राज्य में अंग्रेजी डाकखाने थे, तार द्वारा सूचना पहुँचती थी (४-१८) और अयोध्याकांड में यवन दिखलाई पड़ते हैं (४-१)। द्वापरयुगीन कृष्ण जी के यहाँ फर्श पर वाफदा बिछती थी, भाड़ फानूस टँगते थे और फरहाद के गुण गाए जाते थे (युगल बिहार नाटक ६-१) एवं तमंचे का प्रयोग होता था (युगल बिहार ७-५)। कृष्ण और राम के यहाँ खुरमा, जलेबी और अमरती खाने को मिलती थी (युगल बिहार ७-६ एवं सीता वनवास प्रवेशक ४)। राधाजी के यहाँ 'गुलाब और गुलतरा' फूल पहिनने के लिए थे (प्रेम बेल अंक १)। सीता जी की वाटिका में गुलाब खिलता था, (सीता स्वयंवर ५-७), और पतंग उड़ाया जाता था (सीता स्वयंवर ४-६)। कृष्ण के रास में 'रवाब' बजा करता था (खड्गबहादुर मल्ल कृत महारास १-३)। प्रह्लाद हाथों में करताल ले कर अन्य सहपाठियों के साथ कीर्तन करता था (प्रह्लाद चरित्र दृश्य ८)। दमयन्ती के 'कैंडीडेट' थे (दमयन्ती स्वयंवर ६-२)। कृष्ण के समय का विदूषक 'सलाम' करता था और उस समय अंग्रेजी बोली जाती थी (युगल बिहार नाटक १०-२)।

१. अभिमन्यु ६-१। रणधीर प्रेममोहिनी १-२, ३-२। लावण्यवती सुदर्शन १-१। मयंक मंजरी अंक २। दमयन्ती स्वयंवर ७-२। भारत आरत, खड्गबहादुर मल्ल कृत १-१। विद्यासुन्दर १-१। शील सावित्री १-१। संयोगिता स्वयंवर ५-२। पुलिस नाटक ३-४। प्रेम सुन्दर ४-४।

२. चौपट चपेट अंक ६। भारतोद्धारक ३-२। माधवानल काम-कंदला १-२, ४-६। रणधीर प्रेममोहिनी १-२, ३-२, ३-३, ३-५, ४-१, ५-१। दुःखिनी बाला रूपक दृश्य ३-४, ५-६। महा अन्धेर नगरी दृश्य २। बाल्यविवाह नाटक २-८, ४-१०, १०-२४। वृद्धावस्था विवाह नाटक दृश्य २ व ४।

३. लावण्यवती सुदर्शन ५-७। अभिमन्यु ५-२। रणधीर प्रेममोहिनी ३-२। सत्य हरिश्चन्द्र अंक १।

सिकन्दर के समय में 'मुसल्लों के लहू की नदियाँ' बहती हैं और सिकन्दर के सैनिक 'अल्ला हो अकबर' 'या अली' चिल्लाते हैं (पुरुविक्रम नाटक ३-१) । महाराणा प्रताप अपने 'प्राइवेट' कमरे में (१-२५) कुर्सी पर बैठते थे (अकबर गोरक्षा न्याय नाटक २-५) । अकबर के समय में औरंगजेब अत्याचार करता था, वहाँ अंग्रेज भी उपस्थित थे और अखबार छुपता था (गोवध निषेध नाटक १-१ एवं ३-१) । अकबर के पास ६००० हस्ताक्षरों सहित एक आवेदन पत्र, शिष्ट मंडल ले जाता है (अंबिकादत्त व्यास कृत गोसंकट नाटक अंक १) ।

— — — — —

अध्याय ८

उद्देश्य

संस्कृत नाटक-साहित्य की उत्पत्ति के पीछे दो उद्देश्य निहित हैं (१) उपदेश और (२) रस। भरतमुनि का कथन है कि नाट्य का निर्माण उपदेशार्थ हुआ है^१। नाट्य निर्माण का दूसरा उद्देश्य रस है। नाट्य दर्शन से आनन्द प्राप्त होता है, मनोरंजन होता है^२। यह रस कैसे आनन्द देता है, भरतमुनि ने विस्तार से इसका विवेचन किया है^३। संस्कृत में रस को ले कर आचार्यों ने विशद विवेचन किया है कि ऐतिहासिक पात्र, नट एवं सामाजिकों में से किसके द्वारा इसकी अभिव्यक्ति होती है। रूपकों के विभाजन में रस को बड़ा महत्त्व मिला है^४। इस प्रकार रस को दृष्टिकोण में रख कर नाटकों का निर्माण हुआ।^५ भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने भी इन दोनों उद्देश्यों को सामने रख कर नाटकों का निर्माण किया है^६।

१. (क) धर्म्यमर्थ्य यशस्य च सोपदेशं ससंग्रहम् ।

(ना० शा० चौखंभा, १-१४) ।

(ख) हितोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति १-११०

(ग) सर्वोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति १-१११

(घ) लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति १-११३

२. विनोदजननं काले नाट्यमेतद्भविष्यति १-११७

३. नाट्यशास्त्र (निर्णयसागर) ६-३१ से ३८ तक

४. दशधैव रसाश्रयम् (दशरूपक १-७) ।

५. 'नाटक से रसोद्रेक होना अनिवार्य है। यदि अग्नि जलाता नहीं, जल भिगोता नहीं, हिम शीत देता नहीं और शर्करा मधुर आस्वाद देती नहीं, तो वे नहीं के बराबर हैं। वैसे ही यदि नाटक के दर्शन से रसोत्पत्ति नहीं तो वह नाटक ही नहीं।' (प्रो० भो० गो० देशपांडेय का लेख 'मराठी नाटक' का० ना० प्र० सभा के हीरक जयंति ग्रन्थ में, पृ० ३६० पर)

६. नाटक रचना में दो प्रकार और भा हैं। एक यह कि रसिकों का मनरंजन हो—दूसरा प्रकार यह है कि नाटक रचना ऐसी हो कि जिससे भोताओं की प्रकृति, चित्त, मन की उमंग किंचित् भी नीच श्रेणी की न हाने पावे। (भूमिका भारतीहरण) ।

(ख) पं० प्रतापनारायण मिश्र ने ललिता नाटिका की आलोचना करते

उपदेश—

भारतेन्दु जी ने व्यवस्था दी थी कि 'आज कल की सभ्यता के अनुसार नाटक रचना में उद्देश्य फल उत्तम निकालना बहुत आवश्यक है। यह न होने से सभ्य शिष्ट गण ग्रन्थ का तादृश आदर नहीं करते अर्थात् नाटक पढ़ने वा देखने से कोई शिक्षा मिले, जैसे सत्य हरिश्चन्द्र देखने से आर्य जाति की सत्य प्रतिज्ञा, नील देवी से देशस्नेह इत्यादि शिक्षा निकलती है'। इस काल के नाटककारों ने नाटक-निर्माण के समय यह ध्यान रखा है कि नाटक से कोई न कोई शिक्षा अवश्य मिले। यह युग ही उपदेश प्रधान था। अनेक सुधारकों और संस्थाओं ने सामाजिक आन्दोलनों को चलाया था। फिर नाटककार कैसे अपने वातावरण से प्रभावित न होते। नाटकों की भूमिकाओं एवं प्रस्तावनाओं से स्पष्ट है कि नाटकों का निर्माण शिक्षा देने के लिए किया गया था। शील सावित्री की भूमिका में लेखक कहता है 'इस पुस्तक के निर्माण में मेरा उद्देश्य है स्त्री शिक्षा और उनका सदाचार सुधार।' मोरध्वज की भूमिका में नाटककार अपना उद्देश्य प्रकट करता है 'इस नाटक के देखने से कुछ कुछ मनुष्य अपने पुरुषार्थों के कर्तव्य और वचन बंधता को स्मरण कर किचिन्मात्र जो उनके लालन पालन में कटिबद्ध होंगे।' श्री काशीनाथ खत्री अपने लघु-रूपक संग्रह परम मनोहर तीन इतिहासिक रूपक की भूमिका में स्पष्ट कर देते हैं कि इन नाटकों से दर्शक और पाठक शिक्षा लेंगे कि संसार में विषयासक्त और परस्त्रीगामी पुरुष की चाहे वह कितनी उच्च पद के क्यों न हों, कैसी कुदशा और अपकीर्ति होती है।' प्रेम सुन्दर नाटक के समर्पण में लिखा गया है 'इस पुस्तक में मैंने अपनी लघु बुद्धि अनुसार यह दर्शाया है कि सच्ची मित्रता किसे कहते हैं।' कमल मोहिनी भँवरसिंह नाटक के निवेदन में लेखक दर्शकों से निवेदन करता है कि 'आप भी परस्त्रीगमन को छोड़ दीजिये।' और अपने उद्देश्य को भूमिका में स्पष्ट करता है कि 'प्रेम करने के कितने दुःख होते हैं उनके दिखाने के वास्ते ही यह नाटक रचा।' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और पं० दामोदर शास्त्री ने अपने सत्य हरिश्चन्द्र एवं बालखेल या ध्रुव चरित्र नाटकों को बालकों पर अच्छा प्रभाव डालने के लिए ही रचा था^१। भारतेन्दु जी एवं

पिछले पृष्ठ से सम्बद्ध—

कहा 'न तो उससे कोई सदुपदेश ही निकलता है न किसी रस का कुछ असर जी पर होता है।' (ब्राह्मण १५ सितम्बर १८८३ पृ० ८१)।

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग पहिला, पृ० ७४०।

२. दोनों नाटकों की भूमिका में व्यक्त मत।

लाला देवराज अपने नीलदेवी एवं सावित्री नाटकों की भूमिका एवं प्रस्तावना में स्पष्टतया कह देते हैं कि उनका उद्देश्य स्त्रियों को शिक्षा दिलाना है। अन्य नाटकों की प्रस्तावनाओं में सूत्रधार या नटी घेषणा करते हैं कि नाटक रचने का उद्देश्य है कुछ शिक्षा देना^१। अब तक उदाहरण प्रधानतया पौराणिक, ऐतिहासिक एवं प्रेम नाटकों से दिये गए हैं क्योंकि सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक नाटकों का तो निर्माण ही उद्देश्य विशेष से हुआ था। अनेक नाटकों के नामों से ही इस उपदेश प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है^२।

रस

भारतेन्दु जी अपने नाटक नामक निबन्ध में नाटक रचना का मुख्य उद्देश्य बताते कहते हैं 'प्रसंग क्रम से नाटक में कितनी भी शाखा-प्रशाखा विस्तृत हो और गर्भांक द्वारा आख्यायिका के अतिरिक्त और कोई विषय वर्णित हो किन्तु मूल प्रस्ताव निष्कप रहै तो उसकी रस पुष्टि करने को मुख्य उद्देश्य कहा जाता है।' नाटककारों ने अपने नाटकों में रसोत्पादन पर ध्यान रखा है, यह नाटकों की भूमिका और प्रस्तावनाओं से स्पष्ट है। कल्पवृक्ष नाटक के मुखपृष्ठ पर ही नाटक को 'शृङ्गार वीर रस' का एक अपूर्व रूपक लिखा गया है। सीताहरण का लेखक अपने नाटक को 'करुणा का फाटक' बताता है। हरिऔध जी अपने प्रद्युम्न विजय को 'वीर रस का उत्तम रूपक' मानते हैं। ललिता नाटिका को लेखक 'शृंगार हास्य रसमय गीति रूपक' बताता है। अभिमन्यु नाटक का सूत्रधार कहता है 'इन प्रेमी रसिक जनों को कोई उत्तम नाटक दिखाना चाहिये जिसमें नवों रस झलकते हों,' इस पर नटी कहती है 'इसमें करुणा रस और वीर रस ऐसा झलकाया है मानों सान्नात् दर्श रहा है अक्षर-अक्षर से करुण रस टपक रहा है।' पुरुविक्रम की प्रस्तावना में नट प्रस्ताव करता है 'कोई ऐसा अभिनय हो जिसमें वीर रस और करुण रस दोनों टपकते हों और बीच-बीच में रौद्र रस की भी फुहार सी पड़ने लगे।' लावण्यवती सुदर्शन की नटी नाटक के विषय में बताती है 'इस नाटक में प्रेम और करुणा आदि रस प्रत्यक्ष दिखाये हैं, जिसके अक्षर-अक्षर

१. अग्रहरी कृत सुलोचना सती, मृत्युसभा, सावित्री नाटक, मनो-रंजनी, प्रेमसुन्दर, कुंदकली, गंगोत्री, अंजना सुन्दरी।

२. सोमासती, सती चरित्र, सत्योदय, दिवारी के ज्वारी, कन्या संवोधिनी नाटक, गोवध निषेध, गोरक्षा प्रहसन, बाल विधवा संताप नाटक, दुःखिनी बाला रूपक, अचला विलाप, विवाह विडम्बन, वृद्धावस्था विवाह नाटक, हिन्दी उर्दू नाटक।

से प्रेम रस टपक रहा है।' कमल मोहिनी भँवरसिंह का सूत्रधार प्रस्ताव करता है कि 'करण रस का वियोगान्त नाटक खेला जाय' तो महाराणा प्रतापसिंह के परिपार्श्वक का प्रस्ताव है कि वीररस-पूर्ण नाटक खेलें। चन्द्रावली नाटिका का सूत्रधार तो कहता है कि नाटिका क्या है मानो प्रेम का अवतार है।

नाटककारों ने फलतः नाटकों में रस-वर्षा कराई है।

रस-निरूपण

शृंगार रस—शृंगार के दो पक्ष हैं, संयोग और वियोग। नाटकों में दोनों का चित्रण बहुतायत से हुआ है।

संयोग चित्रण—संयोग चित्रण के भी दो रूप हैं, शारीरिक और मानसिक।

शारीरिक संयोग चित्रण—यह चित्रण भी दो रूपों में किया गया है (१) स्थिर और (२) क्रियात्मक चित्रण। स्थिर चित्रण में नायक नायिका को देख कर या नायिका, नायक को देख कर उसकी शोभा, शरीरांग और वेशभूषा का वर्णन करती है। पात्र प्रकरण में शरीरांग वर्णन के उदाहरण दिये जा चुके हैं। क्रियात्मक चित्रण भी दो प्रकार का दिखाई देता है—अभिधेय और लाक्षणिक। अभिधेय संयोग शृङ्गार में शारीरिक मिलन का वर्णन है। यह अधिकांशतः अश्लीलता की सीमा पर पहुँच गया है। दमयन्ती स्वयंवर में दमयन्ती नल को बलपूर्वक आलिंगन करती है और दोनों एक दूसरे का मुख चूमते हैं (१०-२)। कलिकौतुक रसक में गलबहियाँ डाल कर चूमने की क्रिया होती है (१-११)। अकबर गोरक्षा-न्याय नाटक में मानसिंह चन्द्रमुखी को गले लगाता है (१-१५)। माधवानल कामकंदला में आलिंगन-चुम्बन बहुत है (३-३)। कुंदकली में नायक नायिका कुछ देर आलिंगनबद्ध रहते हैं (अंक १०)। थियेट्रिकल नाटकों में तो आलिंगन चुम्बनो का बाजार खुला है। इससे भी आगे बढ़ कर नाटककारों ने रति या संभोग का भी वर्णन किया है।^१ नाट्यशास्त्र की दृष्टि से आलिंगन चुम्बन इत्यादि वर्जित दृश्य हैं किन्तु तत्कालीन हिन्दी नाटककारों ने इस नियम की अवहेलना की है। यह पश्चिमी अंग्रेजी नाटक, इन्द्रसभा एवं थियेट्रिकल नाटक, ब्रजभाषा नाटक और रीतिकाल का प्रभाव है।

संयोग का लाक्षणिक क्रियात्मक वर्णन कम हुआ है। जहाँ नाटककार संकेतों द्वारा संयोग या मिलन का चित्रण करता है वहाँ लाक्षणिक चित्रण है। उदाहरण—

१. मयंक मंजरी (अंक १), माधवानल कामकंदला (२-१), कुंदकली (अंक ७), बाल्यविवाह दूषक (अंक ३)।

(क) मालती एक गुलाब का फूल तोड़ कहती है—‘अहा गुलाब तेरा रूप जैसा सुन्दर है नाम भी वैसा ही मनोहर है और मेरे जीवन का मूल कारण ही है।’ उसका प्रेमी गुलाबसिंह दूसरी ओर से छिपे-छिपे कहता है—

या आसा अटक्यो रहै अलि गुलाब कै मूल ।

फिर बसन्त ऐहै सखी इन डारन तरु फूल ॥ (प्रतापसिंह ३--३)

(ख) तत्ता चकित सी राजा की ओर देख बेदी सँवारती है और राजा मुस्करा कर दाहने हाथ से अपनी पगड़ी जमाता है ।

(तत्ता संवरण अंक १)

(ग) विद्या संकेत से चपला से बैठाने को कहती है और सुन्दर बैठता है और विद्या लाज से वस्त्र से अपना सब शरीर ढाँक लेती है ।

(विद्या सुन्दर २--१)

मानसिक—

नायिका या नायक कैसे प्रतीक्षा करते हैं और मिलन समय क्या-क्या भाव उठते हैं इसका सुन्दर चित्रण हिन्दी नाटकों में हुआ है । संयोगिता को नायक की प्रतीक्षा है तो सखी करनाटकी कहती है ‘इस समय तो कुछ बड़ी चटपटी सी लग रही है कभी मार्ग की ओर कान लगाती हो कभी द्वार की ओर दृष्टि दौड़ाती हो कभी शृंगार सँवारती हो कभी भूषण उतारती हो कभी कुछ कहना चाहती हो फिर कुछ सोच विचार कर मौन हो रहती हो ।

(संयोगिता स्वयंवर ४--१)

नायिका बड़ी प्रतीक्षा में थी किन्तु जब नायक सामने आ जाता है तो लजा जाती है । नायिका, न उठ कर आदर कर पाती है, न नायक को जाने देना चाहती है । वह मन में विसूरती है ‘हाय क्या करूँ ? जिसके हेतु यह सब व्याकुलता थी जिसका रूप गुण चेत बार-बार अचेत हुई जाती थी, जिसकी लगन ने मुझे ऐसी निर्लज्ज कर दिया अब वही प्राणनाथ सामने खड़े हैं और लाज निगोड़ी दर्शन से वञ्चित रखती है अहा बिहारीदास ने कैसा ठीक कहा है—

इन दुखिया अखियान को सुख सिजोई नाहि

देखत बनै न देखते बिनु देखे अकुलाहि ॥

हाय ! प्यारे को कैसे आसन दें मनोज ने ओठों को सी रक्खा है । हाय केतकी की वक्तृत्व शक्ति कहाँ गई और मन ! कहाँ यह प्रण कि जब लों विचार से पराजित न होऊँगी विवाह न करूँगी और कहाँ अब प्रीतम के दर्शन मात्र ही से अवाक् हो गया ।’ (मिथिलेश कुमारी अंक ५) ।

नायिका को जब नायक के सम्मुख से उठना पड़ता है तब उसके

मन की क्या दशा होती है इसका सुन्दर चित्रण नाटककार ने किया है। उसका मन कह रहा है रुकी रह, उधर माता की आज्ञा खींचती है कि नहीं, रुक मत। बेचारी बुरी फँसी है। आँखें कहती हैं देख, तो मन कहता है सावधान, अपने को वश में रख।

(प्रेम सुन्दर १-३)

इस प्रकार हिन्दी नाटकों में संयोग वर्णन सुन्दरता से स्थान-स्थान पर चित्रित हुआ है।

वियोग—

वियोग के सुन्दर और सरस चित्र नाटकों में भरे पड़े हैं। आसन्न वियोग का बड़ा मनहर चित्र रणधीर प्रेममोहिनी (३-५) में है जब प्रातः काल नायक नायिका जुदा होते हैं। नाटकों में वियोग की शास्त्र सम्मत दशाओं—स्मरण, गुणकथन, प्रलाप, उन्माद, मूर्च्छा इत्यादि के चित्रण भरे पड़े हैं। अकेली चन्द्रावली में ही इन सभी दशाओं के मार्मिक चित्र अंकित हैं। अन्य प्रेम नाटक भी पँछे नहीं हैं। इस काल के वियोग वर्णन की एक विशेष शैली भी बँध गई थी जिसे 'प्रलाप' शैली कह सकते हैं। इसमें पात्र 'हाय-हाय' का अधिक प्रयोग करता है और सम्बोधन करता जाता है। वैसे तो 'प्रलाप' वियोग की दश दशाओं में से एक है किन्तु भारतेन्दु काल में यह एक रुढ़िबद्ध शैली बन गई थी और नाटककारों ने वियोग एवं करुणा को प्रकट करने के लिए इसे अपनाया है। चन्द्रावली नाटिका से इसका आरम्भ हुआ (अंक ३)। फिर तो नाटककारों ने इसे इतना पसन्द किया कि प्रायः सभी नाटककारों ने इसको अपना लिया। उदाहरण के लिए देखिए लावण्यवती सुदर्शन (२-४), विवाहिता विलाप (भाँकी ४), स्वमणी परिणय (अंक ३)।

यह वियोग वर्णन गद्यात्मक और पद्यात्मक दोनों रूपों में हुआ है। संस्कृत नाटकों में भी वियोग भरी कविताओं के दर्शन होते हैं। ब्रजभाषा नाटकों में भी कविता में वियोग के भाव प्रकट हुए हैं। यह शैली भारतेन्दु काल में भी दिखलाई देती है। सभी नाटककारों ने कविता एवं गीतों में वियोग के उद्गार प्रकट करवाये हैं।

अन्य रस—

करुणरस की उत्पत्ति अर्थ ही दुःखान्त नाटक लिखे गए थे। करुण रस चित्रण में भी विप्रलंभ शृंगार वाली प्रलाप या हाय-हाय वाली शैली का प्रयोग बहुतायत से मिलता है।^१ इस शैली को अपनाने का एक कारण यह

१. शील सावित्री अंक ४, गंगोत्री नाटक ५-२, मोरध्वज अंक ५।

भी था कि पुरुष ही स्त्री का अभिनय करता था। इस अधिक 'हाय-हाय' करने से पुरुष पात्र की अस्वाभाविकता छिप सकती थी। दूसरे, स्त्रियाँ प्रायः 'हाय-हाय' करती भी अधिक हैं। पद्य एवं गीतों में भी करुण भाव प्रकट किये गए हैं। वीर रस, प्रधान^१ रूप से नाटकों में प्रयुक्त हुआ है और सहायक^२ रूप से भी। प्रद्युम्न, युद्ध वीर है (प्रद्युम्न विजय नाटक), राजा हरिश्चन्द्र सत्यवीर है (सत्य हरिश्चन्द्र नाटक), भामाशा दानवीर है (प्रतापसिंह नाटक), नीलदेवी के राजा सूर्यदेव धर्मवीर है (नीलदेवी) और पुरु एवं प्रताप, देशवीर है (पुरु विक्रम नाटक एवं प्रतापसिंह)। वीर रस के चित्रण में परम्परा-प्राप्त ओज गुण वाली शैली भी अपनाई गई है जिसमें कर्णकटु शब्दों के प्रयोग से ओज गुण भरा गया है तो सरल शब्दों द्वारा भी वीर भाव की अभिव्यक्ति की गई है। उदाहरण—

(क) कं कं करधर कृपाण फं फं फेरत सुजान

गं गं गहि लेत वान, खं खं खेंचत कमान । (संयोगिता स्वयंवर)

(ख) भं भं भट भिरत आन कं कं कर ले कान ।

(माधवानल काम-कंदला ६-१)

(ग) 'कायर भागने का उपक्रम करते हैं। अर्द्धमतकों का आर्क्षनाद

किये गए हैं। वीर रस, प्रधान^१ रूप से नाटकों में प्रयुक्त हुआ है और सहायक^२ रूप से भी। प्रद्युम्न, युद्ध वीर है (प्रद्युम्न विजय नाटक), राजा हरिश्चन्द्र सत्यवीर है (सत्य हरिश्चन्द्र नाटक), भामाशा दानवीर है (प्रतापसिंह नाटक), नीलदेवी के राजा सूर्यदेव धर्मवीर है (नीलदेवी) और पुरु एवं प्रताप, देशवीर है (पुरु विक्रम नाटक एवं प्रतापसिंह)। वीर रस के चित्रण में परम्परा-प्राप्त ओज गुण वाली शैली भी अपनाई गई है जिसमें कर्णकटु शब्दों के प्रयोग से ओज गुण भरा गया है तो सरल शब्दों

अध्याय ९

अभिनय

नाटक का अभिनय या रंगमंच से अभिन्न संबंध पूर्व और पश्चिम दोनों में स्वीकार किया गया है। भरतमुनि और धनंजय ने नाट्य को अनुकृति या अनुकरण माना है^१। यह अनुकरण कहाँ होगा? रंगमंच पर ही। रंगमंच की प्रमुखता को ध्यान में रख कर भरत मुनि अपने नाट्यशास्त्र में आरंभ से ही रंगमंच का विस्तृत वर्णन करने लगते हैं। पहिला और दूसरा अध्याय रंगमंच की व्यवस्थाओं से ही भरा है और पुनः आचार्य भरत १७वें अध्याय के १२३वें श्लोक में नाटक और रंगमंच की अभिन्नता पर बल देते हैं और कहते हैं कि मेरे बताए इन लक्षणों वाला नाटक अभिनय के योग्य हो जाता है। दशरूपक-कार रूपक की व्याख्या करते हुए कहता है 'नाट्य में नट पर रामादि पात्रों की अवस्था का आरोप किया जाता है' (दशरूपक १-७)। साहित्य-दर्पण-कार का भी यही मत है^२। संस्कृत के रूपक शब्द के समान हिन्दी में नाटक शब्द है, यह हम स्पष्ट कर चुके हैं। पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी नाटक शब्द की व्युत्पत्ति बता कर इसका अभिनय से अभिन्न संबंध जोड़ते हैं। वे कहते हैं 'नाट्य और नाटक शब्द नट् धातु ही से बने हैं।' नट् नाचने के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। नट् धातु में 'अच्' प्रत्यय लगाने से नट शब्द बना है, उसका अर्थ है नाचने वाला अर्थात् नटों का व्यवसाय नाचना है... नटों का कार्य नाट्य अथवा नाटक कहलाता है' (नाट्य शास्त्र, प्र० आवृत्ति, पृ० १)। नाटक में नटों का सहयोग अनिवार्य है। और रंगमंच ही नाटक की सफलता की कसौटी है।

अनेक प्रमुख पश्चिमी विद्वान् भी इस मत से सहमत हैं और नाटक एवं रंगमंच की अभिन्नता स्वीकार करते हैं। श्री ऐशले ड्यूक्स का कथन है कि नाटक और प्रेक्षकों के बीच में अविच्छिन्न सूत्र है। नाटक का अस्तित्व ही अभिनय है^३। प्रसिद्ध विद्वान् सरसी का मत है कि प्रेक्षक रहित नाटक को

१. नाट्यशास्त्र (चौखंभा) १-१०६, ११६ और ११८। दशरूपक १-७।

२. साहित्य दर्पण ६-१।

३. "The bond between drama and its audience

कल्पना भी असम्भव है^१। प्रसिद्ध नाट्याचार्य प्रो० निकल सरसी के मत का समर्थन करते हैं, और कहते हैं, कि नाटक केवल साहित्य की शोभा के लिये न कभी लिखा जाना चाहिये और न मुद्रित होना चाहिये^२। श्री मिलेट एवं चेंटली, नाटक के आलोचकों को सावधान करते हैं कि पाठक सावधान रहना, यह कभी मत भूलना कि नाटक की उत्पत्ति ही अभिनय के लिये हुई है और नट इसका अनिवार्य अंग है^३। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका नाटक (ड्रामा) शब्द की व्याख्या करके बताती है कि नाट्य का अर्थ ही है कार्य रूप से रखना। नाटक का आरंभ ही कार्य और दृश्य से है। इसमें शब्दों से पूर्व कार्य, संवाद से पूर्व नृत्य और मानसिक नाट्य से पूर्व शारीरिक नाट्य का समावेश है^४। भारतेन्दु कालीन नाटककारों का भी यही मत है कि नाटक अभिनेय ही होना चाहिए। भारतेन्दु जी का नाटक निबन्ध अभिनेय संकेतो से भरा है। स्थान स्थान पर वे दर्शकों एवं अभिनय की चर्चा करते हैं। पं० शालिग्राम शास्त्री अपने नाटक, लावण्यवती सुदर्शन की प्रस्तावना में दर्शकों की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि ऐ नाटककार! यदि तू नाटक ही रचना चाहता है तो ऐसा नाटक रच कि दर्शक लोग आनन्द में भर कर

is indestructible, plays truly live in performance alone". Ashlay Dukes' "Drama", 2nd edition, 1947, p. 28.

1. A play without an audience is inconceivable.

Nicoll's Theory of Drama, page 30.

2. One thing, however, must be emphasized continually, and that is that the drama may never be taken to exist as merely a written or a printed work of literature.

Nicoll's Theory of Drama, p. 31.

3. "A drama is written to be performed" the student must not forget that the actor is an element indispensable to the drama." The art of Drama by Fred B. Millet and Gerald Eades Bentley, p. 7

4. Drama is transliteration of the Greek "opau" which means a thing done. Drama begins with action and spectacle. The deed comes before the word, the dance before the dialogue, the play of body before the play of mind. Encyclopaedia Britannica, page 575.

इधर उधर नटों का मुँह उत्सुकता से तकते रहें^१ । पं० बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन जी भारत सौभाग्य नाटक के उपक्रम में कहते हैं—‘जब तक अभिनय न हो नाटक से क्या फल होगा ।’

फलतः नाटक अभिनय के लिए बन रहे थे और नाटकों का अभिनय भी हो रहा था । लोगों की रुचि अभिनयों की ओर बढ़ रही थी । कल्प वृक्ष का सूत्रधार कहता है कि ‘ग्रामीण मनुष्य तथा छोटे छोटे बालक और स्त्रियों तक नाटक देखने को टिड्डी दल की भाँति टूटी पड़ती हैं ।’ जनता थियेट्रिकल नाटको को देखने धक्का-मुक्की कर के जाती थी । वे लैला मजनूँ, गोपीचन्द भरथरी, इन्द्रसभा, गुलबकावली इत्यादि देखने के लिए मक्खियों की नाईं टूटते थे^२ । पारसी कम्पनियों नाम और धन दोनों कमा रही थीं^३ । केवल थियेट्रिकल ही नहीं, लोग साहित्यिक नाटको को भी चाव से देखते थे । कपटी मुनि नाटक में सूत्रधार परमेश्वर को धन्यवाद देता है कि लोग अच्छे नाटको को देखने के लिए बड़ी सख्या में आने लगे हैं । विवाह विडंबन का सूत्रधार बताता है कि दर्शक, नाटक देखने में रुचि दिखाते हैं । स्थान स्थान पर हिन्दी के साहित्यिक नाटकों का अभिनय हो रहा था । इनमें सबसे अधिक लोकप्रिय थे भारतेन्दु जी के नाटक । लावण्यवती सुदर्शन की भूमिका से पता चलता है कि भारतेन्दु जी के नाटकों का अभिनय काशीराज की सभा में होता था । बा० शिवनन्दन सहाय बताते हैं कि उनके नाटक वैदिकी हिंसा, नीलदेवी, भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी, कानपुर, प्रयाग, बलिया, बनारस, डुमरांव, आगरा, इत्यादि नगरों में कई कई बार खेले गए^४ ।

उनका भारत जननी नाटक भी कई बार खेला गया^५ । भारत दुर्दशा के एक बार के अभिनय से प्रतापनारायण मिश्र क्रुद्ध हो गए थे क्योंकि अभिनय में गीत बाहर से भी थोप दिये गए थे, और अभिनय ठीक न हुआ था^६ ।

१. नाटक रचिबो तो भलो जब रीझें सब लोग

इत उत मुँह तकते रहें आनंद और वियोग ।

(प्रस्तावना, लावण्यवती सुदर्शन नाटक)

२. (क) शील सावित्री, गो संकट नाटक, गोरक्षा नाटक और मयंक मंजरी की प्रस्तावनाएँ । (ख) प्रेम वाटिका की भूमिका ।

३. भारती हरण की भूमिका ।

४. बा० शिवनन्दनसहाय कृत हरिश्चन्द्र, पृ० १७१, १६३, १६५, १६८ ।

५. बा० ब्रजरत्नदास जी कृत ‘भारतेन्दु हरिश्चन्द्र’ पृ० १७३ ।

६. (ब्राह्मण १५ अक्टूबर १८८५) एव देखिये खंड तीन में राज नैतिक नाटकों के अंतर्गत भारत दुर्दशा की चर्चा ।

भारतेन्दु जी चन्द्रावली के अभिनय की तैयारी में लगे थे^१। भारतेन्दु जी के नाटकों के अभिनय का प्रचलन जब इतना बढ़ा कि सर्वत्र वे खेले जाने लगे तो भारतेन्दु जी को कहना पड़ा कि हमारे ही नाटकों को खेल कर दूसरे उत्साहियों के उत्साह को भंग न करना, वरन् बीच बीच में उन लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए उन लोगों के बनाये नाटकों का भी अभिनय करना^२।

केवल भारतेन्दु जी के ही नाटक नहीं, अन्य नाटकों के अभिनीत होने के प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं। निम्नलिखित नाटकों के खेले जाने की सूचना नाटकों की प्रस्तावनाओं, भूमिकाओं, पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं से प्राप्त होती है—

द्रौपदी नाटक^३, रुक्मणी नाटक^४, रणधीर प्रेममोहिनी^५, हठी हमीर^६, जय नारसिंह की^७, कलिकौतुक रूपक^८, गोसंकट नाटक^९ (प० अम्बिकादत्त व्यास कृत), जानकी मंगल,^{१०} विद्याविनोद^{११}, माधवानल-कामकंदला^{१२}, वेणी संहार^{१३}, लांगणाः सुदर्शन^{१४}।

नाटकों का निर्माण अभिनयार्थ हुआ था यह नाटकों की भूमिकाओं

१. बा० ब्रजरत्नदास कृत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ० १६६।

२. सरस्वती नाटक की प्रस्तावना।

३. मोरध्वज की प्रस्तावना।

४. " "

५. कमल मोहिनी भँवरसिंह की प्रस्तावना, कि 'कई बार खेला गया।' भारतेन्दु जी कृत नाटक निबन्ध (भारतेन्दु ग्रंथावली) पृ० ७५५ एवं लावण्यवती सुदर्शन की भूमिका।

६. ब्राह्मण (४-५) १५ दिसंबर १८८७।

७. " "

एव कविवचन सुधा ८-३, ११ सितम्बर १८७६।

८. ब्राह्मण ४-५।

९. " "

१०. कविवचन सुधा ८-३।

११. विद्याविनोद की प्रस्तावना।

१२. पुरुषिक्रम की प्रस्तावना।

१३. प० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत अनुवाद। पुरुषिक्रम की प्रस्तावना में चर्चा है कि यह भी खेला गया था।

१४. कमलमोहिनी भँवरसिंह की प्रस्तावना कि 'कई बार खेला गया।'।

और प्रस्तावनाओं से तो स्पष्ट होता ही है, अन्य प्रमाण भी मिलते हैं। वे हैं नाटकों में दिये रंग-संकेत, और पाद-टिप्पणियाँ जिनमें अभिनय एवं रंगमंच की व्यवस्था संबंधी निर्देश दिये गए हैं।

अभिनय संकेत

अनेक नाटकों में अभिनय संकेत मिलते हैं। भारतेन्दु जी ने भारत दुर्दशा, भारत जननी और सत्य हरिश्चन्द्र में ये संकेत पाद-टिप्पणियों में दिये हैं। भारत दुर्दशा में भारत 'शिथिल अंग का अभिनय करता' प्रवेश करता है (अंक २) तो आलस्य 'जभाई लेता हुआ धीरे धीरे' आता है (अंक ४)। भारत जननी में नाटककार, भारत-सरस्वती का 'ठुमरी गाते हुए प्रवेश' कराता है और जाते समय संकेत करता है 'अंत का तुक गाते गाते और रोते रोते भारत-सरस्वती जाती हैं'। इसी प्रकार भारत-दुर्गा भी रोते रोते हाथ की तलवार को दो टुकड़ों में तोड़ कर जाती हैं (भारत जननी)। प्रेमघन जी भारत सौभाग्य नाटक में पात्रों के प्रवेश समय निम्न रंग-संकेत लिखते हैं—

ईज—'नखरे और नाज से उबली हुई'।

कवर्डिस—'भयभीत, दुबकती हुई'। (४-१)

तंगी—'संदूक घसीटती हुई'। (४-१)

बदयकवाले हिन्द—'मुँह से ज्वाला निकालता हुआ'। (१-१)

ललिता नाटिका में जब सूत्रधार आता है तो नाटककार ये अभिनय रंग संकेत देता है—'आँख मिचमिचा के चारों ओर देख नेत्रों पर चस्मा लगा सब को देखता हुआ' (प्रस्तावना)। गो संकट नाटक में लेखक विदूषक का अभिनय, रंग संकेतों में इस प्रकार से देता है—“ताली बजा के कूदने लगता है। कूदने में बगल से कूँडी गिर पड़ती है। जब तक कूँडी उठावे, तब तक घोंटा गिर पड़ता है, घोंटा उठा के कूँडी सभाले, तब तक दूसरी बगल से भोंग की पोटली गिर पड़ती है।” (अंक ३)

रामलीला नाटक (किष्किंधाकांड ४-७) में जब समुद्र तट पर हनुमान जामवान संवाद हुआ तो नाटककार पाद टिप्पणी में अभिनय संबंधी निर्देश देता है—“नाटक खेलने वालों को अभिनय रीति से इसके आगे दो चार उक्ति, वीर रस को मुरझाने वाली हैं। अतएव उनकी अंतिम उक्ति कर के खेलना चाहिये”। पुनः नाटककार अरण्य कांड (४-२) में पाद टिप्पणी में अभिनय निर्देश देता है “प्रायः हरणान्तर सीता की सर्व उक्ति नेपथ्य वा चलते चलते की हैं वैसे ही जटायु का युद्ध और उक्ति भी।”

वेशभूषा—

अभिनय के साथ साथ नाटककारों ने पात्रों की वेशभूषा भी दी है।

वेशभूषा रंग संकेतों में भी दी गई है और पाद टिप्पणी के निर्देशों में भी । भारत दुर्दशा और सत्य हरिश्चन्द्र में पात्रों की वेशभूषा पाद टिप्पणियों में दी गई है एवं प्रेम जोगिनी में रंग-संकेतों में । भारतेन्दु जी द्वारा वर्णित वेशभूषा दो प्रकार की है । पात्रों के अनुसार वेशभूषा है ताकि पात्र वास्तविक जैचें । सत्य हरिश्चन्द्र में पात्रों की वेशभूषा ऐसी ही दी गई है कि पात्रों की वास्तविकता भासित हो जाय । विश्वामित्र की वेशभूषा इस प्रकार दी गई है, “मृगचर्म, दाढ़ी, जटा, हाथों में पवित्री और कमंडल, खड़ाऊँ पर चढ़े ।” दूसरी वेशभूषा प्रतीकवादी है जिससे कुछ गूढ़ार्थ भी स्पष्ट होता है । हमने भारत दुर्दशा के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है कि भारत दुर्दैव से भारतेन्दु जी के दो अभिप्राय थे, (१) प्रधान रूप से यवन भारत-दुर्दैव है और (२) गौण रूप से अंग्रेज । भारत दुर्दशा में वे भारत-दुर्दैव की वेशभूषा को इस प्रकार देते हैं ‘आधा किस्तानी और आधा मुसलमानी वेश किये और हाथ में नंगी तलवार लिए है’ (भारत दुर्दशा अंक ३) । इस वाक्य से हमारा अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है । इसी प्रकार निर्लज्जता की वेशभूषा यह है—“जॉघिया, सिर खुला—ऊँची चोटी—दुपट्टा ऐसा गिरता पड़ता है कि अंग खुले, सिर खुला, खानगियों का सा वेश” (भारत दुर्दशा अंक २) । यहाँ निर्लज्जता को जॉघिया पहना कर अंग्रेज स्त्रियों की ओर संकेत किया और दुपट्टे से भारतीय स्त्रियों की ओर । भारत की वेशभूषा भी सांकेतिक है—“फटे कपड़े पहिने, सिर पर अर्द्ध किरीट, हाथ में टेकने की छड़ी” (भारत दुर्दशा अंक २) । फटे कपड़ों से भारत की दरिद्रता प्रकट की गई है । अर्द्ध किरीट से अभिप्राय है कि भारत की आधी राज्य-शक्ति जा चुकी है, शेष भी जाने को है । टेकने की छड़ी से भारतीयों की शक्ति-हीनता का परिचय दिया गया है । प्रेमचन जी ने भारत सौभाग्य नाटक में वेशभूषा द्वारा पात्र में वास्तविकता लाने का प्रयास किया है । उनके मरहटे की वेशभूषा में “मरहट्टी बड़ी पगड़ी, अंगरखा, धोती, दुपट्टा, रुद्राक्ष माला” है तो सिक्ख पंजाबी साफ़ा ओढ़े है । दूसरी ओर सांकेतिक या प्रतीकवादी वेशभूषा भी दी गई है । सेवा-कर्म नामक पात्र बंगाली का वेश बनाए है और उसके हाथ में सर्टीफिकेटों का पुलिन्दा है । ललिता नाटिका, महारास, गंगोत्री, विद्याविनोद, शील सावित्री, अभिमन्यु, युगलविहार नाटक, नागरी विलाप, महाअंधेर नगरी में जो वेशभूषा दी गई है वह वास्तविक है । पात्रों की जाति, वर्ण, धर्म, प्रान्त, वा देश के अनुसार वेश भूषा पहनाई गई है । भारतेन्दु जी ने भारत दुर्दशा में पात्रों की वेशभूषा के साथ पात्र का एकाध गुण भी दे दिया है जैसे भारत दुर्दैव की वेशभूषा के साथ ‘कूर’ शब्द भी दिया है (अंक ३) । महाअंधेर नगरी में नाटककार

वेशभूषा कम देता है, गुणों की मंजूषा अधिक उधाड़ देता है। मंत्री की वेश-भूषा में उसका मुख काला करा दिया है परन्तु साथ ही में “कौल, कामी, क्रूर, लबांग, पाखंडी, प्रजा से प्रतिकूल” शब्दों की तालिका भी दी है (१-१२)।

रंगमंच-व्यवस्था

भारतेन्दु जी ने अपने नाटक निबंध में अपना मत देते हुए कहा है कि प्राचीन भारत में चित्रपट्टी की व्यवस्था थी। जिसके द्वारा सरिता, नगर, पर्वत सागर इत्यादि के दृश्य रंगमंच पर दिखाए जाते थे^१। भारतेन्दु जी के काल में पर्दों का बहुतायत से प्रयोग हो रहा था। अतः उन्होंने संस्कृत नाटको में से उद्धरण दे कर यह बताने का प्रयास किया है कि प्राचीनकाल में पर्दों का व्यवहार होता था। भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने अपने नाटको में पर्दों के स्पष्ट संकेत दिये हैं। सती चन्द्रावली में नाटककार ने स्थान स्थान पर पर्दों के संकेत लिखे हैं, उदाहरण :—इस दृश्य में भीतर का परदा भारतवर्ष के चित्र का अथवा जंगल का होना चाहिए (दृश्य १)। सरस्वती नाटक में नाटककार ने पटाक्षेप का भार अभिरुचि और सुवीते पर छोड़ दिया है (प्रस्तावना)। विद्याविनोद नाटक की पादटिप्पणी में नाटककार निर्देश देता है—“स्टेज पर एक छोटा सा परदा बना हो। भीतर की ओर विद्या, कन्दला और तड़िता के सग और बाहर की ओर ढोगलसेन खड़े हों” (५-२)। थियेटरिकल नाटकों में प्रत्येक दृश्य के आरंभ में पर्दे की सख्या तक दी गई है। उदाहरण—

“पहला ऐक्ट—पहला सीन—साहिल दरिया—पर्दा नम्बर ६”

(नजीर कृत हरिश्चन्द्र)

“तीसरा ऐक्ट—दूसरा सीन—मठ—पर्दा नम्बर ६”

(अब्दुल्ला कृत शकुन्तला)

ध्वनि के सम्बन्ध में भी संकेत मिलते हैं। गीतों की तो नाटकों में भरमार है। भारतेन्दु जी ने चर्चरिका के सम्बन्ध में भी नियम बतलाया है। उनका कथन है कि जब एक गर्भोक्त समाप्त हो और दूसरे की तैयारी हो रही है तो इस समय नेपथ्य से सामूहिक वाद्य यन्त्र बजाए जायें या गीत हो। इसे ही चर्चरिका कहते हैं।^२ रामलीला नाटक (किष्किधाकांड ४-७) में नाटककार का निर्देश है कि ‘ब्राह्म सीन होते ही मंगलवाद्य बजना चाहिए। पुनः रामलीला (अरण्य कांड ५-२) में नाटककार निर्देश देता है कि वाण न

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली (भाग १) पृ० ७२२।

२. भारतेन्दु ग्रन्थावली (भाग १) पृ० ७२६।

छोड़ कर' कर्ण-वेधक शब्द होना चाहिए ताकि बाण छूटने का शब्द मिल जाय। वह बाण छोड़ने का निषेध करता है क्योंकि वह किसी के लग सकता है। अभिमन्यु नाटक (४-२) में नाटककार संकेत देता है कि 'सहस्र वेध गर्जन का शब्द' किया जाय। नाटककार प्रस्तावना के आरम्भ के समय हा ध्वनि-संकेत इस प्रकार देता है "नेपथ्य में शंख का शब्द सुनाई आ रहा है, कभी-कभी बीच में गम्भीर स्वर से रणसिंहे का घोर नाद होने लगता है, बाँसुरी के स्वर से मिले हुए गायन, लोग वियोग के रसीले पद गा रहे हैं और वीणा मृदंगादि अनेक प्रकार के यन्त्र बज रहे हैं।"

(अभिमन्यु नाटक)

प्रकाश के सम्बन्ध में भी संकेत एवं निर्देश प्राप्त होते हैं। भारतेन्दु जी ने भारत जननी नाटक में संकेत दिए हैं कि पात्र प्रवेश के समय किस रंग की चन्द्रजोत में प्रकाश किया जाय। भारत-सरस्वती के प्रवेश समय सफेद चन्द्रजोत छोड़ने का संकेत है तो भारत-दुर्गा के प्रवेश समय लाल चन्द्रजोत छोड़ने का। भारत-लक्ष्मी हरी चन्द्रजोत के प्रकाश में प्रवेश करती है। प्रेमघन जी अपने भारत सौभाग्य नाटक में और राधाचरण गोस्वामी भी इसी प्रकार अपने नाटकों में पात्रों के प्रवेश समय रंगीन चन्द्रजोत (मेहताव) छुड़वाने हैं। मयंक मंजरी में सूत्रधार इन्द्रसभा और पारसी नाटक कम्पनियों द्वारा प्रयुक्त शतरजी मशालों का उल्लेख करता है (प्रस्तावना)।

सरीफ़ी नाटक में रंगमंच व्यवस्था का विस्तृत वर्णन है। नाटककार बताता है कि नाटक के आरम्भ होने से पूर्व क्या प्रबन्ध किया जाय, नाटक का आरम्भ कैसे हो एवं कैसे नाटक को अग्रसर किया जाय। वह कहता है 'नाटक खेलने से एक दिन पहले सारे शहर में इशतहार बाँटे गये कि 'चलो-चलो देश का सुधार करने वाला बड़ा रोचक नया नाटक बना है उसका तमाशा देखो' जब तमाशे का समय आया तो हजारों आदमी जमा हुए और टिकट मूल ले लेकर स्टेज के अन्दर जा बैठे परदे के अन्दर से नाटक का मैनेजर आया, ईश्वर का ध्यान किया और कहा हे अन्तर्यामी सर्वाधार हमारे देशवासियों के चित्त और हृदय में ऐसा सच्चा उत्साह उत्पन्न कर दे.....' इस प्रकार नाटककार विस्तार से रंगमंच व्यवस्था देता है। वह यह भी बताता है कि कहाँ-कहाँ घटी बजेगी।

अनेक नाटककारों ने दृश्य-योजना के पर्याप्त रंग संकेत दिए हैं। इसके अन्तर्गत नाटककार गर्भांक के आरम्भ में रंग संकेत देता है कि मंच पर क्या-क्या वस्तु होगी और पात्र कैसे बैठेंगे। उदाहरण—

(क) अमीर गद्दी पर बैठा है। दो चार सेवक खड़े हैं। दो चार मुसाहिब बैठे हैं। सामने शराब के पियाले, सुराही, पानदान, इतरदान रक्खा

है। दो गवैये सामने गा रहे हैं। अमीर नशे में झूमता है। (नीलदेवी दृश्य १०)।

(ख) तख्तताऊस पर बादशाह बैठे हैं और अमीर वजीर उमरा आदि सब खड़े हैं बीच-बीच में नकीब चोपदार नज़र दौलत पुकारते हैं। इसी दृश्य की स्पष्टता के लिए और भी निर्देश दिए गए हैं। बादशाह तख्त ताऊस पर बैठे हुए, पोशाक चमकती हुई, ताज शिर पर, पीछे दो आदमी चमर करते हुए। (सती चन्द्रावली दृश्य ३)

(ग) स्थान मकरध्वज का द्वार, मकरध्वज, प्रेम सागर, रंगीले सब कुर्सी पर बैठे हैं और एक डेउढ़ीदार लट्ट लिये खड़ा है। सब बराबर पान खा रहे हैं और खॉल रहे हैं। (वेश्या प्रहसन २-१)।

रंग संकेत—

नाटककार अभिनय एव रंगमंच सम्बन्धी जो सूचनाएँ देता है वे रंग-संकेत हैं। ये रंग-संकेत अधिकांशतः ब्रैकेटों में रखे गए हैं। कुछ नाटककारों ने पाद टिप्पणियों में भी वेशभूषा सम्बन्धी सूचनाएँ दी हैं। ये रंग निर्देश हैं। भारतेन्दु कालीन नाटकों में दो प्रकार के रंग-संकेत हैं (१) लघु और (२) दीर्घ।

लघु—लघु रंग-संकेत संस्कृत नाटकों की परम्परा के हैं। ये केवल अभिनय सम्बन्धी हैं। उदाहरण—

“हंस कर, स्मित, सखी से, लजा कर, चल कर, प्रस्थान, प्रवेश, मन में, प्रकट, आप ही आप, हाथ से वृत्तों को छू कर, गरदन झुकाए बैठता है, हंस को राजा पकड़ता है, शिवदत्त के चले जाने के उपरान्त।”

दीर्घ रंग-संकेत—दीर्घ रंग संकेत दो प्रकार के हैं—(१) वर्णनात्मक और (२) औपन्यासिक। वर्णनात्मक रंग-संकेतों में दृश्य-योजनाएँ दी गई हैं जिसके उदाहरण ऊपर दिए गए हैं। औपन्यासिक रंग-संकेतों में नाटककार स्वयं कथा आगे बढ़ाता है और बीच-बीच में वर्णन भी दे देता है। उदाहरण—

(क) मुहम्मद बिन-कासिम जो खलीफा उमर की उस फौज का सेनापति है जो हिन्दुस्तान को फ़ते के लिये भेजी गई थी सिंध देश के राजा को पराजय करके सिंध नदी के किनारे लश्कर उतारे हुए हैं व्यतीत रात को फ़तह के जशन हुए थे और लश्कर में तरह-तरह की खुशियाँ मनाई गई थीं प्रातःकाल सेनापति ज़ेमें से निकल कर दरिया के किनारे दो चार सरदारों को साथ लिये हुए ठण्डी हवा खा रहा है। (सिन्धु देश की राजकुमारियाँ)

(ख) भूपाल के समीप गुज़ौर के बाहर मैदान में विजयी खों की सेना

के डेरे पड़े हैं अपने डेरे के अन्दर संध्या के समय पलंग पर लेटा हुआ मुसलमान प्रधान पेचवान लगाये हुक्का पी रहा है इतने में दरबारी पशखरा खुश मिजाज खाँ बड़े अदब से सलाम करके सामने बैठता है ।

(गुन्नौर की रानी)

(ग) उपकारमल बंदगी करके जाते हैं । भरोसदास प्रातःकाल बहुत सफाई से अरजी लिख कर अपनी सरटीफिकेट रूमाल में लपेट हम्मामा बाँध बूट चढ़ा कुबड़ी सम्हाल हनुमान जी को मनाते हुए साहब के बंगले की तरफ चले । बंगले के फाटक पर पहुँच कर एक अंग्रेज को बाग की रौस पर टहलते हुए देख कर भरोसदास बुखारबख्श मिस्त्री से जो पास ही कुयें पर पानी भर रहा था पूछने लगे ।

(निकुष्ट चाकरी)

(घ) पृथ्वीराज की सेना चक्रव्यूह रच कर खड़ी है । युद्ध का बाजा बज रहा है । रणभूमि में जगह-जगह रुधिर मांस मज्जा बिखर रहे हैं, जहाँ तहाँ अनेक घायल और मृतक शरीर दृष्टि आते हैं शस्त्र और भूषण वस्त्रादि रुधिर से भरे पड़े हैं मांस भस्ती जीव इधर-उधर फिरते हैं जयचन्द की तरफ से मुनि वेश धारी केहर कंठीर बहुत से वैरागी साथ लेकर शंख बजाता आता है और पृथ्वीराज की तरफ से आतताई शंखध्वनि करता है*** दोनों ने धनुष बाण चढ़ा लिये । रणवाद्य के साथ नेपथ्य में सिंदूरा राग आरम्भ होती है और ताल के ऊपर पैतंग बदल-बदल कर धनुष बाण घुमाते हुये दोनों वीर घूमते हैं बारम्बार तूर्य नाद होता है ।

(संयोगता स्वयंवर)

ऐसे औपन्यासिक रंग-संकेत निम्न अन्य नाटकों में भी प्राप्त होते हैं—
माधवानल कामकंदला, सत्यवती, मोरध्वज, द्रोपदी वस्त्रहरण, विज्ञान नाटक, गंगोत्री नाटक के अन्त में एवं सती चरित्र नाटक के अन्त में ।

उपसंहार

इतने विस्तृत विवेचन के उपरान्त हम यह सप्रमाण कह सकते हैं कि हिन्दी के आरंभिक नाटक—व्रजभाषा नाटक—नाटक ही हैं। हाँ, हम उन्हें पद्यात्मक या काव्यात्मक नाम भले ही दें। इन व्रजभाषा नाटकों का संबंध भारतेन्दुकालीन नाटकों से वैसा ही है जैसा कि भारतेन्दुकालीन नाटकों का प्रसादकालीन नाटकों से है। नाटकों की यह अविच्छिन्न धारा आज तक अबाध गति से प्रवाहित है जिसमें मोड़ आए है।

भारतेन्दुकालीन नाटकों के रूप में एक समृद्ध नाटक साहित्य उत्पन्न हुआ है। इन नाटकों में अनेक विशेषताएँ भरी हैं—(१) यह नाटकों का बालकाल था। जैसे बालक प्रयोग-प्रधान होता है, वैसे ही यह काल भी प्रयोग-प्रधान था। इस काल में नाटक निर्माण के अनेक प्रयोग किये गए। सजग नाटककारों ने जिस शैली में आकर्षण पाया उसी को अपना बना लिया। बँगला, मगड़ी, संस्कृत, अंग्रेजी और उर्दू शैली को अपना कर नाटकीय प्रयोग किए। इन प्रयोगों के बीच से नाटककारों ने अपना समन्वित और स्वतंत्र मार्ग निकाला। (२) नाटककारों ने नाटकों में सरल, सुबोध और प्रवहमान भाषा की प्रतिष्ठा की। यद्यपि यह गद्य का प्रारंभिक युग था और अव्यवस्था भी दिखलाई पड़ती है, तब भी नाटककारों ने भाषा को सँवारने और सजाने का प्रयास किया है। उन्होंने लोकोक्तियों और मुहावरों का खुल कर प्रयोग किया है। सरल अलंकारों को जड़ा है। क्लिष्टता एवं दुरुहता से नाटकों की रक्षा की है। (३) भारतेन्दुकालीन नाटकों में सुन्दर कविताओं, गीतों एवं सूक्तियों का उत्तम भण्डार भरा है। (४) इस युग के नाटककार भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व से प्रभावित हैं। वास्तव में भारतेन्दु जी इस काल के प्रकाश स्तम्भ हैं। भारतेन्दु जी के विचार और शैलियों से इस युग के अधिकांश नाटककार प्रेरणा प्राप्त करते हैं। (५) इस युग के नाटककार बड़े सजग और जागरूक कलाकार थे। वे जिस समाज और राष्ट्र में साँस ले रहे थे उसके प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझते थे। फलतः उनके नाटकों में तत्कालीन समाज और राष्ट्र के सदस्यों बहुमूल्य चित्र चित्रित हैं। इन चित्रों में नाटककार अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं को सजा रहे हैं। इन सामाजिक और राजनैतिक चित्रों एवं उद्गारों के आधार पर उस काल का विस्तृत इतिहास निर्मित हो सकता है। (६) यह युग नवजागरण एवं सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलनों का युग था। फलतः नाटककारों का दृष्टिकोण उपदेशात्मक था जो नाटकों में प्रतिबिम्बित हुआ है।

भारतेन्दुकाल ने हिन्दी जगत को अनेक देन दी है (१) हिन्दी को एक दर्जन से अधिक दुःखान्त नाटक इसी युग ने दिए। (२) हिन्दी एकांकी का प्रारंभ भारतेन्दु युग में हुआ और हिन्दी का प्रथम एकांकीकार था काशीनाथ खत्री। (३) भारतेन्दुकालीन नाटककारों ने हिन्दी के प्रहसन भण्डार को भरा। (४) नाटक का रंगमंच से अविच्छिन्न संबंध है, इस विचारधारा के अभिनेय नाटकों का प्रचुर विकास इस युग में हुआ और हिन्दी को अनेक अभिनेय नाटक मिले। (५) हिन्दी के आरंभिक दो नाट्यशास्त्र इसी युग में निर्मित हुए। उनमें से एक है गणेश कवि कृत दशरूपक जो संस्कृत नाट्यशास्त्रों के आधार पर बना था। दूसरा है भारतेन्दु जी का लघु ग्रंथ नाटक जो तब से आज तक नाट्यशास्त्र रूप में प्रकाश देता रहा है। इसी में भारतेन्दु जी ने पूर्व और पश्चिम की नाटकीय व्यवस्थाओं के बीच से समन्वित मार्ग की व्यवस्था की थी। (६) इसी युग ने हिन्दी को कई सौ नाटक दिए और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं० देवकौनन्दन त्रिपाठी, श्रीनिवासदास, काशीनाथ खत्री, शालिग्राम वैश्य, पं० बालकृष्ण भट्ट इत्यदि कई प्रमुख नाटककारों ने हिन्दी माँ की धमनियों को बल प्रदान किया।

इति शुभम्

सहायक पुस्तक सूची

हिन्दी नाटक

पुस्तक	लेखक	प्राप्ति-स्थान
अ		
अकबर गोरक्षान्याय नाटक	जगतनारायण शर्मा	काशी नागरी प्रचारिणी सभा
अथ रामचरित नाटक	जयगोविंद मालवीय	"
अद्भुत नाटक	कमलाचरण मिश्र	चिरंजी पुस्तकालय, आगरा
अनर्घनल चरित्र	पं० सुदर्शनाचार्य	
अभिमन्यु नाटक	शालिग्राम वैश्य	का० ना० प्र० सभा
अमरसिंह राठौर	राधाचरण गोस्वामी	"
अश्रुमति नाटक	मुं० उदितनारायण लाल वर्मा	का० ना० प्र० सभा
अहिरावन लीला (हस्तलेख)	उदय	का० ना० प्र० सभा
आ		
आनन्दोद्भव नाटक	कृष्णबिहारी गुप्त	
आम्रस्तुति प्रहसन	नागर	
आर्यमत मार्त्तण्ड	रुद्रदत्त शर्मा	संग्रहालय प्रयाग
इ		
इन्द्रसभा (अमानत)	कृष्णबिहारी शुक्ल (नाटक रूप में संगृहीत)	का० ना० प्र० सभा
इश्क चमन या स्वांग बिस्मिल परिवार का	शालिग्राम वैश्य	का० ना० प्र० सभा
उ		
उद्धव नाटक	गोवर्धन (संशोधक ब्रजनन्दन सहाय)	
उषाहरण	कार्तिकप्रसाद खत्री	का० ना० प्र० सभा

पुस्तक	लेखक	प्राप्ति-स्थान
ए		
एक-एक के तीन-तीन	देवकीनन्दन त्रिपाठी	भारती भवन, प्रयाग
क		
काली लीला	ब्रजवासीदास	का० ना० प्र० सभा
काशीदर्शन नाटक	हरशंकर प्रसाद	
कुन्द कली नाटक	जगन्नाथप्रसाद शर्मा	का० ना० प्र० सभा
कन्या सम्बोधनी नाटक	मुं० कामताप्रसाद	"
कपटी मुनि नाटक	अनन्तराम पांडेय	भारती भवन पुस्तकालय
कमल मोहिनी भँवरसिंह	जवाहरलाल वैद्य जैन	का० ना० प्र० सभा
करुणाभरण नाटक	लच्छी राम	"
(हस्तलेख)		
कल्प वृक्ष	खड्गचहादुर मल्ल	"
कलि कौतुक रूपक	प्रतापनारायण मिश्र	
ख		
खयाल राजा भरथरी	मातादीन	"
ग		
गुजौर की रानी	काशीनाथ खत्री	"
गोपीचन्द नाटक	श्रीमती लाली जी	"
गोपीचन्द नाटक	अरुणा जी इनामदार	काशीराम पुस्तकालय (सरस्वती पुस्तकालय, काशी)
गोवध निषेध नाटक	देवकीनन्दन त्रिपाठी	भारती भवन पुस्तकालय
गो-संकट नाटक	अम्बिकादत्त व्यास	चिरंजी पुस्तकालय, आगरा
गंगा माहात्म्य	वंशीधर पाठक	का० ना० प्र० सभा
गंगोत्री	पं० बालमुकुन्द पांडेय	"
ग्राम पाठशाला	काशीनाथ खत्री	बा० ब्रजरत्नदास
च		
चौपट चपेट	किशोरीलाल गोस्वामी	चिरंजी पुस्तकालय, आगरा
ज		
जयनारसिंह की	देवकीनन्दन त्रिपाठी	चिरंजी पुस्तकालय, आगरा

पुस्तक	लेखक	प्राप्ति-स्थान
जैसा काम वैसा परिणाम बालकृष्ण भट्ट		संग्रहालय, प्रयाग
जोग लीला (हस्तलेख)	उदय	का० ना० प्र० सभा
जोहरा बहिराम नाटक	मुहम्मद अब्दुल्ला	भारती भवन पुस्तकालय
त		
तप्ता संवरण	श्री निवासदास	भारती भवन पुस्तकालय
द		
दमयन्ती स्वयंवर	बालकृष्ण भट्ट	का० ना० प्र० सभा
दर्याई इन्द्र सभा	रामभजन मिश्र	"
दामोदर लीला	देवीदास	"
देवाक्षर चरित्र	पं० रविदत्त शुक्ल	बा० ब्रजरत्नदास
द्रौपदी वन हरण	राय प्रभुलाल	का० ना० प्र० सभा
ध		
धर्मालाप	राधाकृष्णदास	ब्रजरत्नदास पुस्तकालय
ध्रुवतपस्या	मंसाराम मारवाड़ी	भारती भवन पुस्तकालय
न		
न्याय सभा नाटक	रत्नचन्द वकील	का० ना० प्र० सभा
नवीन वेदान्त नाटक	जगन्नाथ भारतीय	"
नहुष	गिरिधर दास	बा० ब्रजरत्नदास
नागरी विलाप	रामगरीब चतुर्वेदी	का० ना० प्र० सभा
नाट्य संभव	किशोरीलाल गोस्वामी	चिरंजी पुस्तकालय, आगरा
निकृष्ट नौकरी	काशीनाथ खत्री	बा० ब्रजरत्नदास
नीलदेवी	भा० हरिश्चन्द्र	
नौटंकी	लछ्मन कृत	संग्रहालय प्रयाग
नृसिंहावतार	राम भजन मिश्र	का० ना० प्र० सभा
प		
पद्मपत्नारन लीला	कोई बालक	
पदमावती	रामकृष्ण वर्मा	ब्रजरत्नदास पुस्तकालय
परम प्रबोध विधु नाटक	महाराज रघुराजसिंह	काशिराज सरस्वती
(हस्तलेख)		पुस्तकालय
पुरुषिक्रम	शालिग्राम वैश्य	
पुलिस नाटक	पं० मूलचन्द	भारती भवन पुस्तकालय
प्रचण्ड गोरक्षा	देवकीनन्दन त्रिपाठी	भारती भवन पुस्तकालय
प्रद्युम्न विषय	हरिश्चोष	का० ना० प्र० सभा

पुस्तक	लेखक	प्राप्ति-स्थान
प्रद्युम्न विजय (हस्तलेख)	गणेश	ब्रजरत्नदास पुस्तकालय
प्रबोध चन्द्रोदय	ब्रजवासीदास	"
प्रबोध चन्द्रोदय	नानकदास	का० ना० प्र० सभा
प्रबोध चन्द्रोदय	अनु० देवीदीन	
प्रबोध चन्द्रोदय	" भवदेव दुबे	नवलकिशोर प्रेस
प्रबोध चन्द्रोदय	गुलाबसिंह	
प्रबोध चन्द्रोदय	धोकल मिश्र	"
प्रभास मिलन	मधुसूदन लाल	"
प्रभास मिलन	कालीकृष्ण मुखोपाध्याय	का० ना० प्र० सभा
प्रभास मिलन	बलदेवप्रसाद मिश्र	
प्रह्लाद चरित नाटक	महाराजदीन दीक्षित	ना० प्र० सभा, काशी
प्रह्लाद चरित्र नाटक	श्रीनिवासदास	
प्रह्लाद चरित्रामृत	जगन्नाथशरण	का० ना० प्र० सभा
प्रेम की बेल	ब्रजजीवन दास	"
प्रेम वाटिका	श्री राजेन्द्रसिंह	"
प्रेम मंजरी	"	"
प्रेम स्वरूप	ब्रजजीवन दास	"
प्रेम सुन्दर	खिजावन लाल	"
प्रेमियों की सैर	कृष्ण बिहारी शुक्ल	
ब		
बनवीर नाटक	गोपालराम गहमरी	चिरंजी पुस्तकालय, आगरा
बालखेल या ध्रुवचरित्र	दामोदर शास्त्री	का० ना० प्र० सभा
बालविधवा संताप नाटक	काशीनाथ	"
बाल्य विवाह दूषक	देवदत्त मिश्र	"
बाल्य विवाह नाटक	देवी प्र० शर्मा	ब्रजरत्नदास पुस्तकालय
बाला सिसु विवाह	शिवकरण रामरतन	का० ना० प्र० सभा
बैल छै टके को	देवकीनन्दन त्रिपाठी	भारती भवन पुस्तकालय
भ		
भक्त सूरदास	श्री लाल उपाध्याय	का० ना० प्र० सभा
भारत आरत	खड्ग बहादुर मल्ल	"
भारत डिमडिमा नाटक	पं० अगतनारायण	"
भारत आरत (भा० १ १८८५)	(रसिकपंच अग्रेल जून जुलाई)	"

पुस्तक	लेखक	प्राप्ति-स्थान
भारत सौभाग्य	पं० बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन	ब्रजरत्नदास पुस्तकालय
भारत सौभाग्य	पं० अम्बिकादत्त व्यास	भारतीभवन पुस्तकालय, प्रयाग
भारतीहरण (हस्तलेख)	देवकीनन्दन त्रिपाठी	संग्रहालय प्रयाग
भारतोद्धार नाटक	शरत्कुमार मुखोपाध्याय	का० ना० प्र० सभा
म		
मदन मंजरी	अमानसिंह व जागेश्वर	ब्रजरत्नदास पुस्तकालय
मनोरंजनी नाटक	रघुवीर सिंह वर्मा	का० ना० प्र० सभा
मयंक मंजरी	भिशोरीलाल गोस्वामी	”
महा अंधेर नगरी	विजयानन्द	संग्रहालय प्रयाग
महामोह विद्रावण नाटक	विजयानन्द त्रिपाठी	भारतीभवन पुस्तकालय
महारानी पद्मावती	राधाकृष्णदास	ब्रजरत्नदास पुस्तकालय
महारास	खड्गबहादुर मल्ल	ना० प्र० सभा, काशी
मृत्यु सभा	भवनराज श्रीमाली	
माधव विनोद नाटक	सोमनाथ	काशिराज पुस्तकालय
माधवानल कामकंदला	शालिग्राम	का० ना० प्र० सभा
मानलीला	चौबे रामप्रसाद	संग्रहालय
मालती वसंत	वजर प्रसाद	
मालती माधव भाषा	ला० सीताराम	का० ना० प्र० सभा
मिथिलेश कुमारी	विन्ध्येश्वर प्र० राय	”
मीराबाई	बलदेवप्रसाद मिश्र	
मुकुन्दर सभा	बा० सूर्यनारायण सिंह	
मोरध्वज	शालिग्राम वैश्य	का० ना० प्र० सभा
य		
युगल विहार नाटक	द्विजकृष्ण दत्त	का० ना० प्र० सभा
यौवन-योगिनी	गोपालराम गहमरी	”
र		
रणधीर प्रेममोहिनी	श्री निवासदास	
रति कुसुमायुध	खड्गबहादुर मल्ल	
राधा नन्दकुमार	क० रामचरन दास जी	ब्रजरत्नदास पुस्तकालय
राम करुणाकर नाटक		
(हस्तलेख)	उदय	का० ना० प्र० सभा

पुस्तक	लेखक	प्राप्ति-स्थान
रामचरित नाटक	जयगोविन्द मालवीय	काशिराज पुस्तकालय
रामचरित्र नाटक	द्विजदास	
रामयश दर्पण (बाल शिवशंकरलाल वाजपेयी कांड प्रथम भाग)		का० ना० प्र० सभा
रामयश दर्पण (अयोध्याकांड द्वि० भाग)	"	"
रामयश दर्पण (अरण्यकांड)	"	"
रामयश दर्पण (किष्किन्धाकांड)	"	"
रामयश दर्पण (सुन्दरकांड)	"	"
रामयश दर्पण (लंका कांड तृ० भाग)	"	"
रामयश दर्पण (उत्तरकांड)	"	"
रामयश दर्पण (अश्वमेध कांड)	"	"
रामलीला या नाटककार रामायण (बालकाण्ड)	दामोदर शास्त्री	"
रामलीला या नाटककार रामायण (अरण्यकांड)	"	"
रामलीला या नाटककार रामायण (किष्किन्धाकांड)	"	"
रामलीला या नाटककार रामायण (सुन्दरकांड)	"	"
रामलीला या नाटककार रामायण (युद्धकांड)	"	"
रामलीला या नाटककार रामायण (उत्तरकांड)	"	"
रामलीला नाटक (हस्तलेख)	देवकीनन्दन त्रिपाठी	भारती भवन पुस्तकालय
रामलीला विजय नाटक	वैद्य बलदेव प्रसाद	का० ना० प्र० सभा

पुस्तक	लेखक	प्राप्ति-स्थान
रामाभिषेक नाटक	अनु० रामगोपाल विद्यान्त	
रामायण नाटक	प्राणचन्द	का० ना० प्र० सभा
रुक्मणी हरण नाटक	देवकीनन्दन त्रिपाठी	भारती भवन पुस्तकालय
ल		
लल्ला बाबू	बलदेवप्रसाद मिश्र	
ललिता नाटिका	अम्बिकादत्त व्यास	ना० प्र० सभा, काशी
लव जी का स्वप्न	काशीनाथ खत्री	का० ना० प्र० सभा
लावण्यवती सुदर्शन	शालिग्राम वैश्य	
व		
चारांगना रहस्य	चद्रीनारायण चौधरी	आनन्द कादंबिनी पत्रिकाओं से प्राप्त
विद्या विनोद नाटक	गोपालराम गहमरी	का० ना० प्र० सभा
विद्याविलासी सुखचंभिनी	श्रीकृष्ण काश्मीरी	भारती भवन पुस्तकालय
विधवा दुर्दशा नाटक	रामरतन द्रक	ना० प्र० सभा, काशी
विधवा सन्ताप नाटक	काशीनाथ खत्री	का० ना० प्र० सभा
विवाह विडम्बना नाटक	तोताराम वकील	संग्रहालय प्रयाग
विवाहिता विलाप नाटक	निखिलाल	का० ना० प्र० सभा
विश्वामित्र	कैलाशनाथ वाजपेयी	"
विज्ञान नाटक	स्व० शंकरानन्द तृतीय	"
वीरवामा	बैजनाथ	का० ना० प्र० सभा
वेनिस नगर का व्यापारी	आर्य उपनाम महिला	काशिराज पुस्तकालय
वेश्या नाटक	ई० प्र० शर्मा	का० ना० प्र० सभा
वेश्या विलास	देवकीनन्दन त्रिपाठी	भारती भवन पुस्तकालय
वृध विवाह नाटक	रामरतनदास	"
(बुढ़ेबालम का खयाल)		
बृद्धावस्था विवाह नाटक	घनश्यामदास	"
बृहन्नाला	बालकृष्ण भट्ट	का० ना० प्रा० सभा
श		
शकुन्तला (हस्तलेख)	धोंकल मिश्र	का० ना० प्रा० सभा
शकुन्तला	नेवाज	
शकुन्तला नाटक	हाकिम मुहम्मद अब्दुल्ला	का० ना० प्र० सभा
शमशाद सौसन	केशवराम भट्ट	ब्रजराजदास पुस्तकालय
शिक्षादान	बालकृष्ण भट्ट	संग्रहालय प्रयाग

पुस्तक	लेखक	प्राप्ति-स्थान
शील सावित्री	कन्हैयालाल	
स		
सज्जाद संजुल	केशवराम भट्ट	ब्रजरत्नदास पुस्तकालय
सती नाटक	उदितनारायण वक्रील	संग्रहालय प्रयाग
सती चन्द्रावली	रामचरण गोस्वामी	"
सती चरित्र नाटक	हनुमंतसिंह रघुवीरसिंह	
सती प्रताप	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	
सत्यवती नाटक	छगनलाल कासलीवाल	का० ना० प्र० सभा
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	रामभजन मिश्र 'स्वतंत्र'	"
सत्योदय	नन्हें मल	काशिराज पुस्तकालय
समयसार नाटक	बनारसीदास	का० ना० प्र० सभा
सरस्वती	दुर्गाप्रसाद मिश्र	
सर्गाफी नाटक	गौरीदत्त	का० ना० प्र० सभा
सावित्री नाटक	ला० देवराज	ना० प्र० सभा, काशी
सिन्धुदेश की	काशीनाथ खत्री	का० ना० प्र० सभा
राजकुमारियों		
सीता वनवास नाटक	ज्वालाप्रसाद मिश्र	ना० प्र० सभा, काशी
सीता स्वयंवर नाटक	बन्दोदीन दीक्षित	का० ना० प्र० सभा
सीता हरण	देवकीनन्दन त्रिपाठी	भारती भवन पुस्तकालय
सीता हरण नाटक	बन्दोदीन दीक्षित	संग्रहालय प्रयाग
सुरभि संताप नाटक	सन्तुलाल गुप्त	
सुदामा जी का स्वांग	कोई मारवाड़ी	भारतीभवन पुस्तकालय
व नाटक		
सुलोचना सती या सती	बलदेव जी अग्रहरि	का० ना० प्र० सभा
माहात्म्य		
सुलोचना सती नाटक	भवदेव	"
सोमा सती	जैनेन्द्र किशोर	
संगीत शाकुन्तल	प्रतापनारायण मिश्र	चिरंजी पुस्तकालय, आगरा
संयोगिता स्वयंवर	श्री निवासदास	ब्रजरत्नदास पुस्तकालय
संसार सागर रत्न अर्थात्	मोहन लाल	का० ना० प्र० सभा
वैश्य नाटक		
सांगराजा सखण	खुशीराम	भारती भवन पुस्तकालय
सांग रूप वसन्त	लक्ष्मण के शिष्य	"

पुस्तक	लेखक	प्राप्ति-स्थान
संगीत गोपीचन्द्र	लक्ष्मण	का० ना० प्र० सभा
संगीत गोपीचन्द्र	इन्द्र	संग्रहालय प्रयाग
सांगीत नागलीला	मुशी कुँअरसेन साहव जू	का० ना० प्र० सभा
सांगीत प्रह्लाद	लक्ष्मण	"
सांगीत शकुन्तला	"	"
श्रीदामा नाटक	रविदत्त शुक्ल	ब्रजरत्न दास
ह		
हनुमान नाटक (हस्तलेख)	उदय	का० ना० प्र० सभा
हरितालिका नाटक	खड्ग ब्रह्मादुर मल्ल	ब्रजरत्नदास पुस्तकालय
हरिश्चन्द्र या तमाशा		
गर्दिशे तकदीर	नजीर बेग	का० ना० प्र० सभा
हिन्दी उर्दू का नाटक	रत्नचन्द ब्री० ए०	भारती भवन, पुस्तकालय
होली दर्पण नाटक	शिवराम पांडेय वैद्य	"

अन्य हिन्दी पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	संस्करण
अभिनव नाट्यशास्त्र	पं० सीताराम चतुर्वेदी	प्रथम संस्करण
आधुनिक हिंदी काव्य मे निराशावाद	डा० शंभुनाथ पांडेय	"
आधुनिक हिंदी नाटक	डा० नगेन्द्र	च० सं०
आधुनिक हिंदी साहित्य	डा० लक्ष्मीसागर वाष्णैय	द्वि० सं०
आर्य सस्कृति के मूलाधार	पं० बलदेव उपाध्याय	१९४७
उर्दू साहित्य का इतिहास	सैयद एहतिशाम हुसेन	प्र० सं०
उर्दू साहित्य परिचय	हरिशंकर शर्मा	२००३ वि०
एकांकी कला (भूमिका)	रामयतन सिंह	प्र० सं०
एकांकी कला	डा० रामकुमार वर्मा	प्र० सं०
कवितावली	गोस्वामी तुलसीदास	गीता प्रेस तृ० सं०
कांग्रेस का इतिहास	डा० पट्टाभि सीतारमैया	प्र० सं० १९४८
" भाग १	"	"
गीत रघुनन्दन (हस्तलेख)	महाराजा विश्वनाथसिंह	काशीराज पुस्तकालय द्वारा
छलना	भगवतीशरण वाजपेयी	द्वि० सं० १९५०
जीवन और संघर्ष (भूमिका)	पं० उदयशंकर भट्ट	५० सं०

पुस्तक	लेखक	संस्करण
नाट्यकला दर्शन	चन्द्रराज भण्डारी	प्र० सं० १९२५
नाटक की परख	डा० एस० पी० खत्री	द्वि० सं०
नाट्य प्रबन्ध	बलदेवप्रसाद मिश्र	सं० १९६०
” निर्णय	डा० रसाल	प्र० सं० १९३०
” शास्त्र	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी	तृ० सं० १९२३
निबन्ध नवनीत	प्रतापनारायण के निबन्धों	का संग्रह प्र० सं० १९१९
पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ	कन्हैयालाल	२०१०
प्रताप पीयूष	संकलनकर्ता— रमाकांत त्रिपाठी	प्र० सं०
प्रताप समीक्षा	प्रेमनारायण टण्डन	प्र० सं० १९३९
ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास	केशवदेव	प्र० सं० १९२२
भारत का धर्मिक इतिहास	पं० शिवशंकर मिश्र	प्र० सं०
भारत दुर्दशा (भूमिका)	सं० डा० वाष्णैय	द्वि० सं०
”	सं० प्रो० रामप्रकाश अग्रवाल	प्र० सं०
”	सं० डा० सत्यव्रत सिन्हा	प्र० सं०
भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा	डा० नगेन्द्र	प्र० सं०
भारतीय नट्यशास्त्र और रगमंच	पं० मोहनलाल पन्त	(एक व्याख्यान)
भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास	डा० सत्यकेतु विद्यालंकार	द्वि० सं० १९५६
भारतेन्दु का नाट्यसाहित्य	वीरेन्द्र मृगमं शुक्ल	प्र० सं०
” की नाट्यकला	डा० प्रेमनारायण शुक्ल	”
” जी का जीवन- चरित्र	राधाकृष्णदास	”
भारतेन्दु नाटकावली द्वि० भाग	ब्रजरत्नदास	१—१९६३
भारतेन्दु मण्डल	”	प्र० सं०
भारतेन्दु युग	डा० रामविलास शर्मा	द्वि० सं० १९११
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	बा० ब्रजरत्नदास	१९३५
मिश्रबन्धु विनोद खंड १, २, ३		

पुस्तक	लेखक	संस्करण
‘मंभली महारानी’ (भूमिका)	पं० सद्गुरुशरण अवस्थी	प्र० सं० १६५३
माधवानल कामकंदला	आलम	का० ना० प्र० सभा
राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज—	द्वि० भाग	
राधाकृष्ण ग्रंथावली		प्र० सं० १६३०
रामचरितमानस	गोस्वामी तुलसीदास —गीता प्रेस	तृ० सं०
रूपक रहस्य	डा० श्यामसुन्दरदास	चं० सं० २००८
रूपक विकास	उपाध्याय वेदमित्र व्रती	प्र० सं०
लावनी का इतिहास	स्वामी नारायणानंद सरस्वती	,,
विक्टोरिया राजदर्पण	स्वामी आलासर संन्यासी	१८८०
विज्ञानगीता (हस्तलेख)	केशवराम (बा० ब्रजरत्नदास द्वारा प्राप्त)	
सन १८५७ के गदर का	शिवनारायण द्विवेदी	प्र० सं०
इतिहास खंड ४		
सभा की १३वीं खोज रिपोर्ट		१६२६-२८
समीक्षा के सिद्धान्त	डा० सत्येन्द्र	प्र० सं० १६५२
समीक्षा शास्त्र	पं० सीताराम चतुर्वेदी	प्र० सं०
संदेश-रासक	सं० प्रो० हरिवल्लभ वियाणी	१-१६४५
संस्कृत साहित्य का इतिहास	सं० कन्हैयालाल पोद्दार	द्वि० सं० २०११
साहित्य	शिवनारायण शर्मा	प्र० सं० २००३
साहित्य परीक्षण	सं० सत्यदेव चतुर्वेदी एवं गिरिजामोहन चतुर्वेदी (निबंध—भारतीय नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि)	प्र० सं०
साहित्य समीक्षांजलि	सं० डा० सुधीन्द्र (लेख-नाट्यकला की उत्पत्ति) (लेखक-डा० राजेश्वरप्रसाद)	प्र० सं० १६५३
साहित्य सुषमा	सं० नन्ददुलारे वाजपेयी (निबंध—रंगमंच, लेखक— डा० रामकुमार वर्मा)	तृ० आवृ०
हमारी नाट्य परम्परा	दिनेशनारायण उपाध्याय	प्र० सं०

हमारी नाट्य साधना	राजेन्द्रसिंह गौड़	प्र० सं०
हरिवंश पुराण पूर्वाद्ध	टीकाकार गदाधर शर्मा	१९५४
हरिश्चन्द्र (जीवन चरित्र)	शिवनन्दन सहाय	प्र० सं० १९०५
हिन्दी एकांकी	डा० सत्येन्द्र	द्वि० सं० १९५३
हिन्दी एकांकी एवं एकांकीकार	प्रो० रामचरण महेन्द्र	प्र० सं० १९५३
हिन्दी एकांकी (भूमिका)	बच्चन सिंह	प्र० सं०
हिन्दी और आधुनिक नाट्य प्रवृत्तियाँ	कमलिनी मेहता (एम० ए० का प्रबंध पं० सीताराम चतुर्वेदी द्वारा प्राप्त)	१९४३
हिन्दी नाटककार	जयनाथ नलिन	प्र० सं० १९५२
हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास	डा० दशरथ ओझा	प्र० सं०
हिन्दी नाटको का विकास	शिवनाथ एम० ए०	प्र० सं० १९५१
हिन्दी नाट्यसाहित्य	ब्रजरत्नदास	च० सं०
हिन्दी में नाट्यशास्त्र का विकास	पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र	प्र० सं०
हिन्दी साहित्य : एक अध्ययन	डा० रामरतन भटनागर	प्र० सं०
हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	२००६
हीरक जयंती ग्रंथ	(का० ना० प्र० सभा का)	२०११

अंग्रेजी ग्रंथ

<i>Books</i>	<i>Writers</i>	<i>Edition</i>
1. A History of Hindi Literature.	Keay (Modern Period)	Second edition
2. A History of Indian Literature.	Winternitz, Vol. I,	1927
3. A History of Modern India.	Dr. Ishwari Pd. and S. K. Subedar	1951
4. An Advanced History of India	R. C. Majumadar, Raychaudhari and Datta	

<i>Books</i>	<i>Writers</i>	<i>Edition</i>
5. Ancient Indian Theatre.	R. R. Mankad	1950
6. Annals of Antiquities of Rajasthan	C. Tod (Pt. II Chapter V)	1894
7. Bengal Literature	Anand Shanker & Lila Roy	1942
8. British Drama	Nicoll,	4th
9. Catalogue of Manuscripts in the Library of H. H. Maharana of Udaipur.		1943
10. Drama in Sanskrit Lit.	R. V. Jagirdar.	1947
11. History of Classical Sanskrit Lit.	M. Krishnamachari	1939
12. India To-day	R. Palme Dutt	1949
13. Introduction portion of Bharat Natya Shastra.	Man Mohan Ghosh	1951
14. Land Marks in Indian Constitutional and National Development Vol. I	G. N. Singh	1950
15. On Poetry in Drama.	Harley Granville Barker	1937
16. Sanskrit Drama	Keith Part II	1924
17. Sanskrit Drama and Dramatists	K. P. Kulkarni	1927
18. Social and Religious Movements—in the 19th Century.	C. S. Srinivasachari	1st ed. 1947
19. The Indian Stage Vol. I	H. N. DasGupta	1944
20. " " " II	"	"
21. " " " III	"	"
22. " " " IV	"	"

<i>Books</i>	<i>Writers</i>	<i>Edition</i>
23. The Indian Theatre	C. B. Gupta	1954
24. Theory of Drama	Allardyce Nicoll	1931
25. The Theatre of the Hindus	H. H. Wilson etc.	1955
26. World Drama	Nicoll.	
27. The function of Poetry in Drama (an Essay) by Lascelles Abercrombie, from the book 'English Critical Essays Twentieth Century', selected by Phyllis M. Jones, page (1938) 252.		
28. Sophocles' Dramas, translated by Sir George Young (Everymans Library 114)		1953.
29. The Lyrical Dramas of Aeschylus, translated by John Stuart Blachie (Everymans Library)		
30. The Plays of Euripides, translated by Shelly, Peam Milman, Potterd Wodhull		1947 Every Man's Library.
31. The Works of William Shakespeare, 1911, edited by Peter Alexander (Collins Publication)		
32. Drama by Ashley Dukes		1947.

संस्कृत ग्रंथ

नाट्यशास्त्र	भरतमुनिकृत (१६२६)	चौखंभा प्रकाशन
	” (द्वि० सं० १६४३)	निर्णय सागर ”
साहित्य दर्पण	आचार्य विश्वनाथ (शालि- ग्राम शास्त्री कृत टीका)	मृत्युंजय औपधालय, ऐबट रोड, लखनऊ
दशरूपक	आचार्य धनंजय (हिन्दी टीका डा० त्रिगुणायत एवं डा० भोलाशंकर व्यास	
भावप्रकाश	शारदातनय (१६३०)	ओ० इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा
अभिज्ञान शाकुंतलम्	महाकवि कालिदास (कालिदास ग्रंथावली सं० पं० सीताराम चतुर्वेदी)	

विक्रमोर्वशीयम्	महाकवि कालिदास	(कालिदास ग्रंथावली सं० पं० सीताराम चतुर्वेदी)
मालविकाग्निमित्रम्	"	"
मेघदूतम्	"	"
उत्तररामचरितम्	महाकवि भवभूति	चौखंभा प्रकाशन
महावीरचरितम्	"	"
मालतीमाधवम्	"	"
हनुमन्नाटक	श्रीपवनकुमार श्रीहनुमता (पाँचवीं आवृ० १९८१ वि)	
	प्रणीत	वैभव मुद्रणालय, बंबई
कर्पूरमंजरी	राजशेखर	निर्णयसागर, बंबई
प्रसन्नराघव	जयदेव	मास्टर खेलाड़ीलाल काशी
प्रबोध चन्द्रोदय	कृष्णमिश्र	चौखंभा प्रकाशन
सुद्रागद्गस	विशाखदत्त	हरिकृष्ण निबन्ध भवन, बनारस
चण्डकौशिकम्	आर्य क्षेमीश्वर एवं आशुतोष विद्याभूषण नित्यबोध विद्यारत्न	रमानाथ मजुमदार स्ट्रीट कलकत्ता
मृच्छकटिकम्	शूद्रक (टीकाकार ब्रह्मानन्द शुक्ल)	मा० खेला० प्रकाशन काशी
दूतांगदम्	सुभट कवि (टीकाकार अनंतराम शास्त्री)	विद्याविलास प्रेस, काशी
वेणी सहार	भट्ट नारायण	चौखंभा प्रकाशन

पत्र-पत्रिकाएँ

पत्रिका	सन्	लेख	लेखक
अजन्ता	जून १५५५	संस्कृत साहित्य में नाटकों की प्रणयन परम्परा	वाचस्पति शास्त्री
"	"	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनकी देन	गौरीशंकर गुप्त
"	जुलाई "	हिन्दी नाट्य साहित्य का उद्भव	प्रो० रामखेलावन पांडेय
"	नव० १९५३	तेलगु नाट्य साहित्य	लक्ष्मीरंजनम्
आजकल	जून १९५६	संस्कृत के नाटकों में द्वेजिही	वंशीधर विद्यालंकार

पत्रिका	सन्	लेख	लेखक
अनुशीलन	पौ० फा० २०१०	नाटक में संधि संधान	उदयभान सिंह
"	चैत्र फा० २००६	भारतेन्दु की सामाजिक और धार्मिक भावना	डा० केसरीनारायण शुक्ल
"	"	भारतेन्दु युग : साहित्य समाज और जनता	हरिकृष्ण पुरोहित
आज साप्ताहिक	५ सितम्बर १९५५	कवि प्रेमघन	ज्ञानचन्द्र द्विवेदी
विशालभारत	जून १९५१	भारतेन्दु—मानवीय प्रतिमा के सामर्थ्य गौरव	आनन्दनारायण शर्मा
साहित्य सन्देश	जून १९५४	एकांकी कहानी	शशिभूषण सिहल एम० ए०
"	जु० "	गीतिनाट्य और काव्य रूप	मानव एम० ए०
"	जु० १९५५	अन्तःप्रांतीय नाटकांक	
सरस्वती	जून १९५४	हिन्दी का रंगमंच	आनन्दनारायण शर्मा
"	जून १९५५	मराठी के ६ प्रतिनिधि नाटककार	भो० गो० देशपांडे
कल्पना	अग० १९५४	भरत नाट्य	अवनींद्रकुमार विद्यालकार
कल्पना	सितम्बर १९५१	हिन्दी रंगमंच की नई दिशाएँ	गजानन शर्मा
"	मा० १९५४	भा० हरिश्चन्द्र और किलोस्कर	अनिल कुमार
कल्पना	मई १९५४	काव्य रूपक	सिद्धनाथ कुमार
अवन्तिका	जून "	भा० हरिश्चन्द्र	प्रो० नर्मदेश्वर झा
"	अ० १९५३	नाटक लिखना	सामरसेहमाम
"	जन० १९५४	सुखान्त नाटक	उदयशंकर भट्ट
वासन्ती	दिस० १९५५	राजस्थानी के संवाद ग्रंथ	अगरचन्द्र नाहटा
नई धारा	अ० १९५२	नाटक विशेषांक	
नया पथ	मई, जून १९५६	नाटक विशेषांक	
संगम	१७ सित० १९५०	भारतेन्दु युग और भारतेन्दु समाज दर्शन (भारतेन्दु विशेषांक)	शिवनाथ एम० ए०

पत्रिका	सन्	लेख	लेखक
प्रतिभा	जनवरी १९५६	प्राचीन साहित्य में एकांकी	रामचरण महेन्द्र
पाटल	दिसम्बर १९५३	भारतेन्दु की सफलता के रहस्य	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
रसिक पंच	१६ मई, १४ जून, १३ जुलाई १८८५	भारत आरत	
"	१७ अप्रैल १८८५	हिन्दी प्रचलित क्यों नहीं होती	
आलोचना	४।४ नव० १९५५	हिन्दी रंगमंच के पिता नाटककार	डा० लक्ष्मीनारायणलाल
"	४।२ जन० १९५५	दृश्य काव्य में हास्य तत्त्व	डा० रामकुमार वर्मा
देवनागर	२।३ मा० ही० २०११	हिन्दी एकांकी	उदयशंकर भट्ट
कलानिधि	१-१	कल्याणभरण नाटक और उसकी चित्रावली	गोपाल कृष्ण
"	१-२	रूपक की रम्यता	बलदेव उपाध्याय
कविवर	आ० चित्रकार १९४८	मोरध्वज नाटक की आलोचना	
भारतोद्धारक	चैत्र १९४२	ठगगी की चपेट बग्गी की रपेट, नलदमयन्ती, सत्यासत्य— तीन नाटकों की आलोचना	
धर्मदिवाकर	पौष १९४१	धर्म प्रसार का व्यौरा	
स्त्री शृंगार	फर० १-८६	विधवा दुखान्त	
काव्य कुञ्ज	१५ फरवरी प्रकाश १८८४	भारतेन्दुमरण, जीवन चरित्र व शोक प्रकट	बलभद्रप्रसाद मिश्र
कविवचन सुधा की फाइलें		१३ सितम्बर १८७५, २१ अगस्त, २८ अगस्त, ४, ११, १८, २५ सितम्बर, २, ६, १६, २३, ३० अक्टूबर, ६, १३, २०, २७ नवम्बर, ४, ११, १८, २५ दिसम्बर (का० ना० प्र० सभा)	

कविवचनसुधा—	१८७५, १८७६, १८७७ की फाइलें (का० ना० प्र० सभा)
आनंद कादम्बिनी—संवत्	१९३८, १९४२, १९४३, १९४४, १९६१, १९६३ की फाइलें (श्री मथुराप्रसाद उपाध्याय, शीतलगंज)
हरिश्चन्द्र चन्द्रिका—	१८७३, १८७४, १८७५ की फाइलें (का० ना० प्र० सभा)
ब्राह्मण—	१८८३, १८८४, १८८५, १८८७, १८८८, १८८९, १८९०, १८९१ की फाइलें (श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा, कानपुर)
